ॐ

परमात्मने नमः

श्री सीमन्धर-कुन्दकुन्द-कहान दिगम्बर जैन साहित्य स्मृति संचय, पुष्प नं.

अमृत बोध

(भाग-1)

पूज्य बहिनश्री के वचनामृत पर
शिक्षण-शिविर प्रसंग पर हुए
पूज्य गुरुदेवश्री के मंगल प्रवचन

: हिन्दी अनुवाद व सम्पादन :
पण्डित देवेन्द्रकुमार जैन
बिजौलियाँ, जिला-भीलवाड़ा (राज.)

: प्रकाशक :
श्री कुन्दकुन्द-कहान पारमार्थिक ट्रस्ट
302, कृष्णकुंज, प्लॉट नं. 30, नवयुग सी.एच.एस. लि.
वी. एल. मेहता मार्ग, विलेपार्ले (वेस्ट), मुम्बई-400 056
फोन : (022) 26130820

प्राप्ति स्थान :

1. **श्री कुन्दकुन्द-कहान पारमार्थिक ट्रस्ट**
   302, कृष्णकुंज, प्लॉट नं. 30, वी. एल. महेता मार्ग, विलेपार्ले (वेस्ट),
   मुम्बई-400056, फोन (022) 26130820 Email - vitragva@vsnl.com

टाईप-सेटिंग : **विवेक कम्प्यूटर्स,** अलीगढ़

प्रकाशकीय

अन्तिम जिनेश्वर महावीरस्वामी के प्रवर्तमान शासन में अनेक आचार्य भगवन्तों, मुनि भगवन्तों ने स्वयं की प्रचण्ड साधना द्वारा मोक्षमार्ग को जीवन्त रखा है। उनकी सातिशय दिव्य प्रज्ञा के निमित्त से प्रवाहित अनेक परमागमों में मोक्षमार्ग का रहस्य स्पष्ट करके रखा है। उनके प्रत्येक वचनों में अमृत नितर रहा है। हम सभी का महान सद्भाग्य है कि ऐसे परमागम आज भी मौजूद हैं।

प्रवर्तमान काल हुण्डावसिर्पणी नाम से प्रचलित है ऐसे निकृष्ट काल में मोक्षमार्ग का जीवन्त रहना एक आश्चर्यकारक घटना है। भगवान की दिव्यध्वनि की मधुर गुंजार जिनागमों में जीवन्त है ही, परन्तु उनको स्पष्ट करनेवाला कोई नहीं था। समाज घोर रुढ़िवाद में जकड़ा हुआ था। क्रियाकाण्ड में धर्म माननेवाले तथा मनवानेवालों का प्रभाव वर्तता था। सत्य मोक्षमार्ग क्या है, जन्म-मरण का अन्त किस प्रकार आये, आत्मिकसुख किस प्रकार प्राप्त हो—इत्यादि अनेक विषय प्रायः लुप्त हो गये थे।

ऐसे घोर तिमिरमय काल में एक ऐसे सूर्य का प्रकाश हुआ जिसने सम्पूर्ण समाज को नयी दिशा प्रदान कर असीम-अमाप उपकार किया है। सौराष्ट्र के उमराला जैसे छोटे से गाँव में हम सभी के तारणहार परमोपकारी ज्ञान दिवाकर अज्ञान का नाश करनेवाले, कृपालु कहान गुरुदेव का जन्म हम सभी को तारने के लिये ही हुआ है। स्थानकवासी सम्प्रदाय में जन्म हुआ तथा उसी में दीक्षित भी हुए तथापि सत्य की शोध, आत्महित करने की प्रचण्ड भावना से आपश्री शाश्वत् सुख के पन्थ में आये। आपश्री के गुणगान क्या करना! जिसकी कोई कीमत नहीं हो सकती ऐसे परम निर्मल मोक्षमार्ग को आपश्री ने स्वयं के निष्कारण करुणा से प्रकाशित कर वर्तमान समाज पर अनन्त-अनन्त उपकार किया है।

आपश्री का आत्मा के प्रति प्रेम, मुमुक्षु किस प्रकार मोक्षमार्ग तक पहुँचे ऐसी निष्कारण करुणा, जिनदेव-जिनधर्म, जिनवाणी आदि के सातिशय बहुमान से नितरती आपश्री की वाणी मुमुक्षुओं को सराबोर कर देती है। प्रत्येक वचन में प्रवाहित अमृत मुमुक्षुओं को अजरामर पद की प्राप्ति कराता है। जिस शुद्धोपयोग में से बाहर आने पर आपश्री का उत्पन्न हुआ विकल्प मुमुक्षुओं के जन्म-मरण मिटा सकता हो तो आपश्री के शुद्धोपयोग की क्या बात करना, आपका अन्तरंग वैभव तो जो स्वसंवेदन ज्ञान में आवे, वही जानता है।

ऐसे परमपवित्र स्वसंवेदन को जन्म देनेवाली प्रशममूर्ति धन्य अवतार पूज्य भगवती माता चम्पाबेन, धर्मरत्न, धर्म की शोभा इत्यादि अनेक प्रशंसायुक्त शब्दों से पूज्य गुरुदेवश्री मुक्तकण्ठ से प्रशंसा करते हुए थकते नहीं थे। पूज्य गुरुदेव ने परमागमों के ऊपर प्रवचन करके मोक्षमार्ग का रहस्य तो खोला ही है, परन्तु अन्तिम वर्षों में पूज्य बहिनश्री के वचनामृत पर भी आपश्री ने प्रवचन किये हैं। पूज्य गुरुदेव प्रवचनों में अनेक बार फरमाते थे, हमने कभी कोई शास्त्र छपाओ, ऐसा नहीं

कहा। परन्तु यह 'बहिनश्री के वचनामृत' पुस्तक एक लाख छपाओ। ऐसी सर्व प्रथम आज्ञा दी। ऐसा तो उनके वचनामृत में क्या भरा है ? यह तो प्रस्तुत प्रवचनों का जब मुमुक्षु रसपान करेंगे, तब वे स्वयं ही समझ जाएँगे।

जो गूढ़ सिद्धान्त परमागमों में से निकालना, समझना, मुमुक्षुओं को कठिन लगता है उन्हीं सिद्धान्तों को सादी भाषा में वचनामृत में स्पष्ट रूप से समझाया गया है। मुमुक्षुओं के कलेजे की कोर समान पूज्य बहिनश्री की सातिशय प्रज्ञा में रही हुई गहराई, उनकी विशालता, मुमुक्षुओं की प्रत्येक उलझन दूर करनेवाले उनके वचनामृत वास्तव में इस काल की अजायबी है।

प्रस्तुत ग्रन्थ में ईस्वी सन् 1980 में शिक्षण शिविर के प्रसंग पर चले हुए कुल 50 प्रवचनों में से 25 प्रवचन लिये गये हैं। सभी प्रवचन हिन्दी भाषा में चले हैं, इसलिए मात्र उनकी लिपि बदलकर हिन्दी भाषा में ही प्रकाशित किये गये हैं। प्रस्तुत सी.डी. प्रवचनों को शब्दश: उतारकर, जहाँ कोष्ठक भरने की आवश्यकता लगी, वहाँ कोष्ठक भरा गया है तथा वाक्य रचना पूर्ण की गयी है। जहाँ कुछ सुनाई नहीं दिया वहाँ '....' करके छोड़ दिया गया है। पाठकवर्ग स्वयं की समझ अनुसार अर्थ घटन करे यही प्रार्थना है। 25 प्रवचन इस भाग में–25 प्रवचन दूसरे भाग में प्रकाशित किये जा रहे हैं।

प्रस्तुत प्रवचन हिन्दी भाषा में होने पर भी गुरुदेवश्री की मूल भाषा गुजराती होने से उन्हें शुद्ध हिन्दीरूप प्रदान करने के उद्देश्य से यह प्रस्तुत प्रकाशन हिन्दी भाषा में प्रकाशित किया जा रहा है। जिसे सी.डी. प्रवचन के साथ दोबारा मिलान कर लिया गया है।

कुन्दकुन्द कहान पारमार्थिक ट्रस्ट, मुम्बई द्वारा पूज्य बहिनश्री चम्पाबेन की 104वीं मंगल जयन्ती प्रसंग पर प्रथम भाग (गुजराती लिपि में) प्रकाशित किया गया। शब्दश: प्रवचनों को उतारने और सम्पादित करने का कार्य श्री नीलेशभाई जैन भावनगर द्वारा किया गया है। इन्हीं प्रवचनों को प्रस्तुतरूप से हिन्दी में प्रस्तुत करने का कार्य पण्डित देवेन्द्रकुमार जैन, बिजौलियां द्वारा किया गया है। यदि प्रस्तुत प्रवचनों में किसी प्रकार की क्षति रह गयी हो तो देव–शास्त्र–गुरु की शुद्ध अन्तकरणपूर्वक क्षमायाचना करते हैं। मुमुक्षुवर्ग से विनम्र प्रार्थना है कि यदि उन्हें कोई क्षति ज्ञात हो तो सुधारकर हमें भेजें, जिससे अपेक्षित सुधार किया जा सके।

प्रस्तुत प्रवचन www.vitragvani.com पर रखे गये हैं।

अन्त में, प्रस्तुत प्रवचनों का रसपान करके सभी जीव शाश्वत् सुख को प्राप्त करें, यही भावना है।

निवेदक

ट्रस्टीगण, श्री कुन्दकुन्द-कहान पारमार्थिक ट्रस्ट

मुम्बई

अध्यात्मयुगसृष्टा पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी

(संक्षिप्त जीवनवृत्त)

भारतदेश के सौराष्ट्र प्रान्त में, बलभीपुर के समीप समागत 'उमराला' गाँव में स्थानकवासी सम्प्रदाय के दशाश्रीमाली वणिक परिवार के श्रेष्ठीवर्य श्री मोतीचन्दभाई के घर, माता उजमबा की कूख से विक्रम संवत् 1946 के वैशाख शुक्ल दूज, रविवार (दिनाङ्क 21 अप्रैल 1890 – ईस्वी) प्रात:काल इन बाल महात्मा का जन्म हुआ।

जिस समय यह बाल महात्मा इस वसुधा पर पधारे, उस समय जैन समाज का जीवन अन्ध-विश्वास, रूढ़ि, अन्धश्रद्धा, पाखण्ड, और शुष्क क्रियाकाण्ड में फँस रहा था। जहाँ कहीं भी आध्यात्मिक चिन्तन चलता था, उस चिन्तन में अध्यात्म होता ही नहीं था। ऐसे इस अन्धकारमय कलिकाल में तेजस्वी कहानसूर्य का उदय हुआ।

पिताश्री ने सात वर्ष की लघुवय में लौकिक शिक्षा हेतु विद्यालय में प्रवेश दिलाया। प्रत्येक वस्तु के ह्रार्द तक पहुँचने की तेजस्वी बुद्धि, प्रतिभा, मधुरभाषी, शान्तस्वभावी, सौम्य गम्भीर मुखमुद्रा, तथा स्वयं कुछ करने के स्वभाववाले होने से बाल 'कानजी' शिक्षकों तथा विद्यार्थियों में लोकप्रिय हो गये। विद्यालय और जैन पाठशाला के अभ्यास में प्राय: प्रथम नम्बर आता था, किन्तु विद्यालय की लौकिक शिक्षा से उन्हें सन्तोष नहीं होता था। अन्दर ही अन्दर ऐसा लगता था कि मैं जिसकी खोज में हूँ, वह यह नहीं है।

तेरह वर्ष की उम्र में छह कक्षा उत्तीर्ण होने के पश्चात्, पिताजी के साथ उनके व्यवसाय के कारण पालेज जाना हुआ, और चार वर्ष बाद पिताजी के स्वर्गवास के कारण, सत्रह वर्ष की उम्र में भागीदार के साथ व्यवसायिक प्रवृत्ति में जुड़ना हुआ।

व्यवसाय की प्रवृत्ति के समय भी आप अप्रमाणिकता से अत्यन्त दूर थे, सत्यनिष्ठा, नैतिज्ञता, निखालिसता और निर्दोषता से सुगन्धित आपका व्यावहारिक जीवन था। साथ ही आन्तरिक व्यापार और झुकाव तो सतत् सत्य की शोध में ही संलग्न था। दुकान पर भी धार्मिक पुस्तकें पढ़ते थे। वैरागी चित्तवाले कहानकुँवर कभी रात्रि को रामलीला या नाटक देखने जाते तो उसमें से वैराग्यरस का घोलन करते थे। जिसके फलस्वरूप पहली बार सत्रह वर्ष की उम्र में पूर्व की आराधना के संस्कार और मङ्गलमय उज्ज्वल भविष्य की अभिव्यक्ति करता हुआ, बारह लाईन का काव्य इस प्रकार रच जाता है —

शिवरमणी रमनार तूं, तूं ही देवनो देव।

उन्नीस वर्ष की उम्र से तो रात्रि का आहार, जल, तथा अचार का त्याग कर दिया था।

सत्य की शोध के लिए दीक्षा लेने के भाव से 22 वर्ष की युवा अवस्था में दुकान का परित्याग करके, गुरु के समक्ष आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत अंगीकार कर लिया और 24 वर्ष की उम्र में (अगहन शुक्ल 9, संवत् 1970) के दिन छोटे से उमराला गाँव में 2000 साधर्मियों के विशाल जनसमुदाय की उपस्थिति में स्थानकवासी सम्प्रदाय की दीक्षा अंगीकार कर ली। दीक्षा के समय हाथी पर चढ़ते हुए धोती फट जाने से तीक्ष्ण बुद्धि के धारक - इन महापुरुष को शंका हो गयी कि कुछ गलत हो रहा है परन्तु सत्य क्या है? यह तो मुझे ही शोधना पड़ेगा।

दीक्षा के बाद सत्य के शोधक इन महात्मा ने स्थानकवासी और श्वेताम्बर सम्प्रदाय के समस्त आगमों का गहन अभ्यास मात्र चार वर्ष में पूर्ण कर लिया। सम्प्रदाय में बड़ी चर्चा चलती थी, कि कर्म है तो विकार होता है न? यद्यपि गुरुदेवश्री को अभी दिगम्बर शास्त्र प्राप्त नहीं हुए थे, तथापि पूर्व संस्कार के बल से वे दृढ़तापूर्वक सिंह गर्जना करते हैं — **जीव स्वयं से स्वतन्त्ररूप से विकार करता है; कर्म से नहीं अथवा पर से नहीं। जीव अपने उल्टे पुरुषार्थ से विकार करता है और सुल्टे पुरुषार्थ से उसका नाश करता है।**

विक्रम संवत् 1978 में महावीर प्रभु के शासन-उद्धार का और हजारों मुमुक्षुओं के महान पुण्योदय का सूचक एक मङ्गलकारी पवित्र प्रसंग बना —

32 वर्ष की उम्र में, विधि के किसी धन्य पल में श्रीमद्भगवत् कुन्दकन्दाचार्यदेव रचित 'समयसार' नामक महान परमागम, एक सेठ द्वारा महाराजश्री के हस्तकमल में आया, इन पवित्र पुरुष के अन्तर में से सहज ही उद्गार निकले — **'सेठ! यह तो अशरीरी होने का शास्त्र है।'** इसका अध्ययन और चिन्तवन करने से अन्तर में आनन्द और उल्लास प्रगट होता है। इन महापुरुष के अन्तरंग जीवन में भी परम पवित्र परिवर्तन हुआ। भूली पड़ी परिणति ने निज घर देखा। तत्पश्चात् श्री प्रवचनसार, अष्टपाहुड़, मोक्षमार्गप्रकाशक, द्रव्यसंग्रह, सम्यग्ज्ञानदीपिका इत्यादि दिगम्बर शास्त्रों के अभ्यास से आपको नि:शंक निर्णय हो गया कि दिगम्बर जैनधर्म ही मूलमार्ग है और वही सच्चा धर्म है। इस कारण आपकी अन्तरंग श्रद्धा कुछ और बाहर में वेष कुछ — यह स्थिति आपको असह्य हो गयी। अत: अन्तरंग में अत्यन्त मनोमन्थन के पश्चात् सम्प्रदाय के परित्याग का निर्णय लिया।

परिवर्तन के लिये योग्य स्थान की खोज करते-करते सोनगढ़ आकर वहाँ 'स्टार ऑफ इण्डिया' नामक एकान्त मकान में महावीर प्रभु के जन्मदिवस, चैत्र शुक्ल 13, संवत् 1991 (दिनांक 16 अप्रैल 1935) के दिन दोपहर सवा बजे सम्प्रदाय का चिह्न मुँह पट्टी का त्याग कर दिया और स्वयं घोषित किया कि **अब मैं स्थानकवासी साधु नहीं; मैं सनातन दिगम्बर जैनधर्म**

का श्रावक हूँ। सिंह-समान वृत्ति के धारक इन महापुरुष ने 45 वर्ष की उम्र में महावीर्य उछाल कर यह अद्‌भुत पराक्रमी कार्य किया।

स्टार ऑफ इण्डिया में निवास करते हुए मात्र तीन वर्ष के दौरान ही जिज्ञासु भक्तजनों का प्रवाह दिन-प्रतिदिन बढ़ता ही गया, जिसके कारण यह मकान एकदम छोटा पड़ने लगा; अतः भक्तों ने इन परम प्रतापी सत् पुरुष के निवास और प्रवचन का स्थल '**श्री जैन स्वाध्याय मन्दिर**' का निर्माण कराया। गुरुदेवश्री ने वैशाख कृष्ण 8, संवत् 1994 (दिनांक 22 मई 1938) के दिन इस निवासस्थान में मंगल पदार्पण किया। यह स्वाध्याय मन्दिर, जीवनपर्यन्त इन महापुरुष की आत्मसाधना और वीरशासन की प्रभावना का केन्द्र बन गया।

दिगम्बर धर्म के चारों अनुयोगों के छोटे बड़े 183 ग्रन्थों का गहनता से अध्ययन किया, उनमें से मुख्य 38 ग्रन्थों पर सभा में प्रवचन किये। जिनमें श्री समयसार ग्रन्थ पर 19 बार की गयी अध्यात्म वर्षा विशेष उल्लेखनीय है। प्रवचनसार, अष्टपाहुड़, परमात्मप्रकाश, नियमसार, पंचास्तिकायसंग्रह, समयसार कलश-टीका इत्यादि ग्रन्थों पर भी बहुत बार प्रवचन किये हैं।

दिव्यध्वनि का रहस्य समझानेवाले और कुन्दकुन्दादि आचार्यों के गहन शास्त्रों के रहस्योद्‌घाटक इन महापुरुष की भवताप विनाशक अमृतवाणी को ईस्वी सन् 1960 से नियमितरूप से टेप में उत्कीर्ण कर लिया गया, जिसके प्रताप से आज अपने पास नौ हजार से अधिक प्रवचन सुरक्षित उपलब्ध हैं। यह मङ्गल गुरुवाणी, देश-विदेश के समस्त मुमुक्षु मण्डलों में तथा लाखों जिज्ञासु मुमुक्षुओं के घर-घर में गुंजायमान हो रही है। इससे इतना तो निश्चित है कि भरतक्षेत्र के भव्यजीवों को पञ्चम काल के अन्त तक यह दिव्यवाणी ही भव के अभाव में प्रबल निमित्त होगी।

इन महापुरुष का धर्म सन्देश, समग्र भारतवर्ष के मुमुक्षुओं को नियमित उपलब्ध होता रहे, तदर्थ सर्व प्रथम विक्रम संवत् 2000 के माघ माह से (दिसम्बर 1943 से) **आत्मधर्म** नामक मासिक आध्यात्मिक पत्रिका का प्रकाशन सोनगढ़ से मुरब्बी श्री रामजीभाई माणिकचन्द दोशी के सम्पादकत्व में प्रारम्भ हुआ, जो वर्तमान में भी गुजराती एवं हिन्दी भाषा में नियमित प्रकाशित हो रहा है। पूज्य गुरुदेवश्री के दैनिक प्रवचनों को प्रसिद्धि करता दैनिक पत्र **श्री सद्‌गुरु प्रवचनप्रसाद** ईस्वी सन् 1950 सितम्बर माह से नवम्बर 1956 तक प्रकाशित हुआ। स्वानुभवविभूषित चैतन्यविहारी इन महापुरुष की मङ्गल-वाणी को पढ़कर और सुनकर हजारों स्थानकवासी श्वेताम्बर तथा अन्य कौम के भव्य जीव भी तत्त्व की समझपूर्वक सच्चे दिगम्बर जैनधर्म के अनुयायी हुए। अरे! मूल दिगम्बर जैन भी सच्चे अर्थ में दिगम्बर जैन बने।

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट, सोनगढ़ द्वारा दिगम्बर आचार्यों और मान्यवर,

पण्डितवर्यों के ग्रन्थों तथा पूज्य गुरुदेवश्री के उन ग्रन्थों पर हुए प्रवचन-ग्रन्थों का प्रकाशन कार्य विक्रम संवत् 1999 (ईस्वी सन् 1943 से) शुरु हुआ। इस सत्साहित्य द्वारा वीतरागी तत्त्वज्ञान की देश-विदेश में अपूर्व प्रभावना हुई, जो आज भी अविरलरूप से चल रही है। परमागमों का गहन रहस्य समझाकर कृपालु कहान गुरुदेव ने अपने पर करुणा बरसायी है। तत्त्वजिज्ञासु जीवों के लिये यह एक महान आधार है और दिगम्बर जैन साहित्य की यह एक अमूल्य सम्पत्ति है।

ईस्वीं सन् 1962 के दशलक्षण पर्व से भारत भर में अनेक स्थानों पर पूज्य गुरुदेवश्री द्वारा प्रवाहित तत्त्वज्ञान के प्रचार के लिए प्रवचनकार भेजना प्रारम्भ हुआ। इस प्रवृत्ति से भारत भर के समस्त दिगम्बर जैन समाज में अभूतपूर्व आध्यात्मिक जागृति उत्पन्न हुई। आज भी देश-विदेश में दशलक्षण पर्व में सैकड़ों प्रवचनकार विद्वान इस वीतरागी तत्त्वज्ञान का डंका बजा रहे हैं।

बालकों में तत्त्वज्ञान के संस्कारों का अभिसिंचन हो, तदर्थ सोनगढ़ में विक्रम संवत् 1997 (ईस्वीं सन् 1941) के मई महीने के ग्रीष्मकालीन अवकाश में बीस दिवसीय धार्मिक शिक्षण वर्ग प्रारम्भ हुआ, बड़े लोगों के लिये प्रौढ़ शिक्षण वर्ग विक्रम संवत् 2003 के श्रावण महीने से शुरु किया गया।

सोनगढ़ में विक्रम संवत् 1997 - फाल्गुन शुक्ल दूज के दिन नूतन दिगम्बर जिनमन्दिर में कहानगुरु के मङ्गल हस्त से श्री सीमन्धर आदि भगवन्तों की पंच कल्याणक विधिपूर्वक प्रतिष्ठा हुई। उस समय सौराष्ट्र में मुश्किल से चार-पाँच दिगम्बर मन्दिर थे और दिगम्बर जैन तो भाग्य से ही दृष्टिगोचर होते थे। जिनमन्दिर निर्माण के बाद दोपहरकालीन प्रवचन के पश्चात् जिनमन्दिर में नित्यप्रति भक्ति का क्रम प्रारम्भ हुआ, जिसमें जिनवर भक्त गुरुराज हमेशा उपस्थित रहते थे, और कभी-कभी अतिभाववाही भक्ति भी कराते थे। इस प्रकार गुरुदेवश्री का जीवन निश्चय-व्यवहार की अपूर्व सन्धियुक्त था।

ईस्वी सन् 1941 से ईस्वीं सन् 1980 तक सौराष्ट्र-गुजरात के उपरान्त समग्र भारतदेश के अनेक शहरों में तथा नैरोबी में कुल 66 दिगम्बर जिनमन्दिरों की मङ्गल प्रतिष्ठा इन वीतराग-मार्ग प्रभावक सत्पुरुष के पावन कर-कमलों से हुई।

जन्म-मरण से रहित होने का सन्देश निरन्तर सुनानेवाले इन चैतन्यविहारी पुरुष की मङ्गलकारी जन्म-जयन्ती 59 वें वर्ष से सोनगढ़ में मनाना शुरु हुआ। तत्पश्चात् अनेकों मुमुक्षु मण्डलों द्वारा और अन्तिम 91 वें जन्मोत्सव तक भव्य रीति से मनाये गये। 75 वीं हीरक जयन्ती के अवसर पर समग्र भारत की जैन समाज द्वारा चाँदी जड़ित एक आठ सौ पृष्ठीय अभिनन्दन ग्रन्थ, भारत सरकार के तत्कालीन गृहमन्त्री श्री लालबहादुर शास्त्री द्वारा मुम्बई में देशभर के हजारों भक्तों की उपस्थिति में पूज्यश्री को अर्पित किया गया।

श्री सम्मेदशिखरजी की यात्रा के निमित्त समग्र उत्तर और पूर्व भारत में मङ्गल विहार ईस्वी सन् 1957 और ईस्वी सन् 1967 में ऐसे दो बार हुआ। इसी प्रकार समग्र दक्षिण और मध्यभारत में ईस्वी सन् 1959 और ईस्वी सन् 1964 में ऐसे दो बार विहार हुआ। इस मङ्गल तीर्थयात्रा के विहार दौरान लाखों जिज्ञासुओं ने इन सिद्धपद के साधक सन्त के दर्शन किये, तथा भवान्तकारी अमृतमय वाणी सुनकर अनेक भव्य जीवों के जीवन की दिशा आत्मसन्मुख हो गयी। इन सन्त पुरुष को अनेक स्थानों से अस्सी से अधिक अभिनन्दन पत्र अर्पण किये गये हैं।

श्री महावीर प्रभु के निर्वाण के पश्चात् यह अविच्छिन्न पैंतालीस वर्ष का समय (वीर संवत् 2461 से 2507 अर्थात् ईस्वी सन् 1935 से 1980) वीतरागमार्ग की प्रभावना का स्वर्णकाल था। जो कोई मुमुक्षु, अध्यात्म तीर्थधाम स्वर्णपुरी / सोनगढ़ जाते, उन्हें वहाँ तो चतुर्थ काल का ही अनुभव होता था।

विक्रम संवत् 2037, कार्तिक कृष्ण 7, दिनांक 28 नवम्बर 1980 शुक्रवार के दिन ये प्रबल पुरुषार्थी आत्मज्ञ सन्त पुरुष — देह का, बीमारी का और मुमुक्षु समाज का भी लक्ष्य छोड़कर अपने ज्ञायक भगवान के अन्तरध्यान में एकाग्र हुए, अतीन्द्रिय आनन्दकन्द निज परमात्मतत्त्व में लीन हुए। सायंकाल आकाश का सूर्य अस्त हुआ, तब सर्वज्ञपद के साधक सन्त ने मुक्तिपुरी के पन्थ में यहाँ भरतक्षेत्र से स्वर्गपुरी में प्रयाण किया। वीरशासन को प्राणवन्त करके अध्यात्म युग सृजक बनकर प्रस्थान किया।

पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी इस युग का एक महान और असाधारण व्यक्तित्व थे, उनके बहुमुखी व्यक्तित्व की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उन्होंने सत्य से अत्यन्त दूर जन्म लेकर स्वयंबुद्ध की तरह स्वयं सत्य का अनुसन्धान किया और अपने प्रचण्ड पुरुषार्थ से जीवन में उसे आत्मसात किया।

इन विदेही दशावन्त महापुरुष का अन्तर जितना उज्ज्वल है, उतना ही बाह्य भी पवित्र है; ऐसा पवित्रता और पुण्य का संयोग इस कलिकाल में भाग्य से ही दृष्टिगोचर होता है। आपश्री की अत्यन्त नियमित दिनचर्या, सात्विक और परिमित आहार, आगम सम्मत्त संभाषण, करुण और सुकोमल हृदय, आपके विरल व्यक्तित्व के अभिन्न अवयव हैं। शुद्धात्मतत्त्व का निरन्तर चिन्तवन और स्वाध्याय ही आपका जीवन था। जैन श्रावक के पवित्र आचार के प्रति आप सदैव सतर्क और सावधान थे। जगत् की प्रशंसा और निन्दा से अप्रभावित रहकर, मात्र अपनी साधना में ही तत्पर रहे। आप भावलिंगी मुनियों के परम उपासक थे।

आचार्य भगवन्तों ने जो मुक्ति का मार्ग प्रकाशित किया है, उसे इन रत्नत्रय विभूषित सन्त

पुरुष ने अपने शुद्धात्मतत्त्व की अनुभूति के आधार से सातिशय ज्ञान और वाणी द्वारा युक्ति और न्याय से सर्व प्रकार से स्पष्ट समझाया है। द्रव्य की स्वतन्त्रता, द्रव्य-गुण-पर्याय, उपादान-निमित्त, निश्चय-व्यवहार, क्रमबद्धपर्याय, कारणशुद्धपर्याय, आत्मा का शुद्धस्वरूप, सम्यग्दर्शन, और उसका विषय, सम्यग्ज्ञान और ज्ञान की स्व-पर प्रकाशकता, तथा सम्यक्चारित्र का स्वरूप इत्यादि समस्त ही आपश्री के परम प्रताप से इस काल में सत्यरूप से प्रसिद्धि में आये हैं। आज देश-विदेश में लाखों जीव, मोक्षमार्ग को समझने का प्रयत्न कर रहे हैं - यह आपश्री का ही प्रभाव है।

समग्र जीवन के दौरान इन गुणवन्ता ज्ञानी पुरुष ने बहुत ही अल्प लिखा है क्योंकि आपको तो तीर्थङ्कर की वाणी जैसा योग था, आपकी अमृतमय मङ्गलवाणी का प्रभाव ही ऐसा था कि सुननेवाला उसका रसपान करते हुए थकता ही नहीं। दिव्य भावश्रुतज्ञानधारी इस पुराण पुरुष ने स्वयं ही परमागम के यह सारभूत सिद्धान्त लिखाये हैं :—

1. एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का स्पर्श नहीं करता।
2. प्रत्येक द्रव्य की प्रत्येक पर्याय क्रमबद्ध ही होती है।
3. उत्पाद, उत्पाद से है; व्यय या ध्रुव से नहीं।
4. उत्पाद, अपने षट्कारक के परिणमन से होता है।
5. पर्याय के और ध्रुव के प्रदेश भिन्न हैं।
6. भावशक्ति के कारण पर्याय होती ही है, करनी नहीं पड़ती।
7. भूतार्थ के आश्रय से सम्यग्दर्शन होता है।
8. चारों अनुयोगों का तात्पर्य वीतरागता है।
9. स्वद्रव्य में भी द्रव्य-गुण-पर्याय का भेद करना, वह अन्यवशपना है।
10. ध्रुव का अवलम्बन है परन्तु वेदन नहीं; और पर्याय का वेदन है, अवलम्बन नहीं।

इन अध्यात्मयुगसृष्टा महापुरुष द्वारा प्रकाशित स्वानुभूति का पावन पथ जगत में सदा जयवन्त वर्तो!

तीर्थङ्कर श्री महावीर भगवान की दिव्यध्वनि का रहस्य समझानेवाले शासन स्तम्भ श्री कहानगुरुदेव त्रिकाल जयवन्त वर्तो!!

सत्पुरुषों का प्रभावना उदय जयवन्त वर्तो!!!

❖ ❖ ❖

अनुक्रमणिका

प्रवचन क्रमांक	दिनाङ्क	वचनामृत	पृष्ठ नम्बर
१	८-८-१९८०	१, १०-१२	१
२	९-८-१९८०	१२, १५, २०	१६
३	१०-८-१९८०	२१, ३०	३१
४	११-८-१९८०	३२, ३३, ३४, ३६	४५
५	१२-८-१९८०	३७,३८,४५	५९
६	१३-८-१९८०	४७,५०,६२,७२	७४
७	१४-८-१९८०	८१, १००	८८
८	१५-८-१९८०	६२,१०५,१४०,४०१	१०२
९	१६-८-१९८०	१७१, १७४,१८३,१८५	११५
१०	१७-८-१९८०	१८५, १९३, १९७	१२७
११	१८-८-१९८०	१९७	१४१
१२	१९-८-१९८०	१९९, २००	१५३
१३	२०-८-१९८०	२००	१६६
१४	२१-८-१९८०	२१६,२१७	१७९
१५	२२-८-१९८०	२४१,२४४,२५१	१९३
१६	२३-८-१९८०	२७९,२८२,२९४,२९५	२०७
१७	२४-८-१९८०	२९५,२९८	२२०
१८	२५-८-१९८०	३०६,३१०,३२१	२३३
१९	२६-८-१९८०	३२१,३२३,३२९	२४६
२०	२७-८-१९८०	३४४,३४९	२५९
२१	२८-८-१९८०	३४९,३५०	२६९
२२	१-९-१९८०	३५२,३५३	२८४
२३	२-९-१९८०	३५३,३५५	२९८
२४	४-९-१९८०	३५५,३५६,३५७	३१०
२५	५-९-१९८०	३६०,३६५	३२१

परम पूज्य गुरुदेव श्री कानजीस्वामी का अपार उपकार

(पूज्य बहिनश्री चम्पाबेन के भक्तिभीने उद्‌गार)

पूज्य गुरुदेवश्री की वाणी तो तीर्थंकर भगवान की दिव्यध्वनि जैसी महामंगलकारी, आनंद उपजानेवाली थी। ऐसी वाणी का श्रवण जिनको हुआ वे सब भाग्यशाली हैं। पूज्य गुरुदेवश्री की वाणी और पूज्य गुरुदेवश्री तो इस काल के एक अचम्भा थे। बाहरी अभ्यास तो जीव को अनादि से है परन्तु चैतन्य का अभ्यास तो इस काल में पूज्य गुरुदेवश्री ने बहुत सालों तक करवाया है। उनकी वाणी रसात्मक-कसदार थी। उनके अन्तर में श्रुत की धारा और उनकी वाणी में भी श्रुत की गंगा बहती थी। उनकी महा आश्चर्यकारी मुखमुद्रा-शान्तरस बरसाती, उनके नयन उपशमरस भरपूर। अहो! गुरुदेवश्री तो भरत (क्षेत्र) के सौभाग्य थे, भरतक्षेत्र भाग्यशाली कि पूज्य गुरुदेव विदेह से सीधे यहाँ पधारे। सौराष्ट्र भाग्यशाली, जैनसमाज महाभाग्यशाली। पूज्य गुरुदेवश्री ने सच्चा जिनशासन स्वयं ने प्रगट किया। प्रसिद्धरूप से समझाया। और ऐसा काल तो कभी ही आता है। अहो! इस सोनगढ़ में तो 45-45 साल तक मूसलधार बारिश की माफ़िक मिथ्यात्व के जमे हुए चिकने सेवार जैसे पापभाव को उखेड़ने के लिये तेज हवा की माफ़िक पूज्य गुरुदेवश्री ने सम्यक्‌श्रुत की प्रभावना की थी। उनकी कृपा हमलोगों पर सदैव रहती थी। हम तो उनके दास हैं, अरे! दास तो क्या? दासानुदास ही हैं। 3.

★ ★ ★

अहो! पूज्य गुरुदेवश्री ने तो समग्र भरत(क्षेत्र) को जागृत कर दिया है। उनका तो इस क्षेत्र के सर्व जीवों पर अमाप उपकार है। अनन्त-अनन्त उपकार है, पूज्य गुरुदेवश्री का द्रव्य तो अनादि मंगलरूप तीर्थंकर का द्रव्य था। इतना ही नहीं उन्हें वाणी का अद्‌भुत-अनुपम और अपूर्व योग था। पूज्य गुरुदेवश्री अनुपम द्रव्य थे। अपूर्वता के दातार-उनकी वाणी सुननेवाले पात्र जीवों को अन्तर से अपूर्वता भासित हुए बिना नहीं रहती। उपादान सबका अपना-अपना लेकिन उनका निमित्तत्त्व प्रबल से प्रबल था। उन्हें सुननेवाले को अपूर्वता भासित हुए बिना रहे ही नहीं। उनकी वाणी में ऐसा अतिशय था कि उन्हें सुननेवाला कोई भी जीव कभी भी नीरस होकर उनका वक्तव्य सुनते हुए छोड़ दे ऐसा नहीं बनता। ऐसा परम कल्याणकारी मूसलधार उपदेश था। 4.

ॐ

नमः श्री सिद्धेभ्यः

अमृत बोध

(भाग-१)

(अध्यात्मयुगपुरुष पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के प्रशममूर्ति पूज्य बहिनश्री के वचनामृत पर विविध प्रवचन)

विक्रम संवत-२०३५, आषाढ़ कृष्ण-१३, शुक्रवार, तारीख ८-८-१९८०
वचनामृत-१, १०-१२ प्रवचन-१

हे जीव! तुझे कहीं न रुचता हो तो अपना उपयोग पलट दे और आत्मा में रुचि लगा। आत्मा में रुचे ऐसा है। आत्मा में आनन्द भरा है; वहाँ अवश्य रुचेगा। जगत में कहीं रुचे ऐसा नहीं है परन्तु एक आत्मा में अवश्य रुचे ऐसा है। इसलिए तू आत्मा में रुचि लगा॥ १॥

....बहुतों को ऐसा विचार हुआ कि यह वाँचना। ब्रह्मचारिणी बहिनें हैं। बहिन रात्रि को बोले होंगे तो लड़कियों ने लिख लिया। वह यह बाहर आया। जरा प्रेम से सुनने योग्य है। बहिन के वचन हैं, इसलिए अनुभव में से निकले हुए हैं। आनन्द का अनुभव - अनुभूति। शर्त, एक शर्त

हे जीव! है न पहला ? **हे जीव!** पहला ही बोल। **तुझे कहीं न रुचता हो तो...** यह शर्त। **तुझे कहीं न रुचता हो तो...** यह शर्त। यदि कहीं भी परपदार्थ में रुचे अथवा पुण्य और पाप के भाव, वह यदि रुचेगा तो आत्मा नहीं रुचेगा। आहा! जिसने... इसलिए पहला

शब्द पड़ा है। **तुझे कहीं न रुचता हो तो...** यह शर्त। आहाहा! इज्जत, कीर्ति, पैसा, लक्ष्मी, इज्जत और पुण्य एवं पाप दोनों भाव, वह भी तुझे नहीं रुचते हो तो। आहाहा! हमारी काठियावाड़ी भाषा–तने गमतु न होय तो। यह शब्द है। **न रुचता हो तो अपना उपयोग पलट दे...** आहाहा! अन्तर स्वभाव से विपरीत सब चीज़, तीर्थंकर परमात्मा भी, पर के ऊपर लक्ष्य जाने से राग ही होता है। भगवान के ऊपर लक्ष्य जाता है तो राग ही होता है। कहीं न रुचता हो तो... आहाहा! रुचि पलट दे। आहाहा! अपना उपयोग... पलट दे।

जिस उपयोग में आत्मा पकड़ में नहीं आता है तो समझना कि वह उपयोग स्थूल है। आहाहा! अन्दर जिस उपयोग में आत्मा पकड़ में नहीं आता, वह स्थूल उपयोग है– वह स्थूल उपयोग है। सूक्ष्म बात है, यह तो मूल की अन्दर की बातें है। इसलिए तुझे अन्दर आत्मा में जाना हो तो उपयोग को पलट, उपयोग को पलट दे। ऐसे जो उपयोग पर में है, एक ओर भगवान आत्मा और एक ओर लोकालोक। पाँच परमेश्वर की ओर भी यदि रुचि और राग रहेगा तो अपनी ओर उपयोग नहीं पलटेगा। आहाहा! ऐसी बात है।

भगवान आत्मा सच्चिदानन्द स्वरूप, सत् ज्ञान और आनन्दस्वरूप। वहीं तेरे उपयोग को पलट दे और आत्मा में रुचि लगा। यह करना है। छहढाला में आता है। 'लाख बात की बात...' आता है न? 'निश्चय उर आणो, छोड़ी जगत द्वंद्व फंद, निज आतम ध्यावो।' यह छहढाला में आता है। यह एक टूकड़ा बस है। लाख बात की बात, करोड़ बात की बात निश्चय उर आणो। छोड़ी जगत द्वंद्व फंद, (अर्थात्) द्वैतपना भी छोड़ दे। आहाहा! अन्दर आत्मा मैं हूँ और यह राग है, ऐसा द्वैत भी छोड़ दे। द्वैतपना छोड़ दे और आत्मा की रुचि करके अन्दर जा। अन्दर आत्मा में प्रवेश कर। सूक्ष्म बात है, भाई! मुद्दे की रकम की बात है। बाकी अनन्त बार ग्यारह अंग भी अनन्त बार धारण किया। एक अंगर १८ हजार पद और एक–एक पद में ५१ करोड़ से अधिक श्लोक। ५१ करोड़ से अधिक श्लोक। आहाहा! ऐसा ग्यारह अंग भी धारण किया। परन्तु रुचि जो अन्तर्मुख चाहिए वह नहीं थी। बाहर में कहीं न कहीं उसका अटकना होता है। यदि अटकना नहीं हो तो अन्दर गये बिना रहे नहीं। आहाहा! यह खोज निकालना चाहिए कि मेरा कहाँ रुकना होता है? मैं कहाँ रुचि करता हूँ?

यह कहते हैं। **आत्मा में रुचि लगा।** आहाहा! सब छोड़ दे। पुण्य, दया, दान, व्यवहाररत्नत्रय के विकल्प को भी छोड़ दे। क्योंकि उसमें आत्मा नहीं है, वह तो अनात्मा है। आत्मा में उपयोग लगा दे। वह तो रागरहित उपयोग हुआ। आहाहा! करना यह है। बाकी लाख बात कोई भी हो। **आत्मा में रुचि लगा। आत्मा में रुचे ऐसा है...** पहला शब्द ऐसा कहा कि आत्मा में रुचि लगा। क्यों? कि **आत्मा में रुचे ऐसा है...** आत्मा में रुचे ऐसा है। आत्मा में रुचे ऐसा है। अतीन्द्रिय आनन्द अन्दर पड़ा है। असंख्य प्रदेश में सर्वांग आनन्द (भरा है)। आहाहा! **आत्मा में रुचे ऐसा है।** यह शर्त। ऐसे आत्मा में रुचि लगा दे। समझ में आया? भाषा सादी है। भाव गम्भीर है।

पहले कहा न? **तुझे कहीं न रुचता हो तो...** कहीं न रुचे तो। आहाहा! आत्मा के अतिरिक्त कहीं भी न रुचता हो तो अपने में रुचि लगा दे। और अपने में रुचि लगा दे (क्योंकि) आत्मा में रुचि लग सकती है। आत्मा में रुचे ऐसा है आत्मा। पुण्य और पाप रुचे, ऐसी चीज़ नहीं है। आहाहा! ऐसी बात है, प्रभु! आहाहा! यहाँ तो प्रभुरूप से ही सबको बुलाते हैं। भगवान है। आत्मा भगवान अन्दर पूर्णानन्द का नाथ।

आत्मा में आनन्द भरा है;... दो बात की। आत्मा में रुचि लगा। क्यों? कि **आत्मा में रुचे ऐसा है।** आत्मा में रुचे ऐसा है, उसका कारण। आत्मा में रुचि लगा दे, उसका कारण कि **आत्मा में आनन्द भरा है;...** आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्द का पिण्ड प्रभु है। आहाहा! वह कर्म के संग से भी भिन्न है और पुण्य-पाप का विकल्प-भाव, उससे भी भगवान अतीन्द्रिय आनन्दकन्द प्रभु (भिन्न है)। भाषा में तो दूसरा क्या आवे? भाव ऐसी कोई चीज़ है कि अनन्त काल में कभी हुआ नहीं। अनन्त बार... 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायो,' दिगम्बर मुनि। दूसरे को मुनि नहीं कहते। द्रव्यलिंग भी नहीं है। वस्त्रवाला तो द्रव्यलिंगी भी नहीं है। आहाहा! यह तो वस्त्ररहित दिगम्बर अनन्त बार नौवीं ग्रैवेयक गया। नौवीं ग्रैवेयक गया, उसका परिणाम कैसा होगा? शुक्ललेश्या। शुक्ललेश्या के बिना ग्रैवेयक में जाए नहीं। आहाहा! शुक्ललेश्या। चमड़ी उतारकर नमक डाले तो भी क्रोध न करे। बाह्य क्षमा उतनी है। परन्तु अन्तर आत्मा आनन्दकन्द है, उसकी ओर रुचि नहीं है। बाहर की सब सामग्री में रुचि; अन्तर आनन्द का नाथ प्रभु, उस ओर रुचि लगा दे। क्योंकि रुचि लगे (ऐसा है)। क्यों लगे? कि वहाँ आनन्द है। आहाहा!

रात को थोड़ा बोले थे। यहाँ बाल ब्रह्मचारी ६४ बहनें हैं। उनके नीचे ६४ बहनें बाल ब्रह्मचारी हैं। कितनी तो ग्रेज्युऐट है, लाखोंपति की है। उसमें नौ बहनों ने लिख लिया था। उनके भाई हिम्मतभाई के हाथ लगा। फिर यहाँ आया। ओहोहो! इन शब्दों में गम्भीरता है। अकेले शब्द नहीं है, शब्द के पीछे गूढ़ता है।

तुझे कहीं न रुचता हो तो अन्तर में रुचि करे। क्यों ? कि वहाँ रुचि करने लायक है। क्यों ? कि उसमें आनन्द है। आहा! आहाहा! **आत्मा में आनन्द भरा है;...** पुण्य और पाप का भाव है, वह जहर है। जिस भाव से तीर्थंकरगोत्र बँधे, वह भाव राग है, जहर है। आहाहा! भगवन्त आत्मा अमृतस्वरूप है। वह बन्ध का एक भी अंश-कारण नहीं। जो बन्ध का कारण हो, वह राग तो जहर है। आहाहा! इसलिए कहते हैं, **आत्मा में आनन्द भरा है;...** पुण्य और पाप के भाव में दु:ख है।

वहाँ अवश्य रुचेगा। प्रभु! आत्मा में आनन्द भरा है। तुझे वहाँ अवश्य रुचेगा। आहाहा! है ? **वहाँ अवश्य रुचेगा।** सब पर से रुचि छोड़। वहाँ अन्दर में अवश्य रुचेगा। भगवान अन्दर आनन्दमूर्ति प्रभु। इस ज्ञान पर तू इस बात को ले कि करना तो यह है, बाकी सब पुण्य है, पुण्य। आहाहा! जगत में कहीं रुचे, ऐसा नहीं है। जगत में कुछ भी रुचे, ऐसा है नहीं। पुण्य और पाप भी रुचे, ऐसे नहीं है। **परन्तु एक आत्मा में अवश्य रुचे ऐसा है।** दुनिया की कोई चीज़ में रुचे, ऐसा नहीं है। क्योंकि बाहर में लक्ष्य जाए, तीन लोक के नाथ तीर्थंकर और परमेश्वर, पंच परमेष्ठी पर लक्ष्य जाए तो राग हुए बिना रहता नहीं। परद्रव्य पर (लक्ष्य) जाए तो राग आता ही है। स्व-आश्रय में जाए तो रागरहित होता है। दो बात। यह सिद्धान्त।

स्व-आश्रय भगवान परमात्मस्वरूप आत्मा, भगवत्स्वरूप का आश्रय लेने में आनन्द है। उसके अतिरिक्त दूसरे किसी का भी आश्रय लेने जाएगा, पंच परमेष्ठी का आश्रय लेने जाएगा तो भी राग और दु:ख उत्पन्न होगा। आहाहा! कठिन बात है, भाई! वहाँ तो जन्म-मरण रहित होने की बात है। जिसका जन्म-मरण न मिटे, उसने कुछ किया नहीं। यहाँ तो एक ही बात है। जिसके भव का नाश नहीं हुआ, उसने कुछ नहीं किया। आहाहा! भव का नाश कब होता है ? जिसमें भव और भव का भाव, जिसमें अभाव है। आत्मा जो, है उसमें भव और भव का भाव, दोनों का अभाव है। आहाहा! उस आत्मा पर दृष्टि और

रुचि करेगा तो तू जरूर भावरहित होगा। और भव में यदि रहेगा तो कहीं न कहीं नरक और निगोद...आहाहा!

आचार्य ने तो वहाँ तक कहा, कपड़े का टुकड़ा रखकर मुनि है, ऐसा माने तो निगोद में जाएगा। अरे..रे..! आहाहा! क्योंकि नवों तत्त्व की भूल हुई। क्योंकि टुकड़ा रखा, संयोग आया। छट्ठे गुणस्थान में मुनि को तीन कषाय का अभाव हुआ हो, वहाँ कपड़ा होता ही नहीं। कपड़ा आया तो उतना राग आया। मुनिपना रहा नहीं। और राग को संवर माना तो मिथ्यात्व हुआ। वह है आस्रव; आस्रव को संवर माना। वह संवर है नहीं, तो संवर की भूल, आस्रव की भूल, अजीव की भूल। इतना संयोग है, वह राग के बिना होता नहीं। अजीव की भूल और जीव की भूल। जीव का आश्रय उतना हो छट्ठे गुणस्थान तक तो उसको वस्त्र का विकल्प होता नहीं। सबकी भूल हुई, नवों तत्त्व की। आहाहा! यह कोई सम्प्रदाय नहीं है। यह तो तीन लोक के नाथ सर्वज्ञदेव परमेश्वर सीमन्धरस्वामी भगवान महाविदेह में विराजते हैं, वहाँ गये थे, वहाँ से आया है। बहिन भी वहाँ से आयी है। थोड़ी सूक्ष्म बात है। समझ में आया? आहाहा!

एक आत्मा में अवश्य रुचे ऐसा है। इसलिए तू आत्मा में रुचि लगा। आहाहा! सब बात छोड़कर... जानपना-बानपना बहुत करना, वह छोड़ दे। इसकी रुचि लगा दे। आहाहा! प्रवचनसार में शुरुआत में आता है। अमृतचन्द्राचार्य कहते हैं, बस-अलम। मुझे विशेष ज्ञान की जरूरत नहीं है। प्रवचनसार में ३४ गाथा। अब ज्ञान की जरूरत (नहीं है)। रुचि-दृष्टि और स्थिरता। बस दो। ज्ञान भले अल्प हो, परन्तु दृष्टि पूरे भगवान पर और स्थिरता। बस, अलम। मुझे कुछ जानपने की जरूरत नहीं है। ऐसा लिखा है। टीका है, प्रवचनसार में टीका है। मालूम है, सब देखा है न। (संवत) १९७८ के वर्ष से यह शास्त्र देखते हैं। ७८। कितने वर्ष हुए? ५८। ५८ वर्ष हुए। सब शास्त्र (देखे हैं)। आहाहा! **इसलिए तू आत्मा में रुचि लगा।** अब दूसरा (बोल)। भाई ने लिखा है। किसने लिखा है? किसी ने दिया है। इसके बाद १०वाँ बोल पढ़ना। किसी ने दिया है। अभी किसी ने पन्ना दिया था न? उसमें लिखा है। पहला बोल, फिर १०वाँ। १०वाँ बोल।

हम सबको सिद्धस्वरूप ही देखते हैं, हम तो सबको चैतन्य ही देख रहे हैं। हम किन्हीं को राग-द्वेषवाले देखते ही नहीं। वे अपने को भले ही चाहे जैसा मानते हों, परन्तु जिसे चैतन्य - आत्मा प्रकाशित हुआ, उसे सब चैतन्यमय ही भासित होता है॥ १०॥

हम सबको सिद्धस्वरूप ही देखते हैं,... १०। आहाहा! जिसकी पर्यायबुद्धि गयी, जिसकी पर्यायबुद्धि, राग की रुचि गयी, उसको पूरा आत्मा दृष्टि में आया। चैतन्य का नूर का पूर, आनन्द का पूर प्रभु, वह जिसे रुचि में सम्यग्दर्शन में आया, उसको सब आत्मा ऐसे हैं – ऐसा दिखता है। उसकी पर्याय में भूल है, उसे एक ओर रखो। परन्तु आनन्द.. आनन्द.. आनन्द.. सब भगवान है। जिसकी पर्याय में से, राग में से रुचि हटकर अन्दर आत्मा पूर्णानन्द का नाथ, उसकी जहाँ भेंट हुई, तो आत्मा तो वह है। राग या एक समय की पर्याय भी आत्मा नहीं। एक समय की पर्याय व्यवहार आत्मा है। आहाहा! समझ में आया?

दोपहर को पढ़ते है, वह कौन-सा शास्त्र है? नियमसार। नियमसार में तो ऐसा कहा है कि एक भी राग के अंश में दूसरे का आश्रय लेना, वह राग है। आत्मा को उससे बिल्कुल लाभ नहीं है। पर के आश्रय में आत्मा को बिल्कुल लाभ नहीं है। श्रवण से भी ज्ञान नहीं होता है, ऐसा वहाँ कहा है। प्रभु! जिसमें ज्ञान है, उसमें से ज्ञान आता है या वाणी में से? वाणी तो जड़ है। उसमें से ज्ञान आता है? आहाहा! कहना था दूसरा, आ गया दूसरा।

सिद्धस्वरूप ही देखते हैं, हम तो सबको चैतन्य ही देख रहे हैं। क्योंकि अपना आत्मा चैतन्य है, ऐसा अपने को भान हुआ तो उस दृष्टि से सब आत्मा चैतन्य भगवान हैं। आहाहा! बन्ध अधिकार में – बन्ध अधिकार है, उसमें अन्तिम में और सर्वविशुद्धज्ञान (अधिकार के) अन्तिम में, और परमात्मप्रकाश में अन्तिम में एक ऐसी बड़ी बात ली है कि सर्व जीव मन-वचन-काय से रहित, राग से रहित, तीन शल्य से रहित आनन्दकन्द प्रभु है। ऐसी सब जीव की भावना भा। ऐसा संस्कृत पाठ है।

मुमुक्षु :- द्रव्य संग्रह में भी कहा है।

पूज्य गुरुदेवश्री :- हाँ। वह तो है। यह तो बड़ा पाठ है। यहाँ नहीं है। है ? बड़ा पाठ है। बहुत बड़ा पाठ है। पहले कहा था न ?

एक बार हम संसार में थे। दुकान (पर बैठते थे)। तो माल लेने हम वडोदरा गये थे। वडोदरा के पास पालेज है न ? वहाँ हमारी दुकान थी। अभी लड़का आया था न। दुकान है न। बड़ी दुकान है। १८ वर्ष की उम्र थी, अभी ९१ हुए। ९१। १८ वर्ष की उम्र में माल लेने गये थे। माल लेने के बाद रात्रि में निवृत्ति मिली। फिर अनुसूईया का एक नाटक था। अनुसूईया, भरुच के पास जो नर्मदा है और अनुसूईया दोनों बहनें थीं। एक बहन कुँवारी थी। कुँवारी समझे ? शादी नहीं की थी और स्वर्ग में जाती थी। उन लोगों में ऐसा है न, अपुत्रस्य नास्ति। अपुत्रस्य गति नास्ति। पुत्र नहीं हो, उसे गति नहीं मिलती। उन लोगों में है। इसलिए उस बाई ने कहा, मैं क्या करूँ ? नीचे जा और किसी से भी शादी कर ले। आहाहा ! शादी की। बालक हुआ।

मुझे तो दूसरा कहना है। हमारे में भाषा है। इसमें तो मात्र अमृतचन्द्राचार्य की (टीका) है। जयसेनाचार्य की नहीं है। है ? क्या कहते हैं आचार्य महाराज ? देखो ! मुझे तो यह कहना है (कि) मैंने यह शब्द वहाँ नाटक में देखा था। लड़का हुआ। फिर सुलाते हैं न ? सुलाते हैं। (संवत) १९६४ की साल। ६४। वह बाई कहती है, बेटा ! तू निर्विकल्प है। बेटा ! तू उदासीन है। तेरा आसन राग नहीं; आसन अन्दर आनन्द है। उदासीन.. उदासीन.. उदासीन.. नाथ ! तू है। आहाहा ! नाटक में उन दिनों में ऐसा बोलते थे। बारह आने की टिकिट और आप लोग जो बोलते हो, उसकी पुस्तिका दो। दूसरे बारह आने लो। किन्तु आप क्या बोलते हो, हमें मालूम होना चाहिए। ६४ की बात है। चार बोल तो याद रह गये। निर्विकल्पो अहं। बेटा ! तू निर्विकल्प है। शुद्धोसि, बुद्धोसि, उदासीनोसि। अपने में भी है। जयसेनाचार्य की टीका में बन्ध अधिकार की टीका में अन्त में संस्कृत में है और सर्वविशुद्ध में टीका में है और परमात्मप्रकाश पूर्ण हुआ, बाद में टीका में है। तीन जगह है। बहुत बोल हैं।

मैं सहज शुद्ध ज्ञान और आनन्द एक स्वभाव हूँ। उसमें पाठ है, संस्कृत में। यह तो

गुजराती है। मैं सहज शुद्ध ज्ञान और आनन्द जिसका एक स्वभाव है, ऐसा मैं हूँ। आहाहा! तीन में लिखा है, संस्कृत टीका में है। थोड़े शब्द नहीं है, पूरा लिखा है। मैं निर्विकल्प हूँ। उदासीन हूँ। यह शब्द वहाँ आया था। निज निरंजन शुद्ध आत्मा का। निज निरंजन शुद्ध आत्मा का सम्यक् श्रद्धान ज्ञान, अनुष्ठानरूप निश्चयरत्नत्रय धारक निश्चयरत्नत्रयात्मक निर्विकल्प समाधि, उससे उत्पन्न वीतराग सहजानंदरूप सुख की अनुभूतिमात्र जिसका लक्षण है। सुख की अनुभूतिमात्र जिसका लक्षण है। आनन्द का अनुभव ही जिसका लक्षण है। आहाहा! जयसेनाचार्य की टीका है। जयसेनाचार्य की संस्कृत टीका है। दो-चार शब्द नहीं, पूरी लाईन है।

निर्विकल्प, उससे उत्पन्न वीतराग श्रद्धा, सुख की अनुभूतिमात्र जिसका लक्षण। ऐसे स्वसंवेदनज्ञान द्वारा। ऐसे स्वसंवेदनज्ञान द्वारा। आहा..! स्वसंवेदन-अपने से वेदन में आने योग्य। ऐसा जाननेयोग्य, प्राप्त अर्थात् होनेयोग्य। ऐसा भरित अवस्थ। क्या कहते हैं? भरित अवस्थ। पूर्ण गुण से मैं भरा हूँ। अवस्थ-निश्चयस्थ ऐसे लेना। अवस्थ अर्थात् अवस्था नहीं लेना। भरित अवस्थ। अनन्त गुण से भरा पड़ा मैं हूँ। आहाहा! है, पाठ है, हाँ! इसमें पाठ है। यह तो गुजराती पढ़ा। तीन जगह पाठ है। आहाहा!

मैं भरित अवस्थ। भरित अवस्थावाला परिपूर्ण। आहाहा! मेरी शील दशा भरी पड़ी है। आहाहा! मेरा स्वभाव ही शीलस्वरूप है। ऐसी भावना समकिती अपने में अपने लिये भाते हैं और सब जीव के लिये भाते हैं। ऐसी बात है। मैं, राग-द्वेष-मोह, क्रोध, मान, माया, लोभ, पाँच इन्द्रियों का विषय व्यापार, मन-वचन-काया का व्यापार, उससे रहित हूँ। आहाहा! रहित हूँ, वह तो अपने लिये कहा। लेकिन सब आत्मा ऐसे हो, ऐसी भावना है। ऐसी बात है यहाँ। पाठ में ऐसा आयेगा।

इन्द्रियों का व्यापार, मन-वचन-काया का व्यापार, भावकर्म, द्रव्यकर्म, नोकर्म रहित। ख्याति, पूजा, लाभ एवं दृष्ट, श्रुत, अनुभूत भोगों की आकांक्षारूप निदान, माया, मिथ्यात्व आदि तीन शल्य रहित। सर्व विभाव परिणाम रहित शून्य हूँ। मैं तो शून्य हूँ। तीनों लोक में... अब अन्तिम सार आया। इन तीनों लोक में, तीनों काल में शुद्ध निश्चयनय से मैं ऐसा हूँ, तथा सभी जीव ऐसे हैं। यह संस्कृत है। यह संस्कृत में है। इतने बोल कहे, ऐसा मैं हूँ, परन्तु सर्व जीव ऐसे हैं। मुझे कोई जीव अल्प नहीं दिखते। आहाहा! पर्यायबुद्धि जहाँ

गई तो द्रव्यबुद्धि हुई। तो सब आत्मा को द्रव्य—समान देखते हैं। साधर्मी हैं। द्रव्य से साधर्मी है; पर्याय की भूल, उसकी वह जाने। आहाहा!

तीनों काल, तीन लोक में शुद्ध निश्चयनय से सब जीव ऐसे हैं। सब जीव ऐसे हैं। आचार्य महाराज जयसेनाचार्य कहते हैं कि, तुम तो ऐसे हो, परन्तु सर्व जीव ऐसे हैं। सब भगवान उदासीन मन-वचन-काया से भिन्न है। सहजानन्द की मूर्ति है। मन-वचन-काया से सब जीव भिन्न है। मन-वचन-काया की और कृत-कारित-अनुमोदना से निरन्तर भावना कर्तव्य। ऐसी भावना करना। मैं तो शुद्ध हूँ परन्तु सर्व भगवान शुद्ध है। ऐसी भावना करनी। बड़ा लेख है। इसका गुजराती बनाया है। बड़ा लेख है संस्कृत टीका में।

यहाँ कहते हैं, **हम...** दसवाँ बोल। **सबको सिद्धस्वरूप ही देखते हैं,...** इस अपेक्षा से। आचार्य महाराज का तीन जगह आधार है। बन्ध अधिकार पूरा करने के बाद भी संस्कृत में अधिकार है। सर्वविशुद्धज्ञान अधिकार के अन्त में संस्कृत में है और परमात्मप्रकाश में अन्त में संस्कृत में है। इतने शब्द हैं, दो-चार शब्द नहीं। मुझे तो नाटक में से चार ही याद रहे। चार बोल है। बेटा! तू निर्विकल्पोशी, उदासीनोसी, सुद्धोसि, बुद्धोसि। आहाहा! ज्ञान का पिण्ड है, तू तो शुद्ध है। ऐसा नाटक में कहते थे। ६४ के वर्ष। कितने वर्ष हुए? नाटक में ऐसे बोलते थे। वह अभी सम्प्रदाय में बोलते नहीं। एकान्त है, निश्चय है (ऐसा लोग कहते हैं)। अरे..! भगवान! सुन न प्रभु! तेरे में शक्ति पूर्णानन्द भरी है।

वह यहाँ कहते हैं, देखो! **सबको सिद्धस्वरूप ही देखते हैं,...** आहाहा! सब अन्दर सिद्धस्वरूपी प्रभु (है)। एक समय की पर्याय में, एक समय की पर्याय में संसार है। वस्तु में संसार नहीं है। वस्तु में उदयभाव या कोई भाव नहीं है। आहाहा! **हम सबको सिद्धस्वरूप ही...** 'ही' शब्द पड़ा है। सिद्धस्वरूप ही। निश्चय। देखते हैं। **हम सबको चैतन्य ही देख रहे हैं।** आहाहा! सबको चेतनस्वरूप भगवान (देखते हैं)। यह शरीर, मिट्टी नहीं, कर्म भी नहीं। कर्मवाला आत्मा है, ऐसा हम मानते नहीं। कर्म भिन्न है, आत्मा भिन्न है। कर्म आत्मा को छूते नहीं, आत्मा कर्म को कभी तीन काल में छूता नहीं। लोग चिल्लाते हैं, कर्म से हुआ, कर्म से हुआ, कर्म से हुआ। सब झूठ बात है। कर्म आत्मा को छूते नहीं, क्योंकि परद्रव्य है। एक द्रव्य दूसरे द्रव्य को कभी छूता नहीं। अरे..! ऐसी बात है, प्रभु! उसमें से है। संस्कृत टीका है। आहा..!

हम तो सबको चैतन्य ही देख रहे हैं। 'ही' शब्द पड़ा है, देखो! पहले में भी 'ही' है। **हम सबको सिद्धस्वरूप ही देखते हैं,...** एकान्त निश्चय। सबको, हम तो सबको निश्चय ही देख रहे हैं। **हम किन्हीं को राग-द्वेषवाले देखते ही नहीं।** आहाहा! द्रव्यस्वभाव में कोई राग-द्वेष है ही नहीं। द्रव्यस्वभाव परिपूर्ण भगवान है। आहाहा! उस द्रव्यस्वभाव में तो सिद्धपर्याय भी नहीं है। सिद्धपर्याय तो एक समय की पर्याय है। आहाहा! और आत्मा तो ऐसी अनन्तों पर्याय का पिण्ड है। ऐसी बात है, प्रभु! कठिन बात लगे।

दूसरे जीव, **वे अपने को भले ही चाहे जैसा मानते हों, परन्तु जिसे चैतन्य - आत्मा प्रकाशित हुआ...** आहाहा! जिसको अन्दर में चैतन्य प्रकाशित हुआ। चैतन्य राग से भिन्न होकर प्रकाशित हुआ, विकल्प से भिन्न होकर निर्विकल्प हुआ। समयसार में तो वहाँ तक कहा, १४२ गाथा, मैं ज्ञायक हूँ, वह विकल्प है, उसे छोड़ दे। पुण्य-पाप की बात तो दूर रह गई। ऐसा पाठ है। मैं ज्ञायक हूँ, मैं शुद्ध हूँ, ऐसा विकल्प है, वह राग है। राग छोड़ दे। ज्ञायक में विकल्प-फिकल्प है नहीं। आहाहा! ऐसी बात है, प्रभु! आत्मा की बड़ी बात है। बड़े की बड़ी बात है। आहाहा!

आत्मा प्रकाशित हुआ, उसे सब चैतन्यमय ही भासित होता है। आहाहा! बहुत सूक्ष्म बात है। जिसने चैतन्यस्वरूप देखा। अनुभव में आया, वह सबको चैतन्यस्वरूप देखता है। वह भगवान है, वह परमात्मा है, परमेश्वर है। पर्याय में भूल है, उसको वह जाने। उसका नुकसान उसको है। आहाहा! दसवाँ बोल हुआ। ११वाँ। वह प्रवचनसार का है। अपवाद और उत्सर्ग का।

मुमुक्षुओं तथा ज्ञानियों को अपवादमार्ग का या उत्सर्गमार्ग का आग्रह नहीं होता, परन्तु जिससे अपने परिणाम में आगे बढ़ा जा सके, उस मार्ग को ग्रहण करते हैं किन्तु यदि एकान्त उत्सर्ग या एकान्त अपवाद की हठ करे तो उसे वस्तु के यथार्थ स्वरूप की ही खबर नहीं है॥ ११॥

मुमुक्षुओं तथा ज्ञानियों को अपवादमार्ग का या उत्सर्गमार्ग का आग्रह नहीं होता,... क्या कहते हैं? प्रवचनसार में है। मैं ध्यान में ही रहूँ, ऐसा बहुत आग्रह करेगा और

विकल्प तो ज्ञानी को भी उठते हैं। इसलिए हठ करने जाएगा तो विकल्प से भ्रष्ट हो जाएगा। आहाहा! ध्यान में है, वह उत्सर्गमार्ग है। ध्यान में रह सके नहीं, विकल्प आया, वह अपवादमार्ग है। इसलिए उत्सर्ग और अपवाद की मैत्री रखनी। मैत्री अर्थात् है, ऐसा जानना। है जरूर राग। आहाहा! यह प्रवचनसार में है। उसकी यहाँ बात है। उत्सर्ग और अपवाद... देखो! **ज्ञानियों को अपवादमार्ग का...** अपवाद अर्थात् राग। रागादि आता है। अन्दर ध्यान में स्थिर न हो सके, अन्दर स्थिर न रहे तो राग दया, दान, भक्ति, व्रत, पूजा का भाव आता है। परन्तु वह भाव अपवादमार्ग है, उत्सर्गमार्ग नहीं। उत्सर्गमार्ग तो उससे (विकल्प से) छूटकर अन्दर में रमता है, वह उत्सर्गमार्ग है। यह प्रवचनसार में है। आहाहा!

मुमुक्षु :- ग्रहण-त्याग है ही नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री :- आहा..!

मुमुक्षुओं तथा ज्ञानियों को अपवादमार्ग का या उत्सर्गमार्ग का आग्रह नहीं होता,... मैं ध्यान में ही रहूँ, ऐसा आग्रह भी नहीं करना। सम्यग्दर्शन हुआ, ज्ञान हुआ तो मैं ध्यान में ही रहूँ, ऐसा आग्रह नहीं करना। क्योंकि विकल्प आयेगा। तो दृष्टि वहाँ रहेगी- दृष्टि द्रव्य पर रहेगी। विकल्प आयेगा अपवाद। अपवाद का भी आग्रह नहीं करना कि मुझे विकल्प में ही रहना है। ऐसा आग्रह नहीं होना चाहिए। उसे छोड़कर अन्दर में जाना। आहाहा!

प्रवचनसार। उत्सर्ग और अपवाद दोनों साथ में है। साधक है न, साधक है। अन्तर में पूर्णता का स्वरूप दृष्टि, अनुभव में आया तो उसी में ध्यान में रहना, वह तो उत्सर्गमार्ग। उत्सर्ग अर्थात् मूल मार्ग है। परन्तु उसमें रह सकता नहीं। दृष्टि वहाँ रहे, दृष्टि वहाँ द्रव्य ऊपर हमेशा है। दृष्टि द्रव्य से हटती नहीं। फिर भी अस्थिरता का विकल्प आता है, वह अपवाद है। उसमें आग्रह नहीं करना कि वह नहीं आये। विकल्प नहीं आये। ऐसा आग्रह नहीं करना। आहाहा! समझ में आया? सूक्ष्म बात है, भाई! वार्ता नहीं है। यह तो आत्मा की कथा है। आहाहा!

भवभ्रमण नहीं हो, ऐसा वस्तु। भव करे, एक करे, दूसरा करे, ऐसा अनन्त भव करेगा। भव ही नहीं हो। यहाँ ... अपने उत्सर्गमार्ग में तो ध्यान में ही रहना। परन्तु उसका

भी आग्रह नहीं। छद्मस्थ है तो राग आयेगा। तो उसको अपवाद में आना चाहिए। अपवाद का भी आग्रह नहीं कि राग आया, वह ठीक है। वह आग्रह नहीं। वहाँ से निकलकर ध्यान में जाना। आहाहा! उत्सर्ग और अपवाद। आया न? आग्रह नहीं होना (चाहिए)।

परन्तु जिससे अपने परिणाम में आगे बढ़ा जा सके... जिस परिणाम से आगे बढ़ा जा सके, वह परिणाम करना। **उस मार्ग को ग्रहण करते हैं...** द्रव्य के आश्रय से; द्रव्य नाम चैतन्य भगवान, उसके आश्रय से ही मोक्षमार्ग होगा। स्वद्रव्य के आश्रय से ही मोक्षमार्ग है। रागादि परद्रव्य के आश्रय से मोक्षमार्ग है नहीं। आहाहा! भगवान आत्मा चैतन्यस्वरूप के आश्रय से ही सच्चा मोक्षमार्ग होगा। परन्तु उसका एकदम आग्रह नहीं करना कि मुझे भान हुआ तो मैं उसमें ही रहूँगा। अस्थिरता आयेगी, तब विकल्प-अपवाद आयेगा। जाने। ठीक है, ऐसे नहीं। विकल्प आये, वह ठीक है ऐसा नहीं। आवे उसको जाने। तथापि आग्रह नहीं करे कि विकल्प आने ही नहीं देना। ऐसा आग्रह भी नहीं। साधक है न? आहाहा! **उस मार्ग को ग्रहण करते हैं...**

किन्तु यदि एकान्त उत्सर्ग या एकान्त अपवाद की हठ करे... देखा! ऐसा पाठ है प्रवचनसार में। अन्दर अकेले ध्यान में ही रहूँ और बाहर नहीं आऊँ, ऐसी हठ करे तो ऐसे नहीं रह सकेगा। छद्मस्थ है, अल्पज्ञ है, पुरुषार्थ की कमजोरी है। तो अन्दर में ध्यान में उत्सर्ग में नहीं रह सकता। अपवाद—विकल्प भक्ति आदि का आता है और विकल्प का भी आग्रह नहीं कि यह है तो ठीक है। ऐसा नहीं। मैं अन्दर स्थिर नहीं हो सकता हूँ, इसलिए यह विकल्प आया है। परन्तु विकल्प आया है तो हठ नहीं करना। हठ नहीं करने का अर्थ-विकल्प से लाभ है, ऐसा मानना नहीं। आहाहा! मार्ग ऐसा है। ओहोहो!

एकान्त उत्सर्ग या एकान्त अपवाद की हठ करे तो उसे वस्तु के यथार्थ स्वरूप की ही खबर नहीं है। आहाहा! क्योंकि छद्मस्थ को एकरूप ध्यान सदा नहीं रहता। एकरूप ध्यान सदा तो केवली को रहता है। एकरूप ध्यान... वह भी प्रश्न प्रवचनसार में उठा है कि प्रभु! केवली को ध्यान कहाँ है? उनको तो केवलज्ञान हो गया। ऐसा प्रश्न है। संस्कृत टीका। प्रभु केवलज्ञानी को आप ध्यान कहते हो। तो वे तो पूर्ण हो गये हैं। तो जवाब दिया है, वे आनन्द का ध्यान करते हैं। अतीन्द्रिय अनुभव करते हैं, वह आनन्द का ध्यान है। ऐसा पाठ प्रवचनसार में है। अतीन्द्रिय आनन्द का वेदन करते हैं, वह उसका

ध्यान है। नीचे की दशा में तो राग आये बिना रहता नहीं। आहाहा! लेकिन राग धर्म है, राग आया तो ठीक हुआ, ऐसा ज्ञानी मानता नहीं। राग को काले नाग जैसा देखते हैं। इसमें आगे है। राग जहर है। आये बिना रहता नहीं। जब तक केवलज्ञानी न हो अथवा जब तक श्रेणी न चढ़े, तब तक राग आये बिना रहता नहीं। सम्यग्दृष्टि ज्ञानी मुनि को भी। आहा! मुनि को भी पंच महाव्रत का विकल्प है, वह राग है। पंच महाव्रत राग है। आहाहा! किन्तु आग्रह नहीं है कि इस राग से कल्याण होगा। ऐसा नहीं। आहाहा! अपने द्रव्य का आश्रय जितना आश्रय लिया, उतनी शुद्धि उत्पन्न हुई। पूर्ण आश्रय लिया तो पूर्ण शुद्धि हो गई, केवलज्ञान (हो गया)। केवलज्ञानी को फिर स्व का नया आश्रय लेना, ऐसा है नहीं। पूर्ण हो गया। केवलज्ञानी हुआ तो पूर्ण हो गया।

इसी तरह यहाँ कहते हैं कि **वस्तु के यथार्थ स्वरूप की ही खबर नहीं है।** हठ करने जाए अपवाद में विकल्प आये कि मुझे इसमें रहना है, यह ठीक है, उसे वस्तु की खबर नहीं। और अन्दर हठ करने जाए कि मुझे अन्दर ही रहना है, तो छद्मस्थ में शक्ति तो है नहीं, विकल्प तो आएगा। उसे ऐसे वस्तु की खबर नहीं। सूक्ष्म बात है, प्रभु! मार्ग थोड़ा सूक्ष्म है। आहाहा! वीतरागमार्ग...! आहाहा! तीन लोक के नाथ सर्वज्ञ भगवान का विरह पड़ा। भरतक्षेत्र में परमात्मा रहे नहीं। परमात्मा रहे नहीं, परन्तु परमात्मा होने की शक्ति रही नहीं। क्या कहा? अरिहन्त तो है नहीं। परन्तु अरिहन्त बनने की शक्ति रही नहीं। आहाहा! ऐसे पंचम काल में भी आत्मा का भान हो सकता है, वह बात कहते हैं। और ऐसे पंचम काल में... श्लोक में आयेगा। समयसार में संस्कृत में एक श्लोक है।... उसमें टीका है। टीका में (ऐसे लिया है), यहाँ कदाचित् मोक्ष नहीं जाए, अभी काल ऐसा है, तीन काल में (भव में) जाएगा, ऐसा पाठ है। आहाहा! क्या कहा वह?

मुमुक्षु :- परम अध्यात्म तरंगिणी।

पूज्य गुरुदेवश्री :- हाँ, उसमें। निकालो। ऐसा पाठ लिया है कि जिसने आत्मा का साधन किया, वह तीन भव में मोक्ष जाएगा। ऐसा लिखा है। अमृतचन्द्राचार्य का श्लोक है। यहाँ तो अनेक बार (स्वाध्याय) हो गया है। ७८ के वर्ष से प्रारम्भ किया है। हमारी तो दुकान थी। पालेज में अभी भी दुकान है न। वहाँ भी मैं तो शास्त्र ही पढ़ता था। लेकिन श्वेताम्बर के, श्वेताम्बर के। दशवैकालिक, उत्तराध्ययन... दुकान पर धन्धे पर बैठता था।

लेकिन भागीदार दुकान पर बैठते थे तो हम अन्दर शास्त्र पढ़ते थे। १८ वर्ष की उम्र। अभी तो ९१ हुए। यहाँ लिखा है, देखो!

'...' उसका शब्द संस्कृत पाठ में ऐसा है। जिसे यह मोक्षपंथ है पंचम काल में भी, वह अचिरात-अल्प काल में मोक्ष जाएगा। पाठ है। '...' अचिरात् का टीकाकार ने अर्थ किया है। अचिरात् का अर्थ-शीघ्रम्। 'तद्भवे' अथवा तीसरे भव में। आहाहा! संस्कृत है।... साक्षात् परमात्मा भवति इति। आहाहा! वह तीसरे भव में मोक्ष जाएगा। पंचम आरा में मोक्ष नहीं है, इसलिए उसका पुरुषार्थ नहीं करना - ऐसा नहीं। तीसरे भव में मोक्ष जाएगा, लिखा है, संस्कृत टीका है। आहाहा!

यहाँ कहा, ११ बोल हो गये। १२।

जिसे द्रव्यदृष्टि प्रगट हुई, उसकी दृष्टि अब चैतन्य के तल पर ही लगी है। उसमें परिणति एकमेक हो गई है। चैतन्य-तल में ही सहज दृष्टि है। स्वानुभूति के काल में या बाहर उपयोग हो, तब भी तल पर से दृष्टि नहीं हटती, दृष्टि बाहर जाती ही नहीं। ज्ञानी चैतन्य के पाताल में पहुँच गये हैं; गहरी-गहरी गुफा में, बहुत गहराई तक पहुँच गये हैं; साधना की सहज दशा साधी हुई है॥ १२॥

जिसे द्रव्यदृष्टि प्रगट हुई,... क्या कहते हैं? आत्मा जो द्रव्य है त्रिकाली। एक समय की पर्याय के पीछे पाताल में, एक समय की पर्याय के पाताल में-तल में। तल अर्थात् ध्रुव। पर्याय है, वह ध्रुव पर तिरती है। आहाहा! वह पहले श्लोक में आ गया है। समयसार। समयसार में पहला (श्लोक)। पर्याय ध्रुव पर तिरती है। ऊपर रहती है। पर्याय ध्रुव में प्रवेश नहीं करती। ऊपर रहती है। आहाहा! वह पर्याय... कहते हैं, जिसको (पर्यायदृष्टि) छूट गई और धर्म दृष्टि हुई। त्रिकाल द्रव्य ज्ञायकभाव की दृष्टि हुई। **जिसे द्रव्यदृष्टि प्रगट हुई, उसकी दृष्टि अब चैतन्य के तल पर ही लगी है।** अर्थात् क्या कहते हैं? **तल पर ही लगी है।** पर्याय का लक्ष्य ध्रुव पर रहता है। ध्रुव तल है। पर्याय ऊपर-ऊपर रहती है और ध्रुव है, वह उसका तल है। पर्याय के नीचे तल-ध्रुव रहा है। आहाहा!

जैसे पाताल होता है या नहीं ? वैसे यहाँ पर्याय ऊपर है, पर्याय अन्दर कभी प्रवेश नहीं करती। आहा.. ! पर्याय ऊपर रहती है। चाहे केवलज्ञान हो तो भी वह ध्रुव पर रहती है, ध्रुव में प्रवेश नहीं करती। यह कहते हैं। **जिसे द्रव्यदृष्टि प्रगट हुई, उसकी दृष्टि अब चैतन्य के तल पर ही लगी है।** चैतन्य का तल अर्थात् ध्रुव। आहाहा! समकिती की दृष्टि तल पर है। पाताल पर है। पर्याय के पीछे ध्रुव पड़ा है, ध्रुव पर दृष्टि है। दृष्टि है पर्याय, दृष्टि है पर्याय परन्तु उसका विषय है ध्रुव। आहाहा! समझ में आया ? उसका पाताल है। तल। पर्याय ऊपर है, ध्रुव उसका तल है, तल। जैसे पाताल में जाते हैं न। अन्दर में जाते हैं। आहाहा!

चैतन्य के तल पर ही लगी है। उसमें परिणति एकमेक हो गई है। समकिती अपने आत्मा को राग से भिन्न जानकर अपने ज्ञान में परिणति में लगा है। ज्ञान में एकमेक हो गया है। राग आता है किन्तु भिन्न रहता है। राग और ज्ञान एक नहीं हो जाते। ऐसी परिणति होती है। उपयोग बाहर जाए तो भी (स्वरूप से) दृष्टि नहीं हटती। समकिती का उपयोग बाहर जाए तो भी अन्दर की दृष्टि ध्रुव से नहीं हटती। ध्रुव से दृष्टि नहीं हटती। आहाहा!

मुमुक्षु :- परिणति एकमेक हो गयी माने द्रव्य में...

पूज्य गुरुदेवश्री :- परिणति-पर्याय ऊपर है। द्रव्य के ऊपर। उत्पाद-व्यय ऊपर है, ध्रुव अन्दर है।

मुमुक्षु :- एकमेक होती हुई भी एकमेक नहीं हुई...

पूज्य गुरुदेवश्री :- एकमेक नहीं है। लेकिन पर्याय में एकमेक है न। वह तो पर से भिन्न करना हो तो एकमेक है। अन्दर भिन्न नहीं। विशेष आयेगा....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

विक्रम संवत-२०३५, अषाढ़ कृष्ण-१४, शनिवार, तारीख ९-८-१९८०
वचनामृत-१२, १५, १८, २० प्रवचन-२

यह वचनामृत है। रात्रि में बहनों में बोले होंगे, वह लिख लिया था। बाकी तो आत्मा की अनुभूति, आत्मा की अनुभूति में से वाणी निकली है। आनन्द का स्वाद में से। आहाहा! अनुभूति किसको कहे? आत्मा का अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद आवे। आहाहा! स्वाद समझे? क्या कहते हैं? स्वाद कहते हैं? आहाहा! जैसे स्वाद-अनुभव में यह वाणी आ गयी है। वह यहाँ लिखकर बाहर आयी है। भाषा साधारण लगेगी। क्योंकि बहनों ने लिखा है। १२वाँ बोल, १२वाँ बोल।

जिसे द्रव्यदृष्टि प्रगट हुई,... आहा..! मुद्दे की रकम की बात है। जिसे द्रव्य अर्थात् वस्तु। पर्याय के अतिरिक्त की त्रिकाली चीज़। क्योंकि पर्याय तो विषय करनेवाली है और विषय है, वह पर्याय नहीं। एक समय की जो पर्याय है-दृष्टि, सम्यग्दर्शन है, वह सम्यग्दर्शन का विषय नहीं है। पर्याय है न। पर्याय। सूक्ष्म बात है। सम्यग्दर्शन का विषय पूरा द्रव्य है। पूर्णानन्द का नाथ प्रभु अनन्त आनन्द और सर्वांग वीर्य-पुरुषार्थ से भरा पड़ा, ऐसा जो भगवान आत्मा, वह दृष्टि का (विषय है)। ऐसी **जिसे द्रव्यदृष्टि प्रगट हुई,...** ऐसी जिसको द्रव्य अर्थात् वस्तु त्रिकाल। इसकी दृष्टि प्रगट हुई। सूक्ष्म बात है, भाई! मुद्दे की रकम तो यहाँ से शुरु होती है। द्रव्यदृष्टि बिना सब जानपना, आचरण, क्रिया सब संसार (है)। मूल चीज़ सम्यग्दर्शन है। सम्यग्दर्शन का विषय ध्रुव है।

कहते हैं, **जिसे द्रव्यदृष्टि प्रगट हुई,...** आहाहा! यह करना है। लोगों को पहले यह करना है। दृष्टि का विषय भगवान पूर्णानन्द का नाथ वीतरागमूर्ति आत्मा है। आत्मा में रागादि नहीं है। वह तो पर्याय में रागादि व्यवहारनय से है। अन्तर स्वरूप है, उसमें तो वीतरागता भरी है। पूर्ण वीतराग, पूर्ण आनन्द, पूर्ण शान्ति, पूर्ण स्वच्छता, पूर्ण प्रभुता—ऐसी अनन्त-अनन्त शक्ति का भण्डार है। उसकी दृष्टि हुई, **उसकी दृष्टि अब चैतन्य के तल पर ही लगी है।** आहाहा! जिसको अन्तर दृष्टि हुई, वह दृष्टि तल; तल अर्थात् तलवा,

पाताल। एक समय की पर्याय के अतिरिक्त जो तल है, वहाँ समकिती की दृष्टि लगी है। आहाहा! तल नाम तलवा। तल.. तल। पाताल। जैसे पाताल में गहराई में जाते हैं।

ऐसे आत्मा एक समय की पर्याय दृष्टि सम्यक्, उसका विषय पर्याय के अन्दर पाताल गहराई में द्रव्य पूरा पड़ा है, पर्याय के पीछे पड़ा है, उसकी दृष्टि करना। आहा..! वह **तल पर ही लगी है।** धर्मी की दृष्टि तल पर लगी है। पर्याय पर नहीं। आहाहा! कठिन काम है। **उसमें परिणति एकमेक हो गई है।** धर्मी समकिती की चौथे गुणस्थान में उसकी परिणति अर्थात् पर्याय, वस्तु की जो पर्याय है, वह पर्याय द्रव्य के सन्मुख हो गयी। उसमें एकमेक हो गयी, ऐसा कहने में आता है। एकमेक का अर्थ कि पर्याय जो राग पर झुकती थी, वह पर्याय स्वभाव की ओर आयी तो एकमेक हुई, ऐसा कहने में आता है। पर्याय और द्रव्य दोनों कभी एक नहीं होते। आहाहा! गजब बात है न! पर्याय-अवस्था पर्यायपने रहती है; ध्रुव ध्रुवपने रहता है। पर्याय-अवस्था ध्रुव के ऊपर तैरती है। आहाहा! सूक्ष्म बात है, भाई! ... सम्यग्दर्शन। आहाहा!

उसकी दृष्टि तल में होती। समकित है पर्याय, परन्तु उसकी दृष्टि तल-ध्रुव पर है। इसलिए उसकी दृष्टि तल में गयी। ऊपर नहीं रही। ऊपर से निकल गयी। पर्यायबुद्धि भी निकल गयी। राग, पुण्य-पाप, दया-दान के विकल्प की बुद्धि निकल गयी। आहाहा! अन्दर तल, द्रव्यदृष्टि का तल जो है.. आहा..! लोक में तो पाताल का पता लगता है, यह पाताल दूसरी जाति का है। जिसके तल में क्षेत्र का अन्त दिखता है, भाव का अन्त नहीं है। वह क्या कहा? क्षेत्र तो शरीरप्रमाण है, परन्तु भाव अनन्त-अनन्त है। तीन काल के समय से भी अनन्त गुना आत्मा में गुण हैं। एक सेकेण्ड के असंख्य समय जाए। ऐसे तीन काल का जितना समय है, उससे अनन्तगुना एक जीव में गुण है। आहाहा! ऐसे तल पर (दृष्टि) गयी है। समकिती की दृष्टि की पर्याय (के) तल पर है। अनन्त गुण का एकरूप ऐसा द्रव्य पर गयी है। सूक्ष्म बात है, भाई!

उसमें परिणति एकमेक हो गई है। एकमेक अर्थ यह। पर्याय और द्रव्य, सामान्य और विशेष एक नहीं हो जाते। सम्यग्दर्शन विशेष है और द्रव्य सामान्य है। सामान्य और विशेष दो मिलकर द्रव्य है। परन्तु विशेष पर्याय, सन्मुख गयी, सन्मुख, तो एकमेक हुई ऐसा कहने में आता है। बाकी एकमेक होती नहीं। आहाहा! सूक्ष्म विषय है, प्रभु! एकमेक

(कहा परन्तु) पर्याय तो पर्याय है। पर्याय तो ध्रुव पर पर्याय है। वह पर्याय और ध्रुव कभी एक नहीं होते। क्योंकि पर्याय है, वह उत्पाद-व्ययस्वरूप है और द्रव्य है, वह ध्रुवस्वरूप है। ध्रुव में उत्पाद-व्यय का प्रवेश नहीं। आहाहा! और ध्रुव, उत्पाद-व्यय में आता नहीं। समझ में आता है ? भगवान! यह तो भगवान की बातें हैं, बापू! आहाहा!

एक समय की पर्याय—दृष्टि द्रव्य पर लगी, उसको द्रव्य के साथ वह पर्याय एकमेक हो गयी, ऐसा कहने में आता है। ऐसा कहने में आता है; बाकी एकमेक होती नहीं। क्यों ?—कि वस्तु सामान्य-विशेष है। प्रत्येक वस्तु सामान्य-विशेष (है), तो विशेष पर्याय, सामान्य में एकमेक हो जाए तो अकेला सामान्य रह जाता है, उसका जाननेवाला नहीं रहता। आहाहा! विशेष पर्याय है। ध्रुव सामान्य त्रिकाल है। तो विशेष-पर्याय द्रव्य की दृष्टि करती है, अपनी नहीं। सूक्ष्म बात है, प्रभु! अभी तो लोग क्रियाकाण्ड में लग गये हैं। तत्त्व तो कहीं दूर रह गया। आहाहा!

उसमें परिणति एकमेक हो गई है। चैतन्य-तल में ही सहज दृष्टि है। आहा.. ! धर्मी की.. सूक्ष्म पड़ेगा, प्रभु! अन्दर चैतन्यतल है, चैतन्यतल। एक समय की पर्याय के पीछे-अन्दर जो तल है, उस **चैतन्य-तल में ही सहज दृष्टि है।** उसमें स्वाभाविक दृष्टि है। दृष्टि हुई, बाद में फिर से दृष्टि करनी पड़ती है, ऐसा नहीं। दृष्टि वहाँ गई तो एकमेक (हो गयी)। आहाहा! सूक्ष्म बात है, प्रभु! आहाहा! उसमें **चैतन्य-तल में ही सहज दृष्टि है।**

स्वानुभूति के काल में... अब क्या कहते हैं ? जब धर्मी को ध्याता, ध्यान और ध्येय तीन (भेद को) भूलकर एक अनुभव में जब आता है, तब उसे यह चैतन्य ध्रुव और यह पर्याय, ऐसी दो बात नहीं रहती। अनुभव में लीन हो जाता है। परन्तु बहुत थोड़ी देर के लिये। चौथे-पाँचवें में किसी-किसी समय। छट्ठे और सातवें में तो हजारों बार, अन्तर्मुहूर्त में छट्ठे-सातवें में हजारों बार निर्विकल्प (हो जाते हैं)। एक अन्तर्मुहूर्त में। अन्तर की दशा की बात है, भगवान! आहाहा!

यहाँ कहते हैं, **स्वानुभूति के काल में...** क्या कहा ? ध्यान के काल में दृष्टि का विषय जो द्रव्य-वस्तु है, उसके ध्यान में जब लग गया, तब पर्याय से लक्ष्य छूट गया और पर्याय द्रव्य पर झुक गयी, उस काल में भी दृष्टि तो तल पर ही है। स्वानुभूति में भी दृष्टि

तो द्रव्य पर ही है और **या बाहर उपयोग हो, तब भी...** क्या कहा? विकल्प आया है। शुभाशुभ विकल्प भी आता है। शुभ और अशुभराग समकिती को आता है, तो भी उसकी दृष्टि चैतन्य पर है, दृष्टि द्रव्य पर है।

मुमुक्षु :- ....

पूज्य गुरुदेवश्री :- द्रव्य पर दृष्टि है। विकल्प चाहे तो शुभाशुभ हो, परन्तु दृष्टि में तो भगवान ध्रुव ही वर्तता है। दृष्टि में विकल्प नहीं है। दृष्टि का विषय विकल्प नहीं। आहा..! विकल्प अर्थात् राग। आहाहा! श्लोक यह आ गया। किसी ने पत्र लिखा है, यह पढ़ना। किसी ने लिखा है कि यह पढ़ना। चिमनभाई ने लिखा है? किसने लिखा है? आया है। इसमें से यह बोल पढ़ना। किसी का नाम नहीं है। क्या कहते हैं? प्रभु!

जिसकी दृष्टि प्रभु पर गयी.. आहाहा! उसको अनुभव काल में भी दृष्टि वहाँ है और अनुभव न हो और विकल्प आया, खाने-पीने का, चलने-बोलने का, अरे..! लड़ाई का (विकल्प आया)। बाहुबली और भरत चक्रवर्ती, दोनों समकिती। दोनों लड़ाई करते थे। आहाहा! तो भी दृष्टि ध्रुव पर थी। अरे..! प्रभु! आहाहा! दोनों लड़ाई करते थे, दोनों समकिती। दोनों उस भव में मोक्ष जानेवाले। आहाहा! लड़ाई के समय राग-द्वेष आता था, परन्तु दृष्टि तो ध्रुव पर थी। त्रिकाली भगवान सच्चिदानन्द प्रभु सत् नित्य रहनेवाला चिदानन्द ज्ञान और आनन्द का सर्वांग सागर, सर्वांग समुद्र। ऐसा जो प्रभु आत्मा, लड़ाई के समय भी ध्येय-दृष्टि द्रव्य पर से नहीं हटती। आहाहा! समझ में आता है? आहाहा! यह तो मुद्दे की बात है। दृष्टि, चाहे तो अनुभव में हो तो भी दृष्टि ध्रुव पर है। अपने ध्यान में, ध्याता-ध्यान का (विकल्प) छूटकर आनन्द के स्वाद में आया हो और निर्विकल्प हो, चौथे गुणस्थान में भी निर्विकल्प होता है, तब निर्विकल्पता के काल में दृष्टि तो ध्रुव पर है। पर्याय में निर्विकल्प हुआ; और विकल्प आया तो भी दृष्टि तो ध्रुव पर है। विकल्प आया, अरे..! लड़ाई का आया। भरत चक्रवर्ती समकिती, ९६ हजार स्त्री का भोग। ९६ हजार... फिर भी दृष्टि ध्रुव पर थी।

मुमुक्षु :- दृष्टि माने...

पूज्य गुरुदेवश्री :- सम्यग्दृष्टि।

मुमुक्षु :- दृष्टि अर्थात् चक्षु ?

पूज्य गुरुदेवश्री :- चक्षु बिना का। समकितरूपी चक्षु। पहले तो वह कहा था। दृष्टि, द्रव्य को स्वीकार करे, वह दृष्टि। यह आँख में क्या है ? धूल है। यह आँख की पलक झपकती है, उसे आत्मा नहीं कर सकता। आहा.. ! आत्मा अपने अतिरिक्त अनन्त रजकण है, एक रजकण को भी बदल नहीं सकता। शास्त्र में तो वहाँ तक पाठ है, समयसार में तीसरी गाथा। एक द्रव्य दूसरे द्रव्य को चूमता नहीं, स्पर्श नहीं करता, छूता नहीं। समयसार, तीसरी गाथा। **एयत्तणिच्छयगदो।**

एयत्तणिच्छयगदो समओ सव्वत्थ सुंदरो लोगे।
बंधकहा एयत्ते तेण विसंवादिणी होदि ॥३ ॥

इस गाथा की टीका में अमृतचन्द्राचार्य कहते हैं कि कोई भी आत्मा, कोई भी परमाणु को कभी छूता नहीं। कर्म आत्मा को (छूता नहीं) । आहाहा ! आत्मा को कर्म छूता नहीं और कर्म को आत्मा छूता नहीं। अरे..रे.. ! यह बात। वस्तु का स्वरूप यह है। बाकी तो सब व्यवहार की बात है, परमार्थ यह है। एक तत्त्व दूसरे तत्त्व को (छूता नहीं) । यह अँगुली है, वह कागज को छूती है, ऐसा नहीं। क्योंकि उसके परमाणु का और इस परमाणु में एक-दूसरे में अभाव है। आहाहा ! सूक्ष्म बात, प्रभु ! उसमें यहाँ कहते हैं कि उपयोग जब स्वानुभूति में हो। समकिती का उपयोग ध्यान में आनन्द के वेदन में अकेला हो, बस। विकल्प नहीं है, निर्विकल्प (है) । उस काल में भी दृष्टि ध्रुव पर है और विकल्प आया, खाने का-पीने का, चलने का, तो भी दृष्टि तो ध्रुव पर है। लड़ाई का विकल्प आया तो भी दृष्टि ध्रुव पर है। श्रेणिक राजा कैद में सिर फोड़कर मर गया। दृष्टि ध्रुव पर है। समझ में आया ? अन्दर सम्यग्दर्शन का विषय ध्रुव को पकड़ लिया है। आहाहा !

सूक्ष्म बात है, प्रभु ! यह कोई कहानी नहीं है। यह तो परमात्मा तीन लोक के नाथ ने कहा है। बहिन वहाँ थी। सीमन्धर भगवान के पास थी, वहाँ से आयी हैं। थोड़ी सूक्ष्म बात है। थोड़ी माया हो गयी थी, इसलिए स्त्री हो गये। यह सब उनके वचन हैं। अन्दर से आया हुआ। वहाँ का अन्दर अनुभव में आया था, वह लिख लिया गया है। क्या कहा ?

स्वानुभूति के काल में... स्वानुभूति के काल में समझे ? ध्यान। आत्मा का ध्यान

लग गया हो। भले चौथे-पाँचवें में हो। सातवें में तो होता ही है। छट्ठे से सातवें में तो ध्यान में ही होते हैं। परन्तु चौथे-पाँचवें में भी कभी-कभी स्वानुभव निर्विकल्प उपयोग होता है। उस काल में भी दृष्टि तो ध्रुव पर है, सम्यग्दर्शन तो ध्रुव पर है। और **बाहर उपयोग हो, तब भी तल पर से दृष्टि नहीं हटती,...** आहाहा! दृष्टि का विषय ध्रुव है, ध्रुव। कठिन बात है। **भूदत्थमस्सिदो खलु।** ११वीं गाथा, समयसार। भूतार्थ अर्थात् त्रिकाल जो चीज़ है, उसके आश्रय से सम्यग्दर्शन होता है। दूसरा कोई उपाय तीन काल में नहीं है। आहाहा! **भूदत्थमस्सिदो** भूतार्थ अर्थात् त्रिकाली का आश्रय करने से, **भूदत्थमस्सिदो खलु सम्मादिट्ठी हवदि जीवो।** तब से समकित दृष्टि उत्पन्न होती है। आहाहा! मूल चीज़ यह है। तब से दृष्टि जो ध्रुव पर गयी, बाहर में विकल्प आये तो भी दृष्टि तो ध्रुव पर ही है। आहाहा!

एक छोटी लड़की हो या लड़का हो। उसकी माँ के साथ हो और बाहर बहुत लोग हो। उसकी माँ दूर चली गयी। लड़की बिछड़ गयी। यह तो प्रत्यक्ष देखा था। उस लड़की को पूछते थे, तू कहाँ की है? मेरी माँ। तेरा नाम क्या? मेरी माँ। मेरी माँ.. मेरी माँ.. एक ही रटन। तेरी सहेली कौन? मेरी माँ। तेरी गली कौन-सी? पहचान दे तो वहाँ छोड़ दे। तेरी गली कौन-सी? मेरी माँ। एक ही बात, मेरी माँ.. मेरी माँ। इसके सिवा दूसरा कुछ नहीं।

ऐसे समकिती को अपने सम्यग्दर्शन में ध्रुव के सिवा दृष्टि कहीं बदलती नहीं। समझ में आया? आहाहा! **स्वानुभूति के काल में या बाहर उपयोग हो, तब भी तल पर से दृष्टि नहीं हटती,...** तल अर्थात् ध्रुव। उत्पाद-व्यय-ध्रुवयुक्तं सत्। उत्पाद-व्यय है, वह पर्याय है; ध्रुव है, वह द्रव्य है। द्रव्य के दो प्रकार। एक प्रमाण का द्रव्य। त्रिकाली द्रव्य और पर्याय मिलकर प्रमाण का द्रव्य है और निश्चयनय का द्रव्य, पर्याय को छोड़कर जो चीज़ रही, वह निश्चयनय का विषय है। सूक्ष्म बात है, भाई! क्या कहा? फिर से।

एक समय की पर्याय है, उसकी दृष्टि द्रव्य पर ही है। पर्याय की दृष्टि पर्याय पर नहीं है। समकित दृष्टि समकित पर नहीं है। आहाहा! उसकी दृष्टि अन्दर ध्रुव पर है। बापू! कभी प्रयत्न किया नहीं। बाह्य क्रियाकाण्ड की प्रवृत्ति के कारण फुरसत नहीं मिलती। आहाहा! यह भगवान अन्दर निर्विकल्प भगवान विराजता है। उस पर जो दृष्टि हुई, उसका विकल्प बाहर आवे तो भी दृष्टि हटती नहीं। आहाहा!

अरे.. ! भरत चक्रवर्ती ! ९६ हजार स्त्री का भोग। ९६ हजार स्त्री का भोग, फिर भी समकिती / क्षायिक समकिती। आहाहा ! भोग के समय भी दृष्टि ध्रुव पर है। चाहे संसार के भोगादि हो, अस्थिरता हो जाए, परन्तु दृष्टि तो अन्दर ध्रुव पर पड़ी है। समझ में आया ? विषय थोड़ा सूक्ष्म है। सादी भाषा में तो कहते हैं। आहा.. ! दुनिया को कहाँ आत्मा की पड़ी है। मैं कहाँ जाऊँगा, यह देह छोड़कर ? देह तो छूटेगा, आत्मा तो नित्य है। यहाँ से कहाँ जाएगा ? कहाँ जाएगा इस चौरासी के अवतार में ? आहा.. ! कभी उसने विचार नहीं किया है कि यह देह तो छूटेगा और आत्मा तो है। आत्मा तो त्रिकाल है। यहाँ से कोई दूसरे भव में तो जाएगा। इस भव के तो थोड़े वर्ष रहे। ५०-५०, ६० निकल गये, उसे ५०-६० और नहीं निकलेंगे। पण्डितजी ! ५० निकलेंगे ? आहाहा ! यहाँ से परलोक में कहीं जाना है। जहाँ कोई साधन नहीं है, बाहर में कोई पहचानवाला नहीं है।

मुमुक्षु :- वहाँ कोई रिश्तेदार नहीं है ?

पूज्य गुरुदेवश्री :- वहाँ कोई रिश्तेदार भी नहीं है और प्रिय भी नहीं है। जंगल में शूकर होकर जन्म ले। कौआ होकर जन्म ले, चींटी होकर अवतार ले। आहाहा ! प्रभु ! तूने विचार नहीं किया। आहा.. ! पिछले अनन्त भव में कहाँ-कहाँ भव में दुःख भोगे, उसे याद नहीं किया है। वादिराज मुनि... ये स्तोत्र है न ? एकीभाव स्तोत्र। उसमें आचार्य कहते हैं, मैं पिछले भव के दुःखों को याद करता हूँ... ये तो मुनि हैं, तीन कषाय का अभाव है, आनन्द है। परन्तु कहते हैं कि मैं जब भूतकाल का विचार करता हूँ, नरक के दुःख याद करने पर आत्मा में घाव लगता है। ऐसा पाठ है। समझ में आया ? मुनि, हों ! तीन कषाय का अभाव है, भावलिंगी, जिनको गणधर नमस्कार करे। मुनि को तो गणधर (नमस्कार करते हैं)। णमो लोए सव्व साहूणं में सब आ जाते हैं न ? छोटे हो, उसको वन्दन नहीं करते, परन्तु णमो लोए सव्व साहूणं में सब आ जाते हैं। सब साधु। सच्चे, हों ! साधु अर्थात् द्रव्यलिंगी भी नहीं और अन्य के साधु भी नहीं। कोई ऐसा कहता है कि णमो लोए सव्व साहूणं में सब साधु (आ जाते हैं)। नहीं, नहीं। जैन परमेश्वर ने कहे हुए तत्त्व का अनुभव, दृष्टि हो, उन्होंने कहा ऐसे अनुभव का चारित्र हो, उसे जैन साधु कहने में आता है। बाकी कोई साधु-बाधु है नहीं।

यहाँ कहते हैं, **दृष्टि बाहर जाती ही नहीं।** आहाहा ! भोग के समय भी दृष्टि तो ध्रुव

पर पड़ी है। यह कोई बात है ! एक बात तो ऐसी है। भरतेश वैभव पुस्तक है न ? देखा है या नहीं ? भरतेश वैभव। यहाँ सब पुस्तक है, हमने तो सब देखे हैं। यहाँ तो हजारों पुस्तक देखे हैं न। भरतेश वैभव में तो एक बात ऐसी आयी है कि उसने विषय लिया। विषय लेकर जहाँ नीचे उतरकर बैठते हैं, निर्विकल्प ध्यान हो जाता है। क्योंकि दृष्टि ध्रुव पर थी और अस्थिरता का राग आया था। उसे वे जानते थे, कर्ता-हर्ता नहीं थे। समकिती को राग आता है, उसका वह कर्ता-हर्ता नहीं है। और वह आने के बाद तुरन्त ध्यान में उतर गये तो निर्विकल्प हो गये। चौथे गुणस्थान में अभी संसार में (ऐसी स्थिति है)। भरतेश वैभव में है।

यहाँ कहना क्या है ? कि उतनी अस्थिरता थी तो भी नीचे उतरे और ध्यान में निर्विकल्प हो गये। ध्याता, ध्यान और ध्येय तीनों भूल गये। अतीन्द्रिय आनंद का स्वाद, अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद (लेते हैं)। आहा..! उसका नाम सम्यग्दर्शन और उसका नाम धर्म की शुरुआत है। आहाहा! ऐसी बात है, भगवान! लोग चाहे जैसे करे, मनाये, परन्तु इस वस्तु के बिना कभी भवभ्रमण कम हो, ऐसा नहीं है। भव का नाश हो, ऐसा नहीं है। आहा..!

दृष्टि बाहर जाती ही नहीं। ज्ञानी चैतन्य के पाताल में पहुँच गये हैं;... धर्मी जीव चैतन्य के पाताल में (पहुँच गये हैं)। एक समय की पर्याय के पीछे गहराई में जो ध्रुव है, वह चैतन्य का पाताल है। धर्मी जीव अपनी पर्याय में चैतन्यतल में-पाताल में पहुँच गये हैं। चैतन्यतल पूरा कितना है, उसका उसको वेदन हो गया है। आहाहा! थोड़ा सूक्ष्म है। यह शब्द सूक्ष्म है। **गहरी-गहरी गुफा में,...** आहाहा! जैसे गहरी-गहरी गुफा होती है, वैसे आत्मा अपनी पर्याय में, सम्यग्दृष्टि की पर्याय में गहरी-गहरी अर्थात् जैसे कोई गहरी गुफा हो, वैसे अन्दर में चले जाते हैं। ध्रुव में उसकी दृष्टि जाती है। ध्रुव के अतिरिक्त दूसरी चीज़ का ध्यान (नहीं) होता। दृष्टि के विषय में तो एक ही रहता है-द्रव्य। भगवान त्रिलोकनाथ परमात्मा.. आहाहा!

गहरी-गहरी गुफा में, बहुत गहराई तक पहुँच गये हैं;... आहाहा! सम्यग्दृष्टि, सच्ची दृष्टि, अनुभव दृष्टि गहराई में, एकदम गहरे-गहरे गहराई में। पर्याय के पीछे जो स्वयं परमात्मा विराजता है-निज आत्मा, वहाँ दृष्टि पहुँच गयी है। आहाहा! ये तो बहन बोली

थी। कभी-कभी थोड़ा-थोड़ा बोले थे, उसे लिख लिया। नहीं तो वह ध्यान में बहुत रहती है। आहाहा! **गहरी-गहरी गुफा में, बहुत गहराई तक पहुँच गये हैं;...** बहुत गहराई में अन्दर चले गये हैं। अपनी वर्तमान पर्याय को ध्रुव में लगा दी। आहाहा! पर्याय असंख्य प्रदेश पर है। पर्याय ऊपर-ऊपर अर्थात् शरीर तो नहीं, परन्तु ऊपर-ऊपर प्रदेश पर पर्याय ऐसे नहीं, पर्याय तो अन्दर जो प्रदेश है न, अन्दर, उसमें पर्याय है। पर्याय असंख्य प्रदेश पर प्रत्येक (प्रदेश) पर है। क्या कहा ? पर्याय, इस शरीर में आत्मा जितने में दिखता है, उसमें ऊपर-ऊपर है, उतनी आत्मा की पर्याय नहीं है। आत्मा नहीं, लेकिन आत्मा के ऊपर है, उतनी पर्याय नहीं है। उसके असंख्य प्रदेश है, उस प्रदेश का जो दल है, वहाँ प्रदेश-प्रदेश पर पर्याय है। आहाहा! समझ में आया ? प्रदेश-प्रदेश पर पर्याय, असंख्य प्रदेश में घुस जाती है, अन्दर एकाकार (हो जाती है), तब उसको विकल्प नहीं रहता। विकल्प आता है, तब उसको जानते हैं, कर्ता नहीं होते। समझ में आया ?

साधना की सहज दशा साधी हुई है। धर्मी ने तो साधना की सहज दशा (साधी है)। साधन यह है। अन्तर्मुख आनन्द में झुकाव, वह साधना। बाकी बाहर की क्रियाकाण्ड को साधना कहे, बापू! उसमें कुछ नहीं है। समझ में आया ? यहाँ तो साधना की सहज स्वभाविक दशा साधना की यह है। आहाहा! अन्तर गुफा में अन्दर अपनी पर्याय से उतरना, वह साधना की दशा है। अरे.. प्रभु! मार्ग वीतराग का.. आहाहा! अनन्त तीर्थंकर यह कह गये हैं। १५वाँ लिखा है।

> **तीर्थंकरदेव की दिव्यध्वनि जो कि जड़ है, उसे भी कैसी उपमा दी है! अमृतवाणी की मिठास देखकर द्राक्षें शरमाकर वनवास में चली गईं और इक्षु अभिमान छोड़कर कोल्हू में पिल गया! ऐसी तो जिनेन्द्रवाणी की महिमा गायी है; फिर जिनेन्द्रदेव के चैतन्य की महिमा का तो क्या कहना!॥ १५॥**

तीर्थंकरदेव की दिव्यध्वनि जो कि जड़ है,... १५वाँ बोल। **तीर्थंकरदेव की दिव्यध्वनि जो कि जड़ है, उसे भी कैसी उपमा दी है! अमृतवाणी की मिठास...** प्रभु! आपकी वाणी की मिठास **देखकर द्राक्षें शरमाकर वनवास में चली गईं...** द्राक्ष.. द्राक्ष। द्राक्ष की मिठास, तेरी वाणी की मिठास सुनकर द्राक्ष वन में चली गई। तेरी मिठास वीतराग

की वाणी। सिंह और बाघ जंगल में से काले नाग प्रवचन में आते हैं। जैसे ही सुनते हैं, स्थिर हो जाते हैं। सर्प के साथ चूहा बैठा हो। चूहे को भय नहीं है और यह उसे मारे नहीं। बिल्ली का बच्चा (बैठा हो)। वर्तमान भगवान समवसरण में (विराजते हैं)।

यहाँ कहते हैं कि **तीर्थंकरदेव की दिव्यध्वनि जो कि जड़ है, उसे भी कैसी उपमा दी है! अमृतवाणी की मिठास देखकर द्राक्षें शरमाकर वनवास में चली गईं...** आहा..! उपमा दी है। द्राक्ष की मिठास, भगवान की वाणी की मिठास के आगे शरमा गई। वन में चली गई। ऐसी बात है। अमृत झरता है। आता है न? भगवान की वाणी में अमृत झरता है, अमृत झरता है। है तो वाणी। वाणी के कर्ता नहीं है। भगवान वाणी के कर्ता नहीं है। वाणी जड़ की पर्याय है। जड़ की पर्याय को आत्मा करता नहीं। परन्तु वाणी में इतनी ताकत है कि जग को मिठास उत्पन्न हो और स्वपरप्रकाशक प्रसिद्ध करे, स्वपरप्रकाशक प्रसिद्ध करे। आहाहा! वाणी में उतनी ताकत है। तो फिर प्रभु की चैतन्य की ताकत की क्या बात करनी!!

इक्षु अभिमान छोड़कर... ईक्षु अर्थात् गन्ना। गन्ना-शेरडी। वह **कोल्हू में पिल गया!** भगवान की वाणी की मिठास देखकर... यह तो उपमा दी है। इक्षु पिल गया। किसमें? कोल्हू में। कोल्हू में पिल गया। भगवान की मिठास के आगे शरम आ गई, ऐसा कहते हैं। आहा...! **ऐसी तो जिनेन्द्रवाणी की महिमा गायी है; फिर जिनेन्द्रदेव के चैतन्य की महिमा का तो क्या कहना!** आहाहा! वाणी में इतनी मिठास कि द्राक्षें (वनवास में चली गई)। गन्ना कोल्हू में पिल गया। प्रभु के आत्मा की क्या बात करनी! आहाहा! १८। किसी ने लिखकर रखा है।

दृष्टि द्रव्य पर रखना है। विकल्प आयें परन्तु दृष्टि एक द्रव्य पर है। जिस प्रकार पतंग आकाश में उड़ती है परन्तु डोर हाथ में होती है, उसी प्रकार 'चैतन्य हूँ' यह डोर हाथ में रखना। विकल्प आयें, परन्तु चैतन्यतत्त्व, सो मैं हूँ — ऐसा बारम्बार अभ्यास करने से दृढ़ता होती है॥ १८॥

१८ वाँ बोल। **दृष्टि द्रव्य पर रखना है।** है? धर्मी को,... धर्म किसको होता है? - कि जिसकी दृष्टि द्रव्य पर पड़ी है। आहाहा!

मुमुक्षु :- दृष्टि अर्थात् क्या ?

पूज्य गुरुदेवश्री :- कहा न। प्रतीत, मान्यता। अनुभव में यह वस्तु यही है, ऐसी प्रतीति, उसका नाम सम्यग्दृष्टि। सम्यग्दर्शन की बात चलती है। आहाहा! वह बात कठिन है, बापू! सम्यग्दर्शन के बिना ज्ञान भी झूठा और उसके बिना क्रिया-ब्रिया चारित्र नहीं है। चारित्र है नहीं, सम्यग्दर्शन के बिना। आहाहा!

यहाँ कहते हैं, कौन-सा है ? १८। **दृष्टि द्रव्य पर रखना है। विकल्प आयें...** राग आये शुभ-अशुभ दोनों, समकिती को-ज्ञानी को। परन्तु आत्मा के आनन्द के स्वाद के आगे उस शुभ-अशुभराग की मिठास आती नहीं। स्वामी होता नहीं, कर्ता होता नहीं। क्या कहा ? समकिती गृहस्थाश्रम में हो, भोग हो, लड़ाई हो, परन्तु दृष्टि अन्तर पड़ी है, वह स्वाद को भूलता नहीं। उस समय भी आनन्द का स्वाद आनन्द है, उसका अनुभव है। आहाहा! सूक्ष्म बात, भाई! जब से सम्यग्दर्शन प्रगट हुआ, तब से आनन्द की धारा तो रहती ही है। आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्द, हों! जीव में अतीन्द्रिय आनन्द पड़ा है।

दृष्टि द्रव्य पर रखना है। विकल्प आयें परन्तु दृष्टि एक द्रव्य पर है। जिस प्रकार पतंग आकाश में उड़ती है... पतंग आकाश में (उड़ती है)। **परन्तु डोर हाथ में होती है,...** डोर हाथ में है। ऐसे समकिती को चाहे जितने भी विकल्प आये, परन्तु डोर हाथ में ध्रुव है। दृष्टि में ध्रुव पड़ा है। आहाहा! समझ में आया ? पतंग होती है न, पतंग ? पतंग उड़ती है, कहीं भी चली जाए। डोर हाथ में है। आहाहा! वैसे समकिती राग-द्वेष आदि में आता है, परन्तु डोर हाथ में है-ध्रुव हाथ में है। ध्रुव में से दृष्टि हटती नहीं। आहाहा! यह मुद्दे की बात है, प्रभु! ये तो बहिन रात को बोले थे, बहिनों ने लिख लिया था, इसलिए बाहर आ गया। नहीं तो आये नहीं। नहीं आये है ? नहीं आये हैं।

पतंग आकाश में उड़ती है परन्तु डोर हाथ में होती है, उसी प्रकार 'चैतन्य हूँ' यह डोर हाथ में रखना। आहाहा! मैं तो ज्ञाता-दृष्टा हूँ। ज्ञान और दर्शन से भरा पड़ा धोकड़ा... धोकड़ा को क्या कहते हैं ? रुई का बोरा। बड़ा बोरा। वैसे मैं तो अनन्त आनन्द का बड़ा बोरा हूँ। आहा..! अतीन्द्रिय आनन्द भरा है। शक्रेन्द्र के इन्द्र के सुख जहर है। आत्मा का सुख अमृत है। आहाहा! राजा, महाराजा और करोड़पति, अरबोंपति सब दु:खी है। राग के कारण दु:खी है, अल्प भी सुखी नहीं है। आहाहा!

मुमुक्षु :- पैसा है, उतना तो सुखी है।

पूज्य गुरुदेवश्री :- दुःखी (है)। पैसा परिग्रह है। वह परिग्रह मेरा, वह मिथ्यात्व है। अभी हम आफ्रीका में गये थे न? आफ्रीका में गये थे न। २६ दिन रहे थे। गाँव में ६० लाख की बस्ती है। एक लाख मोटर, ४५० करोड़पति, ४५० करोड़पति और १५ अरबपति। सब सुनने आते थे। सुनते थे। हमें क्या? उनका बहुत आग्रह था और यहाँ के परिचित थे। २५ लाख का मन्दिर बनानेवाले हैं। २५ लाख का मन्दिर, दिगम्बर मन्दिर। भगवान के बाद नहीं हुआ है। ६० लाख इकट्ठे हुए। पैसे तो वहाँ बहुत आते हैं। परन्तु उसे कहा, तुम ६० लाख या २५ लाख खर्च करो, इसलिए धर्म हो जाए, ऐसा है नहीं। आहाहा! और वह क्रिया भी आत्मा कर सके, ऐसा भी नहीं है। आहाहा! समझ में आया? क्रिया कर सके नहीं, परन्तु क्रिया में जो भाव है, वह शुभ है, धर्म नहीं है। करोड़ रुपया, पाँच करोड़ मन्दिर में खर्च किये, इसलिए धर्म हो गया, बिल्कुल धर्म नहीं है, थोड़ा-सा भी नहीं है। शुभभाव है। आहाहा!

मुमुक्षु :- वह सब आपका प्रताप था।

पूज्य गुरुदेवश्री :- यह वस्तु तो भगवान के घर की है। समयसार, प्रवचनसार, नियमसार गजब बातें हैं! संस्कार वहाँ के थे, वहाँ के संस्कार थे। आहा..

विकल्प आयें, परन्तु चैतन्यतत्त्व सो मैं हूँ — ऐसा बारम्बार अभ्यास करने से दृढ़ता होती है। १८ वाँ बोल। बारम्बार अभ्यास करने से दृढ़ता होती है। आहाहा! १९वाँ लेते हैं। १९।

ज्ञानी के अभिप्राय में राग है, वह जहर है, काला साँप है। अभी आसक्ति के कारण ज्ञानी थोड़े बाहर खड़े हैं, राग है, परन्तु अभिप्राय में काला साँप लगता है। ज्ञानी विभाव के बीच खड़े होने पर भी विभाव से पृथक् हैं- न्यारे हैं॥ १९॥

ज्ञानी के अभिप्राय में राग है वह जहर है, काला साँप है। धर्मी समकितदृष्टि को आत्मा के आनन्द के स्वाद के समक्ष जो राग आता है, वह काला साँप लगता है, जहर है। दुनिया को कहाँ पड़ी है और कहाँ भटकती है, कुछ मालूम ही नहीं। कमाना और दो-

पाँच-पचास लाख कमा लिया तो हो गया, मानो.. ओहोहो! आत्मा यहाँ से देह छोड़कर कहाँ जाएगा? कोई साथ में है या नहीं? दरकार ही कहाँ है? व्यापार, धन्धा, स्त्री, पुत्र। आहाहा! यहाँ तो परमात्मा कहते हैं, वह यहाँ कहा।

ज्ञानी के अभिप्राय में राग है, वह जहर है,... आहाहा! शुभराग है न। आत्मा आनन्द है न! आत्मा आनन्द है न! तो आनन्द से विपरीत अवस्था राग है और राग जहर है। आहा..! कठिन बात है, भाई! शुभराग करते-करते होगा, ऐसा माननेवाले की दृष्टि में मिथ्यात्व है। शुभराग दुःख है। दुःख करते-करते समकित अर्थात् सुख होगा? समकित अर्थात् सुख-अतीन्द्रिय आनन्द और शुभराग अर्थात् दुःख। सूक्ष्म बात तो है, प्रभु! दुःख करते-करते सुख की प्राप्ति होगी, जहर पीते-पीते अमृत की डकार आयेगी? आहाहा! ऐसा होता नहीं। अज्ञानी मानता है कि शुभक्रिया करते-करते आगे बढ़ जाएँगे। जब तक मिथ्यादृष्टि है, तब तक जितने भी शुभभाव हो, नौवीं ग्रैवेयक चला जाए, वहाँ से भी नीचे गिरता है। नौवीं ग्रैवेयक। ग्रीवा.. ग्रीवा। चौदह ब्रह्माण्ड पुरुषाकार है। उसकी जो ग्रीवा है, उस ग्रीवा के स्थान में नौ पासड़ा है। वहाँ अनन्त बार जन्म लिया। शुक्ललेश्या, दिगम्बर साधु वस्त्र के टुकड़े से रहित, ४६ दोषरहित आहार, ऐसी क्रिया करोड़ों पूर्व की, परन्तु वह समकित नहीं है। आहाहा! आतमज्ञान बिना... छहढाला में कहा नहीं? 'मुनिव्रत धार अनंत बार ग्रैवेयक उपजायो, पै आतमज्ञान बिन लेश सुख न पायो।' पंच महाव्रत के परिणाम दुःख है, आस्रव है। कड़क लगेगा, भाई! नये आदमी ने कभी सुना नहीं हो, क्या चीज़ है, क्या मार्ग है। ऐसे ही अन्ध होकर (चलते हैं)। आहाहा!

यहाँ कहते हैं, **अभी आसक्ति के कारण ज्ञानी थोड़े बाहर खड़े हैं,...** धर्मी को अस्थिरता की आसक्ति रहती है, चारित्रदोष है, तो दोष के कारण थोड़े बाहर आते हैं। परन्तु जानते हैं कि वह दुःखरूप है, वह मेरी चीज़ नहीं है। आहाहा! **परन्तु अभिप्राय में काला साँप लगता है।** है? शुभाशुभभाव आवे, **परन्तु अभिप्राय में काला साँप लगता है। ज्ञानी विभाव के बीच खड़े होने पर भी...** आहाहा! अपना निज स्वरूप भगवान परमानन्द की मूर्ति सर्वांग आनन्द, उसकी अनुभव की दृष्टि हुई तो वह विभाव अर्थात् विकार के बीच में हो तो भी उसे आनन्द छूटता नहीं। विभाव है, उतना दुःख होता है। पहले नरक में अभी श्रेणिक राजा है। ८४ हजार वर्ष की स्थिति है। तीर्थंकर गोत्र बाँधते हैं, अभी बाँधते हैं, वहाँ

भी बाँधते हैं। क्षायिक समकित है और बाँधते हैं। परन्तु अभी जितनी कषाय है, उतना दु:ख है। संयोग का (दु:ख) नहीं। वहाँ अग्नि आदि का संयोग है, उस संयोग को छूते नहीं। उस पर दृष्टि जाती है कि यह.. उसका वेदन है। कषाय का वेदन है, वेदन परसंयोग का नहीं है। आहाहा! नरक के दु:ख का वर्णन करते तब (ऐसा कहे), परमाधामी ऐसा करे, वैसा करे। परन्तु एक द्रव्य दूसरे द्रव्य को छूता नहीं। करे क्या? अभिमान करे। आहाहा!

यहाँ कहते हैं... आहाहा! **ज्ञानी विभाव के बीच खड़े होने पर भी विभाव से पृथक् हैं...** आहाहा! माता पर नजर और स्त्री पर नजर जाए, उसमें अन्तर है। माता पर नज जाती है तो, मेरी माँ है। वह स्त्री है। उस प्रकार समकिती की नजर आत्मा पर है। मिथ्यादृष्टि की नजर पर्याय एवं राग पर है। आहाहा! बहुत अन्तर। क्या करना? एक ओर धन्धा करके... आहाहा! वह पन्द्रह अरबवाला हुआ। कितने लाख? एक साल में कितने लाख? आहा..! पन्द्रह अरब किसे कहे? धूल है, मैंने तो कहा, दु:खी है। उसमें सुख नहीं है। जब तक आत्मज्ञान नहीं हो, तब तक तुम दु:खी हो। आहाहा! पण्डितजी ने ऐसा लिखा है, हुकमचन्दजी ने, पैसा आता है पुण्य से, परन्तु पैसा पाप है। परिग्रह है। आहाहा! दसलक्षण में आया है। पैसा है पूर्व पुण्य के कारण, पूर्व पुण्य के कारण मिले। परन्तु मिला है, वह पाप है। पैसेवाला पापी है।

मुमुक्षु :- पैसे के बिना काम नहीं चलता।

पूज्य गुरुदेवश्री :- एक द्रव्य में दूसरे द्रव्य का अभाव है। एक आत्मा लो। अपने में अस्ति है और अनन्त-अनन्त पदार्थ की उसमें नास्ति है। अनन्त की नास्तिरूप भी अस्ति है। पर को तो छूता भी नहीं। आहाहा! यह अंगुली इस अंगुली को छूती नहीं। अन्दर फर्क है, दोनों के बीच अभाव है। मार्ग सूक्ष्म है, भाई! आहा..!

मुमुक्षु :- नया मार्ग है।

पूज्य गुरुदेवश्री :- खरा मार्ग यह है।

मुमुक्षु :- नहीं, नहीं; नया... नया मार्ग है।

पूज्य गुरुदेवश्री :- नया नहीं है, अनादि का यह मार्ग है। २०वाँ।

मुझे कुछ नहीं चाहिए, किसी परपदार्थ की लालसा नहीं है, आत्मा ही चाहिए — ऐसी तीव्र उत्सुकता जिसे हो, उसे मार्ग मिलता ही है। अन्तर में चैतन्यऋद्धि है, तत्सम्बन्धी विकल्प में भी वह नहीं रुकता। ऐसा निस्पृह हो जाता है कि मुझे अपना अस्तित्व ही चाहिए। — ऐसी अन्तर में जाने की तीव्र उत्सुकता जागे तो आत्मा प्रगट हो, प्राप्त हो॥ २०॥

मुझे कुछ नहीं चाहिए,... मुझे आत्मा चाहिए, ऐसी लगन-लगन लगनी चाहिए। मुझे कुछ नहीं चाहिए। एक आत्मा मेरी चीज़ चाहिए। है न ? २०वाँ। **किसी परपदार्थ की लालसा नहीं है, आत्मा ही चाहिए...** आहाहा! अन्तर लगनी लगे। आत्मा ही चाहिए, **ऐसी तीव्र उत्सुकता जिसे हो, उसे मार्ग मिलता ही है।** उसे मार्ग मिलता है। विशेष २१ में आयेगा... आज पूरा हो गया। **अन्तर में चैतन्यऋद्धि है तत्सम्बन्धी विकल्प में भी वह नहीं रुकता।** अपने में आनन्दादि ऋद्धि है, उसमें विकल्प करे कि मेरे में आनन्द है, ऐसे विकल्प में नहीं रुकता। विकल्प है, वह राग है, जहर है। भगवान निर्विकल्प अमृत का घर है। आहाहा!

ऐसा निस्पृह हो जाता है कि मुझे अपना अस्तित्व ही चाहिए। है ? धर्मी तो ऐसा निस्पृह हो जाता है (कि) अपना अस्तित्व, अपनी मौजूदगी चीज़ जो है, अनादि-अनन्त निरावरण, सकल निरावरण अनादि-अनन्त प्रभु अन्दर है, वह चाहिए। उसके सिवा कुछ नहीं चाहिए। त्रिकाल निरावरण है। द्रव्य है, वह त्रिकाल निरावरण है। आवरण तो पर्याय में निमित्त है। द्रव्य तो त्रिकाल निरावरण है। विशेष कहेंगे....

(**श्रोता :-** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

विक्रम संवत-२०३५, अषाढ़ कृष्ण-१५, रविवार, तारीख १०-८-१९८०
वचनामृत-२१, ३० प्रवचन-३

चैतन्य को चैतन्य में से परिणमित भावना अर्थात् राग-द्वेष में से नहीं उदित हुई भावना—ऐसी यथार्थ भावना हो तो वह भावना फलती ही है। यदि नहीं फले तो जगत को—चौदह ब्रह्माण्ड को शून्य होना पड़े अथवा तो इस द्रव्य का नाश हो जाए। परन्तु ऐसा होता ही नहीं। चैतन्य के परिणाम के साथ कुदरत बँधी हुई है—ऐसा ही वस्तु का स्वभाव है। यह अनन्त तीर्थंकरों की कही हुई बात है॥ २१ ॥

२१। **चैतन्य को चैतन्य में से...** चैतन्य भगवान आत्मा ज्ञान और आनन्द का कन्द प्रभु वस्तु, अन्तर में अनंत गुण बसे हैं, ऐसी यह चीज़-वस्तु है। उसको यहाँ चैतन्य कहा है। चैतन्य में से **चैतन्य को चैतन्य में से परिणमित भावना...** अन्तर चैतन्यस्वरूप, चैतन्यस्वरूप की परिणत अन्दर भावना वह निर्मल (है)। जैसा चेतन है, वैसा चैतन्य गुण है, ऐसी चैतन्य की परिणति उत्पन्न हुई। ऐसी परिणति-भावना **राग-द्वेष में से नहीं उदित हुई भावना...** यह थोड़ा सूक्ष्म पड़ेगा। जिसे अन्तर राग-द्वेष के बिना चैतन्यमूर्ति प्रभु, उसकी चैतन्य में से चैतन्य की भावना परिणमित हुई। आहाहा! वह भावना, ऐसी यथार्थ भावना है। बाह्य कोई भी प्रपंच या विकल्प की वहाँ अपेक्षा नहीं है। ऐसी भावना **यथार्थ भावना हो तो वह भावना फलती ही है।** थोड़ी सूक्ष्म बात आयेगी।

चैतन्य में से चैतन्य की भावना जागृत हुई और करना भी वही है। वह जो चैतन्य की भावना परिणमित हुई, वह पूर्ण होकर ही रहेगी। उसका फल पूर्ण ही आयेगा। **यदि नहीं फले तो जगत को—चौदह ब्रह्माण्ड को शून्य होना पड़े...** थोड़ी सूक्ष्म बात है। क्या कहते हैं? चैतन्यस्वरूप भगवान, उसकी चैतन्य भावना राग और द्वेष बिना के, वह भावना फले नहीं, जगत में यदि वह भावना न फले... आहाहा! तो जगत को चौदह ब्रह्माण्ड को

शून्य होना पड़े। क्या कहते हैं ? आहा.. ! वास्तविक जिसे अन्दर चैतन्य की भावना जागृत हुई है, उसे यदि चैतन्य पूर्ण प्राप्त न हो तो जगत को शून्य होना पड़े। अर्थात् उस भावना का फल नहीं आये तो वह द्रव्य ही नहीं है। सूक्ष्म बात है, भाई !

चैतन्य की भावना न फले तो वह चैतन्य पूर्ण नहीं है अर्थात् द्रव्य ही नहीं है। द्रव्य नहीं है तो जगत के द्रव्य का नाश होगा। थोड़ी सूक्ष्म बात है। आहाहा ! अपने चैतन्य की भावना यदि नहीं फले तो जगत को–चौदह ब्रह्माण्ड को (शून्य होना पड़े)। अपनी भावना अन्दर से हुई और उसका परिणाम पूर्ण न हो तो जगत को शून्य होना पड़े। क्योंकि द्रव्य ही नहीं रहता। चैतन्य की भावना है, उसका फल द्रव्य पूर्ण, पूर्ण द्रव्य का फल है। यदि वह भावना न फले तो वह पूर्ण द्रव्य (परिणमन में) आये नहीं। और पूर्ण द्रव्य न हो तो जगत शून्य हो जाए। थोड़ी अलग प्रकार की बात है। आहाहा !

अन्तर में भगवान चैतन्यमूर्ति प्रभु, चैतन्य की भावना अन्दर त्रिकाली, वह भावना न फले तो वह द्रव्य ही नहीं रहता। अर्थात् भावना हुई और द्रव्य पूर्ण नहीं होता। पूर्ण नहीं हो तो जगत को शून्य होना पड़े। जगत के सभी प्राणी या जीव, उसकी भावना के फलस्वरूप पूर्ण नहीं आवे तो उस तत्त्व को नाश होना पड़े। थोड़ी सूक्ष्म बात है। पण्डितजी ! सूक्ष्म बात है।

बहिन के वचन हैं, अनुभूति में से निकले हैं। अन्तर आनन्द के अनुभव में से बात आयी है, सूक्ष्म बात है। बहुत सादी भाषा है। परन्तु बात वह कहते हैं कि यह प्रभु जो अन्दर है, नित्यानन्द नाथ, नित्यानन्द के नाथ की भावना; राग और द्वेष बिना की, वह भावना यदि न फले तो द्रव्य ही नहीं रहता। द्रव्य नहीं रहता, इसलिए जगत ही शून्य हो जाए। आहाहा ! समझ में आया ?

वह भावना फलती ही है। पहले तो अस्ति से बात की है। भगवान आत्मा अन्दर चैतन्य को जागृत करके, खोजकर श्रद्धा की, जिसने अन्दर रागरहित भेदज्ञान प्रगट किया, वह पूर्णता प्राप्त न करे तो वह द्रव्य ही नहीं रह सकता। द्रव्य न रहे तो सब द्रव्य का नाश हो जाए। प्रत्येक द्रव्य की भावना और पर्याय अन्दर, उससे परिणति की प्राप्ति न हो तो वह वस्तु ही न रहे। आहा.. ! थोड़ी सूक्ष्म बात है। बहिन के अन्दर के वचन हैं। आहाहा !

पंचम काल के प्राणी को भी, वस्तु है उसे पंचम काल या चौथा काल नहीं है। क्योंकि यह जो शास्त्र कहे वह पंचम काल के साधु ने और पंचम काल के जीव के लिये कहा है। चौथे काल के प्राणी को नहीं कहा है। आहाहा! यहाँ भी कोई जीव ऐसे निकले... आहाहा! भगवान आनन्दमूर्ति प्रभु भाव वस्तु अस्तिरूप (है), उसकी सत्ता का स्वीकार होकर जो मोक्षमार्ग की भावना प्रगट हुई, उस भावना का फल मोक्ष न आवे तो जगत को शून्य होना पड़े। द्रव्य रह सके नहीं। आत्मा की भावना का उतना जोर आवे कि यह भावना फले ही, केवलज्ञान लेकर रहे। आहाहा! यह बात आफ्रीका में ली थी। आहाहा!

चौदह ब्रह्माण्ड को शून्य होना पड़े'.. एक बात। अर्थात् जो द्रव्य है, उसकी भावना यथार्थ और और वह द्रव्य फले नहीं तो द्रव्य का नाश हो जाए। तो जगत शून्य हो जाए। आहाहा! **अथवा तो इस द्रव्य का नाश हो जाए।** पहले पूरे जगत की समुच्चय की बात की। द्रव्य की भावना है और द्रव्य फले नहीं तो उस द्रव्य का नाश हो जाए। क्योंकि भावना का फल जो द्रव्य पूर्ण पर्याय, वह नहीं आये तो वह भावना निष्फल गई। भावना निष्फल गई तो उसका फल भी नहीं मिलता, इसलिए उस द्रव्य का नाश हुआ। सूक्ष्म बात है, प्रभु! आहाहा! थोड़ी सूक्ष्म पड़े ऐसी बात है।

वह क्या? अपनी भावना अपने को न फले, उसमें जगत को (शून्य होना पड़े)? बापू! प्रभु! उसमें वह बात है कि जो द्रव्य है, जो सत्ता स्वतन्त्र है, उस सत्ता की भावना करने पर वह सत्ता पूर्णपने पर्यायपने न हो तो वह सत्ता ही नहीं रहती। वह सत्ता नहीं रहने से जगत के पदार्थ सत्तारूप है, वह नहीं रह सकेंगे। आहाहा! जोर अन्दर का (है)। अप्रतिहत भावना का यह फल है। जो यह भावना हुई तो आत्मा पूर्ण होकर ही रहेगा। उसमें विघ्न आनेवाला नहीं, भले हम पंचम काल में आये। आहाहा! और वह भी शास्त्र में कहा है। (समयसार) ३८वीं गाथा में।

अबुद्ध था-अप्रतिबुद्ध था, उसे समझाया। ३८वीं गाथा। वह समझा और ऐसे समझा, अप्रतिबुद्ध समझा। कोई कहता है कि यह समयसार मुनि के लिये है। ३८वीं गाथा में अप्रतिबुद्ध को बात कहते हैं। आहा..! वह अप्रतिबुद्ध समझा, उसे गुरु ने बारम्बार समझाया, समझकर उसे सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र हुआ। और कहते हैं, उसमें टीका में पाठ है कि हमें जो यह प्राप्त हुआ है, उससे मैं च्युत नहीं होऊँगा। पंचम काल का प्राणी

है और कहनेवाले पंचम काल के गुरु हैं, इसलिए हमारी दशा नीचे गिर जाएगी, ऐसा है नहीं। ३८वीं गाथा में है। वहाँ तो वहाँ तक कहा है, हम सम्यग्दर्शन-ज्ञान से च्युत होंगे ही नहीं। शंका नहीं होती। आहाहा! अन्दर से वह जोर आना चाहिए। वह कोई बाह्य प्रवृत्ति और क्रिया से प्राप्त नहीं होता। आहाहा! अन्दर का जोर, चैतन्यप्रभु पूर्ण भगवान पूर्णानन्द का नाथ चैतन्य रत्नाकर, चैतन्यरत्न से भरा आकर अर्थात् समुद्र, चैतन्य रत्नाकर भगवान, उसकी जिसे भावना हुई। पुण्य और पाप के राग-द्वेष के भाव बिना की भावना हुई। आहाहा! पुण्य और पाप की विकारी भावना बिना चैतन्य की भावना हुई, वह चैतन्य फले ही। वह केवलज्ञान प्राप्त करेगा ही। और केवलज्ञान एवं पूर्णता न हो तो वह भावना निष्फल जाए और भावना का फल निष्फल जाए तो द्रव्य का नाश हो जाए। आहाहा! थोड़ा सूक्ष्म है। यह तो अन्दर के जोर की बात है। आहाहा!

भाववान आत्मा त्रिकाली भाव भगवानस्वरूप, सब भगवानस्वरूप ही है। आत्मा एक समय की पर्याय के अलावा भगवानस्वरूप ही है। सब आत्मा, निगोद से लेकर सब द्रव्य जो है, वह तो त्रिकाली निरावरण ही है। अखण्ड है, अविनाशी है। ऐसी चीज़ की अन्तर्दृष्टि हुई, ऐसी चीज़ की अन्तर भावना हुई और आत्मा प्राप्त न हो, ऐसा तीन काल में बनता नहीं। प्राप्त नहीं हो रहा है तो उसका कारण क्या? कारण यह है कि जितनी योग्यता उसे पकड़ने की करने की चाहिए, उतनी योग्यता का अभाव है। आहाहा!

भगवान आत्मा सच्चिदानन्द प्रभु अनन्त गुण का समुद्र वह तो है, अनन्त गुणसागर है। उस चीज़ को पकड़ने में आये, भावना हो, सम्यग्दर्शन-ज्ञान हो और केवलज्ञान न हो और पूर्ण द्रव्य पर्यायपने परिणमे नहीं, ऐसा तीन काल में बनता नहीं। पंचम काल के प्राणी की बात है। ३८वीं गाथा में वह लिया है। अप्रतिबुद्ध था, उसने समकित प्राप्त किया, वह कहता है, मेरा समकित अब गिरेगा नहीं। ऐसा पाठ है। ३८वीं गाथा। भाई! अन्तर की चीज़ अलग है। बाह्य आचरण की क्रिया, वह सब बातें बाहर की अलग है। आहा..! दया, दान, व्रत, भक्ति भी जड़ है। आहाहा!

मुमुक्षु :- हिन्दी में।

पूज्य गुरुदेवश्री :- हिन्दी में आया नहीं? जड़ है। दया, दान, भक्ति आदि परिणाम (जड़ हैं)। क्योंकि उसमें चेतन का अभाव है। चेतन का अभाव है तो वह अचेतन ही है।

और अचेतन की जिसे प्रीति है, उसको चेतन की प्रीति नहीं है और जिसको चेतन की प्रीति हुई, उसको पुण्य-पाप राग अचेतन है, उसकी प्रीति रहती नहीं। जिसको आत्मा का रस चढ़ा, उसका राग का रस नाश हो जाता है। आहाहा! और राग का रस यदि रहे तो आत्मा का शान्ति का रस नाश हो जाता है। आहाहा! समझ में आया?

यहाँ कहते हैं कि **यदि भावना नहीं फले तो जगत को—चौदह ब्रह्माण्ड को शून्य होना पड़े...** आहाहा! अपना जोर है। अपनी पर्याय की भावना से पर्यायवान पूर्ण की प्राप्ति न हो तो दुनिया नहीं रह सकती। क्योंकि भावना का फल द्रव्य, वह द्रव्य नहीं आये तो जगत में द्रव्य ही न रहे। आहाहा! सूक्ष्म है, प्रभु! बात थोड़ी अन्दर की है। अनुभव की बात है। आहाहा! एक बात (हुई)।

अथवा तो इस द्रव्य का नाश हो जाए। जिसकी भावना आत्मा ने की, आत्मा आनन्दस्वरूप भगवान, उसका आनन्द आया और पूर्ण प्राप्त न हो तो द्रव्य का नाश हो जाए। साधक का साध्य पूर्ण प्राप्त होगा ही। न हो तो साधक का नाश होने से साध्य का नाश होगा। आहाहा! ऐसी बात है, प्रभु! आत्मा के बल की बात अन्दर है। यहाँ पंचम काल का अवरोध नहीं है। क्योंकि समयसार, प्रवचनसार, नियमसार आदि कहनेवाले तो पंचम काल के साधु थे और पंचम काल के श्रोता को समझाते थे। ऐसा नहीं है कि यह बात चौथे काल की है और पहले काल की है और ऊँची है। काल आदि कुछ आत्मा को अवरोध नहीं करता। आत्मा को कोई अवरोध नहीं है। ऐसा भगवान अन्दर सच्चिदानन्द प्रभु, उसकी जिसको यथार्थ भावना हुई, वह फले ही फले, परमात्मा होकर ही रहेगा। छुटको को क्या कहते हैं। परमात्मा थये (छुटको)। (छुटकारा)। हमारी भाषा छुटको है। परमात्मा हो जाए। अवश्य फलेगी। आहा..!

परन्तु ऐसा होता ही नहीं। आहाहा! पहली यह बात की। फिर (कहते हैं), ऐसा होता ही नहीं। बहिन रात्रि में थोड़ा बोले होंगे, बहनों ने लिखा लिया होगा। यह लिख लिया है। अनुभूति में से लिखा गया है। आत्मा का सम्यग्दर्शन और अनुभूति में से यह सब वाणी आई है। आहाहा! **ऐसा होता ही नहीं। चैतन्य के परिणाम के साथ कुदरत बँधी हुई है...** क्या कहते हैं? चैतन्य का जो निर्मल परिणाम, उससे पूर्ण हो, ऐसा द्रव्य का स्वभाव ही है। कुदरत उससे बँधी हुई है कि अपना परिणाम जो चैतन्य शुद्ध सम्यग्दर्शन, ज्ञान आदि

शुद्ध परिणाम हुआ तो उसे पूर्ण परमात्मा होगा ही, ऐसा कुदरत अर्थात् द्रव्य का स्वभाव ऐसा है। वस्तु का स्वभाव ही ऐसा है। आहाहा!

चैतन्य के परिणाम के साथ कुदरत बँधी हुई है... कुदरत का अर्थ वह-द्रव्य का स्वभाव ही ऐसा है। द्रव्य का स्वभाव रहे नहीं। अपनी भावना हो और भाव न आये तो वस्तु रह सकती नहीं। कोई ऐसा कहते हैं कि, हम मेहनत तो बहुत करते हैं, परन्तु समकित क्यों नहीं होता ? उसकी बात झूठी है। जितने प्रमाण में अन्तर्मुख में प्रयत्न चाहिए, उतने प्रयत्न की कमी के कारण आत्मा हाथ नहीं आता। और कहे कि हम प्रयत्न बहुत करते हैं, परन्तु हाथ में नहीं आता, वह बात झूठी है। पण्डितजी! आहा..! हम तो बहुत मेहनत करते हैं, परन्तु पता नहीं लगता। उसका अर्थ ऐसा हुआ कि साधन तो बहुत करते हैं; साध्य प्राप्त नहीं होता। ऐसी बात कभी नहीं होती। आहाहा! जितने प्रमाण में राग-द्वेष रहित चैतन्य की सूक्ष्म परिणति स्वयं को पकड़ने को जितनी चाहिए, उतनी न हो और पकड़ में आवे, ऐसा तीन काल में बनता नहीं। और उतनी सूक्ष्म पर्याय प्रगट हुई हो और पकड़ में न आवे, ऐसा भी कभी नहीं बनता। समझ में आया ? अलग बात है, बापू!

मुमुक्षु :- काललब्धि के बिना पुरुषार्थ क्या करे ?

पूज्य गुरुदेवश्री :- काललब्धि कोई वस्तु नहीं है। टोडरमलजी ने ऐसा कहा है। मैं तो ऐसा कहता हूँ, बहुत साल से (संवत्) १९७१ की वर्ष से। ७१ की वर्ष से। काललब्धि की धारणा करनी है या उसका ज्ञान करना है ? क्या कहा, समझ में आया ? काललब्धि को धारणा में धारना है या काललब्धि का ज्ञान करना है ? जब काललब्धि का ज्ञान होगा, द्रव्य स्वभाव का ज्ञान हुआ तो काललब्धि का ज्ञान होता ही है। टोडरमलजी ने लिखा है। काललब्धि और भवितव्यता कोई वस्तु नहीं है। ऐसा लिखा है। वस्तु है, अकेली नहीं है। अकेली काललब्धि नहीं है।

काललब्धि का ज्ञान किसको अन्दर होता है ? काललब्धि, काललब्धि शब्द का रटन कर ले, उसका क्या मतलब है ? उसकी प्रतीति किसको होती है ? कि अपने द्रव्य की ओर जिसकी दृष्टि हो और चैतन्य का अनुभव (हुआ हो)। काल, पुरुषार्थ, स्वभाव, निमित्त का अभाव सब आते हैं। पाँचों समवाय एक समय में होते हैं। आहाहा! कठिन बात

है। पाँच समवाय है न? पाँचों समवाय। उस समय पुरुषार्थ द्रव्य पर आया, पर्याय द्रव्य पर ढल गई, झुकी, पाँचों समवाय होंगे। न हो, ऐसा तीन काल में बनता नहीं। वह बात तो यहाँ चलती है। आहाहा!

मुमुक्षु :- कुदरत बँधी हुई है, ऐसा क्यों कहा?

पूज्य गुरुदेवश्री :- द्रव्य का स्वभाव ऐसा है। भावना हुई और (फल न आये) तो द्रव्य का नाश हो जाए। इसलिए कुदरत का नाश हो जाए। आहा..! सूक्ष्म बात है, भाई! काललब्धि की बात तो पहले से बहुत कहते थे। मैने कहा था न? १९७१ के वर्ष में, बारम्बार ऐसा कहते थे, केवलज्ञानी ने देखा होगा ऐसा होगा। केवलज्ञानी ने देखा होगा वैसा होगा, अपने क्या पुरुषार्थ कर सके? अभी यह क्रमबद्ध का आया है कि क्रमबद्ध में जब होगा तब होगा, हम क्या पुरुषार्थ करें? आहाहा! क्रमबद्ध की बात यहाँ से निकली है न। क्रमबद्ध कहाँ था?

द्रव्य की प्रत्येक समय में जो पर्याय होनेवाली है, वह होगी। क्रमसर होगी। आगे-पीछे इन्द्र, जिनेन्द्र बदल सके नहीं। जो द्रव्य की जो समय की पर्याय, उस समय की वही पर्याय, दूसरे समय की दूसरी, तीसरे समय की तीसरी (होगी)। उस पर्याय को बदलने में इन्द्र, नरेन्द्र, जिनेन्द्र समर्थ नहीं है। यह बात और एक यह बात-दोनों बात नहीं थी। समयसार की तीसरी गाथा। एक द्रव्य दूसरे द्रव्य को छूता नहीं। एक आत्मा परमाणु को छूता नहीं। परमाणु, परमाणु को छूता नहीं। आहाहा! यह परमाणु इस परमाणु में है। एक परमाणु दूसरे परमाणु को छूता नहीं। प्रत्येक का स्वचतुष्टय अपने में अपने कारण से परिणमता है। पर की अपेक्षा उसमें है नहीं। आहाहा! कठिन बात है।

मुमुक्षु :- इसका विश्वास कैसे हो? परमाणु परमाणु को स्पर्शता नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री :- बिल्कुल छूता नहीं। एक परमाणु है (उसे) दूसरा परमाणु (स्पर्शता नहीं)। तीसरी गाथा में ऐसा कहते हैं, समयसार। एक द्रव्य अपने धर्म को चुम्बता है। देखना है? हिन्दी नहीं होगा। गुजराती होगा। **सब पदार्थ अपने द्रव्य में अन्तर्मग्न रहनेवाले...** संस्कृत टीका है। संस्कृत टीका का है। समयसार। **सर्व पदार्थ अपने द्रव्य में अन्तर्मग्न रहनेवाले अपने अनन्त धर्मों के चक्र को (समूह को) चुम्बन**

करते हैं... सर्व पदार्थ अपने गुण-पर्याय को छूते हैं। परमाणु या आत्मा, सर्व अपनी पर्याय को छूते हैं। **स्पर्श करते हैं-तथापि वे परस्पर एक दूसरे को स्पर्श नहीं करते,..** आहाहा! यह बात गजब है! वीतराग के सिवाय यह बात हो नहीं सकती। एक रजकण दूसरे रजकण को छूता नहीं। आहाहा! इस अंगुली में अनन्त परमाणु हैं। एक-एक परमाणु दूसरे परमाणु को छूता नहीं। अपने परमाणु में अपनी परिणति अपने से अपने में अपने कारण से है। आहाहा!

मुमुक्षु :- यह तो निश्चय का कथन हुआ।

पूज्य गुरुदेवश्री :- निश्चय अर्थात् सत्य। व्यवहार अर्थात् उपचार।

मुमुक्षु :- इसमें यह भी लिखा हुआ है कि एक-दूसरे का उपकार करते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री :- वह झूठी बात है। वह कहा था। चौदह ब्रह्माण्ड लिखते हैं, फिर नीचे लिखते हैं, परस्पर उपग्रहो। ऐसा लिखते हैं। उसका अर्थ सर्वार्थसिद्ध में ऐसा किया है कि उपग्रह का अर्थ निमित्त है। कोई दूसरे को उपकार कर सके, ऐसा है ही नहीं। निमित्त (है)। ऐसी बात। एक द्रव्य को दूसरे द्रव्य उपग्रह-उपकार करे, ऐसा तीन काल में है नहीं। उपकार का अर्थ वहाँ लिया है कि निमित्त की उपस्थिति, उसका नाम उपकार कहने में आया है। निमित्त, हों! निमित्त जगत में तो होता है। परन्तु जब-जब जिस द्रव्य की पर्याय होनेवाली है, वह अपने से ही होती है। निमित्तमात्र दूसरी चीज़ भले हो। निमित्त को छूता नहीं। एक द्रव्य दूसरे द्रव्य को कभी छूता नहीं। आहाहा! एक परमाणु दूसरे परमाणु को छूता नहीं। आत्मा कर्म को छूता नहीं। आहाहा! बात सूक्ष्म है, भाई!

यहाँ तो (संवत) १९७१ से चल रहा है। क्रमबद्ध, क्रमबद्ध चलती है। एक के बाद एक पर्याय चले, उसकी दृष्टि द्रव्य पर जाती है। क्रमबद्ध। क्रमनियमित शब्द है। ३०८ गाथा। क्रमनियमित अर्थात् सब बराबर। जिस समय जो पर्याय होगी, वह होगी; बाद में होगी, आगे-पीछे होगी - ऐसा है ही नहीं। ऐसा वहाँ ३०८ गाथा में है। ऐसा प्रश्न उठा था कि केवलज्ञानी ने देखा वैसा होगा। अपने क्या पुरुषार्थ करें? यह १९७१-७२ की बात है। मैंने इतना कहा कि एक समय, ज्ञान में एक समय में तीन काल-तीन लोक जानता है, अपनी पर्याय द्रव्य-गुण को भी जानती है, वह पर्याय लोकालोक को जानती है, वह पर्याय

अपनी बाहर अनन्ती पर्याय प्रगट है, उसको जानती है। ऐसी एक समय की पर्याय की सत्ता का स्वीकार करनेवाला, द्रव्य पर दृष्टि हुये बिना स्वीकार नहीं होता। आहाहा! एक समय की केवलज्ञान की एक पर्याय में पूरी दुनिया है। क्योंकि उस पर्याय में लोकालोक जानने में आता है, द्रव्य-गुण जानने में आते हैं। एक ही पर्याय, दुनिया में एक पर्याय वस्तु, उसमें पूरे तीन काल-तीन लोक जानने में आते हैं। ऐसी एक समय की पर्याय की सत्ता, इस प्रकार अन्दर विचार करके, नमन करके अन्दर... आहाहा! भगवन्त आत्मा की ओर झुककर निर्णय करे, उसको सम्यग्दर्शन हुए बिना रहे नहीं। आहाहा! समझ में आया? बड़ी बात हुई। सत्ता का स्वीकार (है)? केवलज्ञान, केवलज्ञान सब बोलते हैं, परन्तु केवलज्ञान कहना किसको? केवलज्ञानी ने देखा वैसा होगा। परन्तु तुमको अभी केवलज्ञान की श्रद्धा है या नहीं? बाद में देखा होगा वैसा होगा। केवलज्ञान की सत्ता का स्वीकार करेगा, उसकी दृष्टि ज्ञान पर जाएगी।

अपना स्वभाव चैतन्य आनन्द प्रभु, उसकी दृष्टि जब केवलज्ञान की सत्ता का स्वीकार करेगी, वहाँ अपनी सत्ता का स्वीकार किये बिना (उसकी सत्ता का स्वीकार होता नहीं)। पर्याय का निर्णय पर्याय से होता नहीं। पर्याय का निर्णय द्रव्य के आश्रय से होता है। सूक्ष्म लगे, भगवान! मार्ग यह है। तीन लोक के नाथ सीमन्धर भगवान कहते हैं। आहाहा! वह बात है। किंचित्मात्र फेरफार नहीं। आहाहा!

एक समय की सत्ता! कब बात है? इस दुनिया में एक समय की पर्याय की सत्ता ऐसी एक ही है। एक पर्याय केवलज्ञान की एक ही है। एक समय की एक पर्याय में लोकालोक, द्रव्य-गुण-पर्याय, द्रव्य-गुण, अपनी अनन्ती वर्तमान प्रगट पर्याय सब जानने की ताकत एक समय में है। आहाहा! एक समय की पर्याय की सत्ता का स्वीकार करने जाए, उसकी पर्याय पर दृष्टि नहीं रहेगी। आहाहा! उसकी दृष्टि द्रव्य पर जाएगी। क्योंकि पर्याय में पर्याय के आश्रय से पर्याय का निर्णय नहीं होता। आहाहा! सूक्ष्म है, भगवान! पर्याय का निर्णय द्रव्य के आश्रय से होता है। आहाहा! अन्दर तत्त्व की मूल बात कम हो गयी और फेरफार हो गया बहुत।

एक परमाणु दूसरे परमाणु को छूता नहीं। एक आत्मा एक-दूसरे को, कर्म को छूता नहीं। आहाहा! और प्रत्येक परमाणु और आत्मा में क्रमसर पर्याय होगी, आगे-पीछे नहीं।

परन्तु उस क्रमसर पर्याय का निर्णय करनेवाले की दृष्टि द्रव्य पर जाएगी। द्रव्य पर जाएगी तो उसको समकित ही होगा। आहाहा!

ऐसे यहाँ जो बहिन ने कहा है, वह जोरवाला है। आहाहा! अन्तर स्वभाव की भावना, स्वभाववान प्रभु, उसकी भावना उसका फल न आवे तो उस वस्तु का नाश होगा। उस वस्तु का अस्तित्व नहीं रहेगा। उसका नहीं रहेगा तो पूरे जगत का अस्तित्व नहीं रहेगा। अथवा उस द्रव्य का ही नाश होगा। क्योंकि द्रव्य की जो पूर्ण शक्ति है, उसकी प्रतीति और अनुभव में भावना आयी, उस भावना का फल पूर्ण द्रव्य न आये तो उस द्रव्य का नाश होगा। सूक्ष्म बात है, भाई! यह आया है, इसलिए थोड़ा कहते हैं। नहीं तो इतनी सूक्ष्म बात नहीं करते हैं। आहाहा!

ऐसा ही वस्तु का स्वभाव है। स्वभाव की भावना जो चैतन्य की की; चैतन्य द्रव्य, उसकी भावना। अनन्त गुण का पिण्ड, उसकी भावना अन्दर हुई, वह निर्विकल्प हुई। वह निर्विकल्प भावना रागरहित हुई। रागरहित हुई, उस भावना से केवलज्ञान अर्थात् पूर्ण दशा प्राप्त होगी, होगी और होगी ही। न हो तो द्रव्य का नाश हो जाएगा। द्रव्य की स्थिति ऐसी है नहीं। द्रव्य का साधन जिसने कहा, उसका साध्य आकर ही छुटकारा है। आहाहा! समयसार में ३८ गाथा में यह लिया है। अप्रतिबुद्ध समझा तो कहता है, अब मुझे छूटेगा नहीं। हमारी श्रद्धा, ज्ञान और अनुभव से छूटेगा नहीं। पाठ है। संस्कृत टीका है। ९२वीं गाथा में ऐसा है, प्रवचनसार। हमने जो मार्ग अन्दर से प्राप्त किया है, उस मार्ग से कभी छूटेंगे नहीं, च्युत नहीं होंगे। भले ही हम अकेले हों। आहाहा! पंचम काल के श्रोता को भी इतना जोर आता है। धर्म कोई साधारण है? बापू! लोग साधारण माने कि दया पाली, व्रत लिये, प्रतिमा ले ली, इसलिए हो गया धर्म। बापू! धर्म कठिन है।

सम्यग्दर्शन.. आहाहा! वह जब होता है, तब यह सब ज्ञान होता है। यह हुआ तो परमात्मा होगा ही होगा। न हो तो द्रव्य का नाश होगा। द्रव्य का स्वभाव ऐसा नहीं है। कुदरत में द्रव्य का स्वभाव ऐसा है कि साधकभाव हुआ तो साध्य प्रगट होगा ही। यहाँ ऐसी बात ली है। च्युत हो जाएगा, ऐसी बात यहाँ नहीं ली है। आहाहा! ग्यारहवें गुणस्थान से च्युत होता है न? वह बात यहाँ नहीं ली है। यह बात ली है।

यहाँ भी वह लिया, **ऐसा ही वस्तु का स्वभाव है। यह अनन्त तीर्थंकरों की कही**

हुई बात है। आहाहा! थोड़ी सूक्ष्म बात आ गयी। **यह अनन्त तीर्थंकरों की कही हुई बात है।** चैतन्य के परिणाम में चैतन्य की परिपूर्णता न आये, ऐसा अनन्त तीर्थंकरों ने नहीं कहा है। अनन्त तीर्थंकरों ने कहा है, भगवान चैतन्यस्वरूप पुण्य और पाप के विकल्प से रहित, उसका अन्दर में अनुभव हो, दृष्टि हो, भावना हो। निर्विकल्पदशा हो और उसे निर्विकल्प परमात्मपद-साध्य प्राप्त न हो, (ऐसा) तीन काल में बनता नहीं। समझ में आया? २१वाँ बोल (पूरा) हुआ। ३०। किसी ने लिखा है। इसमें से पढ़ने के लिये किसी ने लिखा है।

जब बीज बोते हैं, तब प्रगटरूप से कुछ नहीं दिखता, तथापि विश्वास है कि 'इस बीज में से वृक्ष उगेगा, उसमें से डालें-पत्ते-फलादि आएँगे', पश्चात् उसका विचार नहीं आता; उसी प्रकार मूल शक्तिरूप द्रव्य को यथार्थ विश्वासपूर्वक ग्रहण करने से निर्मल पर्याय प्रगट होती है; द्रव्य में प्रगटरूप से कुछ दिखाई नहीं देता, इसलिए विश्वास बिना 'क्या प्रगट होगा' ऐसा लगता है, परन्तु द्रव्यस्वभाव का विश्वास करने से निर्मलता प्रगट होने लगती है॥ ३०॥

३०वाँ बोल। **जब बीज बोते हैं,...** ३०वाँ बोल है। **जब बीज बोते हैं, तब प्रगटरूप से कुछ नहीं दिखता,...** बीज बोते हैं तो तुरन्त (फल) आ जाता है? आहाहा! **तथापि विश्वास है कि 'इस बीज में से वृक्ष उगेगा, ही...'** इस बीज में से वृक्ष उगेगा ही। उगेगा नहीं, उगेगा ही। आहाहा! अन्तर में आत्मा का बीज बोया,.. आहा..! वह उगेगा ही। केवलज्ञान आये बिना रहेगा नहीं। षट्खण्डागम में ऐसा एक बोल है कि, जब अन्दर से मतिज्ञान हुआ, स्वभाव के अनुभव में से जब मतिज्ञान हुआ तो मतिज्ञान ऐसा कहता है, मतिज्ञान केवलज्ञान को बुलाता है, ऐसा पाठ है। बुलाता है, ऐसा पाठ है। संस्कृत। षट्खण्डागम। मतिज्ञान केवलज्ञान को बुलाता है। यह क्या? उसका अर्थ यह है कि जो दूज उगी है, वह पूर्णिमा होगी ही। तेरहवें दिन पूर्णिमा होगी ही। उसमें निःशंकता है, कोई शंका का स्थान नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु :- दूज का चन्द्रमा है।

पूज्य गुरुदेवश्री :- वैसे यह भगवान सम्यग्दर्शनरूपी दूज उगी, केवलज्ञान फले

बिना रहेगा नहीं। आहाहा! क्या हो ? मूल चीज़ पर (दृष्टि नहीं) । चैतन्यमूर्ति निर्विकल्प वस्तु त्रिकाल निरावरण। वस्तु है, वह तो त्रिकाल निरावरण है, अखण्ड है, एक है। जयसेनाचार्य की टीका। जयसेनाचार्य की टीका का पाठ (है) । त्रिकाल निरावरण। पाठ है, इसमें होगा। जयसेनाचार्य की टीका है। आहा..! लम्बी बात है। क्या कहा ? सकल निरावरण। देखो!

पुन: स्पष्ट करने में आता है। विवक्षित एकदेश शुद्धनयाश्रित, विवक्षित एकदेश शुद्धनयाश्रित यह भावना जो कहना चाहते हैं, शुद्धिरूप परिणति निर्विकल्प स्वसंवेदनलक्षण क्षायोपशमिक ज्ञानरूप होने से यद्यपि एकदेश व्यक्तरूप है, तो भी ध्याता पुरुष यह भाता है कि जो सकलनिरावरण... संस्कृत टीका है। सकल निरावरण प्रभु अन्दर है। आहाहा! सकलनिरावरण अखण्ड एक। गुणभेद नहीं। आहाहा! सकल निरावरण अखण्ड एक प्रत्यक्षप्रतिभासमय। संस्कृत में है, समयसार। समझ में आया ? प्रत्यक्षप्रतिभासमय अविनश्वर शुद्ध पारिणामिक परमभावलक्षण। शुद्ध पारिणामिक परमभावलक्षण निज परमात्मद्रव्य वही मैं हूँ। आहाहा! समयसार की जयसेनाचार्य की टीका में है। जयसेनाचार्य की टीका में है। शब्दश: लिख लिया है। आहाहा! क्या कहते हैं ? देखो!

इस प्रकार सिद्धान्त में कहा है, निष्क्रिय शुद्ध पारिणामिक। शुद्ध पारिणामिकभाव निष्क्रिय है। शुद्ध पारिणामिकभाव सक्रिय नहीं है, परिणमन नहीं है। पर्याय में परिणमन है। निष्क्रिय का क्या अर्थ है ? क्रिया-रागादि परिणति उसरूप नहीं। मोक्ष के कारणभूत क्रिया शुद्धभावना परिणति, उसरूप भी नहीं। सूक्ष्म बात है, प्रभु! द्रव्यरूप जो वस्तु है, वह त्रिकाल निरावरण है, अखण्ड है, एक है। मोक्ष के कारणरूप भी नहीं। मोक्ष और मोक्ष का कारण, दो रूप द्रव्य नहीं है। ऐसा पाठ है। आहाहा! देखो! मोक्ष के कारणभूत क्रिया शुद्धभाव परिणति उसरूप भी नहीं है। और ऐसा जानने में आता है कि शुद्ध पारिणामिक ध्येय (है), ध्यानरूप नहीं है। आहाहा! ध्यान विनश्वर है। पाठ है। ध्यान विनश्वर है। पाठ है। संस्कृत टीका है। ध्यान विनश्वर है, इसलिए ध्यान का ध्यान नहीं। आहाहा! गजब बात है, भाई! ध्येय का ध्यान। आहाहा!

योगीन्द्रदेव ने भी कहा है। योगीन्द्रदेव ने (परमात्मप्रकाश में) कहा है।

ण वि उप्पज्जइ ण वि मरइ बंधु ण मोक्खु करेइ।
जिउ परमत्थैं जोइया जिणवरु एउँ भणेइ॥६८॥

यह श्लोक है। हे योगी! अन्तरस्वरूप में जुड़ान करनेवाले को योगी कहते हैं। परमार्थ से जीव उत्पन्न नहीं होता। परमार्थ से जीव उत्पाद नहीं करता। उत्पाद-व्यय से भिन्न है। उत्पाद-व्यय, ध्रुव के ऊपर तिरते हैं। आहाहा! परमार्थ से जीव उत्पन्न भी नहीं होता, मरता भी नहीं है। व्यय नहीं होता। उसका व्यय नहीं होता। व्यय तो उत्पाद-व्यय है। और बंध-मोक्ष को करता नहीं। आहाहा! पर्याय है न? पर्याय पर दृष्टि नहीं है। पाठ है। जयसेनाचार्य की टीका, समयसार की।

यहाँ कहते हैं, कौन-सा बोल आया? ३०। बीज बोया तो विश्वास है कि बीज में से पत्ते, फूल, फल सब होगा। सब होगा ही। वहाँ शंका होती है? **जब बीज बोते हैं, तब प्रगटरूप से कुछ नहीं दिखता, तथापि विश्वास है कि 'इस बीज में से वृक्ष उगेगा, उसमें से डालें-पत्ते-फलादि आएँगे', पश्चात् उसका विचार नहीं आता;...** आहाहा! **उसी प्रकार...** वह तो दृष्टान्त हुआ। **मूल शक्तिरूप द्रव्य को यथार्थ विश्वासपूर्वक ग्रहण करने से...** आहाहा! ३०वाँ बोल। क्या कहा? देखो! **उसी प्रकार...** अर्थात् जैसे बीज बोया और विश्वास है कि वृक्ष होगा ही। **उसी प्रकार मूल शक्तिरूप द्रव्य...** मूल शक्तिरूप द्रव्य परमात्मा स्वयं। त्रिकाल निरावरण अखण्डानन्द प्रभु एकरूप जो त्रिकाल, पर्याय में अनेकरूप है, द्रव्य में एकरूप है, ओहोहो! ऐसे एक अखण्ड निरावरण परमपारिणामिक-भावलक्षण निजपरमात्मद्रव्य, वह मैं हूँ। धर्मी को यह मैं हूँ, ऐसा है। खण्ड ज्ञान का अनुभव नहीं है। आहाहा!

वह यहाँ कहते हैं, **द्रव्य को यथार्थ विश्वासपूर्वक ग्रहण करने से...** भगवान आत्मा द्रव्य पूर्णानन्द का नाथ ध्रुव, अचल, उसका आश्रय लिया.. आहा! उसे ग्रहण किया और निर्मल पर्याय प्रगट होती है। **द्रव्य में प्रगटरूप से कुछ दिखाई नहीं देता,...** पहले प्रतीत हुई अनुभव में, उसमें असंख्य प्रदेश या अनन्त गुण प्रत्यक्ष नहीं दिखाई देते। क्या कहा? प्रगट पहले सम्यग्दर्शन में अनुभव होता है। आनन्द का स्वाद आता है, अतीन्द्रिय आनन्द का, परन्तु असंख्य प्रदेश दिखते नहीं। ज्ञान कम है और अस्थिर है। असंख्य प्रदेश आदि। कहते हैं, वह पहले दिखाई नहीं देते। **इसलिए विश्वास बिना 'क्या**

प्रगट होगा'... विश्वास। ओहो..! बीज में से वृक्ष होगा ही। वैसे मेरे आत्मा का बीज-सम्यग्दर्शन हुआ, उसमें से केवलज्ञान होगा ही। भवभ्रमण कभी नहीं रहेगा, ऐसा अन्दर में से विश्वास न आये तो उसने आत्मा को जाना नहीं। आहाहा! ऐसी बात सूक्ष्म है, पण्डितजी! अन्तर की बात है, भाई!

'क्या प्रगट होगा' ऐसा लगता है,... इसलिए विश्वास बिना 'क्या प्रगट होगा' ऐसा लगता है, परन्तु द्रव्यस्वभाव का विश्वास करने से... आहा..! द्रव्यस्वभाव आत्मा का विश्वास करने से **निर्मलता प्रगट होने लगती है।** निर्मलता प्रगट होने लगती ही है। आनन्द की शुद्ध बढ़ती ही है। द्रव्य का आश्रय हुआ, उसको द्रव्य के आश्रय से शुद्धि उत्पन्न हुई, द्रव्य के आश्रय से शुद्धि टिकी रही और द्रव्य के आश्रय से शुद्धि की वृद्धि हुई। आहाहा! ऐसा मार्ग है। करना क्या? यह करना, यह करना... करना क्या है? करने में मरना है। ज्ञानस्वरूप को रागादि करना बताना, मर गया। आहाहा! क्या कहा? फिर से। ज्ञानस्वरूप भगवान जानन-देखनस्वभाव, उसको कुछ करना सौंपना, राग करना, पुण्य-पाप करना सौंपना, वहाँ ज्ञातापने का नाश होता है। समझ में आया? आहाहा!

ज्ञातापना, मैं ज्ञानस्वरूप का पिण्ड हूँ, मेरी चीज़ में कोई मैल-अशुद्धता कुछ नहीं है। ऐसी चीज़ का जब विश्वास हुआ, आहाहा! वह फलेगा ही। आहा..! द्रव्यस्वभाव का विश्वास करने से निर्मलता प्रगट होगी। प्रगट हुए बिना रहे नहीं। यह तो बहिन के वचन में, अनुभव के वचन हैं। आहाहा! रात्रि को थोड़ा बोले होंगे। बहिन आयी नहीं है, शरीर में कमजोरी है। बोलते हैं थोड़ा, लेकिन बहिनों ने लिख लिया था। इसलिए बाहर आया, नहीं तो बाहर नहीं आता। (उनकी स्थिति) शव जैसी है। आहा..! यह तो उनकी वाणी है। यह सब उनके वचनामृत है। लो, उतना रखो... (**श्रोता :-** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

विक्रम संवत-२०३५, अषाढ़ शुक्ल-१, सोमवार, तारीख ११-८-१९८०
वचनामृत-३२, ३३, ३४, ३६ प्रवचन-४

सम्यग्दृष्टि को आत्मा के सिवा बाहर कहीं अच्छा नहीं लगता, जगत की कोई वस्तु सुन्दर नहीं लगती। जिसे चैतन्य की महिमा एवं रस लगा है, उसको बाह्य विषयों का रस टूट गया है, कोई पदार्थ सुन्दर या अच्छा नहीं लगता। अनादि अभ्यास के कारण, अस्थिरता के कारण अन्दर स्वरूप में नहीं रहा जा सकता, इसलिए उपयोग बाहर आता है परन्तु रस के बिना — सब निःसार, छिलकों के समान, रस-कस शून्य हो, ऐसे भाव से-बाहर खड़े हैं॥ ३२॥

३२। **सम्यग्दृष्टि को आत्मा के सिवा बाहर कहीं अच्छा नहीं लगता,...** आत्मा अतीन्द्रिय आनन्दमय, अतीन्द्रिय शान्तमय, शान्तरस स्वभाव ऐसे स्वरूप का जिसको अनुभव हुआ, उसको सम्यग्दृष्टि कहते हैं। अन्तर में राग से भिन्न, पुण्य से भिन्न अपनी दृष्टि त्रिकाली ज्ञायक पर हो, उसको यहाँ अनुभव में आत्मा का स्वाद आता है। उसको यहाँ सम्यग्दृष्टि कहते हैं। आहाहा! क्योंकि अनन्त काल से राग और द्वेष की आकुलता का वेदन किया है। अनन्त-अनन्त काल में मनुष्य दिगम्बर साधु हुआ तो भी राग की आकुलता का वेदन किया है। राग से भिन्न अनाकुल प्रभु, उसकी उसको खबर नहीं है। सम्यग्दृष्टि (अर्थात्) सत्य जैसी वस्तु परमपारिणामिकस्वभाव अतीन्द्रिय आनन्द उसका सम्यक् अर्थात् है, ऐसी (वस्तु) है, ऐसी दृष्टि, ऐसा अनुभव (हुआ है)। आहाहा!

ऐसे सम्यग्दृष्टि को आत्मा के सिवा। अपने अतीन्द्रिय आनन्द के स्वाद के आगे, **आत्मा के सिवा बाहर कहीं अच्छा नहीं लगता,...** बाहर कुछ अच्छा नहीं लगता। आहा! जहाँ अपना स्वरूप... ३१वीं गाथा में कहा है, **'जो इंदिये जिणित्ता'** अर्थात् द्रव्यइन्द्रिय-यह जड़, भावइन्द्रिय-अन्दर एक-एक को विषय करनेवाली इन्द्रिय और पूरी दुनिया।

उसमें भगवान और भगवान की वाणी भी आ गई। सब इन्द्रिय है। **'जो इंदिये जिणित्ता णाणसहावाधियं मुणदि आदं'**। दुनिया से भिन्न होकर। अपना ज्ञानस्वभाव, आनन्दस्वभाव सबसे भिन्न। **'णाणसहावाधियं'** अधिक। भगवान तीर्थंकरदेव की ओर लक्ष्य करने से भी भगवान ज्ञानस्वभाव अधिक आनंदस्वभाव (है)। क्योंकि परद्रव्य में लक्ष्य करने से तो राग होता है। आहाहा! अपनी चीज़ में आनन्द भरा है। उस ओर के झुकाव से, उसकी मिठास में आत्मा के सिवा बाहर कहीं अच्छा नहीं लगता।

समकिती को चक्रवर्ती का राज है, अन्तर में अच्छा नहीं लगता। इन्द्र का इन्द्रासन है। शक्रेन्द्र को बत्तीस लाख विमान है। शक्रेन्द्र एकावतारी है, एक भव करके मोक्ष जानेवाला है। करोड़ा अप्सराएँ हैं। रस नहीं है, आत्मा के सिवा रस नहीं है। आहाहा! अतीनिद्रय आनन्द का नाथ सच्चिदानन्द प्रभु अन्तर में से जागृत हुआ और उसका स्वाद आया और उसमें ऋद्धि-सम्पदा, जगत की विपदा से विरुद्ध सम्पदा-आनन्द की सम्पदा आत्मा में भरी है। आहाहा! उसकी जिसको लगनी लगी, उसे बाहर कहीं अच्छा नहीं लगता। बाहर कहीं अच्छा नहीं (लगता)। आहा..! शुभराग भी जहाँ अच्छा नहीं लगता। क्योंकि वह भी आकुलता है। आनन्द और अनाकुल आत्मा के समक्ष राग, तीर्थंकर गोत्र बाँधने का राग भी आकुलता-दुःख है। इसलिए कहीं अच्छा नहीं लगता। आहाहा!

जगत की कोई वस्तु सुन्दर नहीं लगती। आत्मा के समक्ष **जगत की कोई वस्तु सुन्दर नहीं लगती।** स्वर्ग सर्वार्थसिद्धि का देव।

रजकण या ऋद्धि वैमानिक देव की,
सर्वे मान्या पुद्‌गल एक स्वभाव जो।

एक रजकण से लेकर सर्वार्थसिद्ध के देव की गति। 'रजकण या ऋद्धि वैमानिक देव की, सर्वे मान्या पुद्‌गल एक स्वभाव जो।' सब पुद्‌गल का स्वभाव है। रजकण या सर्वार्थसिद्ध का अवतार। आहाहा! यह श्रीमद् का वाक्य है। वह कुछ सुन्दर नहीं लगता।

जिसे चैतन्य की महिमा एवं रस लगा है,... आहाहा! जिसको चैतन्य भगवान अतीन्द्रिय आनन्द का रस लगा है.. आहाहा! **उसको बाह्य विषयों का रस टूट गया है,...** एक म्यान में दो तलवार नहीं रह सकती। जिसको आत्मा के अतिरिक्त रागादि, पुण्य आदि

में रस है, उसको आत्मा का रस नहीं है। और जिसको आत्मा का रस है, उसको पुण्यादि परिणाम और उसके फल की भी इच्छा नहीं है। रुचि नहीं है, रस नहीं है। आहाहा! गजब बात है! एक ओर आत्मा और एक ओर पूरी दुनिया। परन्तु उस आत्मा के रस के समक्ष पूरी दुनिया में कुछ अधिकता मालूम नहीं पड़ती। '**णाणसहावाधियं मुणदि**' ३१ गाथा में कहा। वहाँ तो भगवान की वाणी और भगवान को इन्द्रिय कहा है। ३१ गाथा। तीन लोक के नाथ और उनकी वाणी भी परद्रव्य है। आहाहा! अपने स्वद्रव्य के आनन्द के समक्ष उसको परद्रव्य में कहीं रस नहीं आता। आहा..!

जिसे चैतन्य की महिमा एवं रस लगा है, उसको बाह्य विषयों का रस टूट गया है,... ओहोहो! चक्रवर्ती क्षायिक समकिती था। ९६ हजार स्त्रियाँ थीं, उसका भोग भी था। परन्तु अन्तर में से उसका रस नहीं था। आहाहा! स्वामीत्व नहीं, रस नहीं। अन्तर की रुचि का रस निकल गया। क्यों? कि रुचि अनुयायी वीर्य। जिसकी अन्तर रुचि हो, उस ओर वीर्य झुके। समझ में आया? रुचि अनुयायी वीर्य। जिस ओर रुचि हो, उस ओर वीर्य अर्थात् पुरुषार्थ झुके। रुचि अनुयायी वीर्य। जिसकी अन्दर में जरूरत भासित हुई, दुनिया की कोई चीज, एक भगवान आत्मा के सिवा, उसकी जरूरत ज्ञात हुई, उसका वीर्य अन्दर में झुके बिना रहे नहीं। आहाहा! वह यहाँ कहते हैं। **बाह्य विषयों का रस टूट गया है, कोई पदार्थ सुन्दर या अच्छा नहीं लगता।** ओहोहो! सर्वार्थसिद्ध का देव हो, वह भी सुन्दर नहीं लगता। आहाहा! भगवान आनन्द के समक्ष.. सम्यग्दर्शन कोई ऐसी चीज़ है, प्रभु!.. आहाहा! जिसको अन्दर में यह वेदन प्रगट हो, अतीन्द्रिय आनन्द का वेदन हो, उस वेदन के समक्ष सारी दुनिया तुच्छ लगे। आहाहा! अच्छा नहीं लगता।

अनादि अभ्यास के कारण,... अब क्या कहते हैं? उसको राग तो होता है। समकिती को आसक्ति तो होती है। तो कहते हैं, **अनादि अभ्यास के कारण, अस्थिरता के कारण अन्दर स्वरूप में नहीं रहा जा सकता,...** स्वरूप में रह सकता नहीं। आहाहा! अन्तर आनन्द में जब रह नहीं सके, अपनी पर्याय की कमजोरी से, तब **उपयोग बाहर आता है...** समकिती का उपयोग बाहर आता है। आहाहा! बाहुबलीजी और भरत, दोनों भाई और समकिती (हैं)। लड़ाई (हुई)। वह अस्थिरता का भाग है, भाई! बाहर से नाप करने जाएगा तो मेल नहीं खायेगा। यह अस्थिरता का भाग है। अन्तर सम्यग्दर्शन-दृष्टि

द्रव्य पर पड़ी है। दृष्टि ने द्रव्य का स्वीकार किया है, उसके समक्ष किसी भी चीज़ का स्वीकार होता नहीं। आहाहा!

वह यहाँ कहते हैं। परन्तु कमजोरी से, जब तक वीतरागता न हो, तब तक आसक्ति आती है। इसलिए **उपयोग बाहर आता है परन्तु रस के बिना...** आहाहा! एक आदमी था। उसे ऐसी आदत हो गई थी कि रोज उसे हलवा खाने में चाहिए। रोज हलवा खाये। रोटी आदि बिल्कुल नहीं। उसका एक ही लड़का था, वह मर गया। जलाने गये। जलाकर वापस आते हैं। रोटी करो। रिश्तेदार इकट्ठे होते हैं। अभी जामनगर में बना। जामनगर। रोटी करो। भाई! आपको रोटी हजम नहीं होगी। आपको हलवा खाना हो तुमको रोटी ... क्योंकि उसने हलवा ही (खाया था)। हलवा की खुराक। रिश्तेदार ने हलवा बनाया। इसने ऐसा कहा कि, रोटी बनाओ, बापू! अरे.. ! लड़का गया। बनाया। थाली में डाला, परन्तु आँख में से आँसू की धारा चलती है और हलवा खाता है। समझ में आया? विसाश्रीमाली। जामनगर का कोई जानता है? कोई जामनगर का नहीं है? वसा.. वसा। आहाहा! वर्षों से सिर्फ हलवा ही खाया था। उसे हलवा दिया। रोटी आदि कुछ खाये तो तुरन्त रोग हो जाए, मर जाए। वह खाने बैठा, परन्तु खाते समय आँख में से आँसू की धारा (बहती है), रस नहीं है।

वैसे समकिती को... आहाहा! बाहर की कोई चीज़ का रस नहीं है। जैसे एक पुत्र मर गया और अपना खुराक ही हलवा था, परन्तु उसे खाते समय आँख में से आँसू.. आँसू.. आँसू। ऐसे समकिती को उपयोग बाहर आता है, अन्तर में जा सकता नहीं। दृष्टि ध्रुव पर पड़ी है। ध्रुव का अवलम्बन अन्दर से लिया है, वहाँ आनन्द है। परन्तु विशेष उपयोग अन्दर नहीं जाता है, उपयोग बाहर रहता है, तब.. वह कहते हैं?

पयोग बाहर आता है परन्तु रस के बिना... रस नहीं है, रस नहीं है। रस उड़ गया। आहाहा! एक वृद्ध आदमी था। हलवा खाया। पुत्र को जलाकर आये। रिश्तेदार इकट्ठे होकर कहते हैं, भाई! तुम मर जाओगे, यह रोटी खाओगे तो। आपने कभी खाया नहीं। वैसे यहाँ समकिती को आत्मा का भोजन मिला.. आहाहा! सम्यग्दृष्टि को आत्मा के आनन्द का भोजन मिला, उसके आगे दूसरी चीज़ का रस छूट जाता है। आहाहा! ऐसी चीज़ है, प्रभु! आहा..! प्रभु की प्रभुता जहाँ अन्दर में भासित हुई.. भगवान प्रभु है, वह प्रभुता जहाँ

अन्तर में भासित हुई, वहाँ आत्मा के रस के आगे, उसके सिवा जगत का सब रस छूट जाता है। आहाहा! धर्म कोई ऐसी चीज़ नहीं कि बाहर से छोड़ दिया, इसलिए धर्म हो गया। आहाहा! अन्दर से पुण्य का राग आता है, उसका भी जिसको रस नहीं। आहा..! ऐसी बात है, प्रभु! मूल बात यह है। आहाहा! पुण्य का भाव आये, फिर भी उसमें रस नहीं है। पुण्य से भिन्न भगवान आत्मा का रस छूटता नहीं। दृष्टि का ध्येय ध्रुव है, दृष्टि ध्रुव पर जम गई है। आहाहा! करनेयोग्य हो तो यह है। दृष्टि ध्रुव पर जम गई। आहाहा! उसके रस के समक्ष बाकी सब रस फीका लगता है। कैसे? क्या?

सब निःसार, छिलकों के समान,... छिलका-छिलका-फोतरा। आहाहा! भाई! शब्दों का काम नहीं है, वहाँ विद्वत्ता का काम नहीं है, वहाँ पण्डिताई का काम नहीं है। आहाहा! जहाँ आत्मा का रस आया, वहाँ छिलके के समान (लगता है)। पूरी दुनिया, चक्रवर्ती का राज या इन्द्र का इन्द्रासन आत्मा के रस के समक्ष छिलके के समान सब लगता है। आहाहा! है?

रस-कस शून्य हो ऐसे... सब पर में से रस और कस उड़ गया। जैसे खाली बक्सा हो, दिखे। कोठा भले दिखे। पूरा कोठा खाये। हमने तो प्रत्यक्ष देखा है। हमारे वहाँ उमराला में कोठा बहुत (होता था)। हाथी आये। वह पूरा कोठा खाये और पूरा निकले। खाये पूरा, पूरा निकले। अन्दर से रस उड़ गया है। ना जाने कैसे बनता है। ऊपर का दिखाव उतना का उतना। और अन्दर का रस सब उड़ गया हो। प्रत्यक्ष देखा है। आहाहा! समझ में आया? नहीं आया? कोठा नहीं समझे? हाथी कोठा खाता है। उसका भजन भी है। हाथी कोठा खाता है, इतना गोल होता है। परन्तु वैसा का वैसा पूरा निकले। अन्दर का जो रस था वह सब समाप्त हो गया। हमने तो प्रत्यक्ष देखा है। हमारे वहाँ उमराला में हाथी बहुत आते थे। नदी में बैठे हो। देखा था। खाली होता है। दस-बीस कोठा होता है। अन्दर का रस उड़ गया। तोल उड़ गया, तोल। तोल को क्या कहते हैं? वजन। वजन उड़ गया अन्दर से और खोखा बच गया। आहाहा!

ऐसे समकिती को... आहा..! कोठा में से जैसे रस ले लिया और खाली कोठा रहा.. यह तो प्रत्यक्ष देखा है, उसकी बात है, प्रभु! कोठा का बड़ा वृक्ष होता है। उमराला में (थे)। आहाहा! इस आत्मा के आनन्द के रस के आगे, जैसे कोठा का रस पूरा चूस लेता

है, फिर भी दिखाव पूरा लगता है, वैसे समकिती पुरुष संसार में दिखाई दे। समकिती इन्द्र के इन्द्रासन में दिखाई दे, समकिती चक्रवर्ती के राज में दिखाई दे, ९६ हजार स्त्री के विषय के भोग में दिखाई दे, फिर भी उसका उसमें रस नहीं है। आहाहा! बापू! वह क्या चीज़ है ? मूल चीज़ तो यह है, बाकी सब बातें हैं।

आत्मा अन्दर सच्चिदानन्दस्वरूप, उसका जिसको ज्ञान और आनन्द का स्वाद आया, वह छिलका समान सारी दुनिया लगती है। आहाहा! **छिलकों के समान, रस-कस...** रस और कस। अन्दर कस है, वह खत्म हो जाता है। **ऐसे भाव से-बाहर खड़े हैं।** आहाहा! मूल वस्तु से दूर नहीं है, परन्तु दृष्टि तो वहीं लगी है। परन्तु बाहर में ऐसा उपयोग लगा है तो वहाँ खड़ा है, ऐसा दिखता है, परन्तु अन्दर में नहीं है। आहाहा! अन्दर में तो राग से भी भिन्न आत्मा का अनुभव तो उस समय भले साक्षात् न हो, परन्तु लब्धरूप में अनुभव में है। लब्धि तो है। आत्मा का भान हुआ, वह चाहे जो भी भोग में बैठा हो.. आहाहा! (लब्ध में आत्मानुभव चालू है)।

एक बात ऐसी है, भरतेश वैभव। भरतेश वैभव देखा है न ? भरतेश वैभव पुस्तक है। यहाँ है। सब देखे हैं। यहाँ हजारों पुस्तक आते हैं। उसमें एक ऐसा लिखा है। उसका नाम क्या है ? कर्ता कौन ? रत्नाकर वर्णी। रत्नाकर वर्णी ने बनाया है। भरत का वैभव। आहाहा! उसमें ऐसा लिखा है कि अन्दर आत्मा के रस के समक्ष सब रस फीके हो जाते हैं। वह तो ठीक परन्तु उसमें दृष्टान्त दिया है। भरतेश वैभव है। क्या दृष्टान्त दिया है ? चक्रवर्ती समकिती बाहर भोग में आया। ९६ हजार स्त्री है और क्षायिक समकित है। बाहर भोग में आया उपयोग में। आहाहा! तो वह भोगादि में दिखने में आया, परन्तु जब वह भोग से निवृत्त होकर नीचे बैठे तो ध्यान में निर्विकल्प हो गये। आहाहा! भरतेश वैभव है, भाई! चन्दुभाई! आपने देखा है ? नहीं देखा होगा। अपने यहाँ है.. होशियार है, कोई रत्नाकर है, उसने बनाया है। उसके पाठ में ऐसा आता है। (पुस्तक) बनाया इसलिए हाथी के होदे पर उसका जुलूस निकाला था। भरतेश वैभव। आहाहा!

जिसे एक क्षण पहले उपयोग बाहर का था। परन्तु वह रस बिना का उपयोग था, प्रभु! रस जहाँ जमा था, वहाँ से उपयोग हट गया। परन्तु दूसरी क्षण में ध्यान में निर्विकल्प आनन्द के स्वाद में आ गये। आहाहा! त्याग नहीं है किसी का। ९६ हजार स्त्री। अन्तर्मुहूर्त

में नीचे बैठकर ध्यान में बैठ गये, वहाँ निर्विकल्प ध्यान हो गया। ध्याता, ध्यान और ध्येय भूल गये। आहाहा! रस उड़ जाता है। वह ३२ में कहा।

'जिसे लगी है उसी को लगी है' ....परन्तु अधिक खेद नहीं करना। वस्तु परिणमनशील है, कूटस्थ नहीं है; शुभाशुभ परिणाम तो होंगे। उन्हें छोड़ने जाएगा तो शून्य अथवा शुष्क हो जाएगा। इसलिए एकदम जल्दबाजी नहीं करना। मुमुक्षु जीव उल्लास के कार्यों में भी लगता है; साथ ही साथ अन्दर से गहराई में खटका लगा ही रहता है, सन्तोष नहीं होता। अभी मुझे जो करना है, वह बाकी रह जाता है—ऐसा गहरा खटका निरन्तर लगा ही रहता है, इसलिए बाहर कहीं उसे सन्तोष नहीं होता; और अन्दर ज्ञायकवस्तु हाथ नहीं आती, इसलिए उलझन तो होती है, परन्तु इधर-उधर न जाकर वह उलझन में से मार्ग ढूँढ़ निकालता है॥ ३३॥

३३। **'जिसे लगी है उसी को लगी है'**। आहाहा! आत्मा की जिसे लगी है, उसी को लगी है। आहा..! **परन्तु अधिक खेद नहीं करना**। विशेष खेद नहीं करना, जबतक नहीं मिले तबतक। आनन्द का स्वाद जब तक नहीं आवे, अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद जब तक नहीं आवे। **परन्तु अधिक खेद नहीं करना। वस्तु परिणमनशील है,...** क्या कहते हैं? **कूटस्थ नहीं है; शुभाशुभ परिणाम तो होंगे**। आहाहा! यह समकित होने से पहले की बात है। शुभाशुभ परिणाम होंगे, उलझन में नहीं आना। उससे हटकर आत्मा का प्रयोग करना। आहाहा! सूक्ष्म बात है। वस्तु होने पर भी अधिक खेद नहीं करना। एकदम निर्विकल्प हो जाऊँ, ऐसे जल्दबाजी से (काम) नहीं होता। वह तो सहज दशा है। सहज दशा। आहाहा! स्वभाविक दशा जहाँ उत्पन्न होती है, वहाँ हठ काम नहीं करती। आहाहा! उतावली नहीं करना, ऐसा कहते हैं। धैर्य रखना, धैर्य। आहाहा!

वस्तु परिणमनशील है, कूटस्थ नहीं है; शुभाशुभ परिणाम तो होंगे। उन्हें छोड़ने जाएगा तो शून्य अथवा शुष्क हो जाएगा। अन्तर में जा सके नहीं और शुभाशुभ छूट जाएगा तो शून्य हो जाएगा। समझ में आया? अन्तर में जा सके नहीं, अभी समकित हुआ नहीं और शुभाशुभ परिणाम छोड़ने जाएगा तो शून्य हो जाएगा। आहाहा!

यह तो बहिन की अनुभव-वाणी है। अन्तर अनुभव-अनुभूति आनन्द का स्वाद लेते-लेते यह वाणी निकल गई है। आहा..! आहाहा! शरीर कमजोर है, इसलिए आते नहीं। दोपहर को कभी-कभी आते हैं। शरीर कमजोर है, अन्दर में आनन्द है। आहाहा!

यहाँ कहते हैं, अपने में **शुभाशुभ परिणाम तो होंगे। उन्हें छोड़ने जाएगा...** आत्मानुभव होवे नहीं (और) शुभाशुभ छोड़ने जाएगा तो शुष्क हो जाएगा। शुभ परिणाम को छोड़ने जाएगा, शुद्ध अनुभव है नहीं, शुष्क हो जाएगा। आहाहा! अथवा शून्य हो जाएगा। कुछ पता नहीं लगेगा। यह तो अन्तर की बात है, बापू! अनुभव की बात है। आहाहा!

अनुभव रत्न चिंतामणि, अनुभव है रसकूप,
अनुभव मार्ग मोक्षनो, अनुभव मोक्षस्वरूप।

आहाहा! अनुभव सूक्ष्म वस्तु है, बापू! 'अनुभवीने एटलुं रे आनंदमां रहेवुं रे...' लगभग ८० साल पहले। अभी तो ९१ वर्ष हुए, शरीर को। ८० साल पहले हमारे पड़ोस में एक ब्राह्मण थे। मेरे मामा का मकान था। वह स्नान करके ऐसा बोले। लंगोटी पहनते हैं न? तब ऐसा बोले। 'अनुभवीने एटलुं रे आनंदमां रहेवुं रे, भजवा परिब्रह्म ने बीजुं कांई न कहेवुं..' वह समझते नहीं थे। उसे पूछा, मामा! आप क्या बोलते हो? उसने कहा, मैं कुछ समझता नहीं। सब बोलते हैं तो मैं भी बोलता हूँ। आहाहा! 'अनुभवीने एटलुं रे आनंदमां रहेवुं रे, भजवा परिब्रह्म...' आत्मा परिब्रह्म, उसका भजन कर। भक्ति दो प्रकार की है। समयसार में जयसेनाचार्य की टीका में दो प्रकार की भक्ति (कही है)। एक स्वभक्ति, एक परभक्ति। दो (बात) चली है। स्वभक्ति निर्विकल्प है। विकल्प का अवकाश नहीं है। आहाहा! और पर की भक्ति करने जाता है तो विकल्प आता है। आता है, अन्दर स्थिर न रह सके, अस्थिर है। यहाँ कहा न? अस्थिर है तो आयेगा।

इसलिए एकदम जल्दबाजी नहीं करना। आहाहा! धीमे से-धीरे से राग से हटने का प्रयत्न, धीरे से करना। बहुत जल्दबाजी करेगा तो अनुभव प्राप्त होगा नहीं और राग से दूर होगा नहीं। आहाहा! **मुमुक्षु जीव उल्लास के कार्यों में भी लगता है;...** क्या कहते हैं? मुमुक्षु जीव बाहर में उल्लसित दिखे। बाहर के काम में उल्लास जैसा दिखे। आहाहा! इन्द्र, शक्रेन्द्र एक भव में मोक्ष जानेवाला है। वह नन्दीश्वर द्वीप में जाता है। आठ-आठ

दिन। वह समकिती है, एक भव में मोक्ष जानेवाला है। वह घुंघरू बाँधकर नाचता है। आहा..! भगवान के पास। अन्दर में समझता है कि यह सब जड़ की क्रिया है। थोड़ा भाव है, वह शुभ है। ऐसा समझता है। और शुद्ध मेरी चीज दूसरी भिन्न है। आहाहा!

यह कहते हैं, **मुमुक्षु जीव उल्लास के कार्यों में भी लगता है;...** उल्लास दिखता है। घुंघरू बाँधकर नाचता है, है समकिती, क्षायिक समकित। आहाहा! मिथ्यादृष्टि अशुभराग छोड़कर शुभराग में लीन हो, फिर भी मिथ्यादृष्टि है। समकिती, समकित (स्वभाव) में से उपयोग हट गया, समकित वैसा ही रहा, उपयोग हटा तो शुभराग भी आया। अशुभराग-कृष्ण, नील, कापोत, लेश्या भी आयी, फिर भी उसकी दृष्टि ध्रुव पर है, वह हटती नहीं। आहाहा! समझ में आया? ध्रुव के ध्यान में जिसे लगी है,... आहाहा! उसे यह बाहर की सब चीज़ का रस छूट गया है। ऐसे ही मान ले कि हम धर्मी हैं। और अन्दर में कुछ नहीं। आहाहा! कठिन बात है।

मुमुक्षु जीव उल्लास के कार्यों में भी लगता है;... समकिती उल्लास से भक्ति आदि भी करते हैं न? भगवान की भक्ति आदि करे। शुभभाव आता है तो करते हैं। **साथ ही साथ अन्दर से गहराई में खटका लगा ही रहता है,...** अन्दर खटक (रहती है कि), अरे..! मैं तो आनन्द हूँ, यह नहीं। आहाहा! उस बात की खटक तो रहा ही करती है। आहाहा! **सन्तोष नहीं होता।** बाहर में कोई चीज़ में धर्मी को सन्तोष होता नहीं। मान, अपमान, इज्जत, कीर्ति सब धूल है। आहाहा! किसी पर जिसे रस नहीं है। आहाहा!

अभी मुझे जो करना है, वह बाकी रह जाता है... अन्दर में जाने का प्रयत्न करता है, प्रयत्न करते.. करते.. करते.. अन्दर में जाने का एक ही प्रयत्न है, इसलिए शुभ-अशुभ को छोड़ने की जल्दबाजी भी नहीं करता। क्योंकि एकदम शुभ छोड़ने जाए तो शुभ भी छूट जाएगा। अभी शुद्धता प्रगट नहीं हुई। चन्दुभाई! प्रथम भूमिका के लिये यह बहुत अच्छा है। **ऐसा गहरा खटका निरन्तर लगा ही रहता है,...** आहाहा! कल दृष्टान्त दिया था न? माँ का। माँ-बेटा होता है न। अँगुली पकड़कर जाता हो। दृष्टान्त दिया था न? लड़का हो, उसकी माँ की अँगुली पकड़कर चलता हो। उसमें अँगुली छूट गई और अकेला रह गया। उसकी माँ आगे चली गयी। उसे पुलिस उठाकर ले आयी। हमने देखा है। पोरबन्दर चातुर्मास था। उपाश्रय के पास ही वह हुआ। लड़की को ऐसा पूछते हैं, लड़की! तेरा नाम

क्या है ? मेरी माँ। उसे एक ही लगी थी, मेरी माँ, मेरी माँ, मेरी माँ। वैसे समकिती को मेरा प्रभु, मेरा प्रभु आत्मा लगा है। उसे कुछ भी पूछे, तेरी गली कौन-सी ? तेरी सहेली कौन ? कुछ कहे तो उसकी गली में छोड़ दे। लेकिन एक ही बात बोले, जो कुछ पूछे, मेरी माँ, मेरी माँ। ऐसे धर्मी को, मेरा नाथ आत्मा। आनन्द सच्चिदानन्द प्रभु, उस पर से दृष्टि कभी हटती नहीं। बाह्य में उपयोग आये... आहाहा! बाह्य कार्य में जुड़ा हो, ऐसा दिखे, फिर भी बाहर का काम करता नहीं। समकिती बाह्य कोई भी काम, हाथ हिलाना, वह क्रिया आत्मा की नहीं। आहाहा! हाथ हिलाना, हाथा से पुस्तक बनाना, वह आत्मा की क्रिया नहीं। आहाहा!

वह तो तीसरी गाथा में आ गया न ? समयसार तीसरी गाथा। तीसरी गाथा में मूल पाठ है। प्रत्येक वस्तु अपने धर्म को चूमती है। अपने सिवा दूसरी चीज को चूमती नहीं। समयसार की तीसरी गाथा। मूल पाठ संस्कृत अमृतचन्द्राचार्य का है। बताया था न ? कल बताया था। दो बात है। एक तो यह कि, एक द्रव्य की पर्याय दूसरे द्रव्य की दूसरी पर्याय को छूती नहीं। यह बात जैन में बहुत कठिन है। और दूसरी बात-क्रमबद्ध। आगे-पीछे पर्याय कभी होती नहीं। जिस समय जो होनेवाली है, वही होती है। क्रमबद्ध और यह। एक द्रव्य दूसरे द्रव्य को छूता नहीं। दो बात बहुत कठिन है, प्रभु! आहाहा! दो बात अन्दर से बैठे, उसकी दशा पलट जाए। आहा! क्रमबद्ध का निर्णय करने जाए.. सर्व द्रव्य में क्रमसर पर्याय होगी। आगे-पीछे होगी नहीं। शरीर की भी ऐसी और आत्मा की भी ऐसी। ऐसा निर्णय जब करने जाए, तब ज्ञायक पर दृष्टि जाती है। और एक द्रव्य दूसरे द्रव्य को छूता नहीं, ऐसा निर्णय करने जाता है तो भी द्रव्य पर दृष्टि जाती है। आहाहा! ये दो सिद्धान्त बहुत कठिन है।

क्रमबद्ध। कोई भी द्रव्य की पर्याय क्रम से एक के बाद एक जो होनेवाली है वह। एक के बाद दूसरी कोई भी हो, ऐसा नहीं। जो होनेवाली है, वही होगी। क्रमसर धारा चलती है। प्रवचनसार में दृष्टान्त दिया है। ९० गाथा। माला में जहाँ मोती होती है, मोती। वह जिस स्थान में है, वहीं होता है। वहाँ से आगे-पीछे करने जाए तो हार टूट जाएगा। आहाहा! इसी तरह आत्मा और सर्व द्रव्य की धारावाही समय में जो पर्याय प्रवर्तती है, क्रमबद्ध—आगे-पीछे नहीं और उसका-क्रमबद्ध का निर्णय द्रव्य के आश्रय से होता है।

पर्याय का निर्णय द्रव्य के आश्रय से होता है। पर्याय के आश्रय से पर्याय का निर्णय नहीं होता। आहाहा!

गहराई में खटका लगा ही रहता है,... धर्मी बाहर में दिखते हैं, लेकिन अन्दर में आत्मा का (खटका) गहराई में लगा रहता है, वहाँ से हटते नहीं। आहाहा! बाहर में स्त्री, कुटुम्ब, परिवार, चक्रवर्ती का राज, इन्द्र की इन्द्राणी, करोड़ों इन्द्राणी। (होती हैं)। आहाहा! परन्तु अन्दर के आनन्द के रस के समक्ष खटक-खटक, काम करते हैं परन्तु खटक आत्मा की रहा करती है। मैं तो आनन्द हूँ, मैं तो ज्ञान हूँ। मैं राग का कर्ता नहीं हूँ और राग का भोक्ता भी नहीं हूँ। आहाहा! मार्ग ऐसा है, प्रभु! अन्दर की प्रभुता पूरी अलग है। आहाहा!

अभी मुझे जो करना है वह बाकी रह जाता है... ऐसा विचार करे। अन्दर में अनुभव में जाना है, उसकी बात है न यहाँ? **ऐसा गहरा खटका निरन्तर लगा ही रहता है, इसलिए बाहर कहीं उसे सन्तोष नहीं होता;...** भगवान आत्मा के सिवा सम्यग्दृष्टि को बाह्य में कोई चीज़ में सन्तोष नहीं होता। आहाहा! भक्ति करे तो भी शुभराग है, पंच महाव्रत हो तो वह शुभराग है, उसमें रस नहीं है। राग आता है, लेकिन रस नहीं है। आहाहा! **और अन्दर ज्ञायकवस्तु हाथ नहीं आती,...** समकित नहीं है तो उसे अभी हाथ नहीं आयी और उसे यहाँ शुभ में उलझन हो जाए। शुभ में उलझन में आकर छोड़ने जाए, नहीं छूटे। शुष्क हो जाएगा। आहा..! **इसलिए उलझन तो होती है,...** उस ओर का प्रयत्न तो होता है। **परन्तु इधर-उधर न जाकर वह उलझन में से...** उलझन किसको कहते हैं? उसमें से निकल जाए। निकालना है, उसमें से मार्ग निकालना है। ३३ हुआ।

मुमुक्षु को प्रथम भूमिका में थोड़ी उलझन भी होती है, परन्तु वह ऐसा नहीं उलझता कि जिससे मूढ़ता हो जाए। उसे सुख का वेदन चाहिए है, वह मिलता नहीं और बाहर रहना पोसाता नहीं है, इसलिए उलझन होती है परन्तु उलझन में से वह मार्ग ढूँढ़ लेता है। जितना पुरुषार्थ उठाये, उतना वीर्य अन्दर काम करता है। आत्मार्थी हठ नहीं करता कि मुझे झटपट करना है। स्वभाव में हठ काम नहीं आती। मार्ग सहज है, व्यर्थ की जल्दबाजी से प्राप्त नहीं होता॥ ३४॥

३४। किसी ने लिखा है। **मुमुक्षु को प्रथम भूमिका में थोड़ी उलझन भी होती है,..** कषाय ? उलझन का अर्थ क्या है ? थोड़ा कषायभाव आता है ? अस्थिर स्थिति ? अस्थिर स्थिति ? **परन्तु वह ऐसा नहीं उलझता कि जिससे मूढ़ता हो जाए।** आहाहा ! अन्तर में आनन्द में जाने को... अभी सम्यग्दृष्टि नहीं है, इसलिए राग आता है, कषाय भी होता है, लेकिन उलझन में नहीं आना, उलझना नहीं। उलझ जाएगा तो अन्दर जा नहीं सकेगा। आहाहा !

उसे सुख का वेदन चाहिए है... सर्व को सम्यग्दर्शन प्राप्त करने का भाव है। **उसे सुख का वेदन चाहिए है...** आहाहा ! अतीन्द्रिय आनन्द का वेदन चाहिए। भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द का पुर, सर्वांग नूर-ज्ञान का तेज, ऐसे भगवान का वेदन चाहिए। समकित पहले भी मुमुक्षु को यह होना चाहिए। आहाहा ! इसके सिवा कोई चीज़ रुचे नहीं, सुहाये नहीं। आहा.. ! **वह मिलता नहीं और बाहर रहना पोसाता नहीं है,...** अन्दर अनुभव में जाता नहीं और बाहर में आना रुचता नहीं। **इसलिए उलझन होती है परन्तु उलझन में से वह मार्ग ढूँढ़ लेता है।** थोड़ी उलझन होती है, उसको छोड़कर सूक्ष्म विकल्प आ जाता है, उस सूक्ष्म विकल्प को उलझन कहते हैं, उसमें से छूटकर अन्दर में चला जाता है। समकित प्राप्त करने की रीत और क्रम यह है कि जो अनन्त काल में एक समय भी मिला नहीं। आहाहा ! **इसलिए उलझन होती है... उसे सुख का वेदन चाहिए है, वह मिलता नहीं और बाहर रहना पोसाता नहीं है,...** अन्दर में जा सकता नहीं और बाहर आना, अशुभ आदि में आना रुचता नहीं। **इसलिए उलझन होती है परन्तु उलझन में से वह मार्ग ढूँढ़ लेता है।** विकल्प को छोड़कर। उलझन का अर्थ अपने यहाँ विकल्प है। विकल्प थोड़ा जो राग का अंश है, उसको छोड़कर निर्विकल्प आत्मा का सम्यग्दर्शन ढूँढ़ लेता है। आहाहा ! बहुत लोग पूछते हैं कि समकित कैसे होता है ? कैसे होता है ? ऐसे होता है। आहाहा !

जितना पुरुषार्थ उठाये, उतना वीर्य अन्दर काम करता है। जितना अन्दर पुरुषार्थ करे.. आहाहा ! पुरुषार्थ तो उसको कहते हैं, अन्तर्मुख में जितना वीर्य झुके, उसको पुरुषार्थ कहते हैं और अन्दर में झुके नहीं और जो शुभ आदि भाव हो, उसको तो क्लिव कहते हैं। संस्कृत में क्लिव (है)। क्लिव का अर्थ जयचन्द्र पण्डित ने किया है कि वह नपुंसक है। ऐसा अर्थ किया है। जयचन्द्र पण्डित है न ? उन्होंने ऐसा लिखा है। आहाहा !

स्वयं को शुभभाव में रुचता नहीं और अन्दर जा सकता नहीं। उसको अन्दर विकल्प की जाल में घुस जाता है। लेकिन उसे छोड़ देना। अन्दर में भगवान पूर्णानन्द का नाथ तल में विराजता है। पर्याय ऊपर तैरती है, पूरे शरीर में पर्याय ऊपर रहती है। यह पेट में आत्मा है न अन्दर? उसके प्रत्येक प्रदेश पर पर्याय है। प्रत्येक प्रदेश पर पर्याय है। सब पर्याय को अन्तर में झुकाना। आहाहा! यह क्रिया है। **पुरुषार्थ उठाये, उतना वीर्य अन्दर काम करता है।**

आत्मार्थी हठ नहीं करता... आहाहा! हठ नहीं करता। वह आ गया न? उत्सर्ग और अपवाद। उत्सर्ग और अपवादमार्ग। अन्दर रह नहीं सके तो शुभराग में आता है। हठ नहीं करे कि शुभराग क्यों आया? राग नहीं चाहिए, ऐसी हठ नहीं करता। और शुभराग आया, तो उसमें रहने का भाव न करे। आहाहा! पहले आ गया है, उत्सर्ग और अपवाद। प्रवचनसार की बात बहिन में आ गयी है। अन्तर में अनुभव हुआ, उसमें रह न सके तो आग्रह नहीं करना कि मैं इसी में रहूँ। शुभराग तो आता ही है। वह अपवाद है। अन्दर में रहना, वह उत्सर्ग है। अन्दर में रह न सके तो हठ न करना कि अन्दर ही रहूँ। शुभराग में आ जाएगा। और शुभराग में हठ नहीं करना कि शुभराग ही मुझे रखना है। उसकी भी हठ नहीं। आहाहा! सूक्ष्म बात है, भाई!

आत्मार्थी हठ नहीं करता कि मुझे झटपट करना है। जल्दबाजी में अन्दर कषाय होगा अज्ञानी को। अन्तर चैतन्यमूर्ति प्रभु अकषाय स्वभाव शान्त.. शान्त.. शान्त.. शान्ति के रस का कन्द हाथ आया नहीं, इसलिए जरा कषाय की वृत्ति-विकल्प उठता है। वहाँ हठ नहीं करना। **स्वभाव में हठ काम नहीं आती।** अन्तर स्वभाव में जाने में हठ काम नहीं करे। आहाहा! अन्तर में जाने के लिये सरलता से पुरुषार्थ अन्तर में झुकाने का प्रयत्न करना। राग से हटकर द्रव्य पर (जाने का) पुरुषार्थ करना। उस पर लक्ष्य करने का प्रयत्न करना। आहाहा!

मार्ग सहज है,... आहाहा! मार्ग तो सहज है। कोई राग की क्रिया या विकल्प की क्रिया से मार्ग आता है, ऐसा है नहीं। आहाहा! सहज आता है। **व्यर्थ की जल्दबाजी से प्राप्त नहीं होता।** व्यर्थ में कषाय करे, शुभ और अशुभ, उससे कुछ हाथ आता नहीं आता। ३४ हुआ न?

जो प्रथम उपयोग को पलटना चाहता है परन्तु अन्तरंग रुचि को नहीं पलटता, उसे मार्ग का ख्याल नहीं है। प्रथम रुचि को पलटे तो उपयोग सहज ही पलट जाएगा। मार्ग की यथार्थ विधि का यह क्रम है॥ ३६॥

३६। **जो प्रथम उपयोग को पलटना चाहता है...** आहाहा! जानन–देखन जो उपयोग पर की ओर झुका है। अनादि से पर की ओर झुका है। भले दया, दान में हो, वह पर की ओर झुका है। उस **उपयोग को पलटना चाहता है परन्तु अन्तरंग रुचि को नहीं पलटता,...** क्या कहते हैं ? रुचि को बदलता नहीं और अन्दर प्रयत्न करने जाता है। रुचि आत्मा की चाहिए। राग और पुण्य की रुचि छूट जानी चाहिए। किसी भी पहलू से राग की पुष्टि और रुचि नहीं होनी चाहिए। सब राग की रुचि छूट जाए। आहाहा! समझ में आया ?

अन्तरंग रुचि को नहीं पलटता, उसे मार्ग का ख्याल नहीं है। प्रथम रुचि को पलटे... रुचि अनुयायी वीर्य। जिस ओर पोसाता हो, उस ओर पुरुषार्थ काम करे। आहाहा! अन्तर की रुचि जमी तो पुरुषार्थ वहाँ काम करे, राग की रुचि जमी तो राग का पुरुषार्थ करे। रुचि अनुसार वीर्य लगता है। **उपयोग सहज ही पलट जाएगा।** रुचि को पलटे तो उपयोग सहज ही पलट जाएगा। रुचि बदल जाए तो उपयोग सहज अन्दर जाएगा। आहा..! सूक्ष्म बात है, भाई! **मार्ग की यथार्थ विधि का यह क्रम है।** प्राप्त करने की विधि का यह क्रम है। विशेष कहेंगे.... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

विक्रम संवत-२०३५, श्रावण शुक्ल-२, मंगलवार, तारीख १२-८-१९८०
वचनामृत-३७, ३८, ४५ प्रवचन-५

'मैं अबद्ध हूँ', 'ज्ञायक हूँ', यह विकल्प भी दुःखरूप लगते हैं, शान्ति नहीं मिलती; विकल्पमात्र में दुःख ही दुःख भासता है, तब अपूर्व पुरुषार्थ उठाकर वस्तुस्वभाव में लीन होने पर, आत्मार्थी जीव को सब विकल्प छूट जाते हैं और आनन्द का वेदन होता है॥ ३७॥

वचनामृत, ३७वाँ बोल, ३७। थोड़ी सूक्ष्म बात है। मूल की बात है न। **'मैं अबद्ध हूँ',...** धर्मी विचार करता है, समकित प्राप्त करने के लायक। वह ऐसा विचार करता है कि मैं तो अबद्ध हूँ। अर्थात् मैं मुक्त हूँ। अबद्ध नास्ति से है, मुक्त अस्ति से है। मैं मुक्तस्वरूप हूँ। आहाहा! वह पुरुषार्थ कब काम करे? मैं पूरी दुनिया से भिन्न, राग से भिन्न, एक समय की पर्याय से भी भिन्न... आहाहा! ऐसा मैं अबद्ध हूँ।

'ज्ञायक हूँ',... मैं तो त्रिकाल जाननेवाला हूँ। **यह विकल्प भी दुःखरूप लगते हैं,..** आहाहा! जिसको ऐसा विकल्प भी दुःखरूप लगे, वह समकित ढूंढ़ने को अन्दर जाए। आहाहा! सूक्ष्म बात है, भाई! धर्म कोई ऐसी चीज़ नहीं है कि बाहर से मिल जाए। आहाहा! अबद्ध और ज्ञायक हूँ, ऐसा जो विकल्प-राग की वृत्ति उठती है, वह भी दुःखरूप है। है शुभ, परन्तु है राग, है, दुःखरूप। शुभ और अशुभराग दोनों दुःखरूप है। भगवान आत्मा अन्दर मुक्तस्वरूप, आनन्दस्वरूप है। तो जिसको सम्यग्दर्शन प्राप्त करना है, धर्म की प्रथम सीढ़ी, धर्म का प्रथम सोपान। आहाहा! अबद्ध और ज्ञायक हूँ, ऐसा विकल्प भी दुःखरूप लगता है। आहाहा! ऐसी वृत्ति उठती है अन्दर में, उसको विकल्प कहते हैं परन्तु वह विकल्प दुःखरूप है। आत्मा अतीन्द्रिय आनन्दमय है। उससे, मैं अबद्ध हूँ, ऐसा विकल्प उठे, वह भी दुःखरूप है। आहाहा! धर्म कोई अलौकिक बात है, प्रभु! आहाहा!

यह विकल्प भी दुःखरूप लगते हैं,... 'भी' क्यों कहा? दूसरी चीज़ तो दुःख में निमित्त है ही, परन्तु यह विकल्प भी दुःखरूप है। आहाहा! मैं ज्ञायक हूँ, अबद्ध हूँ, ऐसी वृत्ति अन्दर में उठती है, वह भी दुःखरूप (है)। स्वभाव से भिन्न है। **शान्ति नहीं मिलती;...** ऐसी विकल्प की भूमिका में शान्ति नहीं है। शान्ति तो विकल्प से भिन्न होकर अन्तर अतीन्द्रिय आनन्द में आवे, तब उसको शान्ति मिलती है। तब तक सब अशान्ति वेदता है। करोड़पति हो या अरबपति हो, सब दुःखी है। आहाहा! यहाँ तो मैं अबद्ध हूँ, ऐसा विकलप उठाये, वह भी दुःखी है। आहाहा! कठिन बात है, प्रभु! करोड़पति और अरबपति बड़े दुःखी हैं। अफ्रीका में देखा था न। अभी अफ्रीका गये थे न। ४५० तो वहाँ करोड़पति है। नैरोबी में। हम गये थे, २६ दिन। लोगों को प्रेम बहुत था, बहुत प्रेम था। ४५० करोड़पति और १५ अरबपति। सब आते थे। मैंने कहा, वह सब धूल है। वह मेरी है, ऐसी मान्यता, जड़ मेरा है, ऐसी मान्यता ही मिथ्यादृष्टि की है। जीव-अजीव को अपना माने.. आहाहा! कठिन काम है। जीव-भगवान मुक्तस्वरूप बाह्य चीज़ को अपनी माने, वह मिथ्यात्व है, मिथ्यात्व है, अशान्ति है, वहाँ दुःख है।

शान्ति नहीं मिलती; विकल्पमात्र में दुःख ही दुःख भासता है,... ये तो बहिन के वचन हैं। बहुत संक्षेप में बोले थे, उसे लिख लिया है। अतीन्द्रिय आनन्द में अनुभव में आकर यह सब शब्द बाहर आये हैं। अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद लेकर। बहिन अलौकिक चीज़ है! लोगों को ख्याल नहीं आये। मुर्दे जैसा लगे। अन्दर में तो एकदम अकेला आनन्द.. आनन्द.. आनन्द (है)। उनके शब्द में, विकल्पमात्र को दुःखरूप कहकर... आहाहा! सब दुःख भासता है। **तब अपूर्व पुरुषार्थ उठाकर...** क्या कहते हैं? अपना स्वभाव शरीर, वाणी, मन तो नहीं, पुण्य-पाप का विकल्प उठता है, वह तो नहीं; मैं ऐसा हूँ, ऐसा जो विकल्प उठता है, उसे छोड़ने को अपूर्व पुरुषार्थ चाहिए, प्रभु! अपूर्व पुरुषार्थ चाहिए। अपूर्व अर्थात् पूर्व में कभी नहीं किया। बाकी सब व्यर्थ किया। क्रियाकाण्ड उतनी की। नौवीं ग्रैवेयक गया। 'मुनिव्रत धार अनन्त बैर ग्रैवेयक उपजायो, पै आतमज्ञान बिन लेश सुख न पायो।' सुख नहीं प्राप्त किया। पंच महाव्रत दुःख है। पंच महाव्रत के परिणाम राग और आस्रव और दुःख है। आहाहा! उससे भिन्न अनन्त बार ऐसी क्रिया की और ग्यारह अंग का जानपना भी अनन्त बार किया। परन्तु मैं निर्विकल्प वस्तु अखण्डानन्द

प्रभु मुक्तस्वरूप हूँ, ऐसा अनुभव कभी किया नहीं। आहाहा! कहीं-कहीं अटकता है, रुकता है। आहाहा!

अपूर्व पुरुषार्थ उठाकर... प्रभु! तुझे उस विकल्प में दुःख लगे, मैं ज्ञायक हूँ, अबद्ध हूँ, ऐसे विकल्प में यदि दुःख लगे, दुःख ख्याल में आये तो **अपूर्व पुरुषार्थ उठाकर...** आहाहा! **वस्तुस्वभाव में लीन होने पर,...** भगवान आत्मा पूर्णानन्द का नाथ अनन्त चैतन्यरत्नाकर, अनन्त चैतन्य के रत्न से भरा भगवान। आहाहा! जिसके पास इन्द्र के इन्द्रासन सड़ा हुआ तिनका और मरकर बिल्ली सड़ गई हो, ऐसे इन्द्र के इन्द्रासन समकित के समक्ष ऐसे लगते हैं। आहाहा! इसलिए कहते हैं कि यदि तुझे उस विकल्प में दुःख लगे तो **वस्तुस्वभाव में लीन होने पर,...** अपना पुरुषार्थ करना। आहा..! भाषा तो और क्या करे? आहाहा! विकल्पमात्र राग, उससे छूटकर अन्तर में अपूर्व पुरुषार्थ करे, राग से हटकर, विकल्प से हटकर निर्विकल्प आनन्दस्वरूप प्रभु में लीन हो। आहा..! **लीन होने पर, आत्मार्थी जीव को सब विकल्प छूट जाते हैं...** आत्मार्थी जीव को। शर्त यह। आत्मार्थी-अपना आत्मा ही एक प्रयोजन है, दूसरा कुछ नहीं। आत्मा का ही मुझे प्रयोजन है, दूसरी कोई चीज़ नहीं। ऐसा आत्मार्थी है, उसको सब विकल्प छूट जाते हैं। आहाहा! तब सम्यग्दर्शन होता है। धर्म की पहली सीढ़ी। धर्म का प्रथम सोपान। सर्व विकल्प दुःखरूप लगे और अपूर्व पुरुषार्थ करे तो वस्तु में लीन हो जाए। आहा..! ऐसी कठिन बात है।

मुमुक्षु :- सब विकल्प छूट जाएगा तो जड़ हो जाएगा।

पूज्य गुरुदेवश्री :- अन्दर में आत्मा में लीन होना। विकल्प में है तो प्रभु दुःख में है। ... आया न? **वस्तुस्वभाव में लीन होने पर,...** आहाहा! भाई! मार्ग दूसरा है। अन्दर की रीत और अन्दर ... आहाहा! दुनिया को बाहर की प्रवृत्ति मिली है। अन्दर मुक्तस्वरूप भगवान विराजता है। सब भगवान है। अन्दर में शरीर से भिन्न, राग से भिन्न, एक समय की पर्याय जितना नहीं। ऐसा भगवान सबके अन्दर विराजता है। आहाहा! एक बार तू अपने भगवान के पास जा तो सही। आहाहा! अन्दर चैतन्यप्रभु विराजता है, उसके पास जाने से, लीन होने पर आत्मार्थी जीव को सब विकल्प छूट जाते हैं। आहा..! वस्तुस्वभाव में अन्तर में लीन होने से सब विकल्प छूट जाते हैं और **आनन्द का वेदन होता है।** विकल्प

दु:ख है। सब विकल्प जब छूट जाते हैं, तब आनन्द आता है। वह आत्मा है। अतीन्द्रिय आनन्द आये, वह आत्मा। अतीन्द्रिय आनन्द। ये इन्द्रिय के जो विषय हैं, करोड़ोंपति और अरबपति सब दु:खी हैं बेचारे। जहर का प्याला पीता है। इन्द्रिय के विषय जहर का प्याला है। आहाहा!

अभी अफ्रीका गये थे न। आफ्रीका में ४५० तो करोड़पति है और १५ अरबपति हैं। लोग तो बहुत आते थे। लोगों को प्रेम है न? महाजन लोगों को। कहा, सब दु:खी है। १५ तो अरबपति, ४५० करोड़पति। धूल है सब, कहा। यहाँ तो आत्मा में राग (आये कि), मैं शुद्ध हूँ, पवित्र हूँ, अखण्ड हूँ, एक हूँ, ऐसा विकल्प उठाना भी दु:ख है। आहाहा! कठिन लगे, प्रभु! क्या हो?

बहिन की भाषा तो अनुभव में से आयी है। बहिनों ने (लिख लिया)। उनके नीचे ६४ बाल ब्रह्मचारी है। नौ बहनों ने लिख लिया। उनको तो मालूम भी नहीं था कि ये लिख लेंगे। उनको तो बाहर आने का बिल्कुल भाव नहीं है। अन्दर आनन्द के अनुभव में अनुभूति में रहती है।

यहाँ कहते हैं, आत्मार्थी जीव को सब विकल्प छूट जाते हैं। आहाहा! अन्तर में जाने से सब विकल्प छूट जाते हैं और आनन्द का वेदन होता है। यह आत्मा है। विकल्प, वह आत्मा नहीं है। मैं शुद्ध, अबद्ध हूँ, ऐसा विकल्प आत्मा नहीं है। वह अनात्मा है। विकल्प जड़ है। है दु:खरूप है, लेकिन जड़ है। क्यों? कि चैतन्य का अंश उसमें नहीं है। विकल्प जो उठते हैं, उसमें चैतन्यप्रभु-चैतन्य प्रकाश की मूर्ति का अंश उसमें नहीं है और स्वयं को जानता नहीं, इसलिए जड़ है। आहाहा! विकल्प शुभराग जड़ है। वह चैतन्य नहीं। आहाहा! चैतन्य की ओर झुकने से तुझे आनन्द का वेदन होता है। आहाहा! ऐसी चीज़ है, भैया!

मुमुक्षु :- यह तो एकान्त मार्ग हुआ।

पूज्य गुरुदेवश्री :- एकान्त मार्ग ही है। नय सम्यक् एकान्त ही है। पण्डितजी! नय है, सम्यक् एकान्त नय है।

मुमुक्षु :- नय सम्यक् एकान्त है।

पूज्य गुरुदेवश्री :- प्रमाण में पर्याय आ जाती है, नय में नहीं। शुद्धनय में एकान्त पूर्णानन्द का नाथ प्रभु अनादि सत्ता, अनादि शुद्ध, अनादि परमपुरुष परमात्मा, ऐसी चीज़ आत्मा है। आहाहा! उसको प्राप्त करके आनन्द का वेदन होता है। ३७वाँ पूरा हुआ। आहाहा!

आत्मा को प्राप्त करने का जिसे दृढ़ निश्चय हुआ है, उसे प्रतिकूल संयोगों में भी तीव्र एवं कठिन पुरुषार्थ करना ही पड़ेगा। सच्चा मुमुक्षु, सद्गुरु के गम्भीर तथा मूल वस्तुस्वरूप समझ में आए, ऐसे रहस्यों से भरपूर वाक्यों का खूब गहरा मन्थन करके मूल मार्ग को ढूँढ़ निकालता है॥ ३८॥

३८। **आत्मा को प्राप्त करने का जिसे दृढ़ निश्चय हुआ है,...** यह पहली शर्त। कोई चीज़ मुझे नहीं चाहिए, एक आत्मा चाहिए—ऐसा जिसका दृढ़ निश्चय है। **आत्मा को प्राप्त करने का जिसे दृढ़ निश्चय हुआ है,...** आहाहा! यह शर्त। कोई भी कल्पना, चिन्ता कुछ नहीं चाहिए। दुनिया दुनिया में रही। मेरी चीज़ अन्दर भिन्न है, ऐसा **आत्मा को प्राप्त करने का जिसे दृढ़ निश्चय हुआ है,...** शर्त यह। दृढ़ निश्चय हुआ है, प्राप्त करने का। आहाहा!

उसे प्रतिकूल संयोगों में भी... उसे प्रतिकूल संयोग नरक आदि का हो। आहाहा! श्रेणिक राजा क्षायिक समकिती है और तीर्थंकर गोत्र बाँधते हैं। भविष्य में तीर्थंकर होंगे। अभी अतीन्द्रिय आनन्द उसको भी है। जितना राग है, उतना वहाँ दुःख भी है। आहाहा! नरक में, पहली नरक में है। फिर भी अनुभव हुआ, उसका आनन्द भी है और जितने तीन कषाय बाकी है (उतना दुःख भी है)। संयोग का दुःख नहीं है। प्रतिकूल संयोग का दुःख नहीं है, दुःख तो अन्दर राग-द्वेष करे, वह दुःख है। प्रतिकूल संयोग या अनुकूल संयोग तो ज्ञेय है। सब चीज़, आत्मा के सिवा आत्मा ज्ञायक और वह सब ज्ञेय है। ज्ञेय के दो भाग करना कि यह ठीक है और अठीक है, वह मिथ्यात्व है। आहा..! समझ में आया?

यहाँ तो कहते हैं कि अपने में एक वस्तु प्राप्त करने का दृढ़ निश्चय हुआ है। **उसे प्रतिकूल संयोगों में भी तीव्र एवं कठिन पुरुषार्थ करना ही पड़ेगा।** आहाहा! श्रेणिक

राजा जैसे सिर फोड़कर देह छूटा। क्षायिक समकिती थे। क्षायिक समकित। कोणिक उसे बचाने आया। कोणिक। पहले कोणिक ने उसे कैद में डाला था। फिर तो उसकी माँ ने कहा तो उसे बचाने आया। लेकिन इन्हें भ्रम हुआ कि ये मुझे मारने आ रहा है। समकिती है, लेकिन बाह्य में ख्याल नहीं रहे और भ्रम भी हो जाए।

मुमुक्षु :- कुछ समझ में नहीं आया।

पूज्य गुरुदेवश्री :- श्रेणिक राजा क्षायिक समकिती। उसके भ्रम हुआ। कोणिक ने उसे पहले कैद में रखा था। उसकी माता ने सब बात की। तेरा जन्म हुआ था। तेरे पिता को लेने आये थे। तू पेट में था। तो मुझे अन्दर ऐसा स्वप्न आता था कि श्रेणिक का खून पी लूँ, श्रेणिक का हृदय खाऊँ। इसलिए तेरा जन्म हुआ तो तुझे कूड़े के ढ़ेर में डाल दिया। जन्म लिया, उसी दिन कचरे के ढ़ेर में डाल दिया। उकरडा समझे? कचरे का ढ़ेर। वहाँ श्रेणिक आया। श्रेणिक को मालूम हुआ। उनको मालूम है कि इसे ऐसे स्वप्न आये थे, मुझे मारने के। वहाँ गये। जन्म के बाद का पहला दिन। वहाँ मुर्गियाँ थी। मुर्गियों ने चोंच मारी थी। इसलिए पीड़ा हो रही थी। श्रेणिक राजा हाथ में अंगुली लेकर चूसते थे। आहाहा! श्रेणिक राजा घर आये। फिर जब समकित प्राप्त किया... आहाहा! विकल्प आता है। लेकिन वह दुःख नहीं है। विकल्प का दुःख है, लेकिन जितना विकल्प से रहित हुआ उतना आनन्द है। कठिन बात है, प्रभु! आहा..!

श्रेणिक राजा अपने में क्षायिक समकित में थे। फिर कोणिक आया और सिर फोड़ा तो भी समकित में दोष नहीं है। चारित्र का दोष समकित में दोष लगाता नहीं। एक गुण का दोष दूसरे (गुण में) लगता नहीं। चारित्र का इतना दोष होने पर भी क्षायिक समकित में किंचित् भी फेरफार नहीं। आहाहा!

यहाँ वह कहते हैं कि **आत्मा को प्राप्त करने का जिसे दृढ़ निश्चय हुआ है, उसे प्रतिकूल संयोगों में भी तीव्र एवं कठिन पुरुषार्थ करना ही पड़ेगा।** पुरुषार्थ बिना नहीं मिलेगा। क्रमबद्ध में आयेगा। आहाहा! क्रमबद्ध-सर्व द्रव्य की पर्याय क्रमबद्ध है। जिस समय जहाँ होनेवाली होगी, उस क्षेत्र को नरेन्द्र, जिनेन्द्र बदल नहीं सकते। जहाँ-जहाँ जिस समय जो पर्याय होनेवाली है वह होगी, होगी और होगी। क्रमसर होगी। उसमें

फेरफार नहीं कर सकता। परन्तु ऐसा जिसकी श्रद्धा में आता है, उसकी दृष्टि द्रव्य पर जाती है। द्रव्य पर—ज्ञायक पर जाती है, तब क्रमबद्ध का निर्णय होता है। क्रमबद्ध वस्तु है। कोई भी पर्याय आगे-पीछे होती नहीं। आगे-पीछे पर्याय होती नहीं। क्रमसर जो होनेवाली होती है, वह होती है। ऐसा जब निर्णय करने जाता है, (उसकी) आत्मा की ओर दृष्टि जाती है। तब क्रमबद्ध का निर्णय होता है। आहाहा!

दो बात कही थी। बहुत वर्ष से दो कह रहे हैं। एक तो, एक तत्त्व दूसरे तत्त्व को छूता नहीं। आहाहा! एक द्रव्य दूसरे द्रव्य को छूता नहीं। यह अंगुली इस अंगुली को छूती नहीं, उसको छूती नहीं। भगवान को कर्म छूते नहीं, कर्म को आत्मा छूता नहीं। आहाहा! प्रत्येक आत्मा प्रत्येक समय में अपनी पर्याय करे, परन्तु पर की पर्याय के साथ कुछ नहीं। पर के साथ कोई सम्बन्ध नहीं है। आहाहा! ऐसा क्रमबद्ध (है)। और तीसरी गाथा। अपना द्रव्य दूसरे द्रव्य को चूमता नहीं। मूल पाठ है, संस्कृत है। एक द्रव्य दूसरे द्रव्य को, एक परमाणु दूसरे परमाणु को छूता नहीं। आत्मा परमाणु को छूता नहीं। परमाणु दूसरे परमाणु को छूता नहीं, कर्म आत्मा को छूता नहीं। आहाहा! तीसरी गाथा है, समयसार। वहाँ चुम्बन शब्द है। एक द्रव्य दूसरे को चूमता नहीं। चूमता नहीं अर्थात् स्पर्श नहीं करता, छूता नहीं। आहाहा! अरे..! ऐसी पूरी दुनिया। एक द्रव्य अनन्त द्रव्य के बीच में रहना, फिर भी वह दूसरे द्रव्य को छूता ही नहीं। आहाहा! ऐसी जब अन्दर दृष्टि होगी, तो दृष्टि द्रव्य पर जाएगी। आहाहा!

मुमुक्षु :- दृष्टि भी जब अन्तर में जानेवाली होगी, तब जाएगी।

पूज्य गुरुदेवश्री :- जानेवाली है, परन्तु पुरुषार्थ करे तब। अपने आप जाएगी? है क्रमबद्ध। क्रमसर होगा। परन्तु उस क्रमबद्ध में पुरुषार्थ है। क्रमबद्ध का निर्णय करने जाता है तो आत्मा पर दृष्टि पड़ती है, तब क्रमबद्ध का निर्णय होता है। क्रमबद्ध पर्याय में होता है। पर्याय का निर्णय पर्याय से नहीं होता। सूक्ष्म बात है, प्रभु! पर्याय का निर्णय पर्याय से नहीं होता। पर्याय में निर्णय द्रव्य से होता है। निर्णय होता है पर्याय में, ध्रुव में नहीं। ध्रुव का निर्णय पर्याय में आता है। आहाहा! भाषा सूक्ष्म है, प्रभु! परन्तु मार्ग तो यह है। आहा..!

यह तो बहिन के वचनामृत पढ़ने को कहा। सबके पास पुस्तक भी है। आहाहा!

कठिन पुरुषार्थ करना ही पड़ेगा। सच्चा मुमुक्षु, सद्गुरु के गम्भीर तथा मूल वस्तुस्वरूप समझ में आए, ऐसे रहस्यों से भरपूर वाक्यों का खूब गहरा मन्थन करके... आहाहा! जो गूढ़ वाणी आये-एक द्रव्य दूसरे द्रव्य को छूता नहीं और सर्व द्रव्य की पर्याय के काल में ही पर्याय होगी, आगे-पीछे होगी नहीं। जैसे मोती के हार में जहाँ मोती है, वह वहाँ रहेगा; आगे-पीछे नहीं। वैसे भगवान आत्मा और प्रत्येक द्रव्य क्रमसर जो पर्याय होनेवाली है, वह होगी। आगे-पीछे नहीं। आघापाछी को क्या कहते हैं? आगे-पीछे। हमको हिन्दी बहुत नहीं आती। हम काठियावाड़ी हैं। आहाहा!

कहते हैं, **सच्चा मुमुक्षु,...** ज्ञानी ने गम्भीर बात कही हो, **मूल वस्तुस्वरूप समझ में आए, ऐसे रहस्यों से भरपूर वाक्यों का...** आहाहा! **खूब गहरा मन्थन करके...** खूब गहरा मन्थन। आहाहा! अन्तर में उतरने का गहरा मन्थन करके अन्दर जाना, तब आत्मा का पता लगेगा। आहा..! कठिन बात है, प्रभु! कोई क्रिया अथवा पच्चीस-पचास उपवास कर ले, या दो-पाँच करोड़ रुपया देकर मन्दिर बना दे, कुछ नहीं है। धर्म-बर्म नहीं है। उसमें धर्म है नहीं। वह तो कहा था। हम नैरोबी गये थे न। ४५० तो वहाँ करोड़पति हैं, १५ तो अरबपति हैं। उन्होंने पैसा खर्च करके २५ लाख का मन्दिर बनाया। २५ लाख का मन्दिर। कहा, करोड़ का बनाओ तो भी धर्म नहीं है। और वह चीज़ तुमसे नहीं बनती। बनने की चीज़ के काल में जड़ की पर्याय होने के काल में वह बनती है, उसका आत्मा कर्ता नहीं। आहाहा! सब सुनते थे। बहुत प्रेमी थे। यहाँ के परिचित थे। इसलिए बहुत आग्रह किया तो गये न। यहाँ तो ९१ साल हुए। ९१। नौ और एक-९१ वर्ष। उनका आग्रह बहुत था। लोगों का प्रेम भी बहुत था। बहुत लोग। पैसा भी ... ६० लाख इकट्ठा हुआ। ६० लाख। उन्होंने इकट्ठा किया, प्रभावना के लिये। वह तो बाहर का शुभभाव है। उसमें कुछ भी धर्म का अंश (नहीं) है। मन्दिर बनवाना है, पच्चीस लाख का मन्दिर बनाना है, कहा, उसमें कुछ भी धर्म-बर्म नहीं है।

मुमुक्षु :- ...

पूज्य गुरुदेवश्री :- कौन बनाये? बनने के काल में क्रमबद्ध में आयेगी, तब बनेगा। कठिन बात है, प्रभु! क्या हो? जिस समय आनेवाले हैं, उस समय पुद्गल आयेंगे। कारीगर से भी वह मकान बनता नहीं। आहाहा! कठिन काम है।

यहाँ तो आत्मा ज्ञायकस्वरूप भगवान, उसके विकल्प में यदि दुःख लगे तो महापुरुषार्थ करके अन्दर में जाना। आहाहा! अपूर्व पुरुषार्थ और तीव्र पुरुषार्थ करके अन्दर में जाना। आहाहा! वह तो एक बार कहा था। जो कोई शुभभाव से सामायिक अंगीकार करते हैं, सामायिक अंगीकार करते हैं। समयसार में पाठ है। परन्तु शुभभाव को छोड़ते नहीं। स्थूल-स्थूल अशुभभाव संक्लेश को छोड़ते हैं, परन्तु शुभ स्थूल को छोड़ते नहीं। ऐसा पाठ है। उसको नपुंसक कहा है। क्लिव पाठ है, पाठ में क्लिव है, क्लिव मूल संस्कृत में है। आहाहा!

मुमुखु :- समझ में नहीं आया, आप क्या फरमा रहे हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री :- नहीं समझे? आत्मा में... आहाहा! जब राग-शुभराग होता है, यह मन्दिर आदि बनवाने की क्रिया आत्मा कर सकता नहीं, वह तो इसके परमाणु से बनने के काल में बनेगा। लेकिन बनानेवाले का भाव है, वह शुभ है। और वह शुभ है, वह दुःख है। आहाहा! दुःख है, उतना तो कहा, लेकिन भाषा थोड़ी कड़क है, उस शुभ में पुरुषार्थ करता है, वह नपुंसक है। ऐसा पाठ है। आहाहा! दो जगह पाठ है। पुण्य-पाप अधिकार और अजीव अधिकार, दो जगह है। क्लिव.. क्लिव। अपने वीर्य की रचना, भगवान आत्मा का वीर्य उसे कहते हैं, जड़ वीर्य से बच्चे पैदा होते हैं, वह जड़ मिट्टी धूल है, अपना अन्तर जो आत्मबल-वीर्य, उस वीर्य का सामर्थ्य क्या है? कि अपने स्वरूप की रचना करे। पाठ है, समयसार। ४७ शक्ति में। वीर्य उसे कहते हैं कि अपने स्वरूप की रचना करे, (वह) वीर्य। आहाहा! ज्ञान, आनन्द, शान्ति, वीतरागता की रचना करे, वह वीर्य। शुभभाव की रचना करे, वह वीर्य नहीं। आहाहा! गजब बात है। शुभभाव करे, उसे नपुंसक कहने में आया है। क्योंकि नपुंसक में प्रजा होने की शक्ति नहीं है। ऐसे शुभभाव में धर्म की प्रजा होने की (शक्ति) नहीं है। आहाहा! पण्डितजी! कठिन लगे, मार्ग तो यह है, भाई!

ऐसा मनुष्यभव अनन्त काल के बाद मिला और चला जाएगा। इसकी तो राख हो जाएगी और सत्ता जाएगी। आत्मा की सत्ता का नाश नहीं होता। जिसे २५-५० साल पूरे हो गये, उसे २५-५० साल नहीं निकलेंगे। देह की तो राख हो जाएगी, आत्मा चला जाएगा, कहाँ जाएगा? कुछ भान नहीं है। मैं कौन हूँ, कहाँ हूँ। आहाहा! ऐसे आत्मा की

गति क्या होगी ? आहाहा ! यहाँ तो आत्मा की गति करने के लिये यह कहते हैं। पाटनीजी ! कठिन बात है, प्रभु ! आहाहा !

आत्मा को प्राप्त करने का जिसे दृढ़ निश्चय हुआ है, उसे प्रतिकूल संयोगों में भी... बराबर है। **रहस्यों से भरपूर वाक्यों का खूब गहरा मन्थन...** एक द्रव्य दूसरे द्रव्य को छूता नहीं। गहरा गंभीर विचार करना पड़ेगा। यह अंगुली इसको छूती नहीं।

मुमुक्षु :– छू तो रही है।

पूज्य गुरुदेवश्री :– कौन कहता है ? इसको देखो। इसको देखते हैं तो छूती है, ऐसा लगता है, उसको देखे तो भिन्न है। देखने की दृष्टि अज्ञानी की संयोग पर है और संयोग से देखता है; इसलिए विरुद्ध दिखने में आता है। परन्तु वस्तु के स्वभाव से देखे तो उसे अविरुद्ध भासे। आहाहा ! ऐसी (बात) है, भाई !

दृष्टान्त। जल है, जल। अग्नि आयी, जल गरम हुआ। अब उसे देखने की दो दृष्टि। अज्ञानी ऐसा देखता है कि अग्नि आयी, इसलिए गरम हुआ। ज्ञानी देखते हैं कि उसके स्पर्शगुण की ठण्डी पर्याय थी, वह पलटकर गरम हुई है, अग्नि से नहीं।

मुमुक्षु :– ...

पूज्य गुरुदेवश्री :– उसका स्वभाव देखते हैं। बराबर है ? पण्डितजी ! दो चीज़ हुई न ? अग्नि और पानी। पहले पानी ठण्डा था, फिर गरम हुआ। अज्ञानी संयोग को देखता है कि अग्नि आयी और गरम हुआ। ज्ञानी वस्तु के स्वभाव को देखते हैं। स्पर्शगुण की पर्याय उष्णरूप से परिणमी है, वह अपने से परिणमी है। अपना स्वकाल क्रमबद्ध में आया उससे परिणमी है। अग्नि से उष्ण हुआ नहीं। अग्नि से पानी उष्ण हुआ नहीं, तीन काल में। अरे.. अरे.. ! ऐसी बातें।

मुमुक्षु :– अग्नि के बिना हो जाता ?

पूज्य गुरुदेवश्री :–अग्नि के बिना हो जाता है। उसका स्पर्शगुण है, ठण्डा पलटकर उष्ण होता है। निमित्त हो। निमित्त भले हो। लेकिन निमित्त से होता है, ऐसी बात नहीं है। कठिन बात है, भाई ! आहा.. ! साधारण बात तो पूरी दुनिया करती है। यह बाल अलौकिक है।

यहाँ वह कहते हैं, ऐसा ख्याल में आया कि एक द्रव्य दूसरे द्रव्य को छूता नहीं।

बिच्छु काटता नहीं। बिच्छु परद्रव्य है, शरीर परद्रव्य है। शान्ति से सुनना। बिच्छु की ओर दृष्टि करे तो बिच्छु भिन्न है, बिच्छु में है और यहाँ जो डंक लगा है, वह परमाणु की पर्याय में होनेवाला हुआ है, बिच्छु से नहीं। आहाहा! ऐसा मार्ग।

मुमुक्षु :- बिच्छु डंक नहीं मारता।

पूज्य गुरुदेवश्री :- डंक मारता है। डंक मारता है, उस समय उसमें रहता है। डंक पर को नहीं छूता। आहाहा! ऐसी बात है। आहा..! कोई भी एक द्रव्य—परमाणु में लो। शास्त्र में पाठ आता है। परमाणु में दो गुण चिकनाहट हो और दूसरे में चार गुण चिकनाहट हो, तो चार गुण हो जाता है। परन्तु वह चार गुण था, इसलिए चार गुण हुआ, इसलिए नहीं। अपनी पर्याय के क्रमबद्ध में चार गुण होनेवाली थी तो हुई है। चार गुण साथ में आया इसलिए चार गुण हुआ, ऐसी बात है नहीं। आहाहा! गजब बात है! ३८ हुआ न? ४५। किसी ने लिखा है।

अन्तर का तल खोजकर आत्मा को पहिचान। शुभपरिणाम, धारणा आदि का थोड़ा पुरुषार्थ करके 'मैंने बहुत किया है' ऐसा मानकर, जीव आगे बढ़ने के बदले अटक जाता है। अज्ञानी को जरा कुछ आ जाए, धारणा से याद रह जाए, वहाँ उसे अभिमान हो जाता है; क्योंकि वस्तु के अगाध स्वरूप का उसे ख्याल ही नहीं है; इसलिए वह बुद्धि के विकास आदि में सन्तुष्ट होकर अटक जाता है। ज्ञानी को पूर्णता का लक्ष्य होने से वह अंश में नहीं अटकता। पूर्ण पर्याय प्रगट हो तो भी स्वभाव था, सो प्रगट हुआ, इसमें नया क्या है? इसलिए ज्ञानी को अभिमान नहीं होता॥ ४५॥

४५। **अन्तर का तल खोजकर आत्मा को पहिचान।** आहाहा! बहिन के वचन है, अनुभवपूर्वक वचन है। अतीन्द्रिय आनन्द के अनुभवपूर्वक। आहा..! सम्यग्दर्शन अर्थात् श्रद्धा मात्र नहीं। सम्यग्दर्शन अर्थात् पूरा द्रव्य पलट जाता है और जितने गुण की संख्या अनन्त-अनन्त है, वह सम्यग्दर्शन में सब अनन्त गुण का अंश व्यक्त-बाहर आता है। क्या कहा? जितने संख्या में गुण आत्मा में है, अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त। एक-एक आत्मा में, एक-एक परमाणु में अनन्त-अनन्त (गुण है)। एक सेकेण्ड में असंख्य समय, ऐसे त्रिकाल समय है तीनों काल का, उससे अनन्तगुना गुण एक जीव में

है। आहाहा! समझ में आया? एक गुण भी दूसरे को-दूसरी चीज़ को छूता नहीं। अपनी परिणति में रहता है। आहाहा! कोई द्रव्य को उठा सके, ऐसा नहीं है। आहाहा! यहाँ तो यह कहते हैं, ४५ देखो!

अन्तर का तल खोजकर... आहाहा! अन्तर का तल-पाताल, पर्याय का पाताल। पर्याय जो ऊपर तिरती है। आधे मण (२० किलो) पानी हो और ऊपर तेल का बिन्दु डाले, पाँच-सात-दस बिन्दु, जल में प्रवेश नहीं करेगा, वह ऊपर रहेगा। ऐसे पर्याय चाहे जितनी भी हो, लेकिन ऊपर रहेगी, ध्रुव में नहीं प्रवेश करेगी। आहाहा! यहाँ कहते हैं, **अन्तर का तल...** पर्याय में अन्तर का तल खोजकर। आहाहा! क्या कहते हैं? वर्तमान निर्मल पर्याय, जो पर्याय राग पर अनादि से झुक गई है, ऐसे तो लोक में पूरी दुनिया पड़ी है, दुःखी, परन्तु उस पर्याय का लक्ष्य छोड़कर, दूसरी पर्याय द्रव्य में से आती है और वही पर्याय द्रव्य में एकाकार होती है। आहाहा! तब यहाँ कहते हैं कि अन्तर का तल-उस पर्याय के पीछे-नीचे पूरा ध्रुव तल है। आहाहा! तल समझे? **अन्तर का तल खोजकर...** आहाहा! भगवान आत्मा पूर्णानन्द का नाथ वीतरागमूर्ति त्रिकाल निरावरण, त्रिकाल अखण्ड, त्रिकाल एक; दो नहीं, एकरूप त्रिकाल। आहाहा! द्रव्य और पर्याय दो, ऐसा भी नहीं। त्रिकाल द्रव्य जो एकरूप है, आहा! उसका तल। उसका तल खोजकर। आहाहा! ऐसी बात।

आत्मवस्तु में दो भाग। एक पर्याय-अवस्था और एक ध्रुव। ध्रुव नित्य रहनेवाली चीज़ पलटती नहीं। ऊपर की अवस्था है, वह पलटती है-बदलती है। बदलती पर्याय के नीचे ध्रुव तल है। उस ध्रुव को यहाँ तल कहते हैं। पर्याय का तल है। आहा! अरे रे..! बहिन के वचन है। **अन्तर का तल खोजकर...** अन्तर का तल खोजकर। **आत्मा को पहिचान।** आहा..! अन्तर का तल। अतीन्द्रिय सहजानन्द स्वरूप प्रभु, अनन्त गुण का राशि। आहाहा! ढ़ेर। अनन्त गुण का ढ़ेर। ऐसे भगवान को अन्तर में खोज। बाह्य की क्रियाकाण्ड से नहीं मिलेगा। तेरा दया, दान, व्रत, भक्ति, तप, मन्दिर का दर्शन और मन्दिर का गजरथ, जुलूस आदि से आत्मा बिल्कुल मिलेगा नहीं। आहाहा! उसमें कदाचित् राग की मन्दता हो तो शुभभाव है। शुभभाव को चैतन्य भगवान छूता नहीं। आहाहा! अन्दर में गहराई में जाकर, **अन्तर का तल खोजकर...** देखो! आहाहा! **अन्तर का तल खोजकर आत्मा को पहिचान।**

शुभपरिणाम, धारणा... कोई शुभ परिणाम किये क्रियाकाण्ड के अथवा शास्त्र की धारणा की। **आदि का थोड़ा पुरुषार्थ करके 'मैंने बहुत किया है'...** ऐसा उसको अभिमान हो जाता है। आहाहा! राग से दूर होकर अन्दर में उतर जाना है, यह पुरुषार्थ है। इस पुरुषार्थ की तो खबर नहीं और ऊपर में राग घटाये, शुभराग (करे) और शास्त्र की कुछ धारणा (कर ले), धारणा क्या, ग्यारह अंग का ज्ञान हो, तो भी कुछ आत्मज्ञान नहीं होता। आहा..! यहाँ कहते हैं कि, **थोड़ा पुरुषार्थ करके 'मैंने बहुत किया है' ऐसा मानकर,...** थोड़ा बाह्य त्याग किया तो (मान लिया कि) मैंने बहुत किया। थोड़ा सूक्ष्म पड़ेगा।

आत्मा इस कपड़े को छू सकता नहीं और कपड़े को ले सकता नहीं। बाह्य चीज़ को आत्मा छोड़ सकता नहीं और दे सकता नहीं। क्योंकि बाह्य चीज़ को आत्मा छूता नहीं। आहाहा! थोड़ी बाह्य चीज़ को छोड़ी और हो गये हम त्यागी। कठिन बात है, नाथ! तेरी चीज़ कोई अलौकिक है। बाहर से... चाँदमलजी थे न? उदयपुर। बहुत साल पहले की बात है। चाँदमलजी कहे, भगवान तीर्थंकर कपड़े उतारते हैं। तो उतार सके नहीं? कहा, नहीं। चाँदमलजी थे, उदयपुर। यहाँ आये थे। रहे थे। नग्न दिगम्बर जब होते हैं भगवान, तब कपड़े उतारते हैं। कहा कि, परचीज़ उतारनी और ओढ़नी, आत्मा में है ही नहीं। वह चीज़ उसके कारण से आयी है, उसके कारण से रही है और उसके कारण से हटती है। आहाहा! कठिन बात है। दिगम्बर दशा करे, तब कपड़ा छोड़ना पड़े। छोड़ना पड़े का अर्थ वह छूटने का पर्याय का काल है। उस क्रम में परमाणु उस प्रकार से छूटकर रहनेवाले थे। आत्मा ने उसे छोड़ा, ऐसी बात नहीं है। आहाहा!

मुमुक्षु :- भाव करे तो कपड़ा छूटे न?

पूज्य गुरुदेवश्री :- बिल्कुल नहीं। कल कहा था। आत्मा में एक शक्ति है। त्यागउपादानशून्यत्वशक्ति। क्या (कहा)? पर का त्याग और पर का ग्रहण, उसका विरुद्ध उपादान। त्यागउपादानशून्यत्व। पर का त्याग और पर के ग्रहण से आत्मा शून्य है। आहाहा! ऐसी शक्ति है अन्दर। ४७ शक्ति में। त्यागउपादानशून्यत्वशक्ति।

मुमुक्षु :- वह तो निश्चय की बात है।

पूज्य गुरुदेवश्री : बात सच्ची है। निश्चय की अर्थात् सत्य बात। सत्य बात यह है,

बाकी सब उपचारिक बातें हैं। परन्तु उपचरित भी निश्चय हो तब। निश्चय बिना उपचार भी लागू नहीं पड़ता। आहाहा! ऐसी बात है। कपड़ा छोड़ना या लेना, परद्रव्य का त्याग और ग्रहण। त्याग और ग्रहण। एक रजकण का भी त्याग और ग्रहण, आत्मा की शक्ति त्यागउपादान गुण है, उस गुण के कारण से पर का त्याग-ग्रहण का त्याग है। आहाहा! अभी तो पर से भिन्न है, उसके बदले थोड़ा कुछ छोड़ा तो हमने छोड़ा ऐसा माने। तेरी मान्यता में अन्तर है। ज्यादा से ज्यादा राग है, उसका नाश करे, ऐसा कहो तो कह सकते हैं। वह भी व्यवहारनय से। राग का नाश करना भी व्यवहारनय से। निश्चय से तो आत्मा आनन्द में रहता है, राग की उत्पत्ति होती नहीं, उसको राग का नाश किया, ऐसा कहने में आता है। आहाहा! ऐसा उपदेश कैसा ? आहा..! मार्ग सूक्ष्म है, बापू! अन्तर का मार्ग बहुत गूढ़ और गहरा है। आहाहा!

यहाँ यह कहा, कौन-सा है ? ४५। **शुभपरिणाम, धारणा आदि का थोड़ा पुरुषार्थ करके 'मैंने बहुत किया है' ऐसा मानकर, जीव आगे बढ़ने के बदले अटक जाता है।** आहा..! मैंने स्त्री छोड़ी, कुटुम्ब छोड़ा, दुकान छोड़ी, धन्धा छोड़ा। ऐसे मैंने बहुत छोड़ा, यह बात ही झूठ है। उसने ग्रहण ही नहीं किया है तो छोड़े क्या ? आहाहा! परचीज़ को कभी ग्रहण किया ही नहीं। ग्रहण-त्याग से शून्य है। उसका मैंने त्याग किया, वह तो मिथ्या अभिमान है। आहाहा!

अज्ञानी को जरा कुछ आ जाए, धारणा से याद रह जाए,... शास्त्र पढ़कर याद रह जाए। वैसे तो ग्यारह अंग याद रह गये। एक अंग में १८ हजार पद, और एक पद में ५१ करोड़ श्लोक, ऐसे-ऐसे ग्यारह अंग अनन्त बार कण्ठस्थ किये। आहाहा! ज्ञानस्वरूप जो आत्मज्ञान, उससे भिन्न है। आहाहा! यहाँ वह कहते हैं। **अज्ञानी को जरा कुछ आ जाए,...** मैंने कुछ किया। **धारणा से याद रह जाए, वहाँ उसे अभिमान हो जाता है;...** क्या कहते हैं ? बाह्य त्याग में अभिमान होने का कारण (यह है कि) अगाध स्वरूप भगवान है, उसे देखा नहीं। अगाध स्वरूप महाप्रभु का है, वह दृष्टि में आया नहीं। अगाध सागर की नजर की अपेक्षा से नजर नहीं, इसलिए बाहर का अभिमान हो जाता है। आहाहा! क्या कहा ? देखो! **क्योंकि वस्तु के अगाध स्वरूप का...** आहा..! करोड़ों श्लोक की धारण कर ले और किसी को ज्ञान भी नहीं हो। शिवभूति अणगार। मातुष-मारुष इतना भी याद

नहीं रहता था। अन्दर का भान था। आत्मा की पर्याय आनन्द है ... इतना भान था और केवलज्ञान प्राप्त किया है। इसलिए कुछ शब्दों का ज्ञान हो तो उसे ज्ञान कहते हैं, ऐसा नहीं है। आहाहा! मातुष और मारुष चार शब्द याद नहीं रहते थे। अन्तर में अनुभव और आनन्द था। आहाहा!

यहाँ वह कहते हैं, **वस्तु के अगाध स्वरूप का उसे ख्याल ही नहीं है;...** थोड़ी धारणा करके अभिमान हो जाए, थोड़ा त्याग करके अभिमान हो जाए। वस्तु का स्वरूप अगाध है, तीनों काल पर से रहित है, आहाहा! उसमें कोई कमी नहीं है। उसकी पर्याय का भी अन्दर प्रवेश नहीं है। राग तो अन्दर प्रवेश करता नहीं, परन्तु ऊपर की पर्याय ध्रुव में प्रवेश नहीं करती। आहाहा! ऐसे अगाध स्वभाव का ख्याल नहीं है। इसलिए ऊपर-ऊपर के भाव में उसको अभिमान हो जाता है। **इसलिए वह बुद्धि के विकास आदि में सन्तुष्ट होकर अटक जाता है। ज्ञानी को पूर्णता का लक्ष्य होने से...** धर्मी तो पूर्ण स्वरूप भगवान अन्दर पूर्ण स्वरूप, परमात्मा पूरा है... आहाहा! ऐसा **लक्ष्य होने से वह अंश में नहीं अटकता।** धारणा आदि अंश है, उसमें नहीं अटकता।

पूर्ण पर्याय प्रगट हो तो भी स्वभाव था, सो प्रगट हुआ,... पूर्ण था, वह आया। उसमें नयी चीज़ क्या है? आहाहा! **इसमें नया क्या है? इसलिए ज्ञानी को अभिमान नहीं होता।** किसी भी चीज़ का। (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

विक्रम संवत-२०३५, श्रावण शुकल-३, बुधवार, तारीख १३-८-१९८०
वचनामृत-४७, ५०, ६२, ७२ प्रवचन-६

त्रैकालिक ध्रुव द्रव्य कभी बँधा नहीं है। मुक्त है या बँधा है, वह व्यवहारनय से है, वह पर्याय है। जैसे मकड़ी अपनी लार में बँधी है, वह छूटना चाहे तो छूट सकती है, जैसे घर में रहनेवाला मनुष्य अनेक कार्यों में, उपाधियों में, जञ्जाल में फँसा है परन्तु मनुष्यरूप से छूटा है; वैसे ही जीव विभाव के जाल में बँधा है, फँसा है परन्तु प्रयत्न करे तो स्वयं मुक्त ही है - ऐसा ज्ञात होता है। चैतन्यपदार्थ तो मुक्त ही है। चैतन्य तो ज्ञान-आनन्द की मूर्ति-ज्ञायकमूर्ति है, परन्तु स्वयं अपने को भूल गया है। विभाव का जाल बिछा है, उसमें फँस गया है, परन्तु प्रयत्न करे तो मुक्त ही है। द्रव्य बँधा नहीं है॥ ४७॥

वचनामृत, ४७ वाँ बोल। **त्रैकालिक ध्रुव द्रव्य कभी बँधा नहीं है।** आहाहा! अन्तर जो वस्तु है, त्रिकाली द्रव्य पदार्थ कभी बँधा नहीं है। यदि द्रव्य बँध जाए तो द्रव्य का अभाव हो जाए। आहा..! वस्तु यदि बन्ध में आ जाए, पर्याय में-बन्ध में आ जाए तो पर्याय मलिन होती है, रूप ही बदल जाए, वैसे यदि द्रव्य का अभाव हो जाए। आहा..! मुक्त न रहे तो वस्तु का नाश हो जाए। पण्डितजी! थोड़ी सूक्ष्म बात है, प्रभु! त्रिकाली ध्रुव तीनों काल रहनेवाली महासत्ता, चैतन्य स्वभाववाली सत्ता द्रव्य कभी बँधा नहीं है।

मुक्त है... आहाहा! यह बात बैठनी... राग से भी भिन्न और पर्याय से लक्ष्य में लेना, दया, दान का राग बन्धन का कारण (है)। निर्मल पर्याय से वस्तु को लक्ष्य में लेना, वह अपूर्व पुरुषार्थ है। वह पुरुषार्थ कभी किया नहीं और वस्तु की प्राप्ति हुई नहीं। मान लिया सुनकर-पढ़कर कि अपने मानते हैं और ऐसा है। अन्तर अनुभव में आना चाहिए वह अनुभव में नहीं आया। वह यहाँ कहते हैं कि **मुक्त है या बँधा है, वह व्यवहारनय से है,...** बन्ध और मुक्त दो पर्याय, वह तो व्यवहारनय का विषय है। त्रिकाली मुक्त है, वह निश्चय

का विषय है। त्रिकाली मुक्त है, वह निश्चय का विषय है और बन्ध-पर्याय में बन्ध एवं मुक्त है, दोनों व्यवहारनय का विषय है। आहाहा! व्यवहारनय का विषय है तो छूट सकता है। निश्चय के अवलम्बन से वह छूट सकता है। थोड़ी सूक्ष्म बात है, भाई! भाषा तो आ जाए, परन्तु अन्दर भाव में उतारना अलौकिक बात है। अनन्त काल से अनन्ता-अनन्ता पुद्‌गल परावर्तन महाविदेह में किये। वहाँ भगवान की मौजूदगी, हमेशा मौजूदगी (रहती है)। आहाहा! वहाँ भी अनन्त भव करके अनन्त परावर्तन किये। समवसरण में अनन्त बार गया, अनन्त बार सुना परन्तु जो चाहिए, मुक्तस्वरूप है, उसे ओर उसकी दृष्टि गई नहीं। आहा..! उस ओर उसकी दृष्टि गई नहीं। आहाहा!

मुक्त है या बँधा है, वह व्यवहारनय से है,... आहाहा! वह तो दोनों पर्याय है। बन्धन और मुक्त तो पर्याय है। पर्याय तो व्यवहारनय का विषय है। आहा..! त्रिकाली चीज़ जो ध्रुव है, वह उपादेय चीज़ है। अंगीकार करने योग्य, स्वीकार करने योग्य वह एक ही चीज़ ध्रुव है। व्यवहारनय से वह पर्याय है, बन्ध और मोक्ष। **जैसे मकड़ी अपनी लार में बँधी है...** अपनी लार में बँधी है। अपने मुँह में से लार निकालकर बँधती है। आहा..! **वह छूटना चाहे तो छूट सकती है,...** मकड़ी छूटना चाहे तो छूट सकती है। क्योंकि अपनी लार निकालकर बँधी है।

जैसे घर में रहनेवाला मनुष्य अनेक कार्यों में, उपाधियों में, जञ्जाल में फँसा है... आहाहा! **परन्तु मनुष्यरूप से छूटा है;...** मनुष्यरूप से तो नित्य है। चाहे जो भी उपाधि में जाए, मनुष्य मिटकर पशु हो जाता है, ऐसा नहीं है। आहाहा! अनेक प्रकार के काम करने पर भी मनुष्यपना पलटकर उस काम में प्रवेश नहीं करता और वह काम आत्मा में प्रवेश नहीं करता। त्रिकाली मुक्तस्वरूप में व्यवहाररत्नत्रय का राग का भी अन्दर प्रवेश नहीं है। आहाहा! सीधा ध्रुव स्वरूप है, उसे सीधा पकड़ने में आये तो वह पकड़ सकता है। बाकी कोई क्रिया की, यह किया, वह किया, इतना जानपना करने के बाद पकड़े, वह सब बात है। आहाहा!

मनुष्यरूप से छूटा है;... क्या कहते हैं? जैसे मकड़ी अपनी लार में बँधी होने पर भी लार से छूटना चाहे तो छूट सकती है। अपनी स्वतन्त्रता है। ऐसे मनुष्य चाहे कोई भी उपाधि में हो, परन्तु मनुष्यपना नहीं जाता। और वास्तव में तो मनुष्य उसे कहते हैं,

गोम्मटसार में कहते हैं, ज्ञायते ईति मनुष्य। जो यह आत्मा भगवान है, उसे जाने, वह मनुष्य है। आहाहा! बाकी मनुष्यस्वरूपे मृगा चरंति। आहाहा! अष्टपाहुड में वहाँ तक कहा है, अष्टपाहुड में। जिसको अन्दर आत्मा क्या चीज़ है, उसकी अन्दर दृष्टि और ज्ञान नहीं है, वह चलता मुर्दा है। आहाहा! अष्टपाहुड में है। चलता मुर्दा, मुर्दा है। अन्तर चैतन्यज्योत अनन्त गुण का भण्डार पूरा भरा हुआ, उसकी तो नजर नहीं है, उसका वेदन नहीं है, उसका अनुभव नहीं है। उस ओर का लक्ष्य हो तो अतीन्द्रिय आनन्द का वेदन आये। अतीन्द्रिय आनन्द का वेदन जब तक नहीं आता है, तब तक अन्दर नहीं गया। बाहर घूमता रहता है। आहा..! समझ में आता है? अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप भगवान आत्मा, अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद जब तक नहीं आता है, तब तक वह बाहर में भटकता है। आहाहा! कठिन बात है।

मनुष्य कोई भी काम करे, परन्तु मनुष्यपना चला नहीं जाता। वैसे आत्मा ध्रुव, पर्याय में जितना भी हो, निगोदपर्याय हो, या नौवीं ग्रैवेयक में जानेवाला दिगम्बर मिथ्यादृष्टि साधु हो, वस्तु तो वस्तु है। वस्तु में कोई फेरफार होता नहीं। उसमें कभी फेरफार होता ही नहीं। आहाहा! अन्तर में बैठना (चाहिए)। मार्ग तो आसान है। अन्तर वस्तु गहराई में प्रभु, पर्याय के पाताल में, जो निर्मल पर्याय है, उसके अन्दर पाताल में पूरा द्रव्य भरा है। उसकी मुक्त दशा है। मुक्त है तो मुक्त हो सकता है। आहाहा! जो मुक्त है, ऐसा अन्दर से स्वीकार करे, अन्दर से, तो मुक्त हो सकता है। है, प्राप्त की प्राप्ति है। जो है, वह मिलता है। नहीं हो, वह मिलता है, ऐसा तो है नहीं। आहाहा!

वैसे ही जीव... मनुष्य का दृष्टान्त दिया न? मनुष्य कितने भी काम करे, फिर भी मनुष्य ही कहने में आता है। मनुष्य पलटकर पशु नहीं हो जाता। **वैसे ही जीव विभाव के जाल में बँधा है,...** आहाहा! सूक्ष्म विकल्प। वहाँ तक बात ली है, १४२ गाथा-समयसार। मैं ज्ञायक हूँ, मैं अबद्ध हूँ। १४-१५ गाथा। अबद्धस्पृष्ट हूँ, ऐसा विकल्प है। आहाहा! उस विकल्प से कहीं आत्मा मिलता नहीं। आहा..! १४-१५ गाथा में अबद्धस्पृष्ट, अबद्धस्पृष्ट (आता है)। मुक्त है और पर के साथ स्पर्शित नहीं हुआ। आहाहा! **वैसे ही जीव विभाव के जाल में बँधा है, फँसा है परन्तु प्रयत्न करे तो स्वयं मुक्त ही है...** आहाहा! यह प्रयत्न कोई बाहर की बात में नहीं है। बाहर का जानपना हो, उससे काम नहीं

होता। अन्तर वस्तु से काम होता है। आहाहा! अन्तर में स्वयं मुक्त ही है। **ऐसा ज्ञात होता है।** ऐसा अन्तर में पहले भान होता है।

चैतन्यपदार्थ तो मुक्त ही है। चैतन्य तो ज्ञान, आनन्द की मूर्ति (है)। आहा..! चैतन्यप्रभु ज्ञान और आनन्द की मूर्ति है। मूर्ति अर्थात् ज्ञान और आनन्दस्वरूप है। ज्ञान त्रिकाली, आनन्द त्रिकाली उसस्वरूप ही है। आहाहा! **परन्तु स्वयं अपने को भूल गया है।** ऐसी चीज़ है। प्रत्येक (जीव) भगवान आत्मा है अन्दर में।

समयसार में ३८वीं गाथा में तो वहाँ तक कहा, अरे.. प्राणियों! सब आ जाओ, लोकालोक के ज्ञान में आ जाओ अन्दर। ३८वीं गाथा में कहा है। आहाहा! सामूहिक निमन्त्रण (दिया है)। पूरी दुनिया आ जाओ। ओहो..! भगवान आत्मा ज्ञानस्वरूप है, पूरी दुनिया उसमें जानने में आ जाओ। और वह जाननेवाला मुक्त रहो। आहा..! कोई भव्य-अभव्य ऐसा भेद भी नहीं किया। सब लोक आ जाओ। अपनी दृष्टि से सबकी बात की है। सब प्राणी अपने ज्ञान में लोकालोक जानने में अन्दर आ जाओ। आहाहा! ऐसी अन्दर चीज़ भरी है। पूरी भरी है। आहा..!

विभाव का जाल बिछा है, उसमें फँस गया है,... विभाव के बहुत प्रकार है। सूक्ष्म विभाव अन्दर में वास्तविक तत्त्व जो है, वह अन्दर ख्याल में न आवे तो अन्दर कुछ भी सूक्ष्म शल्य ख्याल में आता नहीं। उपयोग में ख्याल में आता नहीं। वह उपयोग ... है। क्या कहा? जो सूक्ष्म उपयोग से आत्मा ख्याल में आना चाहिए, वह आता नहीं। उपयोग सूक्ष्म नहीं है, स्वरूप ऐसा है। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! बहिन कहेगी, बहिन के शब्दों में बहुत जगह... उनको शरीर में ठीक नहीं। बहिन तो जो है, वह है। स्त्री का देह आ गया है। बाकी उनकी दशा कोई अलग जाति है। दुनिया को बाहर से मालूम पड़े नहीं। दुनिया तो बाहर का जानपना और बाह्य त्याग से देखे, इसलिए उसे कीमत करनी नहीं आती। आहाहा!

विभाव का जाल बिछा है, उसमें फँस गया है, परन्तु प्रयत्न करे... आहाहा! **तो मुक्त ही है।** प्रयत्न करे अन्दर में। कोई दूसरा उपाय नहीं है, प्रभु! अन्दर स्वरूप में प्रयत्न (करना), वही उसका उपाय है। जैसे राग में प्रयत्न अनादि से (करता है), राग का वेदन

और करना, कर्ता होकर करके वेदन करना। आहा! भले शुभभाव हो, वह भी जहर है। उसका कर्ता होकर वेदन करना, वह अनादि से चला आ रहा है। मुक्तस्वरूप है न भगवान, तो उसमें जा। मुक्त ही है। प्रयत्न कर। **द्रव्य बँधा नहीं है।** द्रव्य कभी बँधा नहीं है। आहाहा! वस्तु है, सत्ता है, मौजूदगी चीज़ है, महासत्तावान है, महा जिसका अस्तित्व है। आहाहा! वह वस्तु कहाँ जाए? वह वस्तु बँधती भी नहीं। आहा..! उसका अस्तित्व-मौजूदगी बँधा ही नहीं। मुक्तस्वरूप ही भगवान है। आहाहा! ऐसा अन्दर दृष्टि में आना और अनुभव करना, वह कोई अलौकिक बात है। आहाहा! बाहर में पण्डिताई में वह भले ही न आये। परन्तु वस्तु स्वयं अन्दर प्राप्त कर ले। दुनिया में बाहर की गिनती में नहीं आये। आहा..! ऐसी चीज़ है। ४७ हुआ न। किसी ने लिखा है, ५०। ४७ के बाद ५० है।

तू सत् की गहरी जिज्ञासा कर, जिससे तेरा प्रयत्न बराबर चलेगा; तेरी मति सरल एवं सुलटी होकर आत्मा में परिणमित हो जाएगा। सत् के संस्कार गहरे डाले होंगे तो अन्त में अन्य गति में भी सत् प्रगट होगा। इसलिए सत् के गहरे संस्कार डाल॥ ५०॥

तू सत् की गहरी जिज्ञासा कर... आहाहा! है? तू सत् की गहरी-गहरी जिज्ञासा कर। परमात्मा पर्याय के पीछे विराजता है। आहाहा! पर्याय के तल में विराजता है। पर्याय है, उसके तल में विराजता है। आहाहा! सत् की गहरी जिज्ञासा-गहरी जिज्ञासा, तीव्र जिज्ञासा कर, ऐसा कहते हैं। गहरी अर्थात् तीव्र। आहाहा! उसके बिना चैन पड़े नहीं। आत्मानुभव बिना चैन नहीं पड़े, ऐसी गहरी-गहरी जिज्ञासा कर। **जिससे तेरा प्रयत्न बराबर चलेगा;...** आहाहा! अन्तर में तो प्रयत्न तो तब चलेगा कि जैसी वह चीज़ है, उस ओर यथार्थ ज्ञान करके झुक जाना, तब उसका अनुभव होता है। तब तक अनुभव होता नहीं। आहाहा!

अनुभव रत्न चिन्तामणि, अनुभव है रसकूप,
अनुभव मार्ग मोक्षनो, अनुभव मोक्षस्वरूप।

क्योंकि वस्तु मुक्तस्वरूप है। उसका अनुभव हुआ तो यहाँ कहा कि वह तो

मोक्षस्वरूप ही हो गया। वस्तु मुक्त (स्वरूप) थी, ऐसी प्रतीत, अनुभव में-वेदन में आ गयी। वेदन में आ गयी, उसका सवाल है। आहाहा! वेदन में न आवे, तब तक उसने स्पर्श नहीं किया, आत्मा को उसने स्पर्श नहीं किया। आहाहा!

प्रयत्न बराबर चलेगा; तेरी मति सरल एवं सुलटी होकर... मति जो बाहर की ओर झुकती है, वह अन्तर में झुके। और सरल, मति सरल एवं सुलटी। वक्रता तोड़कर सरल हो जाए और सुलटी दशा हो जाए। ऐसी **सुलटी होकर आत्मा में परिणमित हो जाएगा।** आत्मा में परिणमित हो जाए। आहाहा! आत्मा जो परमपारिणामिकस्वभाव, परमपारिणामिक -भावरूप स्वभाव तुझे वहाँ मिलेगा। आहाहा! वह परिणमित हो जाएगी। पर्याय में परमपारिणामिकभाव की अनुभव में पर्याय होगी। आहाहा! सूक्ष्म बात है।

बहिनों में बोले होंगे, अनुभव में से यह सब आया है। आत्मा का आनन्द का अनुभव, उसमें से यह वाणी निकली है। साधारण मनुष्य को लगे, वह का वही आता है, ऐसा लगे। परन्तु उसमें अन्तर है। कहाँ-कहाँ अन्तर है, वह अन्दर ...

सत् के संस्कार गहरे डाले होंगे... सत् के संस्कार, ऐसे संस्कार डालना कि कभी पलट नहीं जावे। कदाचित् इस भव में समकित प्राप्त न हो तो दूसरे भव में (प्राप्त हो जाए), ऐसे सत् के संस्कार डालना। मैं अखण्ड हूँ, मुक्त हूँ, अभेद हूँ, ज्ञायक हूँ, परम स्वाभाविक पारिणामिकस्वभाव हूँ। ऐसा संस्कार यथार्थ में, यथार्थ में (डालना)। संस्कार तो डालना है, परन्तु यथार्थ नहीं हो तो उल्टा हो जाए। यथार्थ संस्कार अन्दर डाले... आहाहा! **तो अन्त में अन्य गति में भी...** कदाचित् इस भव में प्राप्त न पावे और इसके संस्कार अन्दर में डाले.. आहाहा! तो सत् प्रगट होगा। **अन्य गति में भी सत् प्रगट होगा।** आहाहा! सातवीं नरक के नारकी को अन्दर प्रवेश करते समय मिथ्यात्व है। नरक में जाते समय मिथ्यात्व है। बाद में अन्दर में समकित प्राप्त करता है। सातवीं नरक का नारकी। वेदना का पार नहीं, भाई! उसके एक क्षण के दुःख, परमात्मा कहते हैं, करोड़ भव और करोड़ जीभ से कह सके नहीं। ऐसे दुःख में प्राणी समकित प्राप्त करता है। यहाँ लोग कहते हैं कि हमें कुछ अनुकूलता हो तो हम निवृत्ति लें। व्यापार आदि पुत्र बराबर चलाये तो हम निवृत्ति लें। उसको दुःख का पार नहीं है, बापू! आहाहा! शरीर में ज्वाला उठे, शीत व्याधि है न? शीत व्याधि। पहली नरक में उष्ण है। अन्तिम नरक में शीत है। बहुत शीत। शीत

का एक कण यहाँ आये तो आसपास के हजारों लोग मर जाए। आहाहा! ऐसी शीत में तैंतीस सागर निकाले। एक तैंतीस सागर नहीं, ऐसे अनन्त तैंतीस सागर निकाले, भाई! विचार भी कहाँ करता है कि मैं कौन हूँ ? और मुझे क्या करना है ? आहाहा!

अनन्त बार तैंतीस सागर की स्थिति (में) आत्मा के भान बिना गया। प्रभु! उस दु:ख की व्याख्या भगवान करते हैं। आहाहा! उसके दु:ख को देखकर, वहाँ तो कौन देखनेवाला है, परन्तु उतना दु:ख हे कि उसके दु:ख देखकर दूसरे को आँख में से आँसु आये। इतना दु:ख। इतने दु:ख में समकित प्राप्त करता है। ऐसा नहीं है कि इतना दु:ख है तो निवृत्ति चाहिए, यह चाहिए और फलाना चाहिए। आहा..! ऐसे असंख्य समकिती सातवीं नरक में हैं। आहाहा! अर्थात् प्रतिकूल संयोग पर नजर मत कर। अनुकूल संयोग पर नजर मत कर। दोनों चीज़ ज्ञेय है। अनुकूल-प्रतिकूलता की कोई छाप अन्दर नहीं मारी है। ज्ञेय वस्तु है। एक आत्मा के सिवा सब ज्ञेय है। आहाहा! ज्ञेय में दो भाग है नहीं कि यह ज्ञेय ठीक है और यह ज्ञेय अठीक है। ज्ञान में सब ज्ञेय जानने लायक है। वह भी व्यवहार है। ज्ञान पर को जाने, वह भी व्यवहार है। बाकी निश्चय से तो स्वयं को जानता है। आहाहा! ऐसी चीज़ है। ऐसे अनन्त जीव ने प्राप्त कर लिया। अनन्त सिद्ध हो गये हैं। नहीं हो सके, ऐसा नहीं है। अनन्त हो गये हैं, इसलिए अनन्त के साथ तू आ जा, प्रभु! आहाहा! तेरी शक्ति अनन्त महा है।

सत् के संस्कार गहरे डाले होंगे तो अन्त में अन्य गति में भी सत् प्रगट होगा। इसलिए सत् के गहरे संस्कार डाल। आहाहा! वर्तमान में भले तू प्राप्त न कर सके, परन्तु उसका संस्कार, ऐसे संस्कार डाल अन्दर... एक बात ऐसी है, एक समय की पर्याय में दूसरी पर्याय आती नहीं। वर्तमान पर्याय का संस्कार दूसरी पर्याय में आता नहीं। फिर भी यहाँ आता है, ऐसा लिया है। जिसका पुरुषार्थ ... नयी पर्याय में पूर्व की पर्याय का संस्कार आया नहीं। थोड़ी सूक्ष्म बात है। पूर्व पर्याय में जो संस्कार था, वह नयी पर्याय में नहीं आता। ऐसा प्रगट होता है उसमें। जैसा यह संस्कार है, वैसा नया संस्कार अपनी पर्याय में प्रगट होता है। पूर्व की पर्याय व्यय हो जाती है। संस्कार किसमें डाले ? वह तो व्यय हो जाती है। आहाहा! कठिन बात है, भाई! वस्तु का स्वरूप सूक्ष्म है।

यहाँ कहते हैं, दृढ़ संस्कार डालेगा तो अन्य गति में प्रगट होगा। एक पर्याय दूसरी

पर्याय में तो जाती नहीं। और यह इस गति में से दूसरी गति में प्राप्त करे, वह व्यवहार से बात की है। पर्याय में संस्कार दृढ़ है तो दूसरी पर्याय में भी दृढ़ संस्कार अपने से उत्पन्न होगा, ऐसा जीव लिया है।

मुमुक्षु :- ...

पूज्य गुरुदेवश्री :- पर्याय तो ... होती है।

मुमुक्षु :- पर्याय नष्ट हो जाती है।

पूज्य गुरुदेवश्री :- दूसरी पर्याय में उतने ही वजनवाला संस्कार उत्पन्न होगा। ऐसी पर्याय की योग्यता है। सूक्ष्म बात है। पर्याय तो व्यय होगी। तो उत्पाद में वह तो आती नहीं। आहाहा! परन्तु जितना संस्कार का जोर था, उतने जोरवाली नयी पर्याय उत्पन्न हो चुकी है। जिसको अन्दर में लगी है, अन्तर में लगनी लगी है, उसको तो दूसरी पर्याय में वह संस्कार प्रगट हुए बिना रहता नहीं। आहाहा! समझ में आया? नहीं तो एक पर्याय दूसरी पर्याय में जाती नहीं। आहाहा! जातिस्मरण होता है। जातिस्मरण में पूर्व की पर्याय वर्तमान में याद आती है। वह वर्तमान में पुरुषार्थ का काम है। पूर्व का कारण नहीं। वर्तमान में पुरुषार्थ है, वह उसमें आता है। उसका यह काम है। आहाहा!

इसलिए सत् के गहरे संस्कार डाल। ऐसा कि एकदम तू प्राप्त नहीं करे तो उलझन में मत आना। अन्दर में भगवान अकर्ता-अभोक्ता, सच्चिदानन्द प्रभु अनाकुल आनन्द का ढ़ेर है, ऐसे संस्कार डाल। आहाहा! आहाहा! वह ५० में आया। ५० के बाद ६२।

जीव ज्ञायक के लक्ष्य से श्रवण करे, चिन्तवन करे, मन्थन करे, उसे भले कदाचित् सम्यग्दर्शन न हो, तथापि सम्यक्त्वसन्मुखता होती है। अन्दर दृढ़ संस्कार डाले, उपयोग एक विषय में न टिके तो अन्य में बदले, उपयोग सूक्ष्म से सूक्ष्म करे, उपयोग में सूक्ष्मता करते करते, चैतन्यतत्त्व को ग्रहण करते हुए आगे बढ़े, वह जीव क्रम से सम्यग्दर्शन प्राप्त करता है॥ ६२॥

६२। श्रवण करने में फर्क है। **जीव ज्ञायक के लक्ष्य से श्रवण करे,...** आहाहा! क्या कहना है? गूढ़ बात है, गूढ़ है। चाहे तो भगवान की वाणी सुनने मिले, परन्तु उससे

आत्मा का ज्ञान होता है, ऐसा नहीं है। समझ में आया ? भगवान की वाणी तो पर है। उससे यहाँ ज्ञान हो जाए, ऐसा है नहीं। ज्ञान में और वाणी में दो में अभाव है। उससे नहीं होता... ज्ञायक के लक्ष्य से श्रवण कर। मात्र श्रवण नहीं। ज्ञायक के लक्ष्य से। अन्तर है। ज्ञायकस्वरूप.. प्रवचनसार में कहा, पहला अधिकार पूरा होने के बाद, दूसरे अधिकार में (कहा), शास्त्र का अभ्यास करो। आगम का अभ्यास करो, परन्तु स्वलक्ष्य से। अपना लक्ष्य रखकर। ध्येय-ध्येय भगवान है। आहाहा! उसके ध्येय बिना जो होता है, सब बिना अंक के शून्य हैं। बहिन यहाँ वह बात कहती है।

जीव ज्ञायक के लक्ष्य से श्रवण करे,... उससे ज्ञान नहीं होता। श्रवण करने में तो त्रिलोकनाथ की वाणी भी अनन्त बार श्रवण की। **ज्ञायक के लक्ष्य से श्रवण करे,...** आहाहा! श्रवण करने में भी अपने ज्ञायक के लक्ष्य से। मात्र श्रवण करने के लिये श्रवण नहीं। शब्द में बड़ा अन्तर है। बहिन का कहने का आशय यह है कि ज्ञायक के लक्ष्य से श्रवण कर तो होगा। उसके लक्ष्य बिना मात्र श्रवण से कुछ लाभ नहीं होगा। आहाहा! अपूर्व वाणी है। आहाहा! दुनिया बाहर की बातों में पड़ी है। अन्तर भगवान आत्मा, उसके लक्ष्य बिना श्रवण करे, कोई भी श्रद्धा करे, परन्तु इस लक्ष्य के बिना कुछ लाभ होगा नहीं। आहाहा! लक्ष्य तो भगवान आत्मा का होना चाहिए। श्रवण में, श्रद्धा में, रमणता में, अरे..! पूरा दिन खाने-पीने में लगनी तो वहाँ लगनी चाहिए। ध्रुव स्वरूप मेरा प्रभु, पूर्णानन्द का नाथ मैं हूँ, ऐसी उसकी धुन (लगनी चाहिए)। आहाहा!

धर्मी की धुन अपने ध्रुव में लगती। आहा..! धर्मी की धुन धैर्य से.. पन्द्रह बोल लिखे हैं। धैर्य से धखाव। एक बार तेरह शब्द लिखे थे। सब ध-ध। धर्म के लक्ष्य से ध्येय को ध्यान में लेकर धैर्य से धखाव। वह साधक की दशा (है)। साधक की धुन धखाव अन्दर। और अन्दर में जाने का प्रयत्न इतना कर कि प्राप्त होकर छुटकारा हो। प्राप्त हुए बिना रहे नहीं। आहा..! शब्दों में ऐसा कहने में आये, उसका भाव है वह तो (अनुभवगोचर है)। **जीव ज्ञायक के लक्ष्य से...** ध्रुवधाम ना ध्येय...

मुमुक्षु :- ...ध्रुवधामना ध्येयना ध्याननी धखती धूणी धगश अने धीरज थी धखाववी ते धर्मनो धारक धर्मी धन्य छे। (ध्रुवधाम के ध्येय के ध्यान की धूनी धगश और धीरज से लगानेवाला वह धर्म का धारक धर्मी धन्य है।)

पूज्य गुरुदेवश्री :- सब ध। एक बार यह बनाया था। आहाहा! धर्म के ध्येय के लक्ष्य से पर्याय में धुनी धखानी। लगन लगानी, लगन। आहाहा! उनके पास निकला। कौन-सा हुआ?

जीव ज्ञायक के लक्ष्य से श्रवण करे,... भाई! यह शब्द कहा, उसका हेतु क्या है? श्रवण करना, वह कोई चीज़ नहीं है। श्रवण तो अनन्त बार हुआ और अनन्त बार नौ पूर्व का ज्ञान भी हुआ। अनन्त बार ग्यारह अंग का ज्ञान हुआ। परन्तु ज्ञायक के लक्ष्य से श्रवण किया नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु :- .... भगवान के समवसरण में...

पूज्य गुरुदेवश्री :- अनन्त बार गया। भगवान के समवसरण में अनन्त बार प्रभु की आरती उतारी। हीरा की थाली, मणिरत्न का दीपक और कल्पवृक्ष के फूल। हीरा की थाली, मणिरत्न का दीपक और कल्पवृक्ष के फूल (लेकर) प्रभु की आरती की। उसमें क्या हुआ? वह तो पर है। भक्ति का भाव है तो शुभराग है। उससे धर्म होता है या उसके कारण से कुछ-कुछ संस्कार डलेंगे, ऐसा नहीं है। आहाहा! संस्कार कोई दूसरी चीज़ है। आहाहा!

यहाँ वह कहते हैं, **जीव ज्ञायक के लक्ष्य से श्रवण करे, चिन्तवन करे,...** परन्तु ज्ञायक के लक्ष्य से, हों! अन्दर **मन्थन करे, उसे भले कदाचित् सम्यग्दर्शन न हो,...** अन्तर की लगनी लगी हो, अन्तर में ध्रुव को-ध्येय को ध्यान में लेकर धैर्य से काम लेता हो। **तथापि सम्यक्त्वसन्मुखता होती है।** कदाचित् इस भव में सम्यग्दर्शन न हो, तो सम्यक्त्वसन्मुखता होती है। समकित की सन्मुखता। मोक्षमार्गप्रकाशक में है। सम्यक् सन्मुखता। लिखा है। आहाहा!

अन्दर दृढ़ संस्कार डाले,... अपने स्वभाव के सिवा सब ओर की चिन्ता छोड़कर, सब ओर का झुकाव छोड़कर अपने चैतन्य में झुकना, उसके संस्कार डालना-संस्कार डालना। **उपयोग एक विषय में न टिके...** कदाचित् अन्दर में उपयोग में ज्ञान में लक्ष्य में न ले तो श्रद्धा में लक्ष्य में रखना, शान्ति में लक्ष्य बदलना, आनन्द में बदलना, उपयोग को अन्दर रखना। लक्ष्य में गुण कोई भी पलटो। उपयोग के लक्ष्य में कोई भी गुण लक्ष्य में

लो, लक्ष्य भले पलटे, उपयोग तो वहाँ रहता है। आहाहा! ऐसी बात है। **अन्य में बदले, उपयोग सूक्ष्म से सूक्ष्म करे,...** आहाहा! भगवान आत्मा को पकड़ने को सूक्ष्म (उपयोग करे)। क्योंकि शुभभाव को भी अति स्थूल कहा। पुण्य (-पाप) अधिकार में। पुण्य (-पाप) अधिकार में शुभभाव चाहे जितने हो, पंच महाव्रतादि के, लेकिन वह अति स्थूल है। यहाँ उससे हटकर सूक्ष्म उपयोग करे। कठिन बात है। अन्दर की बात है। अति स्थूल विषय—शुभ उपयोग तो अति स्थूल है। पुण्य-पाप अधिकार में, समयसार में है। यह सूक्ष्म। आहाहा!

उपयोग सूक्ष्म से सूक्ष्म करे,... उपयोग अर्थात् आत्मा की ज्ञान पर्याय। उस पर्याय को अन्दर में पकड़ने की सूक्ष्मता करे। स्थूलता में वह पकड़ में नहीं आता। स्थूल उपयोग में तो राग आता है। आहाहा! सूक्ष्म उपयोग ऐसा करे कि **उपयोग में सूक्ष्मता करते करते,...** करते, जानने-देखने की पर्याय को सूक्ष्म करे। स्थूलपना छोड़ते-छोड़ते, सूक्ष्म करता है। आहाहा! यह कार्य है। सम्यग्दर्शन प्राप्त करने की यह चीज़ है। बाकी सब बातें हैं।

मुमुक्षु :- उपयोग एक विषय में न टिके तो अन्य में लगावे तो अन्य में कहाँ लगावे?

पूज्य गुरुदेवश्री :- अन्य में अर्थात् दूसरे गुण में। एक ज्ञान लक्ष्य में न रहे तो श्रद्धा पर लक्ष्य जाए। गुण बदले। अपने में गुण है तो गुण पर बदले। आहाहा! पर में पलटे, ऐसा नहीं। आहाहा! सूक्ष्म बात है, भाई! बहिन तो बोले होंगे, उसे लिख लिया था। उसमें यह आया।

उपयोग सूक्ष्म से सूक्ष्म करे, उपयोग में सूक्ष्मता करते करते, चैतन्यतत्त्व को ग्रहण करते हुए... आहाहा! यह उपाय है। कोई पूछता है न? समकित कैसे प्राप्त होता है? रात्रि को पूछते थे। प्रश्न था। **चैतन्यतत्त्व को ग्रहण करते हुए आगे बढ़े,...** आहाहा! सूक्ष्म उपयोग, जिससे आत्मा पकड़ में आये, ऐसे पकड़कर अन्दर गहराई-गहराई-गहराई में जाना। पर्याय को ध्रुव में ले जाना। आहाहा! सूक्ष्म बात है, भाई! जो पर्याय बाह्य है, उसको अन्तर ले जाना। आहाहा! **आगे बढ़े,...** अन्दर सूक्ष्मता करके आगे बढ़े। आहा..! **वह जीव क्रम से सम्यग्दर्शन प्राप्त करता है।** ऐसा क्रम करे, उसको सम्यग्दर्शन मिलता है।

मुमुक्षु :- यह करण परिणाम की बात है क्या?

पूज्य गुरुदेवश्री :- परिणाम की। कर्म नहीं।

मुमुक्षु :- सम्यक् सन्मुख के विषय में करण परिणाम आते हैं न? वह?

पूज्य गुरुदेवश्री :- करण-फरण नहीं, यहाँ तो शुद्धात्मा के अभिमुख। शुद्धात्मा के अभिमुख। करण, देशनालब्धि आदि आयी है। संस्कृत में पाठ ऐसा आया है, जयसेनाचार्य में कि शुद्धात्म अभिमुख। शब्द रखकर फिर (कहा), शुद्धात्म अभिमुख, ऐसा पाठ है। सब देखा है न। शुद्धात्म अभिमुख परिणाम करना। आहाहा! समझ में आया? करण और कर्म उसमें से निकालते थे। कान्तिलाल है न? कान्ति शिवलाल। पोरबन्दरवाले। उसमें से निकालते थे, देखो! शुभभाव से समकित होता है। करण, देशनालब्धि, क्षयोपशम लब्धि, विशुद्धि धर्म का कारण है, ऐसा निकालते थे। पत्र में डालते थे। इस बार १५वीं गाथा पढ़ी। प्रभु! जैनशासन किसको कहें? सुना। जिनशासन। अबद्धस्पृष्ट। भगवान कर्म से, राग से अबद्ध है अर्थात् मुक्त है। पर का स्पर्श नहीं। अनन्य है। जो वह है, वह है और संयोगी चीज़ भाव विकारादि से रहित है और पर्याय में अनेकता है, उससे भी रहित है। आहा! उसको जो अन्तर में देखे, उसने जैनशासन देखा।

मुमुक्षु :- जो आत्मा को देखे, वह जैनशासन को देखे।

पूज्य गुरुदेवश्री :- जैनशासन देखे। विरोधी थे। बहुत साल से विरोधी थे। पत्र में विरोध करते थे। यह सुना तो कहा, महाराज! हमें सच्चा दिगम्बर बनाया। हमें सच्चा दिगम्बर बनाया, झूठे थे। कान्तिलाल ईश्वर है। पत्र निकालते हैं। पढ़ा बहुत है। षट्खंडागम आदि बहुत पढ़ा है, बहुत वाँचन। बड़ा पत्र निकालते हैं। विरोध करते थे। १५वीं गाथा में जैनशासन की व्याख्या करते-करते (कहा), जैनशासन किसको कहना? जैनशासन कोई गुण-द्रव्य नहीं है, जैनशासन पर्याय है। तो जो द्रव्य है अन्दर पूर्णानन्द का नाथ, उसका स्पर्श करके वेदन करना, वह जैनशासन है। उसमें करण फलाना और इस शुभभाव से धर्म-समकित होगा, ऐसी बात कहीं नहीं है। बाद में बदल गया, बहुत साल से विरोध था। शुभभाव से होता है, देखो, इसमें लिखा है। समकित प्राप्त करने में पाँच कारण है। विशुद्धि आदि है। बापू! वह तो एक निमित्त से कथन है। बाकी उसका अन्तिम शब्द संस्कृत में

(ऐसा है), शुद्धात्म अभिमुख परिणाम, ऐसा पाठ है। शुद्ध जो आत्मा, उसके सन्मुख परिणाम। पर से विमुख और स्व से सन्मुख। इस अभिमुख परिणाम से समकित होता है। है न? आहाहा! कोई कहे कि करणलब्धि, देशनालब्धि आदि सब आता है न? क्षयोपशम, विशुद्धि आदि आता है, सब हो। परन्तु दृष्टि शुद्ध पर गये बिना... आहाहा! शुद्ध का अनुभव नहीं होगा। बाकी क्रियाकाण्ड का शुभराग लाख शुभराग करे, उससे समकित प्राप्त नहीं करेगा। आहाहा!

उपयोग को सूक्ष्म करे **आगे बढ़े, वह जीव क्रम से सम्यग्दर्शन प्राप्त करता है।** उसे सम्यग्दर्शन प्राप्त होता है। ६२ हुआ न? ६२ के बाद ७५।

जिन्होंने चैतन्यधाम को पहचान लिया है, वे स्वरूप में ऐसे सो गये कि बाहर आना अच्छा ही नहीं लगता। जैसे अपने महल में सुख से रहनेवाले चक्रवर्ती राजा को बाहर निकलना सुहाता ही नहीं; वैसे ही जो चैतन्यमहल में विराज गये हैं, उन्हें बाहर आना कठिन लगता है, भाररूप लगता है; आँख से रेत उठवाने जैसा दुष्कर लगता है। जो स्वरूप में ही आसक्त हुआ, उसे बाहर की आसक्ति टूट गई है॥ ७५॥

७५। है ७५? **जिन्होंने चैतन्यधाम को पहचान लिया है,...** आहाहा! चैतन्यधाम। स्वयं ज्योति सुखधाम। स्वयं ज्योति है, चैतन्य जलहल ज्योति। अनादि स्वयं ज्योति और सुखधाम। सुख का स्थान वह है। सुख की उत्पत्ति का स्थान-क्षेत्र आत्मा है। आहाहा! आनन्द की उत्पत्ति का क्षेत्र (चैतन्यधाम है)। जमीन दो प्रकार की है। एक साधारण जमीन होती है। क्या कहते हैं? कुलथी, कुलथी होती है। वह जमीन साधारण होती है। और एक जमीन में चावल उगते हैं, वह जमीन बहुत अच्छी होती है। चावल। चावल की जमीन पत्थर हो, वहाँ नहीं होती। उस जमीन में अन्तर होता है। देखा है न। हमारे वहाँ एक है। चावल का ... भी है और... क्या कहते हैं? कुलथी, कुलथी आती है न? कुलथी अनाज। वहाँ दोनों होते हैं। हमारे वहाँ से पास में है। क्षेत्र का अन्तर है। ऐसे भगवान के क्षेत्र में अन्तर है। उसके क्षेत्र में तो आनन्द की पकता है। आहाहा! उसके क्षेत्र में दु:ख और मिश्रता नहीं होती। आहाहा! भाई! वह तो अन्दर से विश्वास आना चाहिए न।

आहाहा! यह कोई बाहर से मिल जाए ऐसा नहीं है। आहा..! अपूर्व पुरुषार्थ है।

यहाँ वह कहा है। कौन-सा है? ७५। **जिन्होंने चैतन्यधाम को पहचान लिया है, वे स्वरूप में ऐसे सो गये...** आहाहा! चैतन्यधम का समकित में भान हुआ, वे स्वरूप में ऐसे सो गये हैं अर्थात् स्वरूप में ऐसे एकाकार हो गये हैं कि **बाहर आना अच्छा ही नहीं लगता।** आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्द का अनुभव करने के सिवाय बाहर किसी भी विकल्प में आना अच्छा लगता नहीं। आहाहा! सूक्ष्म बात है। चैतन्यधाम को पहिचान लिया है, उसकी बात है। आहाहा! कैसे प्राप्त हो, वह तो पहले आ गया। आहाहा!

चैतन्यधाम को पहचान लिया है, वे स्वरूप में ऐसे सो गये... आनन्द में लीन। बाह्य शुभाशुभ परिणति भी होती है, परन्तु अन्तर में लीन है। आहाहा! अन्तर में ध्येय, ध्रुव का ध्येय कभी छूटता नहीं। ध्रुव की दृष्टि कभी छूटती नहीं। आहाहा! समकित लड़ाई में हो तो भी उसका ध्रुव का ध्येय वहाँ से हटता नहीं। ऐसी बात है अन्दर की। आहा..! **स्वरूप में ऐसे सो गये कि बाहर आना अच्छा ही नहीं लगता।** अन्तर आनन्दस्वरूप भगवान, उसका अन्दर भान हुआ, अनुभव हुआ तो बाहर निकलना अच्छा नहीं लगता। बाहर निकलना अच्छा नहीं लगता। आहाहा!

जैसे अपने महल में सुख से रहनेवाले चक्रवर्ती राजा को बाहर निकलना सुहाता ही नहीं; वैसे ही जो चैतन्यमहल में विराज गये हैं,... आहाहा! चैतन्य असंख्य प्रदेशी महल में भगवान अन्दर में विराजकर, उसका अनुभव करके उसमें रहते हैं। आहाहा! बाहर में तो रागादि से काम करते हैं परन्तु अन्दर में दृष्टि का धाम वहाँ पड़ा है। **बाहर आना कठिन लगता है, भाररूप लगता है;...** आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्द में से निकलना भार लगता है। **आँख से रेत उठवाने जैसा दुष्कर लगता है।** आहाहा! आँख से रेत को उठाना। ऐसे धर्मी को चैतन्यधाम की दृष्टि लगी है, धाम का अनुभव हुआ है, उसको बाहर की चीज़ बोझा लगती है, भार लगता है। कैसा?

जो स्वरूप में ही आसक्त हुआ, उसे बाहर की आसक्ति टूट गई है। स्वरूप में ऐसा लीन हुआ है, भले लड़ाई हो, काम विषय की वासना में हो, परन्तु अन्दर की दृष्टि में धुन लगी है, वह हटती नहीं। ध्येय में ध्रुव का परिणमन हुआ, वह परिणमन कभी हटता नहीं। (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

विक्रम संवत-२०३५, श्रावण शुक्ल - ४, गुरुवार, तारीख १४-८-१९८०
वचनामृत-८१, १००   प्रवचन-७

जैसे स्वभाव से निर्मल स्फटिक में लाल-काले फूल के संयोग से रंग दिखते हैं, तथापि वास्तव में स्फटिक रंगा नहीं गया है, वैसे ही स्वभाव से निर्मल आत्मा में क्रोध-मानादि दिखायी दें, तथापि वास्तव में आत्मद्रव्य उनसे भिन्न है। वस्तुस्वभाव में मलिनता नहीं है। परमाणु पलटकर वर्ण-गन्ध-रस-स्पर्श से रहित नहीं होता, वैसे ही वस्तुस्वभाव नहीं बदलता। यह तो पर से एकत्व तोड़ने की बात है। अन्तर में वास्तविक प्रवेश कर तो (पर से) पृथक्ता हो॥ ८१ ॥

वचनामृत। ८१ बोल। किसी ने लिखा है कि यह पढ़ना। यह कागज अन्दर पड़ा था, वह पढ़ने हैं। किसी ने लिखा होगा। **जैसे स्वभाव से निर्मल स्फटिक में लाल-काले फूल के संयोग से रंग दिखते हैं,...** क्या कहते हैं ? स्फटिकमणि का ऐसा स्वभाव है, निर्मल, परन्तु पर्याय में ऐसी योग्यता है (कि) लाल आदि फूल हो तो पर्याय में योग्यता है। फूल से नहीं होता। लकड़ी के नीचे फूल रखो तो नहीं होता क्योंकि उसकी योग्यता नहीं है। स्फटिक की पर्याय की योग्यता में लाल-पीले फूल के संयोग से अपने से अन्दर लाल-पीली झांई दिखती है, वस्तु स्वरूप ऐसा नहीं है। वस्तु निर्मल है।

जैसे स्वभाव से निर्मल स्फटिक में लाल-काले फूल के संयोग से रंग दिखते हैं,... आहा..! रंग दिखते हैं, है नहीं। अन्तर स्वरूप में नहीं है। जैसे निर्मलता...

जेम निर्मलता रे स्फटिक तणी, तेम ज जीव स्वभाव रे...
जेम निर्मलता रे स्फटिक तणी, तेम ज जीव स्वभाव रे...
श्री वीरे धर्म प्रकाशियो, श्री जिनवीरे धर्म प्रकाशियो,
प्रबल कषाय अभाव रे...

कषाय के अभाव में भगवान ने धर्म बताया। अर्थात् वीतरागभाव की पर्याय प्रगट करने को धर्म बताया। चारों अनुयोग का सार, चारों अनुयोग है, उसका सार, पंचास्तिकाय की १७२ गाथा में कहा है कि चारों अनुयोग का सार वीतरागता है। कोई कहे कि कथानुयोग में ऐसा आया है, फलाने में ऐसा आया है। वहाँ पाठ है। पंचास्तिकाय १७२ गाथा। संस्कृत है। चारों अनुयोग का सार वीतरागता है। वीतराग पर्याय है। चारों अनुयोग का सार वीतराग पर्याय है। वीतरागपर्याय, वीतरागस्वभाव में से प्रगट होती है।

जैसे स्फटिक निर्मल है, वैसे भगवान अन्दर निर्मलानन्द प्रभु, एक समय की पर्याय के सिवा आनन्दकन्द निर्मलानन्द, उसमें रंग, गन्ध कुछ नहीं है। उस निर्मलता में दृष्टि देने से वीतरागपर्याय जैसे कहा, चारों अनुयोग का सार वीतरागता है। कोई कहे कि कथानुयोग में व्यवहार कहा है, फलाना कहा है, ढिकना कहा है। वह सब कहा है। १७२ गाथा, पंचास्तिकाय। मूल पाठ (है)। वीतरागपर्याय है पूरा सार। वीतरागपर्याय उत्पन्न होती है कैसे? वीतरागपर्याय चारों अनुयोग का सार, उत्पन्न कैसे होती है? वीतरागभाव आत्मा है, उसमें से उत्पन्न होती है। आहाहा!

चारों अनुयोगों का सार आत्मा चिदानन्द निर्मलानन्द प्रभु, उसका अवलम्बन और आश्रय लेना, वह चारों अनुयोगों का सार है। आहाहा! समझ में आया? पाठ है। कोई कहे कि द्रव्यानुयोग में अमुक है और कथानुयोग में व्यवहार प्रधान है, चरणानुयोग में व्यवहार से लाभ हो ऐसा है। सब कथन के कोई भी प्रकार हो, परन्तु सार तो वीतरागता है। वीतराग धर्म है। वीतराग धर्म है तो वीतरागीपर्याय, प्रथम सम्यग्दर्शन चौथे गुणस्थान में (होता है), वह वीतरागीपर्याय है। सम्यग्दर्शन कोई चीज़ ऐसी नहीं है कि श्रद्धा करके मान लिया। सम्यग्दर्शन वीतरागीपर्याय और वीतरागी आनन्द के अंश का स्वाद है।

मुमुक्षु :– वीतराग पर्याय भी है और वीतराग।

पूज्य गुरुदेवश्री :– स्वाद है। उसका कारण कि अनन्त गुण है न? अनन्त गुण पर दृष्टि देने से अनन्त गुण की पर्याय में व्यक्तता, सर्व गुण की व्यक्तता, अनन्त गुण की एक समय की व्यक्तता प्रगट होती है। एक ही गुण की प्रगट होती है, ऐसा नहीं। जितने गुण है, सब गुण की पर्याय व्यक्त होती है। अयोग नाम का गुण है कि जो चौदहवें गुणस्थान

में अयोग होता है, वह चौथे गुणस्थान से अयोगगुण की पर्याय की व्यक्तता एक अंश से प्रगट होती है। आहाहा! समझ में आया? निर्मलानन्द प्रभु... कहा न?

स्वभाव से निर्मल स्फटिक में लाल-काले फूल के संयोग से रंग दिखते हैं, तथापि वास्तव में स्फटिक रंगा नहीं गया है,... स्फटिक में रंग आया नहीं। वैसे राग और द्वेष, पुण्य और पाप के विकल्प की जाल पर्याय में दिखे। वस्तु में नहीं है। वस्तु तो निर्मलानन्द स्फटिक जैसी है। वीर ने ऐसा प्रकाश किया। 'जेम निर्मलता स्फटिक तणी, तेम जीव स्वभाव, श्री जिनवीरे धर्म प्रकाशियो, प्रबल कषाय अभाव...' कषाय का अभाव कहो या वीतरागभाव कहो। आहाहा! प्रथम सम्यग्दर्शन की शुरुआत से वीतरागता उत्पन्न होती है। सूक्ष्म बात है, प्रभु! वीतराग अवस्था के बिना चौथा गुणस्थान आता नहीं। क्योंकि आत्मा वीतरागस्वरूप है, आत्मा त्रिकाल वीतरागस्वरूप है। तो वीतराग स्वरूप के अवलम्बन से पर्याय में वीतरागता का अंश आता है। अरे..! वीतरागता का अंश क्या, अयोग नाम के गुण का भी एक अंश प्रगट होता है। आहाहा! चौदहवें गुणस्थान में अयोग होता है। एक अंश नीचे सम्यग्दर्शन में प्रगट होता है। क्यों? सर्व गुणांश ते समकित।

समकित अर्थात् क्या? सर्व गुणांश ते समकित। जितने गुण संख्या से, उन सर्व गुण का एक अंश व्यक्त हो, उसका नाम समकित है। सर्व गुणांश ते समकित। समकित की एक ही पर्याय प्रगट होती है, ऐसा नहीं। समकित की पर्याय प्रगट होती है, आनन्द की होती है, शान्ति की होती है। शान्ति अर्थात् चारित्र, चारित्रगुण आत्मा में त्रिकाल है। उसका एक अंश स्थिरता होती है। वीर्यगुण। वीर्य स्वरूप की रचना करे, शुद्ध रचना करे, वीर्य भी एक अंश प्रगट होता है। चौथे गुणस्थान में सर्व अनन्त गुण का एक अंश प्रगट होता है। यह वाक्य कहा, वह श्रीमद् का कहा। सर्व गुणांश ते समकित।

अपने में रहस्यपूर्ण चिट्ठी में है। टोडरमल। टोडरमल की रहस्यपूर्ण चिट्ठी में लिखा है कि चौथे गुणस्थान में ज्ञानादि अनन्त गुण का अंश प्रगट होता है। ऐसा पाठ है। मोक्षमार्ग प्रकाशक में पीछे डाला है। आहाहा! जितनी संख्या अनन्त अनन्त गुण की है, प्रभु का स्वीकार होने से, प्रभु के सन्मुख होने से पर्याय और राग के विमुख होने से अनन्ता अनन्ती संख्या गुणवाली जो चीज़, उसमें प्रत्येक गुण का अंश, अनन्त-अनन्त गुण है, अनन्त-अनन्त गुण का अंश पर्याय में व्यक्तपने प्रगट अनुभव में आता है। आहाहा! ऐसा मार्ग है।

निर्मल स्फटिक मणि जैसा भगवान है। आहाहा! रंग आदि तो पर्याय में है। पर्याय में रंग है, वह भी रंग के कारण नहीं है। स्फटिक की योग्यता के कारण है। समझ में आया? आहा..! बात ऐसी है। बात-बात में अन्तर है, प्रभु! लाल और पीला फूल है, इसलिए यहाँ लाल-पीला प्रतिबिम्ब उठा, ऐसा नहीं है। स्फटिक की पर्याय का ऐसा स्वभाव है।

जैसे लोहा... दियासलाई लो, दियासलाई से बीड़ी पीते हैं तो इस ओर अग्नि है और इस ओर शांति है। दियासलाई पूरी उष्ण नहीं होती। ऐसे लकड़ा हो पाँच हाथ लम्बा, अग्नि में रखो तो इतना गरम होगा, जितना है उतना। पूरा गरम नहीं होगा क्योंकि योग्यता नहीं है। परन्तु लोहे का पाँच हाथ लम्बा टुकड़ा हो, वह यदि थोड़ा भी अग्नि में हो तो भी पूरा गरम हो जाता है। पूरा उष्ण हो जाता है। वह अपनी योग्यता है, अग्नि से होता है - ऐसा नहीं। आहाहा! गजब बात है, प्रभु!

प्रत्येक गुण की पर्याय चौथे (गुणस्थान में) प्रगट होती है। योग्यता का कारण कहा। आहा..! मार्ग अलग है, प्रभु! ये तो शान्तरस का मार्ग है। शान्ति.. शान्ति.. शान्ति। कषाय के भाव का अभाव। भले एक अंश अनन्तानुबन्धी का अभाव। परन्तु अनन्त मिथ्यात्व और मिथ्यात्व के साथ कषाय अनन्तानुबन्धी है। पहले कषाय को अनन्तानुबन्धी क्यों कहा? कि अनन्त अर्थात् मिथ्यात्व के साथ सम्बन्ध है, इसलिए अनन्तानुबन्धी कहा। जहाँ मिथ्यात्व गया, स्वरूप निर्मलानन्द मेरा स्वभाव त्रिकाल निर्मल स्वभाव है। ऐसी जहाँ दृष्टि हुई, वहाँ स्थिरता का अंश भी साथ में आया। क्योंकि अनन्तानुबन्धी कषाय चारित्रमोह की प्रकृति है। अनन्तानुबन्धी की प्रकृति चारित्रमोह की है। उसके जाने के बाद कुछ तो चारित्र होगा या नहीं? चारित्र नाम भले नहीं देते, लेकिन स्वरूपाचरण चौथे गुणस्थान में प्रगट होता है। कोई ना कहता हो तो उसे मालूम नहीं है। सम्यग्दर्शन में स्वरूपश्रद्धा, स्वरूपज्ञान और स्वरूपआचरण तीनों प्रगट होते हैं।

यहाँ कहते हैं, स्फटिक का निर्मल स्वभाव है, वैसे भगवान का निर्मल स्वभाव है। **वास्तव में स्फटिक रंगा नहीं गया है,...** वैसे आत्मा में राग और द्वेष, पुण्य और पाप के विकल्प की जाल हो, परन्तु स्वरूप वैसा हुआ नहीं। शुद्ध स्वरूप वैसा हुआ नहीं। वह तो पर्याय में ऐसा हुआ है। ऊपर-ऊपर वैसा हुआ है। अन्दर तल में उसका स्पर्श नहीं है। आहाहा! भगवान आत्मा, उसका जो तल अन्दर पूर्ण है, उसमें राग-द्वेष का प्रवेश नहीं।

वैसे ही स्वभाव से निर्मल आत्मा में क्रोध-मानादि दिखायी दें,... क्रोध, मान, माया अनादि से दिखाई देते हैं, परन्तु वह पर्याय में दिखाई देते हैं; वस्तु में नहीं। आहाहा! भ्रम से देखता है, वह भी पर्याय में है, वस्तु में नहीं। वस्तु तो निर्मलानन्द परमात्मस्वरूप अतीन्द्रिय सर्वांग आनन्द से भरा हुआ, अतीन्द्रिय आनन्द से भरपूर परिपूर्ण है। आहाहा! दिखाई देते हैं। कैसे ? जैसे स्फटिक में रंग दिखाई देते हैं, वैसे भगवान आत्मा में, कर्म से नहीं। जैसे उस रंग से प्रतिबिम्ब नहीं उठता। क्या कहा ? रंग का फूल आया, इसलिए वहाँ प्रतिबिम्ब उठता है, ऐसे नहीं। उसकी योग्यता से वहाँ पर्याय हुई है। आहाहा! ऐसे आत्मा में पर्याय में जो क्रोध, मान है, वह कर्म से नहीं हुआ है। अपनी योग्यता से उत्पन्न हुआ है। आहाहा! तीनों चीज़ अलग है। एक कर्म अलग, विकार की पर्याय अलग। आहाहा! स्फटिक रत्न जैसा चैतन्यस्वभाव निर्मलानन्द, वह तो बिल्कुल भिन्न है। अरे..! ऐसा जो भगवान तेरे पास है। बहिन के वचन में एक जगह आता है। तेरे पास तू आनन्द का नाथ है। तू ही आनन्द कानाथ है, पास क्या ? तेरी नजर वहाँ नहीं जाती और बाहर में इसका ऐसा और उसका वैसा। बाह्य क्रियाकाण्ड में रुककर वहाँ अटक गया।

यहाँ कहा कि **आत्मा में क्रोध-मानादि दिखायी दें, तथापि...** तो भी **वास्तव में आत्मद्रव्य उनसे भिन्न है।** आहाहा! द्रव्य कभी रागरूप होता नहीं। द्रव्य कभी संसार के कोई विकल्परूप होता नहीं। आहा..! ऐसा जो द्रव्यस्वभाव है, वह निर्मल स्फटिक जैसा है। कहते हैं, आत्मद्रव्य में क्रोधादि दिखते हैं, मानादि देखता है, उससे भिन्न है। वास्तव में तो ऐसी चीज़ है कि अपनी रुचि नहीं होकर, अपने सिवा पुण्य और पाप के सूक्ष्म भाव, उसकी जिसको रुचि है, उसको स्वरूप प्रति द्वेष है, अरुचि है। जिसे राग की रुचि है, उसे प्रभु के प्रति अरुचि है। यहाँ प्रभु अर्थात् आत्मा कहते हैं। आहा..!

आनन्दघनजी श्वेताम्बर में हुए हैं। उन्होंने कहा है, अरुचि द्वेष स्वभाव। भगवान आनन्द के नाथ प्रति प्रेम नहीं है और यहाँ प्रेम है, राग का एक अंश भले शुभ हो, उसमें जो प्रेम लगा है, वह आत्मा के प्रति अरुचि / द्वेष है। यहाँ राग है, यहाँ द्वेष है। राग का राग है और आत्मा के प्रति द्वेष है। आहाहा! सूक्ष्म बात है, बापू! भगवान! तेरी बात को क्या कहे ? भगवन् स्वरूप पूरा है। उसका पूरा स्वरूप भगवतस्वरूप है। यह तो चमड़ी, हड्डी दिखते हैं, वह कोई वस्तु नहीं है। वह तो जड़ में चली जाएगी। अन्दर चैतन्यरत्न हीरा।

आहाहा! उसमें जो विकार दिखाई देता है, विकार दिखता है, वह उसमें नहीं है। वह पर्याय में-एक समय की दशा में विकार है। वह कहते हैं, देखो!

क्रोध अनादि से दिखाई देते हैं। वह तो अनादि से दिखता है। पहले पर्याय में शुद्ध था और बाद में अशुद्ध हुआ, ऐसा है नहीं। क्या कहा? द्रव्य तो शुद्ध ही अनादि से है। परन्तु पर्याय भी अनादि से शुद्ध थी और बाद में अशुद्ध हुई, ऐसा है नहीं। क्या कहा, समझ में आया? फिर से कहते हैं। द्रव्य जो शुद्ध है, वह अनादि से है और पर्याय जो अशुद्ध दिखती है, वह कर्म से नहीं, अपनी योग्यता से ऐसी है परन्तु वह पर्याय में-अवस्था में है, स्वभाव में नहीं।

मुमुक्षु :- ...

पूज्य गुरुदेवश्री :- नहीं, नहीं। दूसरी अपेक्षा इसके सिवा लागू नहीं पड़ती। ऐसी वस्तु है, भैया! यह तो अन्तर की बातें हैं। जिसे बैठे, वह बैठाये, दूसरा क्या हो?

पर्याय में राग दिखता है, स्वभाव में नहीं और राग दिखता है, वह कर्म के कारण नहीं। आहाहा! स्फटिक का दृष्टान्त दिया न? लाल-पीला प्रतिबिम्ब उठता है, वह अपनी योग्यता से है। लाल-पीले फूल से हो तो इसके नीचे रख दे। इसके नीचे इसमें होना चाहिए। लकड़ी लो, लकड़ी। उसके नीचे फूल रखो तो प्रतिबिम्ब उठना चाहिए। उसकी पर्याय में योग्यता है। आहाहा!

मुमुक्षु :- पर्याय की योग्यता या द्रव्य की?

पूज्य गुरुदेवश्री :- पर्याय की योग्यता है। द्रव्य तो जैसा है, ऐसा आनन्द का नाथ प्रभु शुद्ध है। आहाहा!

वास्तव में आत्मद्रव्य क्रोधादि विकार से। क्रोध, मान, माया, लोभ, विषय वासना, भ्रम से भिन्न है। आहाहा! **वस्तुस्वभाव में मलिनता नहीं है।** भगवान का वस्तु स्वभाव देखो तो मलिनता नहीं है। वह तो ऊपर पर्याय में मलिनता दिखती है। संसार पर्याय में है। संसार बाहर नहीं है। स्त्री, कुटुम्ब, परिवार, पैसा, लक्ष्मी, दुकान संसार नहीं है और संसार द्रव्य में नहीं है। आहाहा! समझ में आया? संसार है उसकी पर्याय में। संसरण इति संसार। यह शब्द पड़ा है। प्रवचनसार। अन्तर स्वरूप आनन्द का नाथ, चिदानन्द नाथ ध्रुव, उसमें

से संसरण अर्थात् हट जाए। हटकर राग में आ गया है। राग-द्वेष में आ गया। इसलिए संसरण इति संसार। वह संसार है। आहा..! और इस संसार का नाश करना है। कोई बाह्य संसार में स्त्री-पुत्र छोड़कर अकेला फिरे, कपड़े छोड़कर, ऐसा अनन्त बार किया। आहाहा!

अन्तर में जो पर्याय में क्रोध, मानादि की योग्यता है, वह स्वरूप में नहीं है। स्वरूप की दृष्टि करके, स्वरूप का ध्यान करके, स्वरूप में जाकर, स्वरूप की भेंट करके एकाकार होता है तो मलिनता छूट जाती है। दूसरा कोई उपाय है नहीं। आहाहा! **वस्तुस्वभाव में मलिनता नहीं है।** एक दृष्टान्त दिया है। आहाहा!

जैसे **परमाणु पलटकर वर्ण-गन्ध-रस -स्पर्श से रहित नहीं होता,...** परमाणु एक है, वह कभी वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श गुण के बिना नहीं रह सकता। है ? परमाणु पलटकर, पलटकर **वर्ण-गन्ध-रस -स्पर्श से रहित नहीं होता,...** आहाहा! क्या कहा ? परमाणु का स्वभाव जो वर्ण, गन्ध, रस से रहित है, ऐसा कोई कहे तो ऐसे नहीं है। वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श उसका स्वभाव है। तो वह परमाणु वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श रहित हो गया है, ऐसा कोई कहे तो द्रव्य का नाश हो गया। आहाहा! परमाणु में वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श है। उसका पलटकर अभाव हो जाए, ऐसा तीन काल में नहीं है।

इसी प्रकार भगवान आत्मा,... आहाहा! अनन्त ज्ञान, दर्शन आनन्द से भरा है, वह पलटकर कभी विकार नहीं होता। समझ में आया ? थोड़ी सूक्ष्म बात है, प्रभु! आहाहा! परमाणु जैसे वर्ण, गन्ध, रस से रहित हो सके नहीं, अनादि-अनन्त परमाणु में वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श अनादि-अनन्त है। वैसे यह भगवान आत्मा अनादि-अनन्त आनन्द और शान्ति से भरा तत्त्व है। उसमें मलिनता है नहीं। आहाहा! परमाणु रंग बिना होता नहीं, वैसे भगवान राग बिना ही होता है। आहाहा! रागसहित होता तो... राग पर्याय में है, परन्तु वस्तु में राग है नहीं। क्रोध है नहीं, मान है नहीं। भ्रमणा भी उसके अन्दर नहीं है। भ्रमणा सब पर्याय में है। आहाहा! थोड़ा सूक्ष्म पड़ा। वस्तु ऐसी है, प्रभु! आहाहा!

यहाँ तो सब भगवान है, भाई! भगवान ही है। वह तो एक पर्याय में राग की एकता, जो उसकी योग्यता है, योग्यता तो उसकी है, कर्म से नहीं है। जैसे स्फटिक में प्रतिबिम्ब उठा है, लाल-पीले फूल है उससे नहीं, अपनी योग्यता से हुई है। वैसे यह विकार कर्म से नहीं, अपनी योग्यता से विकार है। परन्तु प्रभु तो त्रिकाल निर्मलानन्द है। परमाणु

पलटकर वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श रहित होता नहीं। वैसे तीन लोक का नाथ प्रभु पलटकर रागरूप कभी होता नहीं। आहाहा! ऐसा वस्तु स्वभाव (है)। किसके साथ वाद करे? वाद-विवाद भी कहाँ है? नियमसार में आगे प्रभु ने कहा है, आहाहा! चीज़ ऐसी है।... ऐसा पाठ है नियमसार का। अनेक प्रकार के जीव, अनेक प्रकार की उसकी लब्धि का उघाड़, अनेक प्रकार के जीव। नाना प्रकार के कर्म अर्थात् कर्म भिन्न-भिन्न है। स्वसमय और परसमय के साथ वाद मत करना। नियमसार में पाठ है। क्योंकि वह चीज़ तो अनुभव की चीज़ है। आहा..! वाद करने जाएगा तो व्यवहार के बहुत वचन आते हैं, उसे आगे रखेगा। आहाहा! गाथा में कहा है। स्वसमय और परसमय के साथ वाद-विवाद करना नहीं। स्वसमय से भी। आहाहा! जैनधर्म में रहकर भी जैनधर्म के लोगों के साथ वाद-विवाद नहीं। वह वस्तु ऐसी अगम्य है, प्रभु!

वह यहाँ कहते हैं। **परमाणु पलटकर...** आहाहा! वर्ण अर्थात् रंग, गन्ध, रस, स्पर्श रहित नहीं होता। **वैसे ही वस्तुस्वभाव नहीं बदलता।** भगवान चैतन्य आनन्दस्वरूप.. आहाहा! परमाणु रंग से अरंग नहीं होता, वैसे भगवान आत्मा निर्मलानन्द त्रिकाल से कभी विकाररूप नहीं होता। वस्तु विकाररूप नहीं होती। आहाहा! यहाँ तो वस्तु की श्रद्धा की बात है। अनुभव की बात है। आहाहा! **वैसे ही वस्तुस्वभाव नहीं बदलता।** जैसे परमाणु का वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श पलटकर क्या हो जाए? परमाणु अरूपी हो जाए? वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श से रहित हो तो अरूपी हो जाए? कभी होता नहीं। वैसे भगवान तीन लोक का नाथ, चैतन्यज्योति जलहल ज्योति स्वयं ज्योति सुखधाम, वह पलटकर क्या हो जाए? क्या राग हो जाए? जड़ हो जाए? आहाहा! आहाहा! ऐसी चीज़ प्रभु तेरे पास है, तू ही है। पास कहने में थोड़ा (भेद रहता है)।

यह तो पर से एकत्व तोड़ने की बात है। बहिन तो कहते हैं कि यह मैंने क्यों कहा? कि पर से एकत्व तोड़ने की बात है। विकार आत्मा में नहीं है और विकार पर्याय में है, एक समय की पर्याय में है, यह बात क्यों कही? कि विकार तोड़ने को कहा। क्योंकि विकार हमेशा का नहीं है, वस्तु नित्य है। आहाहा! भगवान आत्मा ज्ञानानन्द सहजानन्दस्वरूप त्रिकाली है, अनादि-अनन्त है और विकार है, वह क्षणिक एक समय का है। जैसे परमाणु पलटकर वर्ण रहित नहीं होता, वैसे भगवान पलटकर कभी विकाररूप नहीं होता। चाहे

तो निगोद में चला जाए। निगोद में अंगुली के असंख्य भाग में, असंख्यवें भाग में। असंख्य औदारिक शरीर है। निगोद। एक शरीर में अनन्त गुना जीव है। एक-एक जीव में साथ में दो-दो शरीर है। तैजस और कार्माण। आहाहा!

एक अंगुली के असंख्य भाग में असंख्य तो निगोद के औदारिक शरीर है। आहाहा! और एक-एक शरीर में अनन्त-अनन्त जीव है और एक-एक जीव को दो-दो शरीर साथ में है। सबकी संख्या अंगुली का असंख्यवाँ भाग। गजब बात है! ऐसा कहकर क्या कहते हैं? कि क्षेत्र की कोई महिमा नहीं है। छोटा-बड़ा क्षेत्र नहीं, वस्तु का स्वभाव क्या है? आहाहा! बड़ा क्षेत्र हो तो बड़ी चीज़ कहने में आये, छोटा क्षेत्र हो तो छोटी कही जाए, ऐसा नहीं है। छोटी-बड़ी कोई क्षेत्र से नहीं है। आहाहा!

जितने गुण आकाश में है, अनन्तानन्त। तीन काल के समय से अनन्त गुना। उतने गुण एक परमाणु में है। अरे.. प्रभु! क्योंकि द्रव्य है न? जितने गुण आकाश में है, उतनी (गुणों की) संख्या एक परमाणु में है। आहाहा! उतनी (गुणों की) संख्या आत्मा में है। परमाणु में जड़ है। भगवान सब चेतन है। आहा..! वह स्वभाव कभी पलटता नहीं।

यह तो पर से एकत्व तोड़ने की बात है। यह बात क्यों की? कि राग और स्वभाव दोनों बिल्कुल भिन्न है। बिल्कुल भिन्न है। राग से कुछ भी लाभ हो, शुभराग करते-करते अन्दर में प्रवेश होगा, वह बात बिल्कुल झूठ है। पहले शुभराग करे, शुभराग करते-करते अन्दर में जाना होगा। दु:ख करते-करते सुख में जाना होगा, ऐसा है। दु:ख वेदते-वेदते आनन्द में जाना होगा, ऐसी वह बात है। आहाहा! सूक्ष्म बात है, प्रभु! यहाँ बहिन कहती है, यह क्यों कहा? **यह तो पर से एकत्व तोड़ने की बात है।** आहा..! प्रभु! तेरे में आनन्द भरा है न, नाथ! तेरी पर्याय में जो थोड़ा विकार है, वह तो क्षणिक है। वह तो तेरी नजर फिरते ही टूट जाएगा। आहाहा! तेरी नजर फिरे, पर ऊपर तेरी नजर है, निधान पर नजर आये तो एक समय में टूट जाएगा। आहाहा! ऐसी ताकत है, प्रभु!

अन्तर में वास्तविक प्रवेश कर... बहिन कहती है.. थोड़ा बोले थे, बहुत थोड़ा बोलती है। यह भी थोड़ा बोले होंगे, बहनों ने लिख लिया। इसलिए बाहर आया, नहीं तो बाहर भी नहीं आये। बाहर में मर गये हैं। आहाहा! **अन्तर में वास्तविक प्रवेश कर...**

जिसमें विकार नहीं, निर्मलानन्द प्रभु, जैसे परमाणु पलटकर वर्णरहित नहीं होता, वैसे भगवान पलटकर, अनन्त ज्ञान-दर्शन पलटकर विकार नहीं होता। अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त चतुष्टय। जैसे परमाणु का वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श पलटता नहीं, वैसे आत्मा में अनन्त चतुष्टय भरा है। आहाहा! अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त आनन्द, अनन्त वीर्य। उस चतुष्टय से रहित आत्मा कभी होता नहीं, तीन काल में होता नहीं। ऐसा अन्दर में प्रवेश कर, प्रभु! ऐसा कहते हैं। तुझे महिमा लगती हो.. आहाहा! यह चीज़ महाप्रभु है। भले उसकी पर्याय में अनादि से विकार है परन्तु उसका अवधि कितना? एक समय। विकार की। अपनी मौजूदगी त्रिकाल है। आहाहा! त्रिकाली पर नजर कर, अन्तर प्रवेश कर। **तो (पर से) पृथक्ता हो।** तो पर से पृथक अर्थात् जुदा हो जाए, भेदज्ञान हो जाए। आहाहा!

कषाय का अंश ऊपर-ऊपर है और अन्दर की चीज़ में तो अकेला माल-आनन्द का माल भरा है। अतीन्द्रिय ज्ञान, अतीन्द्रिय आनन्द, अतीन्द्रिय वीर्य, अतीन्द्रिय शान्ति, अतीन्द्रिय प्रभुता, अतीन्द्रिय प्रभुता ऐसी अनन्त-अनन्त शक्ति का दल-पिण्ड पड़ा है। आहाहा! उसमें प्रवेश कर, प्रभु! आहाहा! उस चीज़ की ओर नजर कर। चाहे कोई भी निगोद का भव किया, परन्तु उसका द्रव्य तो जो है सो है। आहाहा! निगोद का भव। एक अक्षर के अनन्तवें भाग विकास है। फिर भी द्रव्य तो परिपूर्ण परमात्मस्वरूप ही पड़ा है। आहाहा! आहाहा

अन्तर में वास्तविक प्रवेश कर तो (पर से) पृथक्ता हो। तो पर से भिन्नता हो जाएगी। ८१ (पूरा हुआ)। उसके बाद? १००। कोई लिखनेवाले ने लिखा है। किसी ने रखा था।

'मैं अनादि-अनन्त मुक्त हूँ'—इस प्रकार शुद्ध आत्मद्रव्य पर दृष्टि देने से शुद्ध पर्याय प्रगट होती है। 'द्रव्य तो मुक्त है, मुक्ति की पर्याय को आना हो तो आये' इस प्रकार द्रव्य के प्रति आलम्बन और पर्याय के प्रति उपेक्षावृत्ति होने पर स्वाभाविक शुद्ध पर्याय प्रगट होती ही है॥ १००॥

१००।**‘मैं अनादि-अनन्त मुक्त हूँ’...** मुक्त सिद्ध होते हैं, वह सादि-अनन्त सिद्ध है। सिद्ध होते हैं, वह सादि-अनन्त है। प्रभु अनादि-अनन्त है। आहाहा! मुक्तदशा सादि—शुरुआत है, फिर अन्त नहीं है। सादि-अनन्त है। और प्रभु आत्मा है, वह तो अनादि-अनन्त है, उसकी आदि भी नहीं और अन्त नहीं है। इसकी तो आदि होगी, सिद्ध की सादि हो गयी। सिद्ध पर्याय जब होगी, तब आदि हो गयी। आत्मा में ऐसा है नहीं। आहाहा! **‘मैं अनादि-अनन्त मुक्त हूँ’..** आहाहा! अनादि-अनन्त मुक्त हूँ। कभी बँधा नहीं। आहाहा! अन्तर में बैठाने की बात है, प्रभु! अन्तर में दृष्टि करके, रुचि करके, पोषण करके अनुभव करने योग्य यह है। बाकी तो सब दुनिया की बातें बहुत है।

इस प्रकार शुद्ध आत्मद्रव्य पर दृष्टि देने से... शुद्ध आत्मद्रव्य पर दृष्टि देने से **शुद्ध पर्याय प्रगट होती है।** आहाहा! शुद्ध पर दृष्टि देने से.. वह तो समयसार में गाथा है। ... शुद्ध होता है, ... अशुद्ध होता है। गाथा है, समयसार में। आत्मा त्रिकाली शुद्ध है, ऐसी दृष्टि करे और अन्दर करे तो वह शुद्ध हो जाता है। और आत्मा को अशुद्ध माने तो वह चारों गति में अशुद्ध रहता है। समयसार में दो गाथा है। आहा..! यहाँ कहा, **‘मैं अनादि-अनन्त मुक्त हूँ’...** आहाहा! **इस प्रकार शुद्ध आत्मद्रव्य पर दृष्टि देने से शुद्ध पर्याय प्रगट होती है।** शुद्ध पर्याय कोई दूसरे प्रकार से प्रगट नहीं होती। आहाहा! अनादि-अनन्त ध्रुव भगवान, जिसमें पर्याय का बदलना भी नहीं है, उस पर दृष्टि देने से पर्याय प्रगट होती है-शुद्ध पर्याय प्रगट होती है।

शक्तिरूप तो है, ऐसा कहने में आता है। ध्रुव में सब पर्याय की शक्ति तो है। क्यों? कि जितनी पर्याय होती है, वह पर्याय एक समय रहकर विलय होती है। विलय-नाश होती है। नाश कहाँ से हो? सत् है। उत्पादव्ययध्रुवयुक्तं सत्। व्यय भी सत् है। आहाहा! उत्पादव्ययध्रुवयुक्तं सत्। तो व्यय भी सत् है। तो नाश होकर कहाँ जाए? व्यय होकर अन्दर द्रव्य में प्रवेश करती है। व्यय की पर्याय नाश होकर द्रव्य में जाती है। आहा..! है न? **शुद्ध पर्याय प्रगट होती है।** क्योंकि पर्याय शक्तिरूप तो अन्दर सब पड़ी है। परन्तु अन्तर उसका स्वीकार.. ओहो! गहराई में उसका स्वीकार करने से, पर्याय के तल में जाने पर जो परमात्मा पूर्ण स्वरूप विराजता है, वह द्रव्य तो मुक्त है। तेरे ख्याल में आ जाएगा, तुझे आनन्द होगा। आहाहा! सम्यग्दर्शन में आनन्द होगा। अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद

आना। आहाहा! क्योंकि अनन्त गुण है। सब गुण का अंश प्रगट होता है। तो आनन्द भी प्रगट होता है। स्वरूप की रचनावाला वीर्य भी प्रगट होता है। और प्रभुता, उसमें प्रभुता पड़ी है आत्मा में। समयसार में ४७ शक्ति है न। उसमें एक प्रभुता शक्ति है। आहाहा! उस प्रभुता शक्ति में से प्रभुता आती है। पर्याय में प्रभुता आती है। आहाहा! चौथे गुणस्थान में प्रभुता का अंश बाहर आता है। आहाहा! ऐसा मार्ग!

'द्रव्य तो मुक्त है, मुक्ति की पर्याय को आना हो तो आये'... क्या कहा? मेरी दृष्टि तो द्रव्य पर-ध्रुव पर है। पर्याय होनेवाली होगी तो होगी। तेरे दरकार क्या है? मैं तो ध्रुव पर दृष्टि रखता हूँ। आहाहा! **'मुक्ति की पर्याय को आना हो तो आये'... 'द्रव्य तो मुक्त है,..'** उस पर दृष्टि देने से पर्याय में मुक्ति होगी ही। उसमें होगी ही। आहाहा! मुक्त भगवान, उसकी पर्याय मुक्त, अपूर्ण पर्याय मुक्त, पूर्ण पर्याय मुक्त, वस्तु मुक्त। आहाहा! क्या कहा? भगवान वस्तु मुक्त, उसका मार्ग जो मोक्षमार्ग अन्दर है, अल्प है, वह भी मुक्त और पूर्ण सिद्धदशा, वह भी मुक्त। उसका मुक्त के साथ सम्बन्ध है। राग के साथ एक समय का सम्बन्ध है, वह कोई मूल चीज़ नहीं है। आहाहा! कठिन काम है, भाई! दुकान चलानी, यह सब करना, इसका समय कब मिले? बापू! ये तो समय है। आहाहा! समय एक बार आयेगा और देह छूट जाएगा। ऐसा समय आयेगा कि मालूम नहीं पड़ेगा, बैठे-बैठे देह छूट जाएगा, एकदम से। अभी यहाँ एक लड़का था, दस साल का। ऐसे बैठा था। कुछ नहीं था। कहने लगा, मुझे गले में कुछ है। कोई व्याधि बताई थी। बैठा था, कुछ नहीं। दस मिनिट में देह छूट गया। पहले हीराभाई के मकान में रहते थे। हीराभाई के मकान में रहते थे न, उनके लड़के का लड़का, उसका लड़का। उसका नाम कुछ होगा, कुछ कहते थे।

यहाँ तो कहते हैं, जैसे वह रोग क्षण में देह का अन्त लाता है; वैसे तीन लोक के नाथ के सन्मुख देखने पर (संसार का) क्षण में नाश होकर मोक्ष होता है। आहाहा! अरे..! वह चीज़ क्या है? अन्दर कौन कितनी ताकत और क्या शक्ति है? आहा..! जिसकी तुलना सिद्ध के साथ भी नहीं। सिद्ध की पर्याय के साथ नहीं, द्रव्य के साथ है। आहाहा! सिद्ध की पर्याय जैसी अनन्ती पर्याय तो एक-एक गुण में पड़ी है। ऐसा द्रव्यस्वभाव। आहाहा!

'द्रव्य तो मुक्त है, मुक्ति की पर्याय को आना हो तो आये'... आहाहा! बहिन आये नहीं है अभी। दोपहर को आयेंगे। शरीर में कमजोरी है। सिद्ध की पर्याय होनी हो तो हो,

मुझे क्या ? मैं तो त्रिकाली आनन्दकन्द ध्रुव हूँ। आहाहा! ऐसा कहते हैं। मैं तो त्रिकाली अनादि-अनन्त आनन्द, वीर्य, शान्ति और प्रभुता का पिण्ड भरा है। सिद्धपर्याय आनेवाली होगी तो आयेगी। आहाहा! उसकी भी हमको परवाह नहीं है। हमने तो अन्दर प्रभु देखा है। ध्रुवस्वरूप ध्रुव भगवान। उस दृष्टि के समक्ष सिद्ध की कोई कीमत नहीं है।

इस प्रकार द्रव्य के प्रति आलम्बन और पर्याय के प्रति उपेक्षावृत्ति... इस प्रकार द्रव्य के प्रति आलम्बन। त्रिकाली ध्रुव भगवान का आलम्बन। कोई बाह्य आलम्बन से वह प्रगट हो, ऐसी चीज़ है नहीं। भगवान का आलम्बन है... विवाद होता है न ? स्थानकवासी और मन्दिरवासी में। श्वेताम्बर कहे कि आलम्बन चाहिए, वह कहता है आलम्बन नहीं चाहिए। बाहर का आलम्बन। यहाँ तो बाहर का आलम्बन काम नहीं करता। कोई आलम्बन नहीं है। निरालम्बी भगवान त्रिलोकनाथ है। जिसको कोई अपेक्षा लागू पड़ती नहीं। आहाहा! **इस प्रकार द्रव्य के प्रति आलम्बन और पर्याय के प्रति उपेक्षावृत्ति...** पर्याय के प्रति उपेक्षा। दरकार नहीं कैसी है। आहाहा!

मुमुक्षु :- ज्ञानी को मुक्ति नहीं चाहिए न ?

पूज्य गुरुदेवश्री :- दरकार ध्रुव पर है। मुक्ति आती है। ध्रुव के जोर में कहते हैं। मेरा लक्ष्य ध्रुव पर है, मुक्ति आयेगी ही। आनेवाली आयेगी तो आयेगी ही। मुक्ति की अनन्त-अनन्त पर्याय जिसमें भरी है। आहाहा! एक केवलज्ञान की एक पर्याय सादि-अनन्त केवलज्ञान की पर्याय सादि-अनन्त एक ज्ञानगुण में पड़ी है। भगवान आत्मा का एक ज्ञानगुण, उसमें सादि-अनन्त जो केवलज्ञान, कभी अन्त नहीं। एक पर्याय (ऐसी) अनन्त पर्याय उससे अनन्तगुनी अन्दर पड़ी है। आहाहा! अरे..! प्रभु! तूने आत्मा देखा नहीं, आत्मा को जाना नहीं। आत्मा किसे कहना ? आहाहा! यह बात विस्मृत हो गई है और दूसरे रास्ते पर चढ़ गई है। प्रवृत्ति के रास्ते पर चढ़ गई है। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं, **द्रव्य के प्रति आलम्बन और पर्याय के प्रति उपेक्षावृत्ति...** पर्याय चाहे तो मोक्षमार्ग की हो, परन्तु पर्याय के प्रति उपेक्षा (है)। क्योंकि पर्याय को भी परद्रव्य कहा है। ५०वीं गाथा। समझे ? नियमसार। पर्याय को परद्रव्य कहा है। स्वद्रव्य मेरा यहाँ है, तो परद्रव्य तो आयेगा ही। पर्याय उसमें से निकलकर आयेगी ही। आहाहा! निःसन्देह,

नि:शंक। जो पाया, वह गिर जाएगा, ऐसी शंका ज्ञानी को है नहीं। पंचम काल के प्राणी के लिये ऐसा लिया है। ३८ गाथा, ९२ गाथा। मूल पाठ में ऐसा लिया है कि श्रोता अप्रतिबुद्ध था, उसे समझाया और समझा तो वहाँ तक कहा, हमारा ज्ञान और दर्शन अप्रतिहत है। गिरेगा नहीं। शंका नहीं है। पंचमकाल का प्राणी-श्रोता को प्रगट हुआ, वह ऐसी दशा है। कदाचित् एकाध भव हो, उसका कुछ नहीं। आहाहा! चीज़ तो यह है।

मुमुक्षु :- ...

पूज्य गुरुदेवश्री :- पत्र ऐसा है न। पत्र ऐसा है न। देखो न! **'मुक्ति की पर्याय को आना हो तो आये'...** आयेगी ही। जहाँ भगवान को-मूल को पकड़ लिया। वृक्ष के मूल को पकड़ लिया तो फल-फूल तो होंगे ही। जिसमें मूल पकड़ा, उसे फल-फूल तो होंगे ही। ऐसे भगवान आत्मा को पकड़ा, उसमें सिद्धपर्याय तो फल है। फल आकर ही छुटकारा है।

द्रव्य के प्रति आलम्बन और पर्याय के प्रति उपेक्षावृत्ति होने पर स्वाभाविक शुद्ध पर्याय प्रगट होती ही है। आहाहा! पर्याय के प्रति उपेक्षावृत्ति, चाहे तो पर्याय चार ज्ञान की हो, क्षायिक पर्याय हो-क्षायिक समकित, परन्तु पर्याय के प्रति उपेक्षावृत्ति। आहाहा! **पर्याय के प्रति उपेक्षावृत्ति होने पर स्वाभाविक शुद्ध पर्याय प्रगट होती ही है।** ऐसी वस्तु की स्थिति और मर्यादा है। वह तो पहले आ गया है अपने। जहाँ चैतन्य की पर्याय प्रगट हुई, उसकी यदि पूर्णता न हो तो जगत का नाश होगा। पूर्ण दृष्टि जहाँ हुई और वह साधकपना पूर्ण न हो, तो द्रव्य नहीं रह सकता। द्रव्य न रहे तो, सब द्रव्य नहीं रहते, तो जगत शून्य हो जाए। आहाहा! यह बात पहले आ गयी है। ऐसे आत्मा में जो साधकपना उत्पन्न हुआ, उसमें सिद्धपना आयेगा, आयेगा और आयेगा। सिद्धपना न आवे तो उस द्रव्य का नाश हो। साधकपना का अभाव होता है। साधक का फल साध्य-सिद्धपद आना चाहिए। वह नहीं आये तो साधक का नाश होने पर द्रव्य का नाश हो जाए। आहाहा! थोड़ी सूक्ष्म बात है। विशेष कहेंगे.... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

विक्रम संवत-२०३५, श्रावण शुक्ल - ५, शुक्रवार, तारीख १५-८-१९८०
वचनामृत-६२, १०५, १४०, ४०१ प्रवचन-८

जीव ज्ञायक के लक्ष्य से श्रवण करे, चिन्तवन करे, मन्थन करे, उसे भले कदाचित् सम्यग्दर्शन न हो, तथापि सम्यक्त्वसन्मुखता होती है। अन्दर दृढ़ संस्कार डाले, उपयोग एक विषय में न टिके तो अन्य में बदले, उपयोग सूक्ष्म से सूक्ष्म करे, उपयोग में सूक्ष्मता करते-करते, चैतन्यतत्त्व को ग्रहण करते हुए आगे बढ़े, वह जीव क्रम से सम्यग्दर्शन प्राप्त करता है॥ ६२॥

वचनामृत, ६२। फिर से किसी को सुनने का भाव है। सम्यग्दर्शन पाने की कला है। जिसको सम्यग्दर्शन हो, उसको तो आनन्द का अनुभव होता है। इसलिए किसी को पूछना पड़े या किसी को कहना पड़े या उस विषय में किसी से कुछ सुनना पड़े, ऐसा नहीं है। सम्यग्दर्शन जो है, वह तो अनन्त गुण का पिण्ड प्रभु, अनन्त आनन्द के स्वाद का अनुभव करता हुआ सम्यग्दर्शन प्रगट होता है। आहाहा! और एक सम्यग्दर्शन होने के बाद पंचम गुणस्थान और मुनि की दशा आती है। पहले नहीं आती। यहाँ ६२ में तो सम्यग्दर्शन सन्मुख होने के योग्य कौन है, यह कहते हैं।

जीव ज्ञायक के लक्ष्य से श्रवण करे,... आहाहा! श्रवण के लिये श्रवण नहीं। ज्ञायकस्वरूप भगवान अन्दर, उसके लक्ष्य से श्रवण करे। मुझे आयेगा तो मैं किसी को कह सकूँ, मैं उपदेश दे सकूँ, ऐसा कोई लक्ष्य नहीं। ज्ञायक के लक्ष्य से। मात्र जाननेवाला आत्मा त्रिकाली ज्ञायक के लक्ष्य से श्रवण करे। **चिन्तवन करे,...** उसके लक्ष्य से चिन्तवन करे। उसका लक्ष्य छोड़कर चिन्तवन-बिंतवन (करे), वह कोई चीज़ नहीं है। और **मन्थन करे,...** ज्ञायक के लक्ष्य से अन्दर मन्थन करे। सूक्ष्म बात है, प्रभु! अभी तो समकित प्राप्त करने की रीति की कला है यह। अन्तर स्वरूप दृष्टि में अनुभव में जब तक आया नहीं, तब तक उसके सन्मुख (होकर) मन्थन करे। आहाहा!

उसे भले कदाचित् सम्यग्दर्शन न हो, तथापि सम्यक्त्वसन्मुखता होती है। अन्तर में यदि स्वसन्मुख से श्रवण, मनन, चिन्तवन हो, स्वसन्मुख से श्रवण, चिन्तवन, मनन हो तो वह सम्यग्दर्शन-सन्मुख होता है। **अन्दर दृढ़ संस्कार डाले,...** बात वह कि एक ही धुन लगे अन्दर। आनन्दसागर प्रभु ज्ञायक, उस ज्ञायक की अन्दर धुन लगे। उस धुन में दूसरी कोई चिन्ता रहे नहीं। ऐसी धुन लगे तो वह समकित-सन्मुख है। ज्ञायक की धुन लगे। कोई वाँचन की, श्रवण की या दूसरी नहीं। अन्दर ज्ञायक की धुन लगे। चिदानन्द भगवान ज्ञायकस्वरूप चैतन्य दल, अरूपी महासागर। स्वयंभूरमण समुद्र में तल में रेत नहीं है। स्वयंभूरमण समुद्र है, (उसके) तल में रेत नहीं है। अकेले हीरा-माणिक भरे हैं। रत्न भरे हैं। सुना है ? स्वयंभूरमण समुद्र में नीचे अकेले रत्न भरे हैं। रेत नहीं है। आहा..! दुनिया का दिखाव तो देखो। बाहर का दिखाव। स्वयंभूरमण असंख्य योजन लम्बा है। पूरा रत्न से भरा है, रेत नहीं। यह भगवान तो उसे भी जाननेवाला-देखनेवाला अपने में रहकर, तो उसकी कीमत क्या कहना! उसमें अनन्त रत्न ऐसे भरे हैं कि स्वयंभूरमण तो जड़ का रत्न है, यह चैतन्य आकर है। चैतन्य के रत्न का समुद्र प्रभु है। हिन्दी में छे आ जाता है।

इसलिए कहते हैं कि **अन्दर दृढ़ संस्कार डाले, उपयोग एक विषय में न टिके...** यह क्या कहते हैं ? ज्ञान लक्ष्य में लेने पर वहाँ कदाचित् उपयोग न टिके तो यह आनन्द है, आत्मा आनन्द है, ऐसे उपयोग को पलटे। आत्मा अन्दर शान्त वीतरागस्वरूप है, ऐसे विचार में उपयोग को पलटाये। एक ही उपयोग में न रह सके तो उपयोग (पलटे)। परन्तु यह उपयोग, हों अन्दर। अन्दर गुण का उपयोग और भेद ऊपर लक्ष्य को पलटे। आहाहा! **तो अन्य में बदले,...** तो अन्य में बदले। **उपयोग सूक्ष्म से सूक्ष्म करे,...** जिसमें कोई चिन्ता नहीं है। पूरी दुनिया से उदास भाव। पूरी दुनिया मेरी नहीं है, मैं तो एक आत्मा आनन्द हूँ। आनन्द सिवा मेरी कोई चीज़ बाहर में नहीं है। ऐसी उदासीन अवस्था, उसमें करके उपयोग सूक्ष्म से सूक्ष्म करे। आहाहा!

मुमुक्षु :- करे या होता है ?

पूज्य गुरुदेवश्री :- वह करे, तब होता है न। अपने आप हो जाता है, ऐसा नहीं। करे तो होता है। आहाहा!

उपयोग सूक्ष्म से सूक्ष्म करे,... आहाहा! पर्याय में, प्रत्येक द्रव्य की पर्याय में षट्कारक है। प्रत्येक द्रव्य, जितने अनन्त द्रव्य है, उसकी एक समय की पर्याय में षट्कारक है। पर्याय पर्याय की कर्ता; पर्याय कर्ता का कार्य-कर्म; पर्याय पर्याय का साधन-करण; पर्याय करके पर्याय में रखी-सम्प्रदान; पर्याय से पर्याय हुई और पर्याय के आधार से पर्याय हुई। आहाहा! अनन्त जितने द्रव्य जगत में है, भगवान ने जो कहे, प्रत्येक द्रव्य की एक समय की पर्याय में षट्कारक परिणमन है। आहाहा! अज्ञानी को भी अज्ञान में षट्कारक परिणमन है। ज्ञानी को ज्ञान और आनन्द में षट्कारक का परिणमन है। आहाहा! समझ में आया? वह षट्कारक स्वसन्मुख करे। भले वस्तु बनी न हो, परन्तु प्रत्येक षट्कारक का परिणमन भगवान तो कहते हैं। जितने द्रव्य हैं, अरे..! एक परमाणु, एक परमाणु की पर्याय। एक परमाणु की पर्याय, उसमें षट्कारक है। आहाहा! कर्ता, कर्म, करण, सम्प्रदान, अपादन, अधिकरण। छह बोल के सिवा कोई तत्त्व है नहीं। आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि अपने आत्मा में लक्ष्य लगाकर, उपयोग सूक्ष्म करके अन्दर धुन लगावे। आहाहा! **उपयोग में सूक्ष्मता करते-करते, चैतन्यतत्त्व को ग्रहण करते हुए...** सूक्ष्म उपयोग में षट्कारक का परिणमन करके, स्वसन्मुख करके, स्व ज्ञायक-सन्मुख करना। अनन्त काल से किया नहीं। अनन्त काल से मुनिव्रत द्रव्यलिंगी अनन्त बार धारण किया। आहाहा! 'मुनिव्रत धार अनन्त बैर ग्रैवेयक उपजायो।' उसमें कोई बाह्य की क्रिया से आत्मा को कुछ लाभ होता है, ऐसा बिल्कुल नहीं है। आहाहा!

अन्तर की क्रिया राग से रहित... प्रभु! सूक्ष्म बात है। विकल्प से भी भिन्न, अपना स्वरूप भिन्न है, ऐसा लक्ष्य करके **चैतन्यतत्त्व को ग्रहण करते हुए...** जाणन, यह ज्ञान है। क्यों? - कि प्रगट में-पर्याय में प्रगट में आनन्द है नहीं। सब प्राणी को पर्याय में प्रगट आनन्द है नहीं। मिथ्यादृष्टि को। ज्ञान प्रगट है। ज्ञान की पर्याय प्रगट है। आहाहा! कहते हैं कि ज्ञानपर्याय द्वारा, प्रगट के द्वारा चैतन्यतत्त्व को (ग्रहण करे)। जाणकतत्त्व है। क्योंकि प्रगट में पर्याय में तो वह है। पर्याय में आनन्द कि जो अन्दर सूक्ष्म गुण है, उसकी पर्याय में है नहीं। समकिती नहीं है, मिथ्यात्वी है। उसे ज्ञान में ख्याल आ गया, ज्ञान में जाणन.. जाणन ज्ञान को पकड़कर। **चैतन्यतत्त्व को ग्रहण करते हुए आगे बढ़े, वह जीव क्रम से सम्यग्दर्शन प्राप्त करता है।** वह जीव क्रम से इस प्रकार सम्यग्दर्शन प्राप्त करता है।

देव-गुरु-शास्त्र से नहीं, शब्द से नहीं, श्रवण से नहीं। आहाहा! जो कोई वाणी भगवान की सुने, उससे जो ज्ञान होता है, उससे भी आत्मा की सन्मुखता नहीं होती। आहाहा! क्योंकि सब पर सन्मुख दशा है। आहाहा! भगवान की वाणी सुने परन्तु पर सन्मुख दशा है। परसन्मुख दशा स्वसन्मुख में काम नहीं करती। आहाहा! सूक्ष्म बात है, प्रभु! अभ्यास नहीं है अन्दर, इसलिए सूक्ष्म लगे। अभी तो प्राप्त करने की रीत यहाँ कही है।

सूक्ष्म से सूक्ष्म ज्ञानपर्याय प्रगट है, क्षयोपशमभाव प्रगट है, आनन्द प्रगट नहीं है। इसलिए चैतन्य को ग्रहण करके, यह ज्ञान मैं हूँ, ऐसे ग्रहण करके। आहा..! **वह जीव क्रम से सम्यग्दर्शन प्राप्त करता है।** लो। किसी ने लिखा था। चिट्ठी पड़ी थी। फिर से ६२वाँ लो। वह लिया। अब १०५। आहाहा! शान्ति से बात समझने की चीज है, भगवान! यह कोई पण्डिताई की चीज़ नहीं है।

आत्मा ने तो परमार्थ से त्रिकाल एक ज्ञायकपने का ही वेश धारण किया हुआ है। ज्ञायकतत्त्व को परमार्थ से कोई पर्यायवेश नहीं है, कोई पर्याय-अपेक्षा नहीं है। आत्मा 'मुनि है' या 'केवलज्ञानी है' या 'सिद्ध है' ऐसी एक ही पर्याय-अपेक्षा वास्तव में ज्ञायक पदार्थ को नहीं है। ज्ञायक तो ज्ञायक ही है॥ १०५॥

१०५। **आत्मा ने तो परमार्थ से त्रिकाल एक ज्ञायकपने का ही वेश धारण किया हुआ है।** क्या कहते हैं? समयसार में चला है। पुण्य, पाप, आस्रव अधिकार पूरा करे, तब (लिखते हैं), यह वेश पूरा हुआ। ऐसा पाठ में है। ऐसे मोक्ष अधिकार पूरा हुआ वहाँ भी ऐसा लिखा है। मोक्ष का वेश पूरा हुआ। क्योंकि मोक्ष तो एक समय की पर्याय है। भगवान तो त्रिकाली द्रव्य है। उसे मोक्ष का वेश भी लागू नहीं पड़ता। आहाहा! **आत्मा ने तो परमार्थ से त्रिकाल एक ज्ञायकपने का ही...** ज्ञायकपने का ही **वेश धारण किया हुआ है।** आहा..! सूक्ष्म बात है, भाई! मोक्ष को भी वेश कहा है। समयसार में है, पाठ है। मोक्ष ... फिर कहते हैं, मोक्ष का वेश पूरा हो गया, मोक्ष का वेश चला गया। फिर दृष्टि एक द्रव्य पर रही है, आनन्द की एक बात रह गई। मोक्ष की पर्याय पर लक्ष्य नहीं, द्रव्य पर लक्ष्य है। समकिती का द्रव्य ध्रुव चिदानन्द आनन्द भगवन्त, उस पर उसका लक्ष्य है। इसलिए

समयसार में प्रत्येक अधिकार में, यह संवर का वेश पूरा हो गया, निर्जरा का वेश पूरा हो गया, निकल गये। वेश निकल गये। आता है न उसमें ? आहाहा! मोक्ष का वेश निकल गया। आहाहा! क्योंकि मोक्ष तो एक पर्याय है। वह तो ज्ञायकभाव का (एक) वेश है। मोक्ष से भी ज्ञायकभाव का वेश त्रिकाल है। आहाहा! मोक्ष की पर्याय तो नयी प्रगट होती है, वह कायम नहीं है। ज्ञायकपने का वेश तो त्रिकाल है। आहाहा! भगवन्त आत्मा ज्ञायकस्वभाव का वेश त्रिकाल है। संवर, निर्जरा, मोक्ष आदि का वेश तो (क्षणिक) है, वह तो पलटता है। आहाहा!

आत्मा ने तो परमार्थ से त्रिकाल एक ज्ञायकपने का ही... एक ज्ञायकपना। ज्ञायक त्रिकाल... त्रिकाल... त्रिकाल। मोक्ष भी एक समय की पर्याय है और मोक्ष, संवर, निर्जरा भी व्यवहारनय का विषय है। पर्याय है न? पर्याय व्यवहारनय का विषय है। आहाहा! भगवान मोक्ष के वेश में नित्य नहीं रहता, परन्तु ज्ञायक के वेश में नित्य रहता है। आहाहा! सूक्ष्म बात है, भाई! आहाहा! अकेला ज्ञायकद्रव्य, ज्ञायक हीरा, यह वेश त्रिकाल है। मोक्ष का वेश तो सादि-अनन्त है। संवर, निर्जरा का वेश तो सादि-सान्त है। बन्ध को एक ओर रखो। संवर, निर्जरा का स्वांग आत्मा पर हो तो सादि-सान्त है और मोक्ष का स्वांग सादि-अनन्त है और ज्ञायक का स्वांग अनादि-अनन्त है। आहाहा!

आत्मा ने तो परमार्थ से त्रिकाल... त्रिकाल और एक **एक ज्ञायकपने का ही...** निश्चय से। सूक्ष्म बात है, प्रभु! मोक्ष भी पर्याय-पलटती अवस्था है। वह भी सादि-अनन्त है। ज्ञायकस्वरूप.. आहा..! वह तो अनादि-अनन्त है। त्रिकाल निरावरण है। त्रिकाल निरावरण है। त्रिकाल अखण्ड है। यहाँ एक कहा, वह एक है। आहाहा! अखण्ड और एक त्रिकाल ऐसा ज्ञायकभाव का वेश त्रिकाल है। आहाहा! **त्रिकाल एक ज्ञायकपने का ही वेश...** ही अर्थात् निश्चय है। ज्ञायकपने का ही। आहाहा! समकिती को या पंचम गुणस्थानवाले को या छट्ठेवाले को, सबको ध्रुव की धारा है। ध्रुव के ध्येय में पड़े हैं। आहाहा! ध्रुव के ध्यान के ध्येय में धैर्य से... आहाहा! धूणी-धूणी पर्याय में शान्ति की धूणी धखा। आहाहा! त्रिकाल ज्ञायक के लक्ष्य से। दूसरी कोई भी क्रियाकाण्ड से, अरे..! संवर, निर्जरा हुई हो, उससे नयी शुद्धि की वृद्धि हो, ऐसा है नहीं। आहाहा! ऐसी बात है।

यह बहिन की वाणी अन्दर से निकली है। बहिन आयी नहीं है। उस समय अन्दर अनुभव में से आयी है। आनन्द में से भाषा आ गयी। किसी ने लिख लिया था। नहीं तो बाहर भी नहीं आये। आहाहा! क्या कहा?

भगवान आत्मा का वेश क्या? देश क्या? देश असंख्य प्रदेश। वेश ज्ञायकभाव। वहाँ दृष्टि देने से आत्मा की प्राप्ति होती है। एक वेश त्रिकाल ज्ञायकभाव। वहाँ दृष्टि देने से सम्यग्दर्शन की प्राप्ति होती है। आहाहा! **ज्ञायकतत्त्व को परमार्थ से...** है? जो ज्ञायकतत्त्व है जाननेवाला, आहाहा! चैतन्य हीरा ध्रुव हीरा। एक ज्ञायक हीरा का **परमार्थ से कोई पर्यायवेश नहीं है,...** कोई पर्यायवेश नहीं है। पुण्य और पाप तो नहीं है, आस्रव, बन्ध तो नहीं है, संवर, निर्जरा और मोक्ष भी नहीं है। आहाहा! ऐसा प्रभु अन्दर ज्ञायकभाव से विराजमान ध्रुवपने, उसका वह वेश त्रिकाल है। **परमार्थ से कोई पर्यायवेश नहीं है,...** आहाहा! यह बाहर के वेश की बात नहीं है, हों! वस्त्र छोड़ दे, वह वेश नहीं है जीव का। बाह्य त्याग-ग्रहण तो आत्मा में है नहीं। आत्मा में एक गुण ही ऐसा है। त्यागउपादानशून्यत्व शक्ति। पर का त्याग और पर का ग्रहण, उससे तो आत्मा त्रिकाल शून्य है। आहाहा! मात्र त्यागग्रहण हो तो व्यवहार से। प्रभु त्रिकाली ज्ञायक का ग्रहण करते हैं, वहाँ राग का त्याग हो जाता है। आहाहा! ऐसी चीज़ है।

परमार्थ से कोई पर्यायवेश नहीं है,... भगवन्त आत्मा को नित्य टिकने के सिवा क्षणिक कोई वेश उसको नहीं है। आहाहा! **कोई पर्याय-अपेक्षा नहीं है।** द्रव्य को कोई पर्याय की अपेक्षा नहीं है। आहाहा! मोक्ष की पर्याय की अपेक्षा भी द्रव्य को नहीं है। क्योंकि मोक्ष तो सादि-अनन्त है। वस्तु अनादि-अनन्त है। आहाहा! **कोई पर्याय-अपेक्षा नहीं है।** आहाहा! सूक्ष्म पड़े।

बहिन तो रात्रि में थोड़ा बोले थे। उसमें बहिनों ने लिख लिया था। नहीं तो वे तो मुर्दे की भाँति (है)। आत्मा के आनन्द में रहती है, बाहर की कुछ नहीं पड़ी। आहाहा! जन्मदिन आयेगा न? दूज। श्रावण शुक्ल दूज का जन्मदिन आयेगा। उनको हीरा से बधायेंगे। खड़े रहेंगे मुर्दे की भाँति। अभी तो शक्ति नहीं है। मैंने तो रात को कहा कि कुर्सी (रखो)। शक्ति नहीं है। बिल्कुल अशक्त हो गया है। आहार में कुछ नहीं। अकेला आत्मा.. आत्मा.. और आत्मा। बाकी कुछ नहीं। मैंने तो कहा, कुर्सी लाकर बैठना चाहिए।

आठ जन तो आये हैं। ... आहाहा! रात्रि में (महिला सभा में) बहिन की यह वाणी निकल गयी है। आहाहा!

कोई पर्याय-अपेक्षा नहीं है। उसे कोई पर्याय का वेश नहीं है कि हमेशा रहे। **आत्मा 'मुनि है' या 'केवलज्ञानी है' या 'सिद्ध है' ऐसी एक ही पर्याय-अपेक्षा वास्तव में...** आहाहा! सिद्ध भी पर्याय है। द्रव्य जो त्रिकाली आनन्द का नाथ वज्रबिम्ब, उसमें से थोड़ा भी पलटा नहीं खाता। पर्याय पलटती है, वस्तु वज्रबिम्ब अन्दर चैतन्य आनन्दकन्द, अकेले चैतन्य के हीरा-माणेक भरे हैं। आहाहा! ऐसे आत्मा को पर की अपेक्षा (तो नहीं है, परन्तु) मुनि, केवलज्ञानी या सिद्ध, ऐसी एक भी **पर्याय-अपेक्षा वास्तव में ज्ञायक पदार्थ को नहीं है।** आहाहा! कमजोरी बहुत आ गयी है। आहाहा! १०५वाँ बोल बहुत अच्छा आ गया है। मौके पर (आया है)।

आत्मा को त्रिकाली ज्ञायकभाव के वेश के सिवा, मुनि अर्थात् संवर-निर्जरा और मोक्ष का वेश उसे लागू नहीं पड़ता। उसकी तो अवधि है। यह तो अवधि बिना की चीज़ अनादि-अनन्त नित्यानन्द प्रभु (है)। आहाहा! जिसके ऊपर, नित्यानन्द प्रभु के ऊपर यह सब पर्याय तिरती है। संवर, निर्जरा और मोक्ष... आहाहा! वास्तव में ज्ञायक पदार्थ को उस पर्याय की अपेक्षा नहीं है। किसकी ? मुनि, केवलज्ञानी अथवा सिद्ध। उस पर्याय की द्रव्य को अपेक्षा नहीं है। द्रव्य तो त्रिकाल एकरूप है। अखण्ड आनन्द प्रभु परमात्मस्वरूप सच्चिदानन्द सत् चिदानन्दस्वरूप एकरूप त्रिकाल है। उसको यहाँ ज्ञायक कहते हैं। ऐसे ज्ञायक की दृष्टि करना और अनुभव में आनन्द आना, उसका नाम सम्यग्दर्शन है। श्रावक और मुनिपना तो... बापू! आहाहा! पंचम गुणस्थान और छट्ठा गुणस्थान, बापू! वह दशा तो.. आहाहा! अभी चौथे का ठिकाना नहीं है। अरे..! प्रभु! क्या हो ? भाई! ऐसा मनुष्यपना मिला है। सब छोड़ दे। चिन्ता छोड़कर इस एक का कर। दुनिया तो महिमा करेगी, दुनिया प्रशंसा करेगी, परन्तु वह साथ में नहीं आयेगी। आहाहा!

प्रभु एक ज्ञायकभाव त्रिकाली को जिसने दृष्टि में लिया और अनुभव में आ गया, उसमें मुनि, केवलज्ञान या सिद्ध तीनों वेश की उसको अपेक्षा नहीं है। आहाहा! राग व्यवहाररत्नत्रय की अपेक्षा उसे तीन काल में नहीं है। रत्नत्रय व्यवहार करे तो निश्चय प्राप्त करे, त्रिकाल झूठ है। व्यवहाररत्नत्रय तो राग-जहर है। राग है, शुभराग है, विषकुम्भ है। विषकुम्भ। मोक्ष अधिकार में आया है न ? आहाहा!

मुमुक्षु :- कठिन पड़ता है।

पूज्य गुरुदेवश्री :- अभ्यास नहीं है और यह बात चलती नहीं है। चलने में बाहर की प्रवृत्ति करो, यह करो, वह करो। सेठ लोगों को फुरसत नहीं है। ऐसी प्रवृत्ति करे, उसमें रुक जाए। रतनलालजी! आहाहा! हमारे मफतभाई ने तो ... मफतभाई बहुत समय से पड़े हैं। ... भावनगर के सेठ है। बहुत वर्ष से। आहाहा!

प्रभु! क्या कहें? अरे..! प्रभु का विरह हुआ। पीछे मार्ग वाणी में रह गया। आहाहा! प्रभु तो मुक्ति में पधारे। सीमन्धर भगवान वहाँ रह गये। आहाहा! उनकी वाणी थी अन्दर, वह वाणी अन्दर रह गई। हम तो भगवान के पास थे। वहाँ समवसरण में हमेशा जाते थे। अन्तिम स्थिति में जरा परिणाम ठीक नहीं रहे (तो) इस काठियावाड़ में जन्म हुआ। उमराला में। भगवान की वाणी रह गई। आहाहा! त्रिलोकनाथ का विरह हुआ। पंचम काल में भगवान की यहाँ उत्पत्ति नहीं है। केवलज्ञान की उत्पत्ति भी कोई जीव को नहीं और केवलज्ञानी की मौजूदगी नहीं है। उनकी वाणी की मौजूदगी है। उसमें आत्मा क्या है, उसे बताया है, वह यथार्थ है। आहाहा! गजब बात है!

वास्तव में ज्ञायक पदार्थ को... एक भी अपेक्षा नहीं है। **ज्ञायक तो ज्ञायक ही है।** मोक्ष भी सादि-अनन्त है। संसार अनादि-सान्त है। संवर, निर्जरा, सादि-सान्त है। आस्रव, बन्ध, पुण्य-पाप अनादि-सान्त है। आहाहा! मोक्ष भी सादि-अनन्त है। प्रभु अनादि-अनन्त है। आहाहा! अनादि-अनन्त महाप्रभु स्वयं, उसकी नजर कर, नाथ! वहाँ जा, वहाँ जा। तेरा देश और तेरा वेश वहाँ है। तेरा देश प्रभु वह स्वदेश है। आहाहा! श्रीमद् ने एक बार कहा है, और बहिन ने कहा है, इसमें आता है। कौन-सा बोल है? ४०१ बोल। पृष्ठ १७६।

ज्ञानी का परिणमन विभाव से विमुख होकर स्वरूप की ओर ढल रहा है। आहाहा! क्या कहा? ४०१। धर्मी का परिणमन विभाव से विमुख होकर, दया-दान के विकल्प से भी विमुख होकर, शास्त्र के श्रवण से भी विमुख होकर स्वरूप की ओर अपने ज्ञायकस्वरूप की ओर ढल रहा है। **ज्ञानी निज स्वरूप में परिपूर्णरूप से स्थिर हो जाने को तरसता है।** अभी साधक है न? अन्दर एक जम जाऊँ, जम जाऊँ, बस। आहाहा! **'यह विभावभाव हमारा देश नहीं है।** देखो! विभावभाव हमारा देश नहीं है। आहाहा!

श्रीमद् आखिर में कहते हैं, श्रीमद् की दशा भी ऐसी थी। एकावतारी हो गये हैं। श्रीमद् वर्तमान वैमानिक में है। वहाँ से मनुष्य होकर मोक्ष जानेवाले हैं। एक भव है। आहाहा! स्वयं कहकर गये हैं और यथार्थ है। एकदेश भोगना बाकी रहा है, ऐसा बोले थे। भाषा भूल गये।

मुमुक्षु :- शेष कर्मनो भोग भोगववो।

पूज्य गुरुदेवश्री :- हाँ। शेष कर्मनो भोग भोगववो अवशेष रे, तेथी एक देह धारी ने जाशुं मोक्ष स्वरूप रे, जाशुं स्वरूप स्वदेशमां। स्वदेश यह। आहाहा! स्वदेश असंख्य प्रदेशी भगवान आत्मा, उसके सिवा सब परदेश है।

यहाँ बहिन कहते हैं, आहाहा! '**यह विभावभाव हमारा देश नहीं है।** आहाहा! **इस परदेश में हम कहाँ आ पहुँचे?** अरेरे..! छद्मस्थ अवस्था और विकल्प में आ गये। विकल्प-राग तो आता है, पूर्ण नहीं हुआ इसलिए। अरे..! **इस परदेश में हम कहाँ आ पहुँचे?** ओहोहो! समकिती को राग आता है परन्तु राग परदेश दिखता है। आहाहा! वह हमारा देश नहीं। जहाँ हमें सदा टिककर रहना है, वह (राग) हमारा देश नहीं। कहा न? **हमें यहाँ अच्छा नहीं लगता।** विकल्प, व्यवहाररत्नत्रय का विकल्प अच्छा नहीं लगता। आहाहा! वह हमारा देश नहीं। **यहाँ हमारा कोई नहीं है।** विकल्प असंख्य प्रकार का शुभादि हो, उसमें हमारा कोई नहीं है। आहाहा!

जहाँ ज्ञान, श्रद्धा,... अर्थात् समकित **चारित्र, आनन्द, वीर्यादि अनन्त गुणरूप हमारा परिवार बसता है,...** हमारा परिवार तो यह है। आहाहा! यह अन्तर की बात है, भाई! **हमारा परिवार बसता है, वह हमारा स्वदेश है। अब हम उस स्वरूपस्वदेश की ओर जा रहे हैं।** आहाहा! अपना ज्ञायकस्वरूप त्रिकाली भगवन्त, उस देश की ओर हम जा रहे हैं। आहाहा! **हमें त्वरा से...** त्वरा में क्रमबद्ध नहीं छूटता। क्रमबद्ध में आ जाता है। ऐसी दशा अन्दर हुई, वहाँ क्रम में केवलज्ञान अल्प काल में हो जाएगा। ऐसा ही क्रमबद्ध है। त्वरा से कहा, इसलिए एकदम कोई क्रम पलट गया, ऐसा है नहीं। आहाहा! हमें हमारे देश में जाना है, **त्वरा से अपने मूल वतन में...** यह मूल वतन। असंख्य प्रदेशी ज्ञायक मूल वतन है। आहाहा! मूल देश। बाकी सब परदेश। आहाहा!

यहाँ शब्द क्या है ? **त्वरा से अपने मूल वतन में जाकर... त्वरा से अपने मूल वतन में जाकर आराम से बसना है,...** हमारा तो ज्ञायकभाव है। त्वरा से अल्प काल में अपने वतन में जाकर बसना है। **मूल वतन में जाकर आराम से बसना है,...** आनन्द, अतीन्द्रिय आनन्द में बसना है। स्वदेश तो अतीन्द्रिय आनन्द का देश है। **जहाँ सब हमारे हैं।** विभाव में कोई हमारा नहीं। आहा..! जिस भाव से तीर्थंकर गोत्र बँधे, वह भाव हमारा नहीं। हमारा स्वदेश नहीं। आहाहा! पंच महाव्रत का परिणाम, बारह व्रत का विकल्प, यह आत्मा नहीं, आत्मा का देश नहीं। आहाहा! ऐसी कठिन बात है। **आराम से बसना है, जहाँ सब हमारे हैं।** सब अनन्त-अनन्त गुण ज्ञान, आनन्द, शान्ति, स्वच्छता, प्रभुता, जीवत्व, चिति, दृशि, ज्ञान, सुख, वीर्य, प्रभुता, विभुत्व, सर्वदर्शि, सर्वज्ञत्व, स्वच्छता—ऐसी अनन्त-अनन्त शक्ति का मेरा देश है, वहाँ आराम से अपने वतन में बसना है। आहाहा! यह वतन। काठियावाड़ वतन, फलाना वतन धूल में भी नहीं है। आहाहा! यहाँ तो राग की पर्याय से भी भिन्न ले लिया। ज्ञायकभाव हमारा त्रिकाली, यह हमारा देश है। वहाँ सब हमारे हैं। ज्ञान, आनन्द, शान्ति, स्वच्छता, प्रभुता अनन्ता-अनन्त चैतन्य रत्नाकर से भरा भगवान, वही हमारा वतन है। वहाँ आराम से, आनन्द से बसना है, रहना है। फिर भव-बव है नहीं। आहाहा!

श्रीमद् ने ऐसा कहा, 'शेष कर्मनो भोग छे,' अन्दर ऐसा देखते हैं तो अभी इसी भव में पूर्ण ज्ञायक होंगे, ऐसा लगता नहीं है। 'शेष कर्मनो भोग छे, भोगववो अवशेष रे...' प्रभु! थोड़ा भोगना बाकी रहेगा, ऐसा लगता है। 'तेथी देह एक धारीने जाशुं स्वरूप स्वदेश रे...' अपने स्वरूप के स्वदेश में जाना है। उस समय में उनकी शक्ति बहुत थी। उस समय में वही एक पुरुष थे। एक धर्मदास थे, उस समय। क्षुल्लक धर्मदास। उतना क्षयोपशम नहीं था। सम्यग्ज्ञानदीपिका बनायी है न ? धर्मदास क्षुल्लक। और इनको तो क्षयोपशम गजब का था! उम्र दोटी। ३३ साल में देह छूट गया। क्षयोपशम तो इतना समुद्र... लगभग धर्मी में इतना क्षयोपशम उस समय में नहीं होगा। दूसरा ज्ञान होगा अनेक प्रकार से। वह स्वयं ऐसा कहते हैं, हमें यह थोड़ा भोगना दिखता है। हमें वीतरागता इस समय (पूर्ण) होगी, ऐसा नहीं लगता है। एकाध भव करना पड़ेगा। फिर हम हमारे देश में-वतन में जाकर आनन्द में रहेंगे। वह स्वदेश है। बाकी विकार आदि तो परदेश है। १०५ हो गया। फिर १४०। १०५ के बाद १४०। इसमें लिखा है। किसी ने लिखकर रखा है।

'है', 'है', 'है' ऐसी 'अस्ति' ख्याल में आती है न ? 'ज्ञाता', 'ज्ञाता', 'ज्ञाता' है ना ? वह मात्र वर्तमान जितना 'सत्' नहीं है। वह तत्त्व अपने को त्रिकाल सत् बतला रहा है, परन्तु तू उसकी मात्र 'वर्तमान अस्ति' मानता है! जो तत्त्व वर्तमान में है, वह त्रैकालिक होता ही है। विचार करने से आगे बढ़ा जाता है। अनन्त काल में सब कुछ किया, एक त्रैकालिक सत् की श्रद्धा नहीं की ॥१४० ॥

१४०। आहाहा! अस्ति के जोर का है। **'है', 'है', 'है'...** मेरा प्रभु तो है, है और है। ज्ञायकभाव त्रिकाल भाव... आहाहा! है, है और है। भूतकाल में था, वर्तमान में है और भविष्य में रहेगा। तीनों काल रहनेवाली मेरी चीज़ है। आहाहा! **ऐसी 'अस्ति' ख्याल में आती है न ?** अस्ति में ख्याल में आती हे न ? आती है न, अर्थात् आती है, आती है। आहाहा! **'ज्ञाता', 'ज्ञाता', 'ज्ञाता'...** है, है वह कौन है ? ज्ञाता, ज्ञाता, ज्ञाता वह मैं हूँ। आहाहा! है, है, है। है की अस्ति। मेरी अस्ति ज्ञाता, ज्ञाता, ज्ञाता (स्वरूप है)। दूसरी कोई चीज़ मेरे में है नहीं। आहाहा!

वह मात्र वर्तमान जितना 'सत्' नहीं है। क्या कहते हैं ? जो वर्तमान पर्याय में आनन्द आदि आया, उतना सत् नहीं है। पर्याय का अनुभव है, परन्तु पर्याय जितना वह सत् नहीं है। पर्याय बताती है कि अन्दर भगवान पूर्ण है। पर्याय बताती है कि अन्दर भगवान पूर्ण है। आहाहा! है ? **वह मात्र वर्तमान जितना 'सत्' नहीं है। वह तत्त्व अपने को त्रिकाल सत् बतला रहा है,...** क्या कहते हैं ? वर्तमान में अतीन्द्रिय आनन्द का नाथ का अनुभव हुआ तो पर्याय में आनन्द आया। ध्रुव तो कहीं पर्याय में आता नहीं। आहा..! ध्रुव का अनन्द भी आता नहीं। ध्रुव तो ध्रुव है, आनन्द तो पर्याय में आता है। आहाहा! कहते हैं, **अपने को त्रिकाल सत् बतला रहा है,...** कौन ? वर्तमान सत् आनन्द दिखता है, वह त्रिकाल को बताता है। वह पर्याय त्रिकाल को बताती है। उसका नमूना सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक् आनन्द जो सम्यग्दर्शन में आया, वह नमूना ऐसा बताता है कि यह चीज़ पूर्ण है। आहाहा! है ?

मात्र **वर्तमान जितना 'सत्' नहीं है। वह तत्त्व अपने को त्रिकाल सत् बतला रहा**

है,... आहाहा! क्या कहते हैं? पर्याय में ज्ञाता-दृष्टा का अनुभव होता है, वह पर्याय में होता है। द्रव्य में नहीं। द्रव्य का कभी अनुभव होता नहीं। आहाहा! २०वें बोल में आया है। प्रवचनसार में (अलिंगग्रहण के) २०वें बोल में ऐसा है कि मैं तो आनन्दमात्र वस्तु आत्मा हूँ। ध्रुव तो मुझे आनन्द में आता नहीं, मैं तो जितना आनन्द वेदन में आता है, वह मैं आत्मा हूँ। २०वें बोल में है। समझ में आया? आहाहा! मैं कितना हूँ? मुझे जो पर्याय में आनन्द आता है, मैं उतना हूँ। त्रिकाल की दृष्टि तो है, परन्तु वेदन में त्रिकाल ध्रुव नहीं आता। आहाहा! वेदन पर्याय का होता है। पर्याय ऐसा कहती है... आहाहा! कि मैं पर्याय है, वही आत्मा हूँ - ऐसा कहते हैं। २० बोल में ऐसा कहते हैं। अलिंगग्रहण का २०वाँ बोल है। अलिंगग्रहण का २०वाँ बोल। मैं वेदन में आता हूँ, उतना आत्मा हूँ। आहा..! वेदन में ध्रुव नहीं आता। ध्रुव की मुझे दरकार नहीं। दृष्टि है वहाँ। आहाहा! परन्तु दृष्टि पर्याय है। दृष्टि में ध्रुव है, वेदन में आनन्द है। आहाहा! ऐसी बात है। उसमें है। प्रवचनसार में है न? १७२ गाथा। १७२ गाथा का २०वाँ बोल। १८, १९, २० की रात्रि में चर्चा हुई थी।

१८ में ऐसा है, द्रव्य जो है, उसका भेद, वह मैं नहीं। १९ में, गुण का भेद मैं नहीं, २० में पर्याय का भेद, पर्याय है वही मैं हूँ। मुझे वेदन में पर्याय आती है। वेदन में ध्रुव आता नहीं। आहाहा! समझ में आता है? भाषा तो सादी है। आहाहा! २०वें बोल में है। अलिंगग्रहण के २० बोल में है। मैं अनुभव में आनेवाला आत्मा, वह आत्मा। मुझे तो वेदन में आता है, वही आत्मा है। वेदन में नहीं आता है, वह आत्मा नहीं। भले दृष्टि का विषय ध्रुव हो। आहाहा!

ऐसे यहाँ कहते हैं, **जो तत्त्व वर्तमान में है...** क्या कहते हैं? तू उसकी मात्र वर्तमान अस्ति मानता है। **जो तत्त्व वर्तमान में है...** वह त्रिकाल है। वर्तमान में जिसका नमूना ख्याल में आया, वह चीज़ मात्र वर्तमान ही नहीं है। किसी भी चीज़ का वर्तमान में अनुभव होता है, वह वर्तमान त्रिकाल को बताता है। अन्दर त्रिकाली चीज़ है। आहाहा! **वर्तमान अस्ति' मानता है! जो तत्त्व वर्तमान में है, वह त्रैकालिक होता ही है।** क्या कहा? जो चीज़ वर्तमान में आनन्द का अनुभव हुआ, तो वह चीज़ त्रिकाली है। भले त्रिकाली का आनन्द नहीं आया। आहाहा! सूक्ष्म बहुत आया।

पर्याय में जो वेदन में आया, वह ध्रुव आया नहीं। मैं तो पर्याय वेदन में आयी, वही

मैं हूँ। मुझे आनन्द का अनुभव (हुआ), वह मैं आत्मा हूँ। ध्रुव को वहाँ आत्मा नहीं लिया। ध्रुव को ध्येय में ले लिया। ध्येय में ध्रुव है, वेदन में नहीं। आहाहा! ऐसी बातें। यहाँ कहते हैं, **परन्तु तू उसकी मात्र 'वर्तमान अस्ति' मानता है!** क्या कहा? **वह तत्त्व अपने को त्रिकाल सत् बतला रहा है,...** जो वर्तमान में पर्याय दिखती है, वह त्रिकाल को बतला रही है। वर्तमान में शान्ति का अंश आया सम्यग्दर्शन में, वह त्रिकाल ध्रुवपने को बताता है। ध्रुव भले पर्याय में आता नहीं, ध्रुव भले प्रत्यक्ष दिखने में आता नहीं, प्रत्यक्ष दिखने में आता नहीं,... आहाहा! **त्रिकाल सत् बतला रहा है, परन्तु तू उसकी मात्र 'वर्तमान अस्ति' मानता है! जो तत्त्व वर्तमान में है...** सिद्धान्त कहते हैं। **जो तत्त्व वर्तमान में है, वह त्रैकालिक होता ही है।** अर्थात् वर्तमान पर्याय जितना तत्त्व है नहीं। कोई भी तत्त्व वर्तमान पर्याय जितना है नहीं। वर्तमान पर्याय जो है, वह त्रिकाली को बताती है। वह त्रिकाली की पर्याय है। आहाहा!

जो तत्त्व वर्तमान में है, वह त्रैकालिक होता ही है। आहाहा! निर्मल की बात ली है, हों! निर्मल की बात है। निर्मल तत्त्व की पर्याय अनुभव में आयी तो वह पर्याय जितना नहीं है, वह पर्याय, ध्रुव त्रिकाल है, उसकी पर्याय है। वर्तमान पर्याय जितना नहीं। आहाहा! **विचार करने से आगे बढ़ा जाता है।**... झुकाव हो जाता है। अनन्त काल में सब कुछ किया। आहाहा! बाहर में अनन्त काल में सब (किया)। आत्मा के सिवा, आत्मा का अनुभव और समकित के सिवा। अनन्त बार क्रिया की। अनन्त बार व्रत लिये, तपस्या की। **अनन्त काल में सब कुछ किया, एक त्रैकालिक सत् की श्रद्धा नहीं की।** त्रिकाली प्रभु भगवान अनादि-अनन्त ज्ञायक, उसकी श्रद्धा किये बिना भटकता है।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

विक्रम संवत-२०३५, श्रावण शुक्ल - ६, शनिवार, तारीख १६-८-१९८०
वचनामृत-१७१, १७४, १८३, १८५ प्रवचन-९

एक म्यान में दो तलवारें नहीं समा सकतीं। चैतन्य की महिमा और संसार की महिमा दो एकसाथ नहीं रह सकतीं। कुछ जीव मात्र क्षणिक वैराग्य करते हैं कि संसार अशरण है, अनित्य है, उन्हें चैतन्य की समीपता नहीं होती। परन्तु चैतन्य की महिमापूर्वक जिसे विभावों की महिमा छूट जाये, चैतन्य की कोई अपूर्वता लगने से संसार की महिमा छूट जाये, वह चैतन्य के समीप आता है। चैतन्य तो कोई अपूर्व वस्तु है; उसकी पहिचान करनी चाहिए, महिमा करनी चाहिए॥१७१॥

किसी की चिट्ठी है, ९१, ९२ पढ़ना। १७१। **एक म्यान में दो तलवारें नहीं समा सकतीं।** क्या कहते हैं? एक म्यान में दो तलवारें नहीं समा सकती। वैसे **चैतन्य की महिमा...** वस्तु यह है। अन्दर भगवान आनन्द अतीन्द्रिय आनन्द, पूर्ण शान्ति का सागर, उसके स्पर्श से अनन्त-अनन्त शान्ति हो, ऐसा प्रभु। **चैतन्य की महिमा और संसार की महिमा दो एकसाथ नहीं रह सकतीं।** अन्तर आनन्दस्वरूप प्रभु उसकी महिमा और रागादि विकल्प की महिमा एकसाथ नहीं रह सकती। जिसको राग की महिमा है, उसको चैतन्य की महिमा नहीं है। जिसको राग का कर्तृत्व है, उसको चैतन्य की महिमा नहीं है। आहाहा! भेदज्ञान है। **चैतन्य की महिमा और संसार की महिमा दो एकसाथ नहीं रह सकतीं।** आहा..! अन्तर में अतीन्द्रिय आनन्द और अतीन्द्रिय शान्त, शान्त, चारित्र अर्थात् शान्त अकषायस्वभाव से भरा शान्त (स्वभाव)। करना-बरना कुछ नहीं, अन्दर जम जाना। ऐसा जो चारित्र है, उसकी महिमा है। वह महिमा और संसार की महिमा एकसाथ नहीं रह सकती।

कुछ जीव मात्र क्षणिक वैराग्य करते हैं... कोई क्षणिक वैराग्य करता है, बाहर से। क्षणिक क्यों कहा? त्रिकाल ज्ञायक के अनुभव बिना पुण्य और पाप का वैराग्य नहीं होता। पुण्य और पाप अधिकार में भगवान अमृतचंद्राचार्य कहते हैं, जिसको पुण्य—शुभभाव की

रुचि है, उसको आत्मा की रुचि है नहीं। जिसको शुभभाव—कर्तृत्व की बुद्धि है, उसको आत्मा की रुचि है नहीं। इसलिए कहते हैं कि दो महिमा एकसाथ नहीं (रह सकती)। **कुछ जीव मात्र क्षणिक वैराग्य...** बाहर से एक साधारण वैराग्य धारण करके कुटुम्ब छोड़े, स्त्री छोडे, कपड़े छोड़े, नग्न मुनि हो जाए। अनन्त बार हुआ है। उसमें कोई नयी चीज़ नहीं है। पंच महाव्रत धारण करे। वह कोई नयी चीज़ नहीं। वह तो अनादि अज्ञानी अभव्य भी करता है और अनन्त बार नौवीं ग्रैवेयक गया। ये अन्तर की महिमा... सूक्ष्म बात है, भाई!

विकल्प से बाहर से हटकर अन्दर में जाना, ऐसी चैतन्य की महिमा के समक्ष संसार की महिमा रह सकती नहीं। शुभराग की महिमा भी नहीं रह सकती। चैतन्य की महिमा के समक्ष शुभ तीर्थंकर गोत्र बाँधने का भाव है, उसकी भी महिमा रहती नहीं। आहाहा! ऐसी चैतन्य की महिमा है। वह तो क्षणिक वैराग्य करता है। आत्मा नित्यानन्द प्रभु की महिमा आये बिना बाह्य चीज़ की महिमा छूटती नहीं।

संसार अशरण है, अनित्य है, उन्हें चैतन्य की समीपता नहीं होती। अज्ञानी अनादि से ऐसा मानता है कि संसार अशरण है, अनित्य है। परन्तु सामने शरण और नित्य चीज़ देखी नहीं। नित्यानन्द प्रभु आनन्द का घन है, उसके सामने देखा नहीं। आहाहा! बात तो बहुत सादी है। काम बहुत ऊँचा-बड़ा है। अनन्त काल में जैन सम्प्रदाय में अनन्त बार आया, अनन्त बार क्रियाकाण्ड भी की। ऐसी क्रिया कि चमड़ी निकालकर नमक छिड़के तो भी क्रोध न करे। वह कोई क्रिया नहीं है। अन्तर चैतन्य आनन्द की महिमा आये बिना दूसरे की महिमा छूटेगी नहीं। आहाहा! यह बात करते हैं।

संसार अशरण है, अनित्य है,... ऐसा अज्ञानी मानता है। परन्तु नित्य और शरण के सामने देखता नहीं। **उन्हें चैतन्य की समीपता नहीं होती।** संसार अशरण, अनित्य है (ऐसा वैराग्य करता है), परन्तु अन्दर चैतन्य के सामने देखता नहीं। अन्दर भगवान अतीन्द्रिय आनन्द, पूर्ण शान्ति... उपशमरस वरसे रे प्रभु तारा नयनमां, ऐसा प्रभु को कहता है, परन्तु अपने में है। ऐसा कहते हैं। उपशमरस वरसे रे प्रभु तारा चैतन्यमां। चैतन्य में उपशमरस (बरसता है)। आहाहा!

मुमुक्षु :- शान्ति का रस चेतन में भरा है।

पूज्य गुरुदेवश्री :- पूर्ण भरा है। लबालब। अरूपी है, क्षेत्र थोड़ा है, इसलिए

उसको महिमा आती नहीं। अरूपी है, क्षेत्र छोटा है, शरीरप्रमाण और अनादि का अभ्यास या तो अशुभ का है, अथवा तो उसे छोड़कर शुभ का है। शुभ का अभ्यास भी अनादि से है। आहाहा! उसके समक्ष चैतन्य की शान्ति, शान्ति, शान्ति, शान्ति.. शान्ति पर नजर जाती नहीं। चैतन्य की समीपता नहीं होती। राग के रस के प्रेम में... स्थूल राग की बात नहीं है। सूक्ष्म राग। सूक्ष्म राग में, अरे..! गुण-गुणी का भेदरूप विकल्प है, उसके भी प्रेम रुक गया, उसको चैतन्य की समीपता नहीं होती। आहाहा!

जिसको **चैतन्य की महिमा...** आहा..! **जिसे विभावों की महिमा छूट जाए,...** अतीन्द्रिय आनन्द और शान्ति, उसका एक अंश भी सम्यग्दर्शन होने पर उसका एक नमूना, नमूना कहते हैं? सम्यग्दर्शन में शान्तरस का गंज है। अतीन्द्रिय आनन्द का पिण्ड है, तो सम्यग्दर्शन में उसका नमूना आता है। उस नमूना के द्वारा पूरे तत्त्व की प्रतीत करता है कि पूरा आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द और अतीन्द्रिय शान्ति से भरा है। आहाहा! जिसने नमूना (देखा नहीं), उसे पूरी चीज़ की प्रतीति कहाँ से हो? समझ में आया? आहाहा! जिसके पास चैतन्य के समीप जाकर अन्दर में एक क्षण भी बसना, उस शान्ति के आगे दुनिया का वैराग्य है नहीं।

दुनिया का वैराग्य तो भगवान उसे कहते हैं कि शुभराग से भी विरक्त हो। पुण्य (-पुण्य) अधिकार में आता है, समयसार। शुभ और अशुभराग दोनों से विरक्त हो। उसको वैराग्य कहते हैं। आहाहा! शुभ-अशुभ से विरक्त हो, तब वैराग्य होता है, तब चैतन्य के समीप जाता है। तब चैतन्य के समीप भी आया और पर से वैराग्य हुआ, दोनों एकसाथ हुआ। आहाहा! कठिन बात है, भाई! बाकी सब आसान है।

चैतन्य की कोई अपूर्वता लगने से... चैतन्य की कोई अपूर्वता, अपूर्वता-पूर्व में कभी शान्ति और आनन्द अतीन्द्रिय की गन्ध आयी नहीं, उसका नमूना जानने से अपूर्वता लगने से। यह कोई अपूर्व भगवान है। आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द के अंश के समक्ष अतीन्द्रिय शान्ति के एक अंश के समक्ष पूरी चीज़ भगवान पूर्ण है, ऐसी अन्दर अनुभव, प्रतीत होती है। आहाहा! **चैतन्य की कोई अपूर्वता लगने से...** कोई अपूर्वता अर्थात् यह आनन्द। आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद, वह वैराग्य। क्योंकि उस स्वाद के आगे दुनिया का कोई भी स्वाद, इन्द्र का इन्द्रासन भी सड़े हुए तिनके जैसा लगता है। उसके

बिना बाहर से सम्यग्दर्शन बिना वैराग्य (आता है), वह कृत्रिम होता है। ऐसा कृत्रिम वैराग्य तो अनन्त बार किया।

यहाँ कहते हैं, **चैतन्य की कोई अपूर्वता लगने से संसार की महिमा छूट जाए,...** आहाहा! चैतन्य का एक भी अंश.. यह प्रभु तो पूरा अंशी है। सम्यग्दर्शन में और सम्यग्ज्ञान में उसका अंश आता है। अंशी का अंश आता है। उस अंश के समक्ष जगत की (महिमा नहीं आती)। **चैतन्य तो कोई अपूर्व वस्तु है; उसकी पहिचान करनी चाहिए,...** आहाहा! यह बात है। १७१ पूरा हुआ न?

'मैं हूँ चैतन्य'। जिसे घर नहीं मिला है, ऐसे मनुष्य को बाहर खड़े-खड़े बाहर की वस्तुएँ, धमाल देखने पर अशान्ति रहती है; परन्तु जिसे घर मिल गया है, उसे घर में रहते हुए बाहर की वस्तुएँ, धमाल देखने पर शान्ति रहती है; उसी प्रकार जिसे चैतन्यघर मिल गया है, दृष्टि प्राप्त हो गई है, उसे उपयोग बाहर जाए, तब भी शान्ति रहती है॥१७४॥

१७४। क्या कहते हैं? आहाहा! **'मैं हूँ चैतन्य'। जिसे घर नहीं मिला है...** दृष्टान्त है। जिसको घर नहीं मिला हो, **ऐसे मनुष्य को बाहर खड़े-खड़े बाहर की वस्तुएँ, धमाल देखने पर अशान्ति रहती है;...** क्या कहा? जिसको घर का घर नहीं है और घर के बाहर खड़ा है। उसका घर तो है नहीं। उसमें जगत की धमाल देखकर, मेरे पर भी ऐसी धमाल आ जाएगी, ऐसी अशान्ति उसको उत्पन्न होती है। **बाहर की वस्तुएँ, धमाल देखने पर अशान्ति रहती है; परन्तु जिसे घर मिल गया है,...** चैतन्यघर जिसको अन्दर से मिल गया, **उसे घर में रहते हुए...** अतीन्द्रिय आनन्द में रहते हुए **बाहर की वस्तुएँ, धमाल देखने पर...** बाहर लड़ाई देखे, किसी का संहार देखे, अपने अन्दर भी कोई लड़ाई का भाव आ जाए। करोड़ों मनुष्य के बीच खड़ा हो और लाखों लोगों की हिंसा भी हो जाए। आहाहा! परन्तु घर में खड़ा है, अन्तर में घर में खड़ा है और बाहर की धमाल देखता है। आहा..! मात्र बाहर में देखता है, उसको धमाल की अशान्ति दिखती है। अन्दर में रहनेवाले को बाहर की धमाल दिखती नहीं। उसकी शान्ति चलायमान होती नहीं। चाहे जो भी धमाल हो। थोड़ी सूक्ष्म बात है। बहिन ने तो अन्दर की बात बाहर थोड़ी-थोड़ी रखी है। आहाहा!

परन्तु जिसे घर मिल गया है, उसे घर में रहते हुए बाहर की वस्तुएँ, धमाल देखने पर शान्ति रहती है;... अपने मकान में रहा है, बाहर की धमाल देखे, दूसरे का घर जलता हुआ देखे तो भी अशान्ति नहीं होती। आहाहा! जिसे अन्दर में घर मिल गया, प्रभु चैतन्य राग से रहित, विकल्प से रहित, निर्विकल्प आनन्द, निर्विकल्प आनन्द का धाम, स्वयं ज्योति सुखधाम, स्वयं ज्योति चैतन्य सहज और सुख का स्थान, सुख का क्षेत्र, उसको देखकर **बाहर की वस्तुएँ, धमाल देखने पर शान्ति रहती है;...** आहाहा! भाषा सादी है। भाषा में मानों कोई... वस्तुस्थिति यह है।

चैतन्य की महिमा आये बिना कोई भी परचीज़ में से उसकी रुचि हटती नहीं। क्योंकि रुचि अनुयायी वीर्य। जिसमें रुचि है, उसमें वीर्य का फैलाव होता है। आहाहा! घूमफिरके बात यह है कि चैतन्य के घर में आ जा, भगवान! तेरा घर यह है। राग, पुण्य, दया, दान का विकल्प तेरा घर नहीं। आहाहा! **उसी प्रकार जिसे चैतन्यघर मिल गया है,...** दृष्टि प्राप्त हो गयी है। आहाहा! अपना अनुभव आनन्द का हो गया है, उसका नाम चौथा गुणस्थान है। अतीन्द्रिय आनन्द का अनुभव, उसका नाम चौथा गुणस्थान समकित है। श्रद्धामात्र करना, वह समकित नहीं। आहाहा! **उसी प्रकार...** धमाल दिखने पर भी शान्ति रहती है, **उसी प्रकार जिसे चैतन्यघर मिल गया है, दृष्टि प्राप्त हो गई है, उसे उपयोग बाहर जाए...** उपयोग बाहर में (जाए और) विकल्प आये, **तब भी शान्ति रहती है।** ध्रुव को पकड़ा है। आहाहा! 'ध्रुव धणी माथे कियो रे, कुण गंजे नर खेट' जिसने ध्रुव ऐसा आत्मा भगवान,... ध्रुव तो पर्याय को भी कहते हैं। समयसार की पहली गाथा। ध्रुव, अचल, अनुपम। वह ध्रुव तो मोक्ष की पर्याय को कहते हैं। पहली गाथा है न? वह ध्रुव नहीं। वह तो ध्रुव क्यों कहा? – मोक्ष में से वापस आता नहीं, सादि-अनन्त एकरूप रहता है, इसलिए उसे ध्रुव कहा, पहली गाथा में। पहला शब्द वह है समयसार का।

वंदित्तु सव्वसिद्धे धुवमचलमणोवमं गदिं पत्ते।
वोच्छामि समयपाहुडमिणमो सुदकेवलीभणिदं ॥१॥

क्या कहा? दूसरी गाथा में वह कहा। मैं समयसार कहूँगा, तो समयसार का माल क्या? आहाहा! कहा कि, '**जीवो चरित्तदंसणणाणठिदो**'। चन्दुभाई! समयसार की दूसरी गाथा। मैं समयसार कहूँगा, परन्तु यह समयसार अर्थात् क्या? आहा..! '**जीवो**

चरित्तदंसणणाणठिदो' जो आत्मा अपनी शान्ति, आनन्द, श्रद्धा, ज्ञान, समकित में जो स्थिर होता है। **'जीवो चरित्तदंसणणाणठिदो तं हि ससमयं जाण'** उसे तू स्वसमय जान। आहाहा! दूसरी गाथा। और जो **'पोग्गलकम्मपदेसट्ठिदं'** जो राग के कण में रहता है, वह पुद्गल में रहा है। आहाहा! पुण्य के परिणाम में जो रहता है, वह पुद्गल में रहता है। दूसरा पद आया न? **'जीवो चरित्तदंसणणाणठिदो तं हि ससमयं जाण। पोग्गलकम्मपदेसट्ठिदं'** पुद्गल के प्रदेश में परसमय रहा है। परमाणु में रहा है? आहाहा! वह पुद्गल का ही प्रदेश है। दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा आदि का शुभभाव, यह सब पुद्गल का ही प्रदेश है, पुद्गल का ही भाग है। आहाहा! यह दूसरी गाथा। दूसरी गाथा का सार।

'जीवो चरित्तदंसणणाणठिदो तं हि ससमयं जाण' उसे तू स्वसमय आत्मा जान। आत्मा अपना स्वभाव दर्शन, ज्ञान, शान्ति में रहता है, स्थिर होता है, जमता है, अनुभव करता है, उसको स्वसमय जान, उसको आत्मा जान। स्वसमय अर्थात् उसको आत्मा जान। और उसके सिवा रागादि विकल्प में है, वह आत्मा नहीं। वह तो पुद्गल के प्रदेश में स्थित है। आहाहा! गजब है! रागादि कण में रहनेवाला, शुभ क्रियाकाण्ड में रहनेवाला पुद्गल में रहा है। पुद्गल का प्रदेश है, भगवान आत्मा का वह प्रदेश-क्षेत्र या भाव नहीं है।

यहाँ वह कहा, १७४ गाथा है न? **जिसे चैतन्यघर मिल गया है, दृष्टि प्राप्त हो गई है, उसे उपयोग बाहर जाए...** आहाहा! चौथे, पाँचवें गुणस्थान में तो रौद्रध्यान भी होता है। फिर भी दृष्टि ध्रुव पर पड़ी है, समकित (जाता) नहीं। रौद्रध्यान होता है। आहाहा! छट्ठे गुणस्थान में रौद्रध्यान नहीं है, वहाँ मात्र आर्तध्यान है। आहाहा! आर्तध्यान है, फिर भी छट्ठा गुणस्थान है। यहाँ रौद्रध्यान है, फिर भी चौथा और पाँचवाँ गुणस्थान है। वह दशा पलट गई है, अन्दर में भिन्न हो गया है। आहा..! एक में आनन्दकन्द का ध्यान है, एक में राग का (ध्यान है)। दोनों भिन्न हो गये हैं, जुदा हो गये हैं। वह कहा।

उसे उपयोग बाहर जाए... धर्मी का उपयोग राग में, विकल्प में, विषय में, वासना में, भोग में, लड़ाई में भी जाए, फिर भी **शान्ति रहती है।** अन्तर में आनन्द का ध्रुव का ध्यान है। ध्रुव का ध्येय, ध्रुव का ध्येय का ध्यान, ध्रुव का ध्येय का ध्यान हटता नहीं। खसता नहीं को क्या कहते हैं? हटता नहीं। आहाहा! ऐसी बात है। १७४ हुआ न? अब, १८३।

चैतन्यदेव रमणीय है, उसे पहिचान। बाहर रमणीयता नहीं है। शाश्वत आत्मा रमणीय है, उसे ग्रहण कर। क्रियाकाण्ड के आडम्बर, विविध विकल्परूप कोलाहल, उस पर से दृष्टि हटा ले; आत्मा आडम्बर रहित, निर्विकल्प है, वहाँ दृष्टि लगा; चैतन्यरमणता रहित विकल्पों के कोलाहल में तुझे थकान लगेगी, विश्राम नहीं मिलेगा; तेरा विश्रामगृह आत्मा है; उसमें जा तो तुझे थकान नहीं लगेगी, शान्ति प्राप्त होगी॥१८३॥

१८३। **चैतन्यदेव...** आहाहा! **चैतन्यदेव रमणीय है,...** उसको चैतन्यदेव कहा। दिव्य शक्ति का भण्डार, दिव्य शक्ति का सागर, उसको देव कहा। कलश में भी आता है। अमृतचन्द्राचार्य। समयसार का कलश आता है न? कलश में भी आता है कि देव है, आत्मा देव है। आहाहा! जिसकी दिव्यता के समक्ष इन्द्र के इन्द्रासन भी सड़े हुए बिल्ली के मुर्दे जैसा लगता है। आहाहा! आत्मा के आनन्द के आगे, भले चौथे गुणस्थान में हो, परन्तु आत्मा के आनन्द के आगे इन्द्र का इन्द्रासन भी सड़ा हुआ कुत्ता अथवा सड़ी हुई बिल्ली जैसा लगता है। आहाहा! रस उड़ गया। रस आत्मा में लग गया, इसलिए यहाँ से रस छूट गया। जिसको पर में रस लगा है, उसको स्वरस है नहीं। आहाहा! कौन-सा आया है? १८३।

चैतन्यदेव रमणीय है, उसे पहिचान। भगवान अन्दर रमणीय है। आहाहा! कोई अलौकिक रमणता उसमें भरी है। चमड़े के अन्दर भिन्न है, ऐसा देखकर, अल्प है – ऐसा न मान। चमड़ी और हड्डी के अन्दर दिखता है, इसलिए उसे अल्प मत मान। **चैतन्यदेव रमणीय है, उसे पहिचान। बाहर रमणीयता नहीं है।** आहाहा! सर्वार्थसिद्ध का वैभव या चक्रवर्ती का वैभव, उसमें रमणीयता नहीं है। यह तो घर की बात है। जिसे अन्दर की रमणीयता भासित हुई, उसे पूरी दुनिया की रमणीयता छूट गई। आहाहा!

शाश्वत आत्मा रमणीय है,... भगवान नित्यानन्द, वही रमणीय है। आहाहा! रमने योग्य रमणीक और शोभनीक हो तो भगवान नित्य आत्मा है। आहाहा! **शाश्वत आत्मा रमणीय है, उसे ग्रहण कर।** ग्रहण कर अर्थात् उसका अनुभव कर। उसके बिना सब व्यर्थ है। आहाहा! भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द, उसे ग्रहण कर, पकड़। तेरी पकड़

अनादि से राग में हो गयी है, वह पकड़ छोड़ दे। अन्दर भगवान आत्मा रमणीय है, उसे पकड़ ले। भाषा तो सादी है, भाव बहुत कठिन है, भाई!

क्रियाकाण्ड के आडम्बर,... आहाहा! बाह्य क्रियाकाण्ड के आडम्बर में अपने को रोक लिया। आहाहा! **विविध विकल्परूप कोलाहल,...** यह छोड़ा, यह लिया, यह किया, वह सब विकल्प की जाल है, राग की जाल है। राग की जाल, कोलाहल! **उस पर से दृष्टि हटा ले;...** पर की ओर का कोलाहल जो विकल्प है, उससे हट जा। भाषा तो क्या आये? हटा ले, भाषा से काम (होता है)? आहाहा! दृष्टि पलट जाती है। जो दृष्टि राग पर है, जो दृष्टि पर्याय पर है, वह दृष्टि द्रव्य पर पलट दे। क्योंकि पर्याय पलटती तो है, पलटने का उसका स्वभाव तो है ही, परन्तु स्व ध्येय पर कभी पलटी नहीं। आहाहा! राग के लक्ष्य से, द्वेष के लक्ष्य से पलटकर अनादि से पर्याय में रहा। चाहे तो दया, दान, व्रत (करके) नौवीं ग्रैवेयक मुनि गया। व्रत, पच्चखाण निरतिचार पाले, हाँ! फिर भी मिथ्यादृष्टि है। आहाहा! आत्मा के आनन्द का रस आये बिना **क्रियाकाण्ड के आडम्बर, विविध विकल्परूप कोलाहल, उस पर से दृष्टि हटा ले;...** आहाहा! यह तो तत्त्व की बात है।

आत्मा आडम्बर रहित,... है। भगवान आत्मा निर्विकल्प आनन्द (स्वरूप) है। जिसमें विकल्प मात्र नहीं है। निर्विकल्प अखण्ड तत्त्व है अन्दर। विकल्प उठना उसके स्वभाव में है ही नहीं। आहाहा! विकल्प से हटकर, **आत्मा आडम्बर रहित, निर्विकल्प है,...** आहाहा! **वहाँ दृष्टि लगा;...** वहाँ दृष्टि लगा दे, प्रभु! आहा..!

स्वसमय उसी को कहा। फिर तो विस्तार किया। दूसरी गाथा में कहा कि '**जीवो**' '**जीवो**'। इसलिए ४७ शक्ति में पहली जीवत्वशक्ति ली है। ४७ शक्ति है न? पहली जीवत्व ली है। वह इसमें से लिया है। '**जीवो**' में से लिया है। दूसरी गाथा का पहला शब्द। जीवत्वशक्ति से विराजमान जीव है। जीवत्वशक्ति में अनन्त आनन्द, अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त वीर्य... आहाहा! वह जिसका जीवन है। उस जीवन को धरनेवाला वह जीव है। आहाहा! जीवत्वशक्ति है न? ४७ में पहली शक्ति। वह यहाँ से निकाली है। '**जीवो चरित्तदंसणणाणठिदो**' पहला चरित्र शब्द लिया है। मुनि है न? मुनि ने बनाया है न! अपना शुद्ध चैतन्य निर्विकल्पस्वरूप, अखण्डानन्द, विकल्प का संग जिसको है नहीं, आहाहा! ऐसा करूँ और ऐसा न करूँ, ऐसा छोड़ूँ और ऐसा न छोड़ूँ, वह सब विकल्प की

जाल है। राग की जाल है। राग की जाल में **तुझे थकान लगेगी, विश्राम नहीं मिलेगा;...** आहाहा! वहाँ विश्राम-शान्ति नहीं मिलेगी। आहाहा!

तेरा विश्रामगृह आत्मा है;... तेरा विश्रामगृह चौरासी की थकान दूर करने का... आहाहा! विश्रामगृह आत्मा है। जहाँ चौरासी के अवतार छूट जाते हैं। सर्वार्थसिद्धि के देव का भी अवतार छूट जाता है। वह तेरा विश्रामगृह है। आहाहा! जब तक विश्राम नहीं मिलेगा, **तेरा विश्रामगृह आत्मा है;...** उसमें आ जा। **उसमें जा तो तुझे थकान नहीं लगेगी,...** राग की जाल में तुझे थकान लगेगी, उलझन में आ जाएगा, दुःख होगा, आकुलता की जाल में रुक जाएगा। जैसे मकड़ी... आहाहा! अपनी लार निकालकर उसी में रुकती है। मकड़ी अपने मुख में से लार निकालकर वहीं अटकती है। आहाहा! वैसे अज्ञानभाव में विकार की लार निकालकर उसमें तू घुस गया है। आहाहा! करोलियो कहते हैं न? हमारे में करोलियो कहते हैं।

एक बार वहाँ कहा था। मनुष्य हुआ। मनुष्य है, उसके दो पैर है। स्त्री हुई तो चार पैर हुए। पशु हुआ, पशु। चोपाया दूसरी भाषा है न। दुर्घटना शब्द लिखा है न? दुर्घटना। स्त्री के साथ शादी करना दुर्घटना है। त्रिलोकनाथ महावीर परमात्मा ब्रह्मचारी रहे। क्योंकि स्त्री दुर्घटना है। उसके बाद सब दुर्घटना ही होगी। आहाहा! यहाँ कहते हैं, विश्रामगृह एक (आत्मा) है। **उसमें जा तो तुझे थकान नहीं लगेगी,...** आहाहा! शान्ति प्राप्त होगी। शान्ति का सागर है। शान्ति अर्थात् शास्त्र भाषा से अकषाय भाव है। अकषाय भाव से पूर्ण भरा है। पूर्ण शान्ति.. शान्ति.. शान्ति.. जिसके शान्ति के एक अंश के समक्ष.. आहाहा! सर्वार्थसिद्ध का देव भी गिनती में नहीं आता। वह भी समकिती एकावतारी है। यहाँ जो शान्ति का अंश आया, उसमें चौथे से पाँचवें गुणस्थान में जाए.. आहाहा! सर्वार्थसिद्धि में जो शान्ति है, उससे भी विशेष अधिक शान्ति है। पंचम गुणस्थान प्रतिमाधारी, बाह्य में प्रतिमा है, वह तो विकल्प है, परन्तु अन्दर आनन्द है, वह वस्तु है। आनन्द आदि हो तो विकल्प को व्यवहार कहने में आता है। नहीं तो व्यवहार भी नहीं है। आहाहा!

आनन्द के घर में वह रहता है। आहा..! उसमें तुझे शान्ति लगेगी। तेरा घर शान्ति का सागर है। कैसे बैठे? भाई! वह कोई विकल्प से बैठे या सुनकर बैठे, वह कोई चीज़ नहीं है। सुनकर बैठे या धारणा में आया, वह कोई चीज़ नहीं है। अपनी चीज़ आनन्दकन्द

नाथ, उसका स्पर्श करने से जो शान्ति मिलेगी, ऐसी शान्ति तीन लोक में दूसरे किसी स्थान में नहीं है। आहाहा! उसमें पंचम गुणस्थानवाले को सर्वार्थसिद्ध की शान्ति है, उससे विशेष शान्ति मिलेगी। सर्वार्थसिद्ध का देव एकावतारी, एक भव में मोक्ष जानेवाला है। उसकी जो चौथे गुणस्थान की (शान्ति) है, (उससे) पंचम गुणस्थान का आनन्द अनुभव में आया है, तो उसका आनन्द तो उससे भी बढ़ गया। सर्वार्थसिद्ध के देव से आनन्द बढ़ गया। आहाहा! तब उसे प्रतिमाधारी कहने में आता है। आहाहा! इसलिए वहाँ विश्राम लिया।

शान्ति प्राप्त होगी। शान्ति अन्दर में है। १८३ (पूरा हुआ)।

मुमुक्षु :- आपने तो करणानुयोग का व्याख्यान भी कर दिया।

पूज्य गुरुदेवश्री :- वह तो नाम दिया। १८३ हुआ न? अब, १८५।

मुनिराज कहते हैं:—चैतन्यपदार्थ पूर्णता से भरा है। उसके अन्दर जाना और आत्मसम्पदा की प्राप्ति करना, वही हमारा विषय है। चैतन्य में स्थिर होकर अपूर्वता की प्राप्ति नहीं की, अवर्णनीय समाधि प्राप्त नहीं की, तो हमारा जो विषय है, वह हमने प्रगट नहीं किया। बाहर में उपयोग आता है, तब द्रव्य-गुण-पर्याय के विचारों में रुकना होता है, किन्तु वास्तव में वह हमारा विषय नहीं है। आत्मा में नवीनताओं का भण्डार है। भेदज्ञान के अभ्यास द्वारा यदि वह नवीनता—अपूर्वता प्रगट नहीं की, तो मुनिपने में जो करना था, वह हमने नहीं किया॥१८५॥

१८५। **मुनिराज कहते हैं:—चैतन्यपदार्थ पूर्णता से भरा है।** महाव्रतधारी सत्य बोलनेवाले। आहाहा! वे कहते हैं, **चैतन्यपदार्थ पूर्णता से भरा है।** शान्ति से, आनन्द से, वीतरागता से वीतरागता से... वीतरागता से पूर्ण भरा है। जिसमें राग की गन्ध नहीं। आहाहा! ऐसा आत्मा कैसे माने? वीतराग की मूर्ति पूरी। पूरी दुनिया में फेरफार हो जाए, लेकिन उसकी वीतरागमूर्ति में फेरफार नहीं होता। ऐसा वीतरागमूर्ति आत्मा है। **चैतन्यपदार्थ पूर्णता से भरा है। उसके अन्दर जाना...** आहाहा! उसके अन्दर जाना। राग से हटकर... प्रभु! शब्द तो बहुत थोड़े हैं। राग-विकल्प से हटकर निर्विकल्प आनन्द में जाना, वह चीज़ है। करना यह है। कल कहा था न? बारह अंग विकल्प है। बारह अंग है विकल्प,

बारह अंग विकल्प है; उसमें अनुभूति कहने में आयी है। आत्मा का आनन्द का अनुभव कहने में आया है। बारह अंग में सार यह कहा है। आहाहा! भले वह है विकल्प, परन्तु उसमें कहा यह है। आत्मा की अनुभूति-आनन्द। आनन्द का अनुभव करो। प्रभु! तेरे घर में आनन्द भरा है। आहाहा!

अपने सिवा जगत की कोई भी चीज़, थोड़ी भी ठीक है, ऐसा लगे, सुख लगे, मजा लगे तब तक मिथ्यात्व है। आहाहा! अपने आत्मा के सिवा कहीं भी सुख की गन्ध लगे, सुख का परम्परा कारण भी लगे,... आहाहा! राग करेंगे तो परम्परा से वीतरागता मिलेगी, वह भी... आहाहा! दुर्गन्ध है। आत्मा की गन्ध नहीं। आहाहा! सूक्ष्म बात है, भाई!

मुनिराज कहते हैं:—चैतन्यपदार्थ पूर्णता से भरा है। अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त आनन्द, अनन्त वीर्य, अनन्त स्वच्छता, अनन्त जीवत्व, चिति, दृशि, ज्ञान, सुख, वीर्य, प्रभुता, विभुता, सर्वदर्शी, सर्वज्ञ, स्वच्छता—ऐसी अनन्त शक्ति से परिपूर्ण भरा है। आहाहा! **उसके अन्दर जाना...** उसके अन्दर जाना। आहाहा! यह सार है। क्या करना? अन्दर जाना, वह करना है। वह कोई बाह्य क्रियाकाण्ड का सेवन करने से अन्दर जाएगा, (ऐसा) त्रिकाल में नहीं है। आहाहा! **उसके अन्दर जाना और आत्मसम्पदा की प्राप्ति करना,...** मुनिराज ऐसा कहते हैं कि **आत्मसम्पदा की प्राप्ति करना, वही हमारा विषय है।** नियमसार में है, कलश है। नियमसार में कलश है। हमारा विषय अतीन्द्रिय आनन्द का अनुभव, वह विषय हम नहीं करते हैं, ऐसा कहकर बोध दिया है। कलश है, नियमसार में। हमारा विषय, मुनिराज का विषय अतीन्द्रिय आनन्द का घर, यह विषय है। आहाहा!

यहाँ वह कहते हैं, **चैतन्यपदार्थ पूर्णता से भरा है। उसके अन्दर जाना और आत्मसम्पदा की प्राप्ति करना, वही हमारा विषय है।** मुनिराज का यह विषय है। आहाहा! सच्चे मुनि इसको कहते हैं। क्रियाकाण्ड करे, वह मुनि नहीं है। आहाहा! **आत्मसम्पदा की प्राप्ति करना, वही हमारा विषय है।** आहाहा! क्या कहा? हमारा ध्येय तो अकेले आनन्दकन्द के ऊपर है। बाहर में प्रवृत्ति-उपयोग थोड़ा सा जाता है, परन्तु उपयोग आता है, उसमें दुःख लगता है। आहाहा! उपदेश का, लिखने का विकल्प दुःख है। शास्त्र की टीका लिखना, वह विकल्प दुःख है। आहाहा! हमारा विषय वह नहीं है। है? **आत्मसम्पदा की प्राप्ति करना, वही हमारा विषय है।** आहाहा! लिखना या उपदेश देना, हमारा विषय नहीं है। आ जाओ

तो आ जाओ, उसके कारण से हो जाओ, हमारा विषय नहीं है। हम उसमें है नहीं। आहाहा!

यहाँ तो **आत्मसम्पदा की प्राप्ति करना, वही हमारा विषय है।** आहाहा! पंच महाव्रत पालना, अट्ठाईस मूलगुण पालना हमारा विषय है, ऐसा नहीं लिया। आहाहा! नियमसार में यह कलश है। बहिन ने लिखा है, वह उसमें से लिखा है। पढ़ते होंगे तो उसमें से यह बोले हैं। पद्मप्रभमलधारिदेव मुनि कहते हैं, हमारा विषय यह है, वहाँ हम जाते नहीं। ऐसा कहकर लोगों को आगे बढ़ाते हैं। हमारा विषय तो एक ही है। चैतन्यस्वरूप आनन्दकन्द में रहना, बस। आहाहा! पंच महाव्रत पालना या वह करना (हमारा विषय नहीं है)। कलश है। पद्मप्रभमलधारिदेव, नियमसार की टीका करनेवाले, उनका कलश है। आहाहा! हमारा विषय जो है, हमारा जो ध्येय है, वहाँ हम जाते नहीं और बाहर में भटकते हैं, अरे..रे..! यह विषय नहीं। ऐसा कहकर अल्प कोई विकल्प आया, उसका खेद किया है। विकल्प आया उसका खेद (किया है)। विकल्प क्या? हमारी चीज़ में विकल्प तीन काल में नहीं है। हमारा विषय तो यह है। कहा न? आहाहा! क्या?

चैतन्य में स्थिर होकर अपूर्वता की प्राप्ति नहीं की, अवर्णनीय समाधि प्राप्त नहीं की,... आहाहा! जब तक यह नहीं किया, तब तक मुनिपना नहीं है। चैतन्य में स्थिर होकर अपूर्वता की प्राप्ति नहीं की। अपूर्व और अवर्णनीय समाधि-कथन कर सके नहीं ऐसी समाधि-आनन्द, ऐसा प्राप्त नहीं किया **तो हमारा जो विषय है,...** आहाहा! मुनिराज कहते हैं। हमारा विषय है। आहाहा! पंच महाव्रत (पालना), वस्त्र छोड़ना, नग्न होना, वह कोई मुनि का विषय है ही नहीं। आहाहा! गजब बात है। **हमारा जो विषय है, वह हमने प्रगट नहीं किया।** विचार करते हैं। आहाहा!

बाहर में उपयोग आता है, तब द्रव्य-गुण-पर्याय के विचारों में रुकना होता है,... विकल्प आता है तो द्रव्य-गुण-पर्याय में रुकता है। बाहर तो नहीं, परन्तु अपने द्रव्य-गुण-पर्याय तीन भेद, उसमें रुकता है, वह भी राग है। वह गाथा है, नियमसार में गाथा है, मूल पाठ है। द्रव्य-गुण-पर्याय अपने में तीन के विचार करने में रुकना, वह पराधीन, परवश, अनावश्यक है। क्या कहा? जो आत्मा में द्रव्य, गुण और पर्याय ऐसा तीन का विचार करते हैं, वह अनावश्यक है, वह आवश्यक में नहीं है। आवश्यक अधिकार में है, नियमसार में। विशेष आयेगा... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

विक्रम संवत-२०३५, श्रावण शुक्ल - ७, रविवार, तारीख १७-८-१९८०
वचनामृत-१८५, १९३, १९७ प्रवचन-१०

१८५ बोल। फिर से थोड़ा लेते हैं। **मुनिराज कहते हैं...** पद्मप्रभमलधारिदेव मुनि, उनके कलश में है। **चैतन्यपदार्थ पूर्णता से भरा है।** भगवान आत्मा पूर्ण गुण और शक्ति से भरा है। **उसके अन्दर जाना...** अन्तर गुण जो ज्ञान और आनन्द है, जो अनन्त भरा है, उसमें जाना **और आत्मसम्पदा की प्राप्ति करना,...** आहाहा! आत्मसम्पदा की प्राप्ति करना। अन्तर आनन्द, ज्ञान, शान्ति, स्वच्छता, प्रभुता, विभुता आदि अनन्त आत्मसम्पदा की प्राप्ति करना, मुनिराज कहते हैं, **वही हमारा विषय है।** मुनिराज का यह विषय है। क्रियाकाण्ड कोई उनका विषय नहीं है। आहाहा! क्रियाकाण्ड आ जाए, स्वतन्त्र जड़ करे। विषय यह है। आहाहा!

चैतन्य में स्थिर होकर अपूर्वता की प्राप्ति नहीं की,... आहाहा! **अवर्णनीय समाधि प्राप्त नहीं की, तो हमारा जो विषय है,...** मुनि का विषय ध्रुव द्रव्य है। नियमसार में कलश है। हमारा विषय तो आत्मा आनन्द अखण्डानन्द प्रभु हमारा विषय है। समकिती को भी वह विषय है परन्तु मुनि को विशेष है। **अवर्णनीय समाधि प्राप्त नहीं की,...** हमारा विषय है। आहाहा! समाधि, चैतन्य में स्थिर रहना, यह मुनि का विषय है। आहाहा! बाहर में क्या करना, वह कुछ आया नहीं। अन्दर ठहरना। परन्तु स्थिर कब हो? कि वह चीज़ ज्ञान में भासित हो, ज्ञान में ज्ञेय हो, पूरी चीज़ ज्ञान में ज्ञेयरूप से भासित हो, भासन हो, बाद में उसमें स्थिर हो सकता है। कहते हैं कि हमने प्रगट नहीं किया। वह तो व्यवहार से बात करते हैं। है तो मुनि। अल्पपना है, अभी केवलज्ञान नहीं है, इसलिए अपनी दीनता वर्णन करते हैं। आहाहा! है तो महामुनि। छट्ठे-सातवें गुणस्थान में झुलनेवाले हैं। परन्तु हमें केवलज्ञान नहीं है। अरेरे! वह हमारी दीनता है। आहाहा! उनकी दीनता का वर्णन करते हैं। अरे..! हमने प्रगट किया नहीं। बाहर में उपयोग आता है।

बाहर में उपयोग आता है, तब द्रव्य-गुण-पर्याय के विचारों में रुकना होता

है,... क्या कहते हैं ? अन्तर में तो अकेले ज्ञायक का ही अनुभव होता है परन्तु विकल्प आया। उसमें रह सके नहीं तो द्रव्य अर्थात् त्रिकाली वस्तु; गुण अर्थात् त्रिकाली शक्ति, सत् का सत्त्व, सत् जो भगवान आत्मा, उसका सत्त्व, उसको यहाँ गुण कहते हैं। आहाहा! हमें अन्तर में ध्यान में रहना, वही हमारा विषय है, परन्तु हम उसमें रह नहीं सकते, तब द्रव्य-गुण-पर्याय के विचार में रुकना होता है। द्रव्य अर्थात् त्रिकाली वस्तु; गुण-त्रिकाली शक्ति-स्वभाव; पर्याय-वर्तमान दशा। आहाहा! ये द्रव्य, गुण और पर्याय। द्रव्य आत्मा त्रिकाली आनन्दकन्द प्रभु, जिसमें गुण का भेद नहीं, पर्याय का भेद भी नहीं, अभेद वस्तु। पर्याय जिसको विषय करे, वह अभेद चीज़ है। पर्याय का विषय पर्याय भी नहीं है। आहाहा! पर्याय का विषय अभेद चैतन्य, वह द्रव्य और उसमें ज्ञान, दर्शन, आनन्द आदि गुण और उसकी वर्तमान अवस्था पलटना, पलटना, पर्याय पलटती है, वह उसकी पर्याय। है तो मुनि। आचार्य नहीं। पद्मप्रभमलधारिदेव मुनि हैं।

मुनि कहते हैं कि हमारे विषय में हम रह सकते नहीं, स्थिर नहीं रह सकते। इतनी दीनता बताते हैं। विकल्प आता है तो द्रव्य-गुण-पर्याय में रुकना पड़ता है। आहाहा! बाकी रहना तो अन्दर में रहना वह वस्तु है। हमारा विषय तो अन्दर में आनन्द में स्थिर होना (वह है)। ज्ञायक आनन्द ऐसा जो दृष्टि में लिया है, आहाहा! सम्यग्दर्शन में जो ज्ञायक और आनन्द अतीन्द्रिय जो दृष्टि में लिया है और अनुभव में लिया है, हमें तो वहीं रहना, वही हमारा विषय है। आहाहा! है तो महामुनि। अल्प काल में मेरे हिसाब से तो तीर्थंकर होंगे। भविष्य में। ऐसी कथन शैली अन्दर में है। है मुनि, आचार्य नहीं है परन्तु कहते हैं, उपयोग जब बाहर में जाता है, तब द्रव्य-गुण-पर्याय में (लगता है) परन्तु बाहर में उपयोग जाए तब यह (होता है)। अपने द्रव्य, गुण, पर्याय तीन में। आहाहा! वह भी विकल्प है, राग है। अपना द्रव्य त्रिकाली, ज्ञान और आननद आदि वर्तमान गुण त्रिकाली और वर्तमान उसकी अवस्था-निर्मल शान्त वीतरागी। इन तीनों का विचार आत्मा है तो विकल्प आता है। आहाहा! यह नियमसार में गाथा है। नियमसार में गाथा है। द्रव्य, गुण, पर्याय तीन का एक द्रव्य में विचार करे, वह विकल्प है। यहाँ है ? नियमसार। १४५ गाथा। उन्हें याद रह गई है।

नियमसार नहीं ? नियमसार है यहाँ। कितनी कही ?

मुमुक्षु :- १४५ (गाथा)

पूज्य गुरुदेवश्री :- गाथा। **यहाँ भी अन्यवश का स्वरूप कहा है। भगवान अरहन्त के मुखारविन्द से निकले हुए (- कहे गये) मूल और उत्तर पदार्थों का सार्थ (अर्थसहित) प्रतिपादन करने में समर्थ ऐसा जो कोई द्रव्यलिंगधारी (मुनि) कभी छह द्रव्यों में चित्त लगाता है,...** आहाहा! पाठ में है। **दव्वगुणपज्जयाणं चित्त जो कुणइ सो वि अण्णवसो।** वह पराधीन है। आहाहा! १४५ गाथा है। **द्रव्यगुणपर्यायाणां।** द्रव्य अर्थात् त्रिकाली भगवान ज्ञायक प्रभु और गुण अर्थात् आनन्द और ज्ञान उसका गुण और वर्तमान उसकी आनन्द और शान्ति की पर्याय—ऐसे तीन भेद का विचार करने से राग और विकल्प उत्पन्न होता है। आहाहा! अपने द्रव्य, गुण, पर्याय तीन, हों! बाहर के द्रव्य, गुण, पर्याय के विचार करना तो विकल्प है ही। अपने सिवा तीर्थंकर की ओर लक्ष्य जाए तो भी शुभराग है। तीन लोक के नाथ पर दृष्टि जाए तो भी शुभराग (है)। यह तो अपने में द्रव्य-गुण-पर्याय का तीन भेद करते हैं। आहाहा!

दव्वगुणपज्जयाणं द्रव्य अर्थात् त्रिकाली ज्ञायकभाव। गुण अर्थात् अनन्त ज्ञान, दर्शन, शान्ति, स्वच्छता इत्यादि। पर्याय (अर्थात्) एक गुण की वर्तमान दशा। पर्याय पलटती अवस्था। एक में तीन का विचार करता है तो हम परवश है। हम परवश हैं। आहाहा! बेहद फेर। अपना द्रव्य, गुण, पर्याय तीन का विचार करने से भी राग (होता है)। आवश्यक नहीं है। आवश्यक का अधिकार है। वह आवश्यक नहीं। अधिकार आवश्यक का है। यह अनावश्यक है। आहाहा! दूसरे में आ गया है। आगे कलश में। हमारा विषय तो अभेद ज्ञायक ही है। उसमें है। हम ज्ञायक में रह सके नहीं, वह हमारा विषय छोड़कर अपने द्रव्य-गुण-पर्याय में आता है, अपना द्रव्य, त्रिकाली गुण और ज्ञानपर्याय, इन तीन का विचार आता है तो प्रभु! परवश हैं। अन्यवश है, पाठ। परवश है, आवश्यक नहीं। उसकी जरूरतवाली क्रिया नहीं। आहाहा! धन्नालालजी! आहाहा!

मुनिराज ऐसा कहते हैं। कल तीन बोल रखे थे न? नहीं? उसमें वहाँ मुनि की बात है। मुनि की बात समकिती की बात से ज्यादा... मुनिराज ऐसा कहते हैं। आहाहा! पद्मप्रभमलधारिदेव टीकाकार। नियमसार के टीकाकार ऐसा कहते हैं कि हम अपने ज्ञायक में.. हमारा विषय तो यही है। अन्दर आनन्द में रहना, ज्ञायक ध्रुव में (रहना), परन्तु

उसमें रह नहीं सके तो द्रव्य, गुण, पर्याय का विचार आता है तो वह विकल्प अनावश्यक है। आवश्यक नहीं है। आहाहा! गजब बात है! तीर्थंकरदेव वीतराग परमात्मा की चरमसीमा की यह हद है। आहाहा!

अरे..! द्रव्य मैं हूँ, वह भी विकल्प लिया है। १४२ गाथा में। मैं ज्ञायक हूँ, ऐसा भी विकल्प उठाता है, वह भी पराधीन है। आहाहा! अपना स्वरूप ज्ञायक, उसमें रहना और बाहर निकले तो उपयोग का द्रव्य, गुण, पर्याय में रुकना होता है। अरे..रे..! हमारी दशा अन्दर नरम दशा है। आहाहा! हमारी दशा उग्र नहीं है। आहाहा! मुनिराज कहते हैं। हमारी दशा निर्मल नहीं है। हमारा द्रव्य, गुण, पर्याय के विचार में रुकना होता है। आहाहा!

किन्तु वास्तव में वह हमारा विषय नहीं है। है ? आहाहा! गजब बात है! दुनिया कुछ मानती है, वस्तु कहीं दूर रह गयी। आहाहा! चन्दुभाई! द्रव्य, गुण, पर्याय हमारा विषय नहीं है। आहाहा! गजब है! वीतरागमार्ग की पराकाष्ठा। मुनिराज नरमाई से अपनी दीनता पर्याय में बताते हैं। अरे..रे..! हम ज्ञायक में रह सकते नहीं। केवली परमात्मा ज्ञायक में सादि-अनन्त रहे। केवली परमात्मा सादि-अनन्त रहे, हम अन्तर्मुहूर्त के सिवा ज्ञायक में रह सकते नहीं और बाहर निकलते हैं तो द्रव्य, गुण, पर्याय तीन का विचार आता है। विचार भी यह आता है। वह भी परवश है, अनावश्यक है। आहाहा! आवश्यक का अधिकार है। आहाहा! गजब बात है! फिर से लिया। आहाहा!

अन्तर चैतन्यप्रभु अकेले ज्ञायक में ध्यान में आनन्द में रहना, अतीन्द्रिय आनन्द के वेदन में रहना, वह हमारा विषय है। उस आनन्द में से निकलकर, आनन्द तो रहता है, परन्तु निकलकर आये तो द्रव्य, गुण, पर्याय का, अपनी एक चीज़ में तीन भेद करके हमको रुकना पड़ता है। आहाहा! अरे..रे..! हद बात है, प्रभु! तेरी। तेरी बात है, नाथ! तू ऐसा है, प्रभु! अन्दर स्वरूप में से निकलकर राग में रुकना, प्रभु! तेरा विषय नहीं। आहाहा! आहाहा!

मुमुक्षु :- यह स्पष्टीकरण तो आपने किया।

पूज्य गुरुदेवश्री :- वस्तु ऐसी है। बहिन की तो महा अनुभवदशा है। उनकी तो बहुत तीव्र दशा है। अन्तर में से सहज भाषा आ गयी है। ये तो बहनों ने लिख लिया, नहीं तो उनको तो कुछ पड़ी नहीं है। कौन लिखता है, यह इन्हें मालूम नहीं पड़ा। आहा..!

मुनिराज कहते हैं, मुनिपना आया, तीन कषाय का अभाव। आहाहा! और क्षण-क्षण में छट्ठे-सातवें, छट्ठे-सातवें में जाते हैं। अन्तर्मुहूर्त में... षटखण्डागम में लिखा है, परन्तु वह अन्तिम का अन्तर्मुहूर्त लिया है। मोक्ष का। शब्द ऐसा पाठ है, अन्तिम के अन्तर्मुहूर्त में छट्ठा-सातवाँ हजार बार आता है। हजारों बार आता है, ऐसा पाठ है। आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि, अरे..रे..! प्रभु! हम हमारे विषय में रह सकते नहीं। आहाहा! धन्य काल! धन्य अवसर! आहाहा! हमारा विषय तो अकेला ज्ञायक है। वहाँ हमारा धाम, हमारा स्थान, हमारा क्षेत्र, हमारा स्थान, हमारी सम्पदा की ऋद्धि वह है। ज्ञायकपने में आनन्दादि सम्पदा पड़ी है, वह हमारी सम्पदा है। वहाँ हमें निर्विकल्पने रुकना, वह हमारी सम्पदा है। आहाहा! अरे.. प्रभु! मैं वहाँ रह सकता नहीं। आहाहा! परन्तु द्रव्य, गुण, पर्याय के विचार में रुकना पड़ता है। रुकना पड़ता है, हों! त्रिकाली ज्ञायक, उसमें आनन्दादि गुण, उसकी आनन्द आदि दशा, ये तीन बोल का विचार भी पराधीन और अनावश्यक है। अनावश्यक अर्थात् आवश्यक नहीं। आहाहा! गजब बात है। आहाहा! अपनी दीनता, मुनि अपनी पामरता बताते हैं। तो इसके अतिरिक्त साधारण प्राणी.. आहाहा! साधारण ज्ञान और साधारण श्रद्धा में मान ले कि हम.. आहाहा! प्रभु! सूक्ष्म बात है, प्रभु! आहाहा!

ऐसा कहते हैं, अरेरे..! हमारा जब उपयोग बाहर आता है, हमने जब तक पूर्ण दशा प्रगट नहीं की, आहाहा! उपयोग बाहर आता है, तब द्रव्य, गुण, पर्याय के विचार में रुकना होता है। **किन्तु वास्तव में वह हमारा विषय नहीं है।** आहाहा! अपना एकरूप स्वभाव के सिवा, अपने में तीन प्रकार भी हमारा विषय नहीं है। प्रभु! उसकी बात यहाँ है नहीं, प्रभु! तेरी बात है। आहाहा! प्रभु एकरूप विराजमान अन्दर, उसका एकरूप का ध्यान छोड़कर... आहाहा! अपने द्रव्य, गुण, पर्याय के भेद का विचार करना.. पण्डितजी! इस भेद को व्यवहारनय कहा। गजब किया है! ओहो..! प्रभु! मैं विकल्प में आ गया। अरे..! हमारी चीज़ तो अन्दर रह गई। है उघाड, वस्तु कहीं नहीं चली गयी। परन्तु आगे बढ़ते नहीं और अन्दर रुके नहीं और बाहर आ गये। आनन्द तो है, समकित है, शान्ति है। आहाहा! परन्तु केवलज्ञान के समक्ष अल्पता है। उस अपेक्षा से कहते हैं कि अरेरे..! हमारा वह विषय नहीं। आहाहा! यह मुनिपने की व्याख्या। मुनिपना। आहाहा! गजब बात है, बापू! पंच महाव्रत और फलाना, ढिकना वह विषय तो है नहीं। यह तो एक द्रव्य में तीन का विचार

करना, वह विषय नहीं। एक अपना द्रव्य, हों! पर का नहीं। पर का चाहे कोई भी, तीन लोक के नाथ उनका ज्ञायक, वे ज्ञायक है, ऐसा विचार आता है तो भी विकल्प है। आहाहा! वह अनावश्यक है। आहाहा!

यहाँ कहते हैं, **वह हमारा विषय नहीं है। आत्मा में नवीनताओं का भण्डार है।** क्या कहते हैं ? अरेरे.. ! आत्मा में तो हम नवीनता का भण्डार देखते हैं। फिर भी यह बाहर विकल्प आ जाता है। अन्दर छट्ठे में आते हैं न ? छट्ठे गुणस्थान में विकल्प आ जाता है। सातवें में स्थिर हो जाते हैं। उसकी बात करते हैं। कहते हैं, हमें छट्ठे में विकल्प आता है तो द्रव्य, गुण, पर्याय के विचार में रुकना पड़ता है। आहाहा! **आत्मा में नवीनताओं का भण्डार है।** आत्मा में नवीनता का भण्डार है। प्रभु! उस चैतन्य चमत्कार क्या कहना! छद्मस्थ पूरा पार नहीं प्राप्त करता। केवलज्ञान हो, तब प्राप्त कर सकता है, उस पूर्ण भण्डार भगवान का। आहाहा! ऐसा भण्डार अन्दर पड़ा है।

कहते हैं कि **आत्मा में नवीनताओं का भण्डार है।** अनन्त काल में नहीं प्रगट हुआ, ऐसी नवीनता का भण्डार है। ऐसा ज्ञान, आनन्द, शान्ति, वीतरागता, स्वच्छता... ओहोहो! उसका प्रमाण और उसका नय का विषय, ये कोई अलौकिक भण्डार है। आहाहा! अरे.. प्रभु! तू कहाँ है और कहाँ मान रहा है ? यहाँ तो मुनिराज यहाँ तक आये हैं, फिर भी कहते हैं, अरे..रे.. ! हमें विकल्प में आना पड़ता है, हमारा विषय नहीं है। अरे.. !

भेदज्ञान के अभ्यास द्वारा यदि वह नवीनता—अपूर्वता प्रगट नहीं की,... क्या कहते हैं ? प्रगट तो है, परन्तु ऐसी विशेष नवीनता प्रगट नहीं की जब तक... आहाहा! **भेदज्ञान के अभ्यास द्वारा यदि वह नवीनता—अपूर्वता प्रगट नहीं की,...** समय-समय में नवीन अपूर्वता, चैतन्य चमत्कार की सम्पदा की ऋद्धि, नयी-नयी एक समय में आनी चाहिए। आहाहा! उसे मुनिराज कहते हैं। आहाहा! **भेदज्ञान के अभ्यास द्वारा यदि वह नवीनता—अपूर्वता...** पूर्व में एक समय नहीं हुआ। ऐसी नवीनता समय-समय में अपूर्वता प्रगट होती है वह, **भेदज्ञान के अभ्यास द्वारा यदि वह नवीनता—अपूर्वता प्रगट नहीं की,...** आहाहा! क्या नम्रता!! क्या नरमाई। ओहोहो! आहा.. !

मुनिराज अन्दर में उतरते हैं। विकल्प आ जाता है। अपने में तीन भेद का। द्रव्य,

गुण और पर्याय। तीन भेद का विकल्प है, वह दुःख है। आवश्यक नहीं। वह जरूरत की चीज़ नहीं है। आहाहा! वह अनावश्यक चीज़ है। आहाहा! यह तो प्रभु, कहीं न कहीं रुककर मान लेता है, प्रभु! उसका फल तुझे मिलेगा। जैसा परिणाम है, वैसा फल मिलेगा। ऐसी मुनिदशा, वह भी कहते हैं, हमें भेदज्ञान द्वारा, अभी राग संज्वलन का उदय है, तो उसका भी भेदज्ञान द्वारा **अपूर्वता प्रगट नहीं की,...** आहाहा! समय-समय में चमत्कार, यह चेतन भगवान चमत्कारिक। उसका चमत्कार समय-समय में यदि नवीन अपूर्व प्रगट नहीं किया, **तो मुनिपने में जो करना था, वह हमने नहीं किया।** आहाहा! गजब है! मुनिपने में जो करना था, वह हमने नहीं किया। मुनियों को यह करना था। लो। यह नहीं पढ़ा था। अन्तिम चार पंक्ति कल नहीं पढ़ी थी। अब, १९३।

सम्यग्दृष्टि जीव ज्ञायक को ज्ञायक द्वारा ही अपने में धारण कर रखता है, टिकाए रखता है, स्थिर रखता है—ऐसी सहज दशा होती है।

सम्यग्दृष्टि जीव को तथा मुनि को भेदज्ञान की परिणति तो चलती ही रहती है। सम्यग्दृष्टि गृहस्थ को उसकी दशा के अनुसार उपयोग अन्तर में जाता है और बाहर आता है; मुनिराज को तो उपयोग अति शीघ्रता से बारम्बार अन्तर में उतर जाता है। भेदज्ञान की परिणति—ज्ञातृत्वधारा—दोनों के चलती ही रहती है। उन्हें भेदज्ञान प्रगट हुआ, तब से कोई काल पुरुषार्थ रहित नहीं होता। अविरत सम्यग्दृष्टि को चौथे गुणस्थान के अनुसार और मुनि को छठवें-सातवें गुणस्थान के अनुसार पुरुषार्थ वर्तता रहता है। पुरुषार्थ के बिना कहीं परिणति स्थिर नहीं रहती। सहज भी है, पुरुषार्थ भी है॥१९३॥

१९३। **सम्यग्दृष्टि जीव ज्ञायक को ज्ञायक द्वारा ही अपने में धारण कर रखता है,...** आहाहा! चौथे गुणस्थान में समकिती आत्म-आनन्द अनुभवी, सम्यग्दृष्टि जीव को... आहाहा! **ज्ञायक को ज्ञायक द्वारा ही अपने में धारण कर रखता है,...** आहाहा! मूल चीज़ तो यह है। सम्यग्दृष्टि चौथा गुणस्थान। पाँचवें में तो विशेष निर्मलता है, छठे की निर्मलता की तो क्या बात करनी! मुनिराज पंच परमेष्ठी। वे भी ऐसी पुकार करते हैं। आहाहा! दूसरे प्राणी को साधारण में अभिमान आ जाए कि हम करते हैं, हमने ऐसा किया।

क्या किया ? प्रभु ! केवलज्ञान किया तो भी कुछ नहीं किया। क्योंकि वह तो स्वभाव है, वैसा प्रगट होता है। नवीन क्या किया ? केवलज्ञान भी स्वभाव है। उसका स्वरूप ही है। उसका सत् का सत्त्व, सत्त्व। प्रभु आत्मा सत् है, उसका सत्त्व। ज्ञान, आनन्द, केवलज्ञान उसका सत्त्व है। सत्त्व उसका प्रगट होता है, वह कोई नवीनता नहीं। आहाहा ! पन्नालालजी ! वहाँ कहीं सुनने मिले ऐसा नहीं है, जहाँ-तहाँ भटकते हैं। आहा.. ! ओहोहो !

यह बहिन के वचन उस समय थोड़े निकले थे। मुर्दा, मानो मुर्दा। समकिती को या मुनि को एक प्रकार का उदय नहीं होता। वह चिट्ठी है, मोक्षमार्गप्रकाश में चिट्ठी है। सबको एक ही प्रकार का उदय हो, और समान दशा उदय की हो, ऐसा नहीं है। सम्यग्दृष्टि होने पर भी उदय में फर्क होता है। मोक्षमार्गप्रकाशक में है। है यहाँ मोक्षमार्गप्रकाश ? चिट्ठी में है। बनारसीदास। आहाहा !

यहाँ कहते हैं कि **ज्ञायक को ज्ञायक द्वारा ही...** भाषा क्या है ? ज्ञायक को ज्ञायक द्वारा ही। कोई भेद द्वारा, विकल्प द्वारा नहीं। आहाहा ! ज्ञायक को ज्ञायक द्वारा ही।

मुमुक्षु :- ज्ञायक अर्थात् पर्याय ?

पूज्य गुरुदेवश्री :- पर्याय में लक्ष्य ज्ञायक पर है। ज्ञायक को ज्ञायक में। पर्याय परन्तु ज्ञायक को ज्ञायक में रहना। ऐसे। पर्याय में भी ज्ञायक को ज्ञायक में रहना। आहाहा ! **ज्ञायक को ज्ञायक द्वारा ही...** वह ज्ञायक द्वारा है तो पर्याय भले, परन्तु ज्ञायक द्वारा अन्दर में रहना। राग द्वारा नहीं, पर्याय के लक्ष्य द्वारा नहीं। पर्याय के लक्ष्य द्वारा नहीं, राग द्वारा नहीं, निमित्त द्वारा नहीं। आहाहा !

मुमुक्षु :- उदयभाव.. सबका सरीखा नहीं होता।

पूज्य गुरुदेवश्री :- ... केवली को भी औदयिकभावों की नाना प्रकारता जानना। अर्थात् सब धर्मी जीव को उदय समान होता है, ऐसा नहीं है। भाव में अन्दर भले चौथा, पाँचवाँ, छठा आदि हो, परन्तु उदय में फेरफार है। ऐसा है इसमें। आहाहा !

सम्यग्दृष्टि जीव ज्ञायक को ज्ञायक द्वारा ही... भले पर्याय ज्ञायक द्वारा ही काम लेती है। क्योंकि परिणमन तो पर्याय में है। ज्ञायक में परिणमन नहीं है। परन्तु परिणमन में ज्ञायक पर दृष्टि है तो ज्ञायक पर ही पर्याय वहाँ रखना। आहाहा ! ये तो रात्रि में बहिन बोले

होंगे। आहाहा! समझ में आया? भाग्य हो, उसे मिले ऐसा है। ऐसी बात है। मूल मार्ग सुनना, जैन का यह मार्ग है। मूल तो उसमें यह है।'करी वृत्ति अखण्ड सन्मुख, मूल मार्ग सांभणो जैननो रे... करि वृत्ति अखण्ड सन्मुख।' सन्मुख करके सुनो। श्रीमद् तो एकावतारी हो गये। एक भव करके मोक्ष जाएँगे। निश्चित है, उसमें कोई फेरफार नहीं है। वैमानिक में है वर्तमान। आहाहा!

यहाँ कहते हैं, **सम्यग्दृष्टि जीव ज्ञायक को...** द्रव्य, द्रव्य। द्रव्य द्वारा ही। है? भले पर्याय कार्य करती है। परन्तु पर्याय को द्रव्य द्वारा द्रव्य में रहना। द्रव्य द्वारा द्रव्य में रहना, ऐसा पर्याय करती है। आहाहा! ऐसी बात सूक्ष्म पड़े, इसलिए लोग कहते हैं कि निश्चय है, वहाँ तो निश्चय है, एकान्त है, व्यवहार की बात नहीं है। प्रभु! ये सब व्यवहार नहीं है तो क्या है? बोलना, कहना, भाग करना, एक वस्तु में भेद करके कहना, वह सब व्यवहार है। व्यवहार है, वह आदरणीय नहीं। व्यवहार है नहीं, ऐसा नहीं। आहाहा!

यहाँ कहते हैं, पाठ कैसा है? **ज्ञायक को ज्ञायक द्वारा ही...** ऐसा शब्द पड़ा है। ज्ञायक को ज्ञायक द्वारा ही। पर्याय में ज्ञायक को ज्ञायक द्वारा ही ध्यान में लेना। आहाहा! **अपने में धारण कर रखता है,...** आहाहा! शब्द बहुत ऊँचा आ गया है। **सम्यग्दृष्टि जीव ज्ञायक को...** द्रव्य.. द्रव्य ज्ञायक। त्रिकाल भगवान। सनातन सत्य जगत की चीज़ महाप्रभु, सत् का सत्त्व, ऐसा जो उसका गुण, गुणरूप से कहो तो ज्ञायकभाव कहने में आता है। नहीं तो है तो पारिणामिकभाव। परन्तु पारिणामिकभाव तो परमाणु में भी है और धर्मास्ति में भी है। इसलिए यहाँ ज्ञायकभाव कहते हैं। बाकी है तो वह पारिणामिकभाव। त्रिकाली पारिणामिकभाव को पारिणामिकभाव द्वारा ही। आहाहा!

ज्ञायक को ज्ञायक द्वारा ही... 'ही' है। **अपने में धारण कर रखता है,...** अपने में धारण कर रखता है। आहाहा! सम्यग्दृष्टि जीव। आहा...! **टिकाए रखता है,...** ज्ञायक को ज्ञायक द्वारा अपने में टिकाये रखता है। अपने में टिकते हैं। आनन्दस्वरूप भगवान त्रिकाल, ध्रुव आनन्द, हाँ! आहाहा! उसमें टिकता है, तब तो पर्याय में आनन्द आया। टिकता है, तब तो पर्याय में आनन्द आया। आहाहा! **स्थिर रखता है...** अपने में स्थिर रहता है। ज्ञायक द्वारा ज्ञायक स्थिर रहता है। आहाहा! यह बात कठिन लगे लोगों को। भाई!

वस्तु स्वरूप तो ऐसा है। आहाहा! **ऐसी सहज दशा होती है।** ऐसी दशा करनी पड़ती नहीं। ऐसी सहज दशा होती है। आहाहा! सहज दशा हो गई है ऐसी, बस।

सम्यग्दृष्टि जीव को तथा मुनि को भेदज्ञान की परिणति तो चलती ही रहती है। भेदज्ञान तो पहले हुआ है। क्षण-क्षण में स्वभाव सन्मुखता चलती है तो पुरुषार्थ तो स्वभाव की ओर चलता ही है। क्या कहा, समझ में आया? **सम्यग्दृष्टि जीव को तथा मुनि को भेदज्ञान की परिणति तो चलती ही रहती है।** आहाहा! अन्तर में आनन्द की ओर झुकना तो होता ही है। आहाहा! ये तो उसकी दशा है। आहाहा! **सम्यग्दृष्टि गृहस्थ को उसकी दशा के अनुसार उपयोग अन्तर में जाता है...** गृहस्थाश्रम में हो, पंचम गुणस्थान में गृहस्थाश्रमी जीव, **सम्यग्दृष्टि को उसकी दशा के अनुसार...** उसकी दशा के अनुसार **उपयोग अन्तर में जाता है...** छठे मुनि को उपयोग अन्तर में जाता है, वैसा नहीं जाता। मुनि को जैसे उपयोग एकदम अन्दर में जाता है, क्षण में सप्तम और क्षण में छठा, ऐसे पंचम गुणस्थानवाले को नहीं आता। थोड़ी देर भी लगती है, कोई बार। कोई बार अन्तर्मुहूर्त में निर्विकल्प ध्यान आ जाता है, कोई बार महीने के बाद आता है। मुनि की दशा जैसी नहीं है, इसलिए ऐसा कहते हैं। इसलिए **सम्यग्दृष्टि गृहस्थ को उसकी दशा के अनुसार उपयोग अन्तर में जाता है और बाहर आता है;...** विकल्प आता है फिर से। आहाहा! किसी समय अन्तर ध्यान में लग जाए... आहाहा! बाहर आते हैं, तब विकल्प आता है।

मुनिराज को तो उपयोग अति शीघ्रता से बारम्बार अन्तर में उतर जाता है। देखो! गृहस्थ की अपेक्षा मुनिराज सच्चे भावलिंगी जो होते हैं,... आहाहा! उनको तो अति शीघ्रता से, छठे में आते हैं, लेकिन अति शीघ्रता से सातवें में चले जाते हैं। पौन सेकेण्ड के अन्दर छठे में रहकर सातवें में चले जाते हैं। आहाहा! ऐसी दशा है। मुनिपना किसको कहे! आहाहा! वस्तुस्वरूप वीतराग परमात्मा त्रिलोकनाथ का पंथ कोई अलग है। **मुनिराज को तो उपयोग अति शीघ्रता से बारम्बार...** छठे-सातवें में उतर जाता है। छठे से सातवें में एकदम जाते हैं। ध्यान करते समय भी जाते हैं और न करे तो भी छठे में से सातवें में एकदम जाते हैं।

भेदज्ञान की परिणति—ज्ञातृत्वधारा—दोनों के चलती ही रहती है। गृहस्थ हो या मुनि हो। समकिती को भेदज्ञान की परिणति अर्थात् ज्ञातृधारा अर्थात् ज्ञाता-दृष्टा की

धारा... आहाहा! **दोनों के चलती ही रहती है।** दोनों को सदा चलती रहती है। आहाहा! दो बोल लिये। भेदज्ञान की परिणति अर्थात् ज्ञातृदशा, ज्ञाता की अवस्था। भगवान ज्ञाता पकड़ लिया, अनुभव लिया है। तो समकिती को ज्ञाता की धारा सदा चलती ही है। **दोनों के चलती ही रहती है।** चलती ही रहती है। आहाहा! सूक्ष्म बात है, परन्तु मार्ग तो यह है। दुनिया ने चाहे जैसी कल्पना की हो। आहाहा! बाहर से चाहे जैसे माने, मनाये। तीन लोक के नाथ परमात्मा का विरह है।

मुनिराज ने प्रश्न किया था, मुनि नहीं, क्षुल्लक। मनोहरलालजी। मनोहरलालजी ने एक बार प्रश्न किया। वहाँ जयपुर में आये थे। उद्देशिक का आपसे खुलासा हो कि गृहस्थ लोग, साधु के लिये बनाते हैं, उसमें उसका क्या? करता नहीं, कराता नहीं, उसमें क्या है? उसमें कोई दिक्कत नहीं है। ऐसी एक बात बाहर रखो। मैंने कहा, प्रभु! प्रभु का विरह है। प्रभु के बाद ऐसी बात चले नहीं, नाथ! हम तो, क्षुल्लक भी उसके लिये लेता है तो हम तो क्षुल्लक भी नहीं मानते हैं। उसके लिये बनाया हुआ आहार लेता है, हम तो उसे क्षुल्लक भी नहीं मानते। भगवान के विरह में ऐसे गप्प लगाना कि गृहस्थ उसके लिये करता है तो उसमें क्या है? लेनेवाला तो करता नहीं, कराता नहीं। लेकिन लेना है, वही अनुमोदन है। आहाहा! भगवान के विरह में दूसरी बात करना..? प्रभु! परमात्मा विराजते हैं महाविदेह में। यहाँ प्रभु है नहीं। उन्होंने जो यह कहा है, उससे विरुद्ध प्रभु के विरह में नहीं कह सकते। जिसके लिये उद्देशिक किया है, वह ले, उसमें अनुमोदन कोटि टूटती है।

यह तो हमारे (संवत्) १९६९ के साल की बात है। १९६९। ७० के पहले ६९। ६७ वर्ष हुए। उस वक्त से यह प्रश्न है। गुरु को मैंने प्रश्न किया था। १९६९ की साल। ७० साल पहले। साधु के लिये मकान बनावे तो उसकी कौन-सी कोटि टूटती है? प्रभु! नौ कोटि में कौन-सी कोटि टूटे? महाराज! ऐसा प्रश्न किया था। अभी दीक्षा नहीं ली थी। पहले प्रश्न किया था। राणपुर में। गुरु भद्रिक थे। उन्हें ऐसा लगा कि यह दीक्षा लेने की तैयारी में है, उसे ऐसा...? (उन्होंने कहा), खुशालभाई—तुम्हारे बड़े भाई तुम्हारे लिये मकान बनाया हो, तुम उपयोग करो तो उसमें क्या है? इनको अभी कुछ नहीं कहना। उपयोग करे, वही अनुमोदन है। नौ कोटि में अनुमोदन टूटता है तो नौ ही कोटि टूट जाती है। मन, वचन और काया; करना, कराना और अनुमोदन। नौ कोटि में से एक कोटि

उसकी सब कोटि टूट जाती है। १९६९ की साल में हुआ था। आहाहा! बहुत चर्चा हुई थी। हमें तो अन्दर से बात आती थी। अन्दर से बहुत प्रश्न चलते थे। हमने कहा, हम ऐसे नहीं मानते, भैया! जिसके लिये किया, वह ले तो उसमें कोटि टूटी। नौ कोटि टूटी। वह साधु नहीं है। मकान उसके लिये बनाया, मकान का उपयोग करे या आहार (ले), वह साधु नहीं। १९६९ की साल। दीक्षा १९७० में हुई।

यहाँ बहिन कहती है, आहाहा! **भेदज्ञान की परिणति—ज्ञातृत्वधारा—...** एक ही बात है। लाईन की है न? लाईन का अर्थ भेदज्ञान की परिणति अर्थात्। लाईन का अर्थ वह है। ज्ञातृधारा-ज्ञाता-दृष्टा। अन्तर में जो ज्ञाता-दृष्टा की धारा चलती है, भले कषाय में दो और तीन कषाय हो, परन्तु ज्ञातृधारा **दोनों के चलती ही रहती है। उन्हें भेदज्ञान प्रगट हुआ...** आहाहा! गृहस्थ को और मुनि को **जब से भेदज्ञान प्रगट हुआ, तब से कोई काल पुरुषार्थ रहित नहीं होता।** आहाहा! अपना वीर्य स्वरूप सन्मुख हमेशा चलता ही है। वह सहज चलता है। सम्यग्दर्शन हुआ तो पुरुषार्थ-वीर्य स्वभाव सन्मुख सहज चलता ही है। मैं करूँ, ऐसा भी वहाँ नहीं है। उस ओर चलता ही है। आहाहा! है? **उन्हें भेदज्ञान प्रगट हुआ, तब से कोई काल पुरुषार्थ रहित नहीं होता।** अन्तर्मुख में जो पुरुषार्थ की गति चलती है, उसमें कभी विरह होता नहीं।

अविरत सम्यग्दृष्टि को चौथे गुणस्थान के अनुसार... आहाहा! स्वभाव की ओर पुरुषार्थ चलता है। **और मुनि को छठवें-सातवें गुणस्थान के अनुसार पुरुषार्थ वर्तता रहता है।** आहाहा! सहज दशा हो गई है। सम्यग्दृष्टि की भी सहज दशा है, मुनि की भी सहज वस्तु की स्थिति है, ऐसी दशा हो गई है। वस्तु की जैसी स्थिति है, ऐसी पर्याय भले अल्प हुई, परन्तु ऐसी दशा हो गई है। आहाहा! **अविरत सम्यग्दृष्टि को चौथे गुणस्थान के अनुसार और मुनि को छठवें-सातवें गुणस्थान के अनुसार पुरुषार्थ वर्तता रहता है। पुरुषार्थ के बिना कहीं परिणति स्थिर नहीं रहती।** आहाहा! ध्रुव के ध्येय के ध्यान के पुरुषार्थ बिना एक समय भी समकिती को भिन्न नहीं रहता। ध्रुव का ध्यान, ध्रुव ध्येय, उसको ध्येय बनाया, वह ध्येय कभी हटता नहीं। **पुरुषार्थ के बिना कहीं परिणति स्थिर नहीं रहती। सहज भी है,...** वस्तु जो प्रगट हुई, वह सहज भी है और **पुरुषार्थ भी है।** दोनों है। स्वभाविक भी है और पुरुषार्थ स्व की ओर झुकता है, ऐसी दोनों धारा है। आहाहा! ऐसी

बातें हैं। ऐसा कैसा यह उपदेश? वीतराग का उपदेश है, प्रभु! १९३।

चौथे में और छठे में सहज पुरुषार्थ भी होता है और पुरुषार्थ भी करते हैं। स्वाभाविक दशा तो हो गई है। स्वाभाविक दशा जो हो गई है, अब उतना पुरुषार्थ नहीं करना पड़ता, वह दशा तो हो गई। अब विशेष दशा होने में पुरुषार्थ स्वभाव की ओर चलता है। आहाहा! समझ में आया? दोनों में क्या अन्तर है? जो दशा अन्दर से खिली है, चौथे या पाँचवें में अन्दर सम्यक् अनुभव, आनन्द का अनुभव आया, वह सहज भी है और पुरुषार्थ भी है। साथ में वीर्य भी काम करता है। आहाहा! ऐसा मार्ग है। फिर कौन-सा है? १९७। किसी ने लिखा है। ओहो..! बहुत बड़ा है।

प्रज्ञाछैनी को शुभाशुभभाव और ज्ञान की सूक्ष्म अन्तःसन्धि में पटकना। उपयोग को बराबर सूक्ष्म करके उन दोनों की सन्धि में सावधान होकर उसका प्रहार करना। सावधान होकर अर्थात् बराबर सूक्ष्म उपयोग करके, बराबर लक्षण द्वारा पहिचानकर।

अभ्रक के पर्त कितने पतले होते हैं, किन्तु उन्हें बराबर सावधानीपूर्वक अलग किया जाता है, उसी प्रकार सूक्ष्म उपयोग करके स्वभाव-विभाव के बीच प्रज्ञा द्वारा भेद कर। जिस क्षण विभावभाव वर्तता है, उसी समय ज्ञातृत्वधारा द्वारा स्वभाव को भिन्न जान ले। भिन्न ही है परन्तु तुझे नहीं भासता। विभाव और ज्ञायक हैं तो भिन्न-भिन्न ही;—जैसे पाषाण और सोना एकमेक दिखने पर भी भिन्न ही हैं तदनुसार।

प्रश्न :—सोना तो चमकता है, इसलिए पत्थर और सोना—दोनों भिन्न ज्ञात होते हैं, परन्तु यह कैसे भिन्न ज्ञात हों?

उत्तर :—यह ज्ञान भी चमकता ही है न? विभावभाव नहीं चमकते किन्तु सर्वत्र ज्ञान ही चमकता है—ज्ञात होता है। ज्ञान की चमक चारों ओर फैल रही है। ज्ञान की चमक बिना सोने की चमक काहे में ज्ञात होगी?

जैसे सच्चे मोती और खोटे मोती इकट्ठे हों तो मोती का पारखी उसमें से सच्चे मोतियों को अलग कर लेता है, उसी प्रकार आत्मा को 'प्रज्ञा से ग्रहण

करना'। जो जाननेवाला है, सो मैं; जो देखनेवाला है, सो मैं—इस प्रकार उपयोग सूक्ष्म करके आत्मा को और विभाव को पृथक् किया जा सकता है। यह पृथक् करने का कार्य प्रज्ञा से ही होता है। व्रत, तप या त्यागादि भले हों, परन्तु वे साधन नहीं होते, साधन तो प्रज्ञा ही है।

स्वभाव की महिमा से परपदार्थों के प्रति रसबुद्धि—सुखबुद्धि टूट जाती है। स्वभाव में ही रस आता है, दूसरा सब नीरस लगता है। तभी अन्तर की सूक्ष्म सन्धि ज्ञात होती है। ऐसा नहीं होता कि पर में तीव्र रुचि हो और उपयोग अन्तर में प्रज्ञाछैनी का कार्य करे॥१९७॥

१९७। **प्रज्ञाछैनी को शुभाशुभभाव और ज्ञान की सूक्ष्म अन्तःसन्धि में पटकना।** आहाहा! क्या कहते हैं? प्रज्ञाछैनी... क्योंकि आत्मा और राग—सूक्ष्म विकल्प के बीच में सन्धि है। सन्धि है-सांध है-दरार है। एक नहीं हुए। प्रज्ञाछैनी का श्लोक है, समयसार में। प्रज्ञाछैनी का श्लोक है। सन्धि हुई नहीं, निःसन्धि है। भगवान चैतन्यमूर्ति प्रभु और राग का कण, बीच में सन्धि है। आहाहा! समझ में आया? प्रज्ञाछैनी है। उसमें है। आहाहा! कौन-सा आया? प्रज्ञाछैनी को... आहाहा! शुभाशुभभाव और ज्ञान की सूक्ष्म अन्तःसन्धि। सन्धि है। यह ज्ञानस्वरूप और यह राग, ऐसे दो के बीच भिन्नता ही है। भिन्न-भिन्न चीज़ पड़ी है। भेदज्ञान जब से हुआ, तब से भिन्न है। आहाहा!

उपयोग को बराबर सूक्ष्म करके उन दोनों की सन्धि में सावधान होकर... वह विशेष बात है.... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

विक्रम संवत-२०३५, श्रावण शुक्ल - ८, बुधवार, तारीख १८-८-१९८०
वचनामृत-१९७ प्रवचन-११

वचनामृत, १९७। **प्रज्ञाछैनी को...** प्रथम बात सुनो। शुभ और आत्मा की शुद्धता को भिन्न करने की कला है। इसके बिना सब व्यर्थ है। अन्तर में **प्रज्ञाछैनी को शुभाशुभभाव...** शुभाशुभभाव **और ज्ञान की सूक्ष्म अन्तःसन्धि...** सूक्ष्म भाव और ज्ञान की-आत्मा की अन्तर सन्धि। दो के बीच दरार है। दो के बीच तड़ है हमारी गुजराती भाषा में तड़ कहते हैं। अन्दर सन्धि है। **ज्ञान की सूक्ष्म अन्तःसन्धि में पटकना।** जहाँ सन्धि है, वहाँ प्रज्ञाछैनी को पटकना। कहाँ? कि **शुभाशुभभाव और ज्ञान की सूक्ष्म अन्तःसन्धि में...** आहाहा! मूल रकम की बात है। इसके बिना, बिना अंक के शून्य है। मुख्य अन्तर प्रज्ञाछैनी से (द्वारा) भिन्न हुए बिना सब अनन्त बार किया। अनन्त बार नौवीं ग्रैवेयक गया। जो चीज़ अन्तर में से होनी चाहिए वह हुई नहीं।

बहिन यहाँ वह कहती है। **शुभाशुभभाव और ज्ञान की सूक्ष्म अन्तःसन्धि...** सूक्ष्म अन्तःसन्धि। धैर्य से अन्तर दो बीच की सन्धि में, धैर्य से दो बीच के दरार में पटकना। अरे..रे..! यह तो भाषा है, भाई! भाव तो अपना करना है या नहीं? भाषा तो भाषा (है), भाषा में क्या? शुभाशुभभाव और ज्ञान-भगवान, दो के बीच की सन्धि, दो के बीच सूक्ष्म सन्धि है, सूक्ष्म एकता है नहीं, अन्दर दोनों भिन्न है। आहाहा! उसमें पटकना। आहाहा!

उपयोग को बराबर सूक्ष्म करके... शुद्ध उपयोग। शुभाशुभभाव से तो रहित। शुद्ध उपयोग प्रथम सम्यग्दर्शन पाने को सूक्ष्म शुद्ध उपयोग को बराबर सूक्ष्म करके अर्थात् शुद्ध करके। **उन दोनों की सन्धि में...** राग का विकल्प और ज्ञान की सन्धि के बीच में **सावधान होकर...** आहा! भाषा तो सादी है, भाव तो अपूर्व है, प्रभु! अन्दर में धीरज से, सावधानी से, शान्ति से राग के विकल्प की जाति की दिशा पर की ओर है और ज्ञान की दिशा स्व की ओर है, ऐसे दो के बीच सन्धि है, उसमें वहाँ ज्ञान की एकाग्रता सूक्ष्म उपयोग करके भिन्न करना। पटकना अर्थात् दो को भिन्न करना। आहाहा! ऐसी बात है, प्रभु! पहली यह

तो शुरुआत की बात है। सम्यग्दर्शन होने के काल में ऐसी स्थिति होती है। इसके बिना सम्यग्दर्शन होता नहीं। सम्यग्दर्शन बिना जो कुछ होता है, वह संसार है। आहाहा!

उपयोग को बराबर सूक्ष्म करके... कोई ऐसा पूछता था, सूक्ष्म कैसे करना? प्रभु! सूक्ष्म उसको कहते हैं कि पर ओर का झुकाव छूटकर, स्व की ओर का झुकाव जो होता है, उसको सूक्ष्म उपयोग कहते हैं। आहाहा! सूक्ष्म उपयोग (करके) **सावधान होकर उसका प्रहार करना।** दोनों की सन्धि में। आहाहा! अनन्त-अनन्त काल में प्रभु चौरासी के अनन्त अवतार किये। साधुपना भी अनंत बार लिया, दिगम्बर मुनि अनन्त बार हुआ, लेकिन आत्मज्ञान बिना कुछ हुआ नहीं। भव कम हुए नहीं; अनन्त भव रहे।

लिंगपाहुड में तो प्रभु ऐसा कहते हैं कि इतनी बार द्रव्यलिंग धारण किया, धारण करने के बाद कोई एक कण बाकी नहीं कि जिसमें अनन्त भव नहीं किये हो। ढाई द्वीप आदि में कोई कण बाकी नहीं है कि द्रव्यलिंग धारण करने के बाद अनन्त भव नहीं किये हों। आहाहा! ऐसा लिंगपाहुड में कुन्दकुन्दाचार्य महाराज कहते हैं। लिंग तो अनन्त बार धारण किया, नग्न हुआ, महाव्रत धारण किया, वह सब तो पर—जड़ की चीज़ है। आहा..!

अन्तर में उसका प्रहार करना, सावधान होकर बराबर सूक्ष्म उपयोग करके। आहाहा! **सावधान होकर अर्थात् बराबर सूक्ष्म उपयोग करके, बराबर लक्षण द्वारा पहिचानकर।** अन्दर लक्षण द्वारा अर्थात् राग है, वह आकुलता है और प्रभु है, वह अनाकुल आनन्द है। वह ज्ञान, दर्शन और आनन्द है। ऐसा दो का लक्षण सूक्ष्मपने सावधान होकर जानकर दो बीच में एकत्व की सन्धि तोड़ना। आहाहा! शब्द तो प्रभु! थोड़े हैं। यह तो बहिन ने कहते समय बोल दिया है। नहीं तो उनको तो कुछ पड़ी नहीं। बहिन तो अतीन्द्रिय आनन्द में रमते हैं। आहा..! अतीन्द्रिय आनन्द के स्वाद में उनको किसी की पड़ी नहीं है। ये किसी ने लिख लिया, इसलिए बाहर आया। नहीं तो आता नहीं। आहाहा! पाँच पंक्ति में कितना है! पाँच लाईन में।

सूक्ष्म उपयोग करके, बराबर लक्षण द्वारा पहिचानकर। लक्षण द्वारा। आत्मा का आनन्द और ज्ञान लक्षण है और राग का दु:ख और आकुलता लक्षण है, ऐसा दो बीच में

लक्षण को पहिचानकर, सावधान होकर, धीरज से दो के बीच की एकता तोड़ दे। एकता तो है नहीं, है तो भिन्न ही है, फिर भी भिन्न में एकता मानी है। मानी है, उसे तोड़ना है। प्रभु तो त्रिकाली निरावरण (है)। तीनों काल परमात्मा स्वयं स्वरूप है, वह तो निरावरण है। चैतन्यबिम्ब परमात्मा त्रिकाल निरावरण, सर्वांग निरावरण (है)। वह आया है। जयसेनाचार्य की (३२० गाथा समयसार की) टीका में। आहाहा! प्रभु तो सकल निरावरण अखण्ड एक प्रत्यक्ष प्रतिभासमय अविनश्वर सूक्ष्म पारिणामिक परमभावलक्षण, ऐसा एक परमद्रव्य, उसमें एकाग्र हो जा। आहाहा! यह शब्द वहाँ के है। टीका के, संस्कृत टीका के हैं। आहाहा! वह कहते हैं। अब दृष्टान्त देते हैं।

अभ्रक के पर्त कितने पतले होते हैं,... अभ्र। अभ्रक कहते हैं न? अभ्रक नहीं कहते? बहुत पतले पर्ते, बहुत पतले पर्ते। एक को निकालने जाए तो दूसरे का टुकड़ा हो जाए। बहुत पतले। आहाहा! **अभ्रक के पर्त कितने पतले होते हैं,...** आहाहा! अभ्रक के पर्ते, पर्ते अर्थात् पत्ता, कितना पतला सूक्ष्म होता है। **किन्तु उन्हें बराबर सावधानीपूर्वक...** धीरे से, धीरज से **अलग किया जाता है,...** आहाहा! पत्ता तो ऐसा लगे कि मानो एक छूटे तो एकसाथ सब (छूट जाएँगे)। इतने पतले हैं। अभ्रक। हमारे वहाँ था। व्यापार में। व्यापार में हमारे पास आता था। सब व्यापार किया है न। सब चीज़ रखते थे। बदाम, चारोंजी, पिस्ता (आदि सब)। यह अलग चीज़ है। अभ्रक के पर्ते भिन्न करने में... आहाहा!

उसी प्रकार सूक्ष्म उपयोग करके स्वभाव-विभाव के बीच... जैसे पर्ते को भिन्न करने में धीरज और सावधानी होनी चाहिए। **उसी प्रकार सूक्ष्म उपयोग करके स्वभाव-विभाव के बीच...** स्वभाव और विभाव के बीच। भगवान आनन्दस्वरूप परमात्मा त्रिकाल आनन्द में विराजता है। राग का अंश उसमें है नहीं। और राग का अंश है, वह दु:खरूप है और यह आनन्द है। आनन्द और दु:ख को बराबर स्वभाव-विभाव के बीच। विभाव दु:खरूप है, स्वभाव आनन्द अतीन्द्रिय आनन्द की शान्तिरूप है। आहाहा! एक अंश का स्वाद-आत्मा का आनन्द का एक अंश का स्वाद, इन्द्र का इन्द्रासन उसके सामने कुछ गिनती में नहीं आता। ऐसी चमत्कारिक चीज़ प्रभु है। आहाहा! ऐसा आत्मा अन्तर अपना अतीन्द्रिय आनन्द का दल, अतीन्द्रिय आनन्द का पिण्ड और राग आकुलता का

सागर, आकुलता का प्रवाह है वह तो। आहाहा! क्योंकि यह नित्य वस्तु है और राग तो पलटता है। प्रवाह है, प्रवाह। आकुलता का प्रवाह है। भगवान आनन्द का धाम; प्रवाह नहीं, आनन्द का धाम है। आहाहा!

स्वभाव-विभाव के बीच प्रज्ञा द्वारा भेद कर। प्रज्ञा द्वारा भेद कर। कोई क्रियाकाण्ड से भेद होता नहीं। आहाहा! जैन दिगम्बर साधु नौवीं ग्रैवेयक गया। उसकी क्रिया सुनो तो.. ओहो... ! शरीर जीर्ण हो गया, बहुत क्रिया की। उसमें क्या हुआ ? भगवान आत्मा आनन्द का सागर भरा है। उसका पता न ले। वह सागर की खान है, उसका पता न ले, तब तक सब व्यर्थ है। आहाहा! व्यवहारवाले को कठिन लगे। व्यवहार है। हो, सब व्यवहार तो है ही। परन्तु व्यवहार से आत्मा में जाता नहीं। आहाहा! वह कहते हैं।

प्रज्ञा द्वारा भेद कर। जिस क्षण विभावभाव वर्तता है, उसी समय... जिस क्षण, जिस काल अन्तर में पर ओर का झुकाववाला राग वर्तता है, **उसी समय ज्ञातृत्वधारा द्वारा स्वभाव को भिन्न जान ले।** उसी समय ज्ञातृत्वधारा द्वारा। आहाहा! मूल बात कही है, प्रभु! आहाहा! **जिस क्षण विभावभाव वर्तता है, उसी समय ज्ञातृत्वधारा...** अन्दर पड़ी है। आहाहा! **ज्ञातृत्वधारा द्वारा स्वभाव को भिन्न जान ले।** ज्ञातृत्वधारा द्वारा। क्या कहते हैं ? राग की धारा तो क्षण-क्षण में पलटती है। और यह तो ज्ञानपिण्ड, आनन्दपिण्ड पलटता नहीं। वैसा का वैसा आनन्द रहता है। ध्रुव, ध्रुव पिण्ड रहता है। आहाहा! चैतन्य का आनन्द का पिण्ड-दल पलटे बिना ध्रुव सत् दल, सत्त्व रहता है। उसके द्वारा **स्वभाव को भिन्न जान ले।** आहाहा! बात तो मुद्दे की आयी है।

व्यवहार है भिन्न। भगवान से भिन्न है। व्यवहार द्वारा भिन्न नहीं होगा। आहाहा! चाहे जैसा व्यवहार हो, शुभभाव चाहे जितना हो, नौवीं ग्रैवेयक गया, शुभभाव शुक्ललेश्या से। शुक्ललेश्या से गया। शुक्ललेश्या तो छठे देवलोक से शुक्ललेश्या होती है। छठे स्वर्ग में अनन्त बार गया। सातवें में, आठवें में अनन्त बार और नौवें में भी अनन्त बार गया। वह शुक्ललेश्या से गया है। शुक्ललेश्या। शुक्लध्यान अलग और शुक्ललेश्या अलग। शुक्ललेश्या तो अभवी को भी होती है। और शुक्लध्यान, ध्यान में आठवें गुणस्थान से होता है। शुक्ललेश्या और शुक्लध्यान, दो में इतना अन्तर है। आहाहा!

स्वभाव को भिन्न जान ले। भिन्न ही है... है ? भिन्न जान ले, ऐसा कहा। फिर कहा,

भिन्न हुआ। भिन्न था ही तो भिन्न हुआ है। भिन्न हुआ तो भिन्न था ही, वह भिन्न हुआ है। आहाहा! गजब है! प्रभु! ऐसी बात तो गजब, नाथ! तेरी शक्ति, तेरा बल, तेरी विचक्षणता, तेरी अचिंत्य धारा...! आहाहा! अलौकिक बात है। दुनिया में मान मिले, बड़ी सभा हो, लोग इकट्ठे हो, ... उसमें कोई माल नहीं है। देह छूटने पर वह कोई साथ नहीं आता। समाधि-अन्दर शान्ति प्रगट की होगी, वह शान्ति साथ में आयेगी। आहाहा! राग से भिन्न शान्ति और आनन्द यदि प्रगट किया होगा, वह साथ में आयेगा। दुनिया की प्रशंसा, इज्जत और कीर्ति वहाँ कुछ काम नहीं आयेगा।

इसलिए कहते हैं कि भिन्न कर। क्यों? कि भिन्न ही है। भाषा अलग है। आहाहा! **भिन्न जान ले। ज्ञातृत्वधारा द्वारा स्वभाव को भिन्न जान ले।** भिन्न जाना तो उसका अर्थ कि भिन्न ही था, भिन्न ही है। राग और ज्ञानधारा कभी एक हुई नहीं। आहाहा! सूक्ष्म बात आयी। आहाहा! ...सूक्ष्म कर, भिन्न कर। भिन्न कर। कारण? भिन्न ही है। भिन्न कर। (कि) कारण भिन्न ही है। आहाहा! सादी भाषा, साधारण चार पुस्तक पढ़ा हो, उसे भी ख्याल में आये। यहाँ कोई अंग्रेजी विशेष पढ़ा हो तो ही ख्याल में आये, ऐसा नहीं है। आहाहा!

भिन्न ही है परन्तु तुझे नहीं भासता। तेरी दृष्टि में द्रव्य की ओर का झुकाव नहीं है और अन्तर में गहराई में राग की सूक्ष्मता की ओर झुकाव के कारण, सूक्ष्म राग में भी झुकाव के कारण तुझे लगता है कि तुझे कुछ राग घट गया। घटा नहीं है। आहाहा! **परन्तु तुझे नहीं भासता। विभाव और ज्ञायक हैं तो भिन्न-भिन्न ही;...** भगवान आत्मा ज्ञायक ध्रुव चैतन्यप्रभु और विकल्प-राग, दोनों भिन्न-भिन्न ही है। भिन्न-भिन्न ही। **विभाव और ज्ञायक हैं तो भिन्न-भिन्न ही;...** दोनों है तो भिन्न-भिन्न ही। आहाहा! ऐसी बात सूक्ष्म लगे न। लोगों को स्थूल बात का उपदेश देकर, लोग प्रसन्न हो। और सेठ लोगों को फुरसत नहीं मिलती। फिर ऐसी बात सुनकर... जिन्दगी पूरी कर दे। पन्नालालजी! यह तो दृष्टान्त है। आहाहा!

यह चीज़... आहाहा! महाभाग्य कि ऐसी वाणी सुनने मिले। अन्तर में काम करना तो उसका काम है। वहाँ कोई वाणी काम करेगी नहीं। वाणी सुनी और धारण की, धारणा की, उससे कोई काम होगा नहीं। आहाहा! वाणी सुनने मिली और उसका ख्याल आया तो उस ख्याल से भिन्न नहीं पड़ेगा। वह ख्याल तो पराधीन दशा है। आहाहा! कहाँ ले जाना

है ? प्रभु ! कहते हैं कि तेरी चीज़ को सूक्ष्म कहते है। तुझे सुनने मिलता है तो कान को भी छूती नहीं, परन्तु तेरे ज्ञान की पर्याय उस समय की ऐसी योग्यता क्रमबद्ध में आनेवाली है तो आयी। परन्तु उससे धारणा हुई। उससे भिन्न हुआ नहीं। आहाहा ! समझ में आया ?

जैसे पाषाण और सोना एकमेक दिखने पर भी... गिरनार में पत्थर और सोना बहुत है। परन्तु उतना अधिक सोना नहीं है। सौ रुपये का खर्च करे तब चालीस-पचास का सोना निकले। गिरनार। गिरनार पर्वत में सोना की गाँठ बहुत है। और सोने का कारखाना भी किया था। सोना निकालने के लिये। परन्तु सौ रुपये का खर्च और चालीस-पचास का सोना निकले। कारखाना बन्द कर दिया। आहाहा !

यहाँ कहते हैं, भगवान ! **पाषाण और सोना एकमेक दिखने पर भी भिन्न ही हैं...** पत्थर और सोना एक नहीं हुए। **तदनुसार।** ज्ञायक और विभाव दोनों भिन्न ही है। एक कभी हुए नहीं। तेरी मान्यता ने माना है। आहाहा ! सूक्ष्मपने अन्तर में जाना और राग से भिन्न होकर, भिन्न चीज़ पड़ी है, उसको पकड़ने के लिये, प्रभु ! तूने सावधानी कभी की नहीं। आहाहा ! इसलिए उसे दुष्कर लगता है। बाकी वस्तु तो सहज है। सहज वस्तु ही वह है। सच्चिदानन्द प्रभु आनन्द का कन्द अन्दर विराजता है। आहा.. ! **भिन्न ही हैं तदनुसार।** पत्थर और सोना जैसे भिन्न है तदनुसार। विभाव और ज्ञातृधारा बिल्कुल भिन्न है। ज्ञातृधारा सोना समान है, राग पत्थर समान है। आहाहा ! बहुत अच्छी बात आयी है। वस्तु तो यह है। प्रथम में प्रथम कर्तव्य यह है। स्थिरता बाद में होगी। जो चीज़ देखी नहीं, वेदन में आयी नहीं, उसमें स्थिरता कहाँ से आयेगी ? स्थिरता अर्थात् चारित्र। जो चीज़ दृष्टि में आयी नहीं, ज्ञान में ज्ञेय—भास हुआ नहीं, उसका वेदन हुआ नहीं, तो स्थिरता कहाँ से होगी ? उसके बिना स्थिरता बाहर की होगी। शुभराग की मन्दता आदि बहुत किया। मान ले कि हम कुछ तो करते हैं। आहाहा !

प्रश्न : सोना और पत्थर का दृष्टान्त दिया, इसलिए प्रश्न करते हैं। **सोना तो चमकता है, इसलिए पत्थर और सोना—दोनों भिन्न ज्ञात होते हैं,...** आहाहा ! **परन्तु यह कैसे भिन्न ज्ञात हों ?** पत्थर और सोना तो भिन्न चमकते हैं। सोना तो चमकता है तो भिन्न कर सकते हैं। **परन्तु यह कैसे भिन्न ज्ञात हों ?** आत्मा और राग, कैसे भिन्न हो ? उसमें तो चमकता है, इसलिए चमक पर से भिन्न किया। सोना चमकता है, इसलिए पत्थर

चमकता नहीं, इतना लक्षण देखकर सोने को भिन्न कर दिया। प्रभु! आत्मा को कैसे भिन्न करना?

उत्तर :- यह ज्ञान भी चमकता ही है न? प्रभु! आहाहा! जैसे सोना चमकता है और उससे तुझे भिन्न भासता है। **यह ज्ञान भी चमकता ही है न?** चमकता ही है न। है। आहाहा! भगवान आत्मा शरीर में अन्दर भिन्न ज्ञान चमकता है। आहाहा! **विभावभाव नहीं चमकते...** जैसे पत्थर नहीं चमकता, सोना चमकता है तो भिन्न करके निकाल दिया। वैसे यहाँ ज्ञान भी चमकता ही है न। आहाहा! ज्ञान चमकता है। जानन.. जानन.. जानन... जानन... इस स्वभाव के अस्तित्व से आत्मा तो ज्ञान के अस्तित्व से, ज्ञान से चमकता ही है। आहाहा! विभाव नहीं चमकते। राग का विकल्प है, उसमें चमक नहीं है। चमक नहीं है अर्थात् उसमें ज्ञान नहीं है। राग कुछ जानता नहीं, वह तो जड़ है। जाननेवाला चमकता है। ज्ञान से आत्मा भगवान चमकता है। आहाहा!

किन्तु सर्वत्र ज्ञान ही चमकता है... आहाहा! विभाव नहीं चमकते। आहा..! पुण्य और पाप, दया, दान, व्रतादि के विकल्प चमकते नहीं। वह तो अजीव है, जड़ है। उसमें चैतन्यपना है नहीं। आहाहा! **किन्तु सर्वत्र ज्ञान ही चमकता है...** तूने ध्यान दिया नहीं। अन्दर में तो ज्ञान ही चमकता है, राग नहीं चमकता है। आहाहा! **किन्तु सर्वत्र ज्ञान ही चमकता है—ज्ञात ही होता है।** क्या कहा? **ज्ञान की चमक चारों ओर फैल रही है।** आहाहा! ज्ञान की चमक चारों ओर फैल रही है। सबको जानना, अपने को जानना, ऐसा ज्ञान चमक रहा है। समझ में आया? **सर्वत्र ज्ञान ही चमकता है—ज्ञात होता है।** जानने में ज्ञान ही चमकता है। प्रभु! थोड़ी दृष्टि दे तो राग चमकता नहीं। राग तो अन्धा है। जड़ है, अजीव है। ज्ञान भगवान राग से भिन्न चमकता ही है और भिन्न रहकर चमकता है। आहाहा! भाषा बहुत थोड़ी है। माल है। **ज्ञान की चमक चारों ओर फैल रही है।**

ज्ञान की चमक बिना... अब दृष्टान्त के साथ मिलान करते हैं। **ज्ञान की चमक बिना सोने की चमक काहे में ज्ञात होगी?** क्या कहते हैं? ज्ञान की चमक बिना सोने की चमक काहे में ज्ञात होगी? किसमें ख्याल आयेगा? सोने की चमक भी ज्ञान में ख्याल में आयी है। आहाहा! बहुत सरस बात है। मुद्दे की बात यह है। करने की चीज़ प्रभु! मनुष्यदेह मिला, नाथ! उसमें करना यह है। इज्जत और दुनिया, सब एक ओर रख दे।

करने की तो यह एक चीज़ है। दुनिया माने, न माने, उसके साथ तेरा कोई सम्बन्ध नहीं है। यहाँ तो कहते हैं, राग के काल में भी ज्ञान की ही चमक है। राग तो जानता नहीं। जानता तो ज्ञान है। राग के काल में भी ज्ञान की ही चमक है। सोना की चमक ज्ञान जानता है। पत्थर को खबर है ? सोने की चमक ज्ञान जानता है। वैसे अपनी चमक स्वयं जानता है। उसमें कोई राग या विकल्प की जरूरत नहीं है। आहाहा! **ज्ञान की चमक बिना सोने की चमक काहे में ज्ञात होगी ?** आहाहा! प्रभु! तूने विचार नहीं किया है। चमक के अन्दर ज्ञान चमकता है। उसमें सब भासता है। चमक तो ज्ञान की है। उसके सिवा दूसरी कोई चमक नहीं है। दूसरी कोई चीज़ जानती नहीं। सोने का भान भी ज्ञान में हुआ न ? यह सोने की चमक है, ऐसा ज्ञान में जानने में आया न ? तो ज्ञान ने प्रसिद्ध किया। आहाहा!

जैसे सच्चे मोती और खोटे मोती इकट्ठे हों... अब दूसरा दृष्टान्त (देते हैं)। पहला पत्थर और सोने का दिया। दूसरा दृष्टान्त। **जैसे सच्चे मोती और खोटे मोती इकट्ठे हों तो मोती का पारखी...** यह शर्त है। सच्चे-खोटे मोती पड़े हैं परन्तु मोती का पारखी-यह शर्त है। पारखी नहीं हो तो सब इकट्ठा ले ले। आहाहा! मोती का परख जिसको है, आहाहा! **उसमें से सच्चे मोतियों को अलग कर लेता है,...** मोती का पारखी। शर्त यहाँ है। सच्चे मोती का जिसको ख्याल है, सच्चे मोती का जिसको ज्ञान है, वह सच्चे मोती ले लेगा। सच्चे मोती और झूठे, दोनों एकसाथ में है, परन्तु सच्चे मोती का जिसको ख्याल है, वह ख्यालवाला सच्चे मोती को उठा लेगा। आहाहा!

सच्चे मोती और खोटे मोती इकट्ठे हों तो मोती का पारखी... वजन यहाँ है। सच्चे मोती की कीमत जिसको है। हीरा होता है न ? हीरे की इतनी छोटी कणी होती है, हजारों रुपया। बताने आये न। एक बार देखा था। अस्सी हजार का। एक हीरा अस्सी हजार का। राजकोट चातुर्मास था। नानालालभाई के भाई बेचरभाई थे। एक बार लाये थे, बताया था। एक हीरा। परन्तु वह तो बड़ा हीरा था। अस्सी हजार का। ये तो छोटे-छोटे चमकते (हैं)। बहिन को वधायेंगे न। छोटे-छोटे चमकते हैं। पाँच-पाँच हजार के हीरे। पाँच-पाँच हजार के, छह-छह हजार के, पन्द्रह हजार के, दस हजार के। बारीक-बारीक कणी। उसकी चमक की परीक्षा जिसे हो, वह उठा लेगा। उसकी परीक्षा जिसको है, वह ले लेगा। दूसरा तो काँच के टुकड़े में हीरा मानेगा। आहाहा!

पहले ऐसा था, सोनी की दुकान के पास आता था। धूलधोया। देखा है, हमने प्रत्यक्ष देखा है। सोनी की दुकान में करते थे। मैं खड़ा था। अस्सी साल पहले की बात है। उसमें तीन प्रकार के टुकड़े दिखे। एक दिखे सोने का बारीक टुकड़ा, एक दिखे पीतल की छोटी कणी और एक देखे कंगन। कंगन होते हैं न ? काँच के कंगन में पीला रंग होता है न ? उसकी कणी होती है। तीनों कण को पहचान लेता है। काँच की कणी हल्की होती है, पीतल की कणी भी तौलदार नहीं होती और सोने की कणी तौलदार होती है। आहाहा ! करते थे, पहले। सोनी की दुकान में एक साल, दो साल होने के बाद थोड़ा-थोड़ा पड़ा होता है।

यहाँ भगवान की दुकान के पास बड़े-बड़े भगवान विराजते हैं, ऐसा कहते हैं। तुझे परखना नहीं आता। भगवान विराजता है, अकेली ज्ञान की चमक से अन्दर। ज्ञान की चमक से अकेला परमात्मा विराजता है। राग को भी जाननेवाला है कौन ? दया, दान का विकल्प है उसको जाननेवाला है कौन ? जाननेवाले में वह नहीं है। दया, दान का परिणाम जाननेवाले में नहीं है। जाननेवाले में नहीं और दया, दान के परिणाम में जाननेवाला नहीं है। आहाहा ! दोनों भिन्न हैं। परन्तु जिसको परीक्षा है, ख्याल है, सच्चे-झूठे मोती का, वह मोती ले लेता है।

पारखी उसमें से सच्चे मोतियों को अलग कर लेता है,... वजन यहाँ है। ख्याल भी नहीं और अन्धा होकर चलता है। अनादि काल से अन्धा चल रहा है। **सच्चे मोतियों को अलग कर लेता है, उसी प्रकार आत्मा को 'प्रज्ञा से ग्रहण करना'।** चमक से ग्रहण करना। ज्ञान की चमक। राग की चमक नहीं है। ऐसी सूक्ष्मता से अन्दर में जाकर ज्ञान की चमकता से ज्ञान को पकड़ लेना। **उसी प्रकार आत्मा को 'प्रज्ञा से ग्रहण करना'।** आहाहा ! विधि तो अलौकिक कही है। यह बहिन के शब्द हैं। अनुभव में से आये हैं। अतीन्द्रिय आनन्द का अनुभव (है)। अतीन्द्रिय आनन्द के अनुभव की दशा में से यह वाणी आयी है। आहाहा ! उसमें यह बात निकल गई और बाहर आ गयी।

'प्रज्ञा से ग्रहण करना'। जो जाननेवाला है, सो मैं;... अन्दर जो जाननेवाला है, वह मैं। जिसमें जानने में आये, राग-द्वेष, विभाव जानने में आये, जो चीज़ जानने में आयी वह मैं नहीं, परन्तु जाननेवाला मैं हूँ। सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान की बात बहुत बदल गई।

बाहर की बात इतनी हो गई कि उसी में चढ़ गये। मूल सम्यग्दर्शन और ज्ञान पहले प्रगट करने की चीज़ है। वहाँ प्रयत्न करना और दूसरा प्रयत्न छोड़ देना। आहाहा! आत्मा को '**प्रज्ञा से ग्रहण करना**'। **जो जाननेवाला है, सो मैं; जो देखनेवाला है, सो मैं...** आहाहा! **इस प्रकार उपयोग सूक्ष्म करके...** इस प्रकार उपयोग को सूक्ष्म करके। जिसमें राग को जाननेवाला भिन्न पड़ जाए और भिन्न है ही। ऐसे सूक्ष्म उपयोग को पकड़ ले। आहाहा!

उपयोग सूक्ष्म करके आत्मा को और विभाव को पृथक् किया जा सकता है। आत्मा को और राग को सूक्ष्म अन्तर ज्ञान में पृथक् किया जा सकता है। आहाहा! **यह पृथक् करने का कार्य प्रज्ञा से ही होता है।** यह पृथक् करने का कार्य प्रज्ञा से ही होता है। एकान्त किया। कोई व्यवहार क्रियाकाण्ड करने से, दया, दान या व्रत करने से (नहीं होता)। व्यवहार है सही, परन्तु उससे यह पकड़ में आता है, ऐसा है नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु :- प्रज्ञा माने क्या?

पूज्य गुरुदेवश्री :- प्रज्ञा अर्थात् ज्ञान। प्रज्ञा। प्र-विशेषरूप से, ज्ञ। जो खास भिन्न जाननेवाला प्रज्ञा। प्र-विशेषरूप से, ज्ञ-जाननेवाला। पर की अपेक्षा रखे बिना। अपनी चमक में-अपनी प्रज्ञा से राग से भिन्न करना। आहाहा! सूक्ष्म बात है, भाई! यहाँ तो उपदेश दूसरे प्रकार से चलता हो। स्थूल हो तो लोगों को ठीक लगे। ऐसा करो, वैसा करो, ऐसा करो, मन्दिर बनाना, गिरनार की यात्रा करनी, शिखरजी की यात्रा करनी। आहा..! प्रभु! मार्ग बहुत सूक्ष्म है। वह सूक्ष्म मार्ग पकड़े बिना जन्म-मरण का अन्त आता नहीं, प्रभु! और जन्म-मरण का अन्त हुए बिना, प्रभु! क्या किया? आहाहा! अवतार तो एक नहीं, ऐसे अनन्त-अनन्त अवतार (किये)। आहा..! नरक की वेदना.. आहाहा! याद करते-करते आचार्य कहते हैं, घाव लगता है। पूर्व की वेदना स्मरण करते हैं, स्मरण में लेते हैं तो हमको घाव लगता है। वादिराज कहते हैं। कभी विचार भी कहाँ किया है कि नरक में कितना दुःख है। आहा..!

आत्मा को और विभाव को पृथक् किया जा सकता है। यह पृथक् करने का कार्य प्रज्ञा से ही होता है। व्रत, तप या त्यागादि भले हों,... उससे वह पृथक् नहीं हो सकता। आहाहा! **परन्तु वे साधन नहीं होते,...** राग की मन्दता की क्रिया, व्रत, तप आदि,

त्यागादि **साधन नहीं होते,...** कठिन पड़े जगत को। एक तो निश्चय से ऐसी बात है कि आत्मा के सिवा परवस्तु का त्याग-ग्रहण मिथ्यात्व है। पर का त्याग और ग्रहण मानना, वह मिथ्यात्व है। क्योंकि आत्मा में त्याग-उपादान नाम की शक्ति-त्यागग्रहण करना, लेने की रहित शक्ति त्रिकाल पड़ी है। आत्मा में वह शक्ति त्रिकाल पड़ी है। पर का त्याग और ग्रहण आत्मा में है ही नहीं। त्याग-उपादानशून्यत्व शक्ति। ४७ शक्ति में १६वीं है। आहाहा! उस ओर तो ध्यान नहीं (और) बाहर के त्यागादि ऊपर पूरा वजन जाता है। उससे कोई ख्याल में नहीं आता। आहा..! वह कोई साधन नहीं है।

साधन तो प्रज्ञा ही है। आहाहा! प्रज्ञा अर्थात् ज्ञान की छैनी। राग और ज्ञान के बीच सन्धि है, दरार है, उसमें पटक। तेरी चीज़ भिन्न हो जाएगी। भिन्न ही है। भिन्न ही है। भिन्न हो जाएगी। यदि भिन्न न हो तो भिन्न होती नहीं। आहाहा! राग से यदि एकमेक हो, स्वरूप चैतन्य राग से एकमेक हो तो राग से कभी छूटे नहीं। सोना और सोने का पीलापन एकमेक है। कभी छूटेगा? वैसे भगवान आत्मा प्रज्ञा और आत्मा, ये दोनों एक ही है। उससे कभी छूटता नहीं। प्रज्ञा से ही राग से भिन्न होगा। दूसरी कोई क्रिया है नहीं। आहाहा! ये तो बहिन रात को किसी समय बोले होंगे, उसे लिख लिया और बाहर आ गया। आहाहा! अभी नहीं आते। (स्वास्थ्य) नरम है।

स्वभाव की महिमा से परपदार्थों के प्रति रसबुद्धि—सुखबुद्धि टूट जाती है। कोई क्रियाकाण्ड से नहीं। स्वभाव की महिमा से। भगवान आत्मा ज्ञान और आनन्द जिसका त्रिकाली स्वभाव है। जैसे उष्णता अग्नि का त्रिकाली स्वभाव है, ऐसे ज्ञान और आत्मा का त्रिकाली स्वभाव है। इस **स्वभाव की महिमा से परपदार्थों के प्रति रसबुद्धि—सुखबुद्धि टूट जाती है।** कुछ भी अधिक-ठीक लगे कि इसमें से कुछ मिलेगा, प्रज्ञाछैनी से वह सब छूट जाता है। कुछ राग की मन्दता की क्रिया करता हो, करते-करते कुछ लाभ होगा। आहाहा! वह मिथ्यात्वभाव है। आहाहा! यहाँ तो **स्वभाव की महिमा से परपदार्थों के प्रति...** व्यवहाररत्नत्रय के प्रति की **रसबुद्धि—सुखबुद्धि टूट जाती है।** आहाहा!

स्वभाव में ही रस आता है,... आहाहा! स्वभाव। स्व-भाव। चैतन्य का स्व भाव। वह स्वभाव ज्ञान और आनन्द (है)। आहाहा! उसका स्वरूप-भगवान आत्मा का स्व रूप। स्व अपना रूप ज्ञान और आनन्द। आहाहा! अपने रूप में... आहा..! रस आता है।

स्वभाव में ही रस आता है,... आहाहा! व्यवहाररत्नत्रय के राग में भी दु:ख लगता है। ज्ञानी को उसमें दु:ख का रस लगता है और स्वभाव में ही रस लगता है। **दूसरा सब नीरस लगता है।** भगवान आत्मा के आनन्द के सिवा... सिवाय कहते हैं। अलावा। सब रस टूट जाता है और दूसरा सब नीरस लगता है। कहीं रस नहीं लगता। शुभभाव में भी रस लगता नहीं। आहा..!

तभी अन्तर की सूक्ष्म सन्धि ज्ञात होती है। स्वभाव में रस आता है, दूसरा सब नीरस लगता है तभी, तब अन्तर की सूक्ष्म सन्धि–अन्तर की सूक्ष्म सांध। राग का विकल्प और स्वभाव, दोनों भिन्न है, ऐसी सूक्ष्म सन्धि तभी अन्तर में ज्ञात होती है। स्व का रस आता है और पर का रस टूट जाता है। **ऐसा नहीं होता कि पर में तीव्र रुचि हो...** अन्दर में रुचि राग में, पुण्य में, सूक्ष्म शुभ में भी रुचि रहे **और उपयोग अन्तर में प्रज्ञाछैनी का कार्य करे।** ऐसा बनता नहीं। आहाहा! (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

विक्रम संवत-२०३५, श्रावण शुक्ला - ९, गुरुवार, तारीख १९-८-१९८०
वचनामृत-१९९, २०० प्रवचन-१२

जीव को अटकने के जो अनेक प्रकार हैं, उन सबमें से विमुख हो और मात्र चैतन्यदरबार में ही उपयोग को लगा दे; अवश्य प्राप्ति होगी ही। अनन्त-अनन्त काल से अनन्त जीवों ने इसी प्रकार पुरुषार्थ किया है, इसलिए तू भी ऐसा कर।

अनन्त-अनन्त काल गया, जीव कहीं न कहीं अटकता ही है न? अटकने के तो अनेक-अनेक प्रकार हैं; किन्तु सफल होने का एक ही प्रकार है—वह है चैतन्यदरबार में जाना। स्वयं कहाँ अटकता है, उसका यदि स्वयं ख्याल करे तो बराबर जान सकता है।

द्रव्यलिंगी साधु होकर भी जीव कहीं सूक्ष्मरूप से अटक जाता है, शुभ भाव की मिठास में रुक जाता है, 'यह राग की मन्दता, यह अट्ठाईस मूलगुण,—बस यही मैं हूँ, यही मोक्ष का मार्ग है', इत्यादि किसी प्रकार सन्तुष्ट होकर अटक जाता है; परन्तु यह अन्तर में विकल्पों के साथ एकताबुद्धि तो पड़ी ही है, उसे क्यों नहीं देखता? अन्तर में यह शान्ति क्यों नहीं दिखायी देती? पापभाव को त्यागकर 'सर्वस्व कर लिया' मानकर सन्तुष्ट हो जाता है। सच्चे आत्मार्थी को तथा सम्यग्दृष्टि को तो 'अभी बहुत बाकी है, बहुत बाकी है'—इस प्रकार पूर्णता तक बहुत बाकी है, ऐसी ही भावना रहती है और तभी पुरुषार्थ अखण्ड रह पाता है।

गृहस्थाश्रम में सम्यक्त्वी ने मूल को पकड़ लिया है, (दृष्टि-अपेक्षा से) सब कुछ कर लिया है, अस्थिरतारूप शाखाऐं-पत्ते जरूर सूख जायँगे। द्रव्यलिंगी साधु ने मूल को ही नहीं पकड़ा है; उसने कुछ किया ही नहीं। बाह्यदृष्टि लोगों को ऐसा भले ही लगे कि 'सम्यक्त्वी को अभी बहुत बाकी है और द्रव्यलिंगी मुनि ने बहुत कर लिया'; परन्तु ऐसा नहीं है। परीषह सहन करे किन्तु अन्तर में कर्तृत्वबुद्धि नहीं टूटी, आकुलता का वेदन होता है, उसने कुछ किया ही नहीं॥१९९॥

वचनामृत १९९। **जीव को अटकने के जो अनेक प्रकार हैं,...** अनादि काल से कुछ.. कुछ.. कुछ.. शल्य गहराई में रहता है। साक्षात् चैतन्य का आनन्द का अनुभव न हो तो भी अपना मान लेते हैं, ऐसे अटकने के असंख्य प्रकार हैं। **जीव को अटकने के जो अनेक प्रकार हैं, उन सबमें से विमुख हो...** आहाहा! अटकना क्या है, वह भी थोड़े विचार बिना बैठ सकता नहीं। कहाँ-कहाँ मेरी भूल हो रही है और मैं कहाँ अटक जाता हूँ, मैं क्या मानता हूँ? अतीन्द्रिय आनन्द का ढ़ेर आत्मा है, अतीन्द्रिय आनन्द का पुंज प्रभु है। अतीन्द्रिय आनन्द का वेदन बिना जो बाह्य क्रिया है, सब निरर्थक है। वहाँ अटक जाता है, मैं कुछ करता हूँ। व्रत पालता हूँ, ब्रह्मचर्य पालता हूँ, कुछ आचरण-क्रिया करता हूँ, ज्ञान में कुछ जानपना करता हूँ, ऐसे अनेक प्रकार का रुकने का कारण होता है।

प्रभु! **सबसे विमुख हो...** ऐसा मनुष्यपना मिला, नाथ! आहाहा! अनन्त काल में मनुष्यपना मिलना दुर्लभ, उसमें जिनवाणी सुनने मिलनी मुश्किल, यह जो मिला है तो प्रभु! सबमें से विमुख हो। दुनिया की बात छोड़ दे। आत्मा के आनन्द के अलावा कहीं भी रुकना, कहीं भी रुकने से मैं हूँ, ऐसी दृष्टि छोड़ दे, प्रभु! आहाहा! **सबमें से विमुख हो और मात्र चैतन्यदरबार में ही...** आहाहा! मात्र चैतन्यदरबार में अनन्त-अनन्त सम्पदा, चमत्कृति पड़ी है, उसका वेदन कर। आहा..! इस वेदन के बिना जन्म-मरण का अन्त नहीं आयेगा। नौवीं ग्रैवेयक अनन्त बार गया, दिगम्बर साधु हजारों रानी छोड़कर शुक्ललेश्या, लाखों वर्षों तक अट्ठाईस मूलगुण, पंच महाव्रत पाले परन्तु उससे कुछ हुआ नहीं। चैतन्यमात्र दरबार में जा, प्रभु! आहाहा! दूसरी सब बात छोड़कर चैतन्य आनन्दकन्द प्रभु, अतीन्द्रिय आनन्द का रस (है), वहाँ जा। आहाहा!

चैतन्यदरबार में ही उपयोग को लगा दे;... दूसरी चिन्तवना छोड़ दे, दूसरी कल्पना छोड़ दे और अपना उपयोग अपने आनन्द में लगा दे। आहाहा! करना यह है। यह अनन्त काल में किया नहीं। **अवश्य प्राप्ति होगी ही।** तेरे चैतन्यदरबार में ही उपयोग लगा दे। आहाहा! बाहर में से सबमें से समेटकर, बाहर में से चिंता का विकल्प सब प्रकार का छोड़कर चैतन्यदरबार में उपयोग दे। आहाहा! भगवान अन्दर चैतन्यदरबार है। अनन्त-अनन्त आनन्द, अनन्त शान्ति, अनन्त प्रभुता, अनन्त स्वच्छता, अनन्त-अनन्त गम्भीर शक्तियों का सागर है, गम्भीर शक्तियों का सागर प्रभु है। आहाहा! वहाँ उपयोग लगा दे।

उसके बिना सब फोगट होगा, प्रभु! भव का अभाव नहीं होगा। आहाहा!

चैतन्यदरबार में ही उपयोग को लगा दे;... भाषा तो सादी है। चैतन्य का उपयोग जो बाहर में दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा में चला जाता है, वह सब तो शुभभाव है, वह कोई धर्म नहीं। चैतन्यदरबार में उपयोग लगा दे। वहाँ अकेला आनन्द और शान्ति भरी है। आहाहा! **अवश्य प्राप्ति होगी ही।** प्रभु में-परमात्मा में दृष्टि लगी, उपयोग लगा, जरूर प्राप्ति होगी। नि:सन्देह प्राप्ति होगी। दूसरे कोई प्रकार से प्राप्ति नहीं होगी।

अनन्त-अनन्त काल से अनन्त जीवों ने इसी प्रकार पुरुषार्थ किया है,... इसी प्रकार पुरुषार्थ किया। अतीन्द्रिय ज्ञान और आनन्द, उसमें उपयोग लगा दिया, यह पुरुषार्थ अनन्त जीवों ने किया और वर्तमान में कर सकते हैं। प्रभु! यह कर न। आहाहा! **अनन्त-अनन्त काल से अनन्त जीवों ने इसी प्रकार पुरुषार्थ किया है, इसलिए तू भी ऐसा कर।** अनन्त जीव यह कर सके हैं। अशक्य है, ऐसा नहीं है। दुर्लभ है। उपयोग लगा दे अन्दर में आनन्द में। अनन्त आनन्द प्राप्त होगा। अनन्त जीव मोक्ष को प्राप्त हुए हैं। सब अन्तर्मुख आनन्द में उपयोग लगाकर मोक्ष को प्राप्त हुए हैं। दूसरी कोई क्रियाकाण्ड से हुए नहीं।

अनन्त-अनन्त काल गया,... आहाहा! **जीव कहीं न कहीं अटकता ही है न?** आहाहा! अनादि-अनन्त काल में अनन्त बार साधुपना लिया, पंच महाव्रत लिये, अट्ठाईस मूलगुण लिये, उसमें कोई आत्मा नहीं है। आहा..! **अटकने के तो अनेक-अनेक प्रकार हैं; किन्तु सफल होने का एक ही प्रकार है...** आहा...! चैतन्य भगवान, उसके दरबार में प्रवेश करना, उसका ही अनुभव करना, यह एक ही सफलता का उपाय है, बाकी सब असफलता के हैं। आहाहा! **वह है चैतन्यदरबार में जाना।** एक ही प्रकार है, **वह है चैतन्यदरबार में जाना।** भगवान चैतन्यदरबार। आहाहा ! बाहर में भी दरबार के पास जाते हैं तो कितनी योग्यता होती है। देखा है न। लींबडी है, लींबडी। रानी के पास जाए तो कपड़ा बाँधे। ऐसे ही नहीं जाते। ऐसे ही धोती पहनकर नहीं जाते। धोती पर कपड़ा बाँधकर फिर जाते हैं। हमने बहुतों को प्रत्यक्ष देखे हैं। व्याख्यान में आये थे दरबार, रानी आयी थी। रानी तो वहाँ राजकोट में आयी थी। भाई! राजकोट आयी थी न रानी? व्याख्यान में। बन्द किया होता है। राजकोट की रानी आयी थी। उनके पास जाने में भी सभ्यता

चाहिए। खुल्ले कपड़े पहनकर नहीं जा सकते। अच्छी धोती पहनकर चारों ओर से बन्द कपड़े पहनकर जाते हैं।

यहाँ आत्म-दरबार में जाना है। आहाहा! वहाँ तो सब विकल्पादि का त्याग करके कुछ भी आत्मश्लाघा-अपनी आत्मप्रशंसा करके रुकना... आहाहा! वह सब छोड़ दे, प्रभु! आहाहा! उसे छोड़कर... आहा..! **चैतन्यदरबार में जाना। स्वयं कहाँ अटकता है...** मुद्दे की रकम की बात है, प्रभु! थोड़ी सूक्ष्म लगे, परन्तु मूल रकम है। बहिन के साथ बात करते हुए स्वयं बोले हैं। वह तो कभी-कभार निकले। उसमें से लिखा है। आनन्द के अनुभव में, अतीन्द्रिय आनन्द के अनुभव में से यह बात आयी है। आहाहा!

कहते हैं कि **सफल होने का एक ही प्रकार है—वह है चैतन्यदरबार में जाना।** यह प्रकार। आहाहा! बाहर की सब चिन्ता, साधन, ख्याति, पूजा, लाभ, महिमा, महत्ता देखकर दुनिया तुझे चढ़ा दे कि ओहो! तू बड़ा है, ऐसा है। अन्तर में अनुभव होवे नहीं। आहाहा! कहते हैं, अन्तर दरबार में जाना। **स्वयं कहाँ अटकता है,...** स्वयं कहाँ अटकता है, **उसका यदि स्वयं ख्याल करे तो बराबर जान सकता है।** आहाहा! शर्त यह। स्वयं ख्याल करे। **स्वयं कहाँ अटकता है, उसका यदि स्वयं ख्याल करे तो बराबर जान सकता है।** सूक्ष्म बात है, प्रभु! बहुत सूक्ष्म, बहुत सूक्ष्म। जानपना में भी, श्रद्धा में भी कहाँ अटकता है, वस्तु कहाँ रह जाती है, उसका अटकना-रुकना किस प्रकार से होता है, उसका विचार करने से ख्याल में आता है। आहाहा!

द्रव्यलिंगी साधु... अनन्त बार नग्नपना लेकर दिगम्बर हो गया। हजारों रानियाँ छोड़ी। ओहोहो! **द्रव्यलिंगी साधु होकर भी जीव कहीं सूक्ष्मरूप से अटक जाता है,...** आहाहा! शुभभाव की मिठास में, शुभभाव सूक्ष्म शुभभाव महाव्रत का, ब्रह्मचर्य का, बाल ब्रह्मचारी हो, तो क्या हुआ? बाल ब्रह्मचारी कोई धर्म नहीं। बाल ब्रह्मचारी तो काया की क्रिया अटकी-रुकी है, आत्मा नहीं रुका है। आहाहा! बाल ब्रह्मचारी तो अनन्त बार हुआ है। वह तो परलक्ष्यी शुभभाव है। आत्म-ब्रह्मचर्य.. आहा..! ब्रह्म अर्थात् आनन्द और चर अर्थात् चरना, आत्मा के आनन्द में चरना, वह ब्रह्मचर्य, कभी लिया नहीं, कभी किया नहीं, कभी रुचा नहीं। कभी अन्तर में कहाँ रुकता है, उसकी खबर नहीं। आहाहा!

यह राग की मन्दता,... दिगम्बर द्रव्यलिंगी साधु **शुभभाव की मिठास में रुक**

जाता है, 'यह राग की मन्दता,...' बहुत राग की मन्दता हो गयी। मिथ्यादृष्टि। आहाहा! **यह अट्ठाईस मूलगुण,...** मैं तो यह अट्ठाईस मूलगुण पालता हूँ। आहाहा! राग की मन्दता मेरे में है। **बस यही मैं हूँ,...** मैंने इतना किया, बहुत किया। पूरा संसार छोड़ दिया। हजारों रानी छोड़ दी, अरबों की कमाई लक्ष्मी छोड़ दी। उसमें क्या हुआ? आहाहा! अन्तर चैतन्य भगवान के दरबार में अनन्त आनन्द और अनन्त शान्ति, जिसकी गन्ध अनन्त काल में अंश भी आयी नहीं। आहाहा! मुद्दे की रकम है। **बस यही मैं हूँ,...** साधु मानता है। द्रव्यलिंगी साधु होकर शुभभाव की मिठास में रुक जाता है। **राग की मन्दता, यह अट्ठाईस मूलगुण,—बस यही मैं हूँ, यही मोक्ष का मार्ग है',...** उसमें से मार्ग निकलेगा। शुभभाव में से मार्ग नहीं निकलेगा। शुभभाव में से निकलेगा, ऐसी मान्यता मिथ्यादृष्टि की अनादि की है। आहाहा!

इत्यादि किसी प्रकार सन्तुष्ट होकर अटक जाता है;... मान लेता है कि मैंने कुछ व्यवहार तो किया। व्यवहार करते-करते निश्चय हो जाएगा। आहा..! सूक्ष्म व्यवहार राग की मन्दता करते-करते भी कदाचित् कल्याण हो जाएगा। ऐसा अनादि से मिथ्यात्व में रुक गया है। मिथ्यात्व का जहर बड़ा कठिन है। आहाहा! सब छोड़ना, वह अनन्त बार छूटा। मिथ्यात्व एक बार एक सेकेण्ड नहीं छूटा। आहाहा! यह बात बड़ी अलौकिक है, भैया! **परन्तु यह अन्तर में...** ऐसे सन्तुष्ट हो गया कि मैं अट्ठाईस मूलगुण पालता हूँ, मैं ब्रह्मचर्य पालता हूँ, मुझे राग की मन्दता है, मुझे दुनिया की दरकार नहीं।

अन्तर में विकल्पों के साथ एकताबुद्धि तो पड़ी ही है... आहाहा! यह वस्तु है। विकल्प, जो सूक्ष्म विकल्प-राग है, उसके साथ एकत्वबुद्धि तो पड़ी है, यह मिथ्यात्व तो पड़ा है। आहाहा! **परन्तु यह अन्तर में विकल्पों के साथ एकताबुद्धि तो पड़ी ही है...** उससे तो भेदज्ञान, पर से भिन्नता का आनन्द का अनुभव तो किया नहीं और यहाँ अटककर रुक गया। **उसे क्यों नहीं देखता?** विकल्प की एकता टूटती नहीं, ऐसा क्यों नहीं देखता? **विकल्पों के साथ एकताबुद्धि तो पड़ी ही है...** बहुत सूक्ष्म अधिकार है। मैं ज्ञायक हूँ, मैं शुद्ध हूँ, मैं अखण्ड हूँ, ऐसा अन्दर में गहराई में सूक्ष्म विकल्प उत्पन्न होता है, वह राग की एकता भी मिथ्यात्व है। आहाहा! **उसे क्यों नहीं देखता?**

अन्तर में यह शान्ति क्यों नहीं दिखायी देती? दो बात की। कौन-सी दो बात?

अट्ठाईस मूलगुण पालता है, राग मन्द है, बाहर की सब क्रिया अच्छी करता है, परन्तु अन्तर में विकल्प तोड़ा नहीं। विकल्प और भगवान दोनों भिन्न हैं, उस विकल्प को तोड़ा नहीं। ओहोहो! और शान्ति मिली नहीं। आहाहा! अन्तर विकल्प टूटे बिना शान्ति मिले नहीं, प्रभु! और शान्ति मिले बिना सम्यग्दर्शन होता नहीं। आहाहा! आज तो माल आया है। प्रभु के घर का यह माल है। बहिन द्वारा यह बात कही गयी है। आनन्द में रहते हुए यह बात आ गयी है।

... रुकना, बाह्य क्रिया सब की, परन्तु विकल्प के साथ एकता टूटी नहीं और शान्ति मिली नहीं। यहाँ एकता टूटी नहीं, इसलिए आत्मा की शान्ति मिली नहीं। यह तो देखता नहीं। आहाहा! चरम सीमा की बात है, प्रभु! आहाहा! **अन्तर में यह शान्ति क्यों नहीं दिखायी देती?** आहाहा! **पापभाव को त्यागकर...** पापभाव छोड़ा तो मानो मैंने सर्वस्व कर लिया। आहा..! ऐसा तो अनन्त बार पापभाव छूटा है। नौवीं ग्रैवेयक गया। यह बात तो ऐसी लगे कि दुनिया को खबर नहीं पड़े। ऐसा मुनिपना, बाह्य आचरण क्रिया व्यवहार की, सब निरतिचार करता था। निरतिचार।

मोक्षमार्गप्रकाशक में बात है, देव-गुरु-धर्म की श्रद्धा भी द्रव्यलिंगी मिथ्यादृष्टि को बराबर थी। नौवीं ग्रैवेयक गया, उसे देव-गुरु-धर्म की श्रद्धा थी। उसे आत्मा की श्रद्धा नहीं थी। मोक्षमार्गप्रकाशक में है। ऐसी क्रिया करके, देव-गुरु-धर्म की श्रद्धा भी करके, बाहर का आचरण करके नौवीं ग्रैवेयक चला गया। परन्तु विकल्प टूटना और शान्ति मिलनी, यह बात रह गयी। करना तो एक ही था। आहाहा! व्यवहार की लाख बात आये, व्यवहार आये, व्यवहार के प्रकार तो अनेक हैं, अनेक प्रकार होते हैं, होते हैं; नहीं है - ऐसा नहीं, परन्तु वह कोई वस्तु नहीं। वह कोई आत्मा का साधन नहीं। आहाहा! व्यवहार बिना निश्चय कहने में आता नहीं। ऐसी भाषा आती है। कहने में नहीं आता। भेद करना व्यवहार (है)। भेद करके समझाते हैं। परन्तु समझना तो निश्चय है। यह निश्चय, विकल्परहित है, उसे तो पकड़ा नहीं और अकेले व्यवहार में रह गया।

अन्तर में यह शान्ति क्यों नहीं दिखायी देती? पापभाव को त्यागकर 'सर्वस्व कर लिया' मानकर सन्तुष्ट हो जाता है। ऐसा मानकर... आहाहा! अपने में सन्तुष्ट (हो जाता है)। मैं बहुत करता हूँ, मैंने बहुत किया, ऐसे सन्तोष मानता है। **सच्चे आत्मार्थी**

को... आहाहा! **सच्चे आत्मार्थी को तथा सम्यग्दृष्टि को तो 'अभी बहुत बाकी है,...'** क्या कहते हैं? द्रव्यलिंगी अट्ठाईस मूलगुण पालता है, मन्द कषाय (हुआ) तो मानो मैंने बहुत किया। यहाँ तो कहते हैं, समकिती को अभी बहुत करना बाकी है, (ऐसा लगता है)। वह कहता है, मैंने बहुत किया, अज्ञानभाव में क्रियाकाण्ड में। यहाँ समकिती को अभी बहुत बाकी है, (ऐसा लगता है)। ओहो..! कहाँ चारित्र, कहाँ क्षपकश्रेणी, केवलज्ञान, अभी तो बहुत प्राप्त करना बाकी है। द्रव्यलिंगी ऐसी क्रियाकाण्ड में मैंने बहुत किया, ऐसा मानकर रुक जाता है। समकिती तो, बहुत बाकी है—ऐसा जानकर पुरुषार्थ करते हैं। आहाहा! समझ में आया?

'अभी बहुत बाकी है,...' ओहोहो! चारित्र-अन्दर में रमना, आनन्द में रमना। आहाहा! चारित्र अर्थात् चरना, चरना अर्थात् जैसे पशु हरा घास मिठास से चरते हैं, लीला कहते हैं? हरा। हरे घास को (चरते हैं)। दो में अन्तर है। गाय खाती है, वह ऊपर-ऊपर से खाती है, उसका मूल नहीं उखाड़ती, मूल नहीं उखाड़ती। गधा खाता है, वह मूल उखाड़कर खाता है, इसलिए पुनः उगता ही नहीं। यहाँ तो पुनः उगेगा ऐसी दुनिया की आशा रखकर ऊपर-ऊपर से खाती है। गोचरी-गोचरी। गाय की चरी अर्थात् ऊपर-ऊपर से खाना। आहाहा!

मुमुक्षु :- यह तो दृष्टान्त हुआ।

पूज्य गुरुदेवश्री :- यहाँ यह कहते हैं कि अपनी क्रिया भले रागादि मन्द करे, बाकी अन्दर बहुत करना है। मूल बहुत बाकी है। आहा..! ऊपर से घास खाया, समकित हुआ, आत्मज्ञान हुआ, चैतन्य का अनुभव हुआ। आहाहा! यह तो अभी ऊपर की बात है। आहाहा! अभी बहुत बाकी है।

समकिती ऐसा जानते हैं कि अभी तो मुझे बहुत करना है। मेरे में बहुत कमी है। मैं तो पामर हूँ। स्वामी कार्तिकेय में श्लोक है, समकिती चारित्रवन्त भी केवलज्ञानी के समक्ष मैं पामर हूँ, ऐसा कहते हैं। ऐसा पाठ है। स्वामी कार्तिकेय में श्लोक है। केवलज्ञानी के समक्ष मैं तो पामर हूँ। कहाँ छठा गुणस्थान, सातवाँ गुणस्थान चारित्रदशा! आहाहा! क्षण में छठा-क्षण में सातवाँ, क्षण में छठा-क्षण में सातवाँ। एक दिन में हजारों बार आवे।

व्याख्यान करते-करते समय आ जाए, विहार में चलते-चलते सप्तम हो जाए, खाते-खाते सप्तम हो जाए। आहाहा! अन्दर अप्रमत्तदशा में आ जाए। बाहर लोगों को दिखे नहीं कि यह क्रिया तो चलती है। अन्दर ही अन्दर आनन्द में चले गये हैं।

यहाँ कहते हैं, **सम्यग्दृष्टि को तो 'अभी बहुत बाकी है,...'** (द्रव्यलिंगी मुनि) अट्ठाईस मूलगुण पालता है और कहता है कि मैंने बहुत किया और समकिती को (लगता है) बहुत बाकी है। आहाहा! **बहुत बाकी है—इस प्रकार पूर्णता तक बहुत बाकी है,...** आहाहा! सम्यग्दृष्टि अनुभव करते जानते हैं, अभी मुझे पूर्णता तक बहुत करना बाकी है। आहाहा! मिथ्यादृष्टि अट्ठाईस मूलगुण और बाह्य क्रियाकाण्ड करके मान लेता है कि मैंने बहुत किया। इतना अन्तर है। आहाहा! **ऐसी ही भावना रहती है...** धर्मी जीव की, मुझे पूर्णता तक बहुत बाकी है, ऐसी ही भावना रहती है। आहाहा! उसका गर्व और अभिमान नहीं होता। मुझे तो अभी बहुत बाकी है। आहा..! चारित्र है, केवलज्ञान। आहा..! यह तो पामर दशा है। स्वामी कार्तिकेय में ऐसा पाठ है, मैं पामर हूँ। समकिती ऐसा मानते हैं कि मैं पर्याय में पामर हूँ। द्रव्य में प्रभु हूँ। द्रव्य भगवान है, पर्याय में मैं पामर हूँ - ऐसा पाठ है। आहाहा! मुझे बहुत करना बाकी है। आहा..! मैं किसका अभिमान करूँ? मैंने क्या किया कि उसका मैं सन्तोष ले लूँ? मुझे बहुत करना बाकी है। आहा..! **ऐसी ही भावना रहती है और तभी पुरुषार्थ अखण्ड रह पाता है।** तभी पुरुषार्थ स्वभाव सन्मुख अखण्ड रहता है। मुझे बहुत करना बाकी है—ऐसी दृष्टि रहती है, उसका पुरुषार्थ स्वभाव की ओर चलता ही है। **तभी पुरुषार्थ अखण्ड रह पाता है।** आहाहा!

अरे..! यह तो अनुभव की भाषा कैसी! उन्हें खबर नहीं थी कि कोई लिख लेता है। उन्हें बाहर प्रसिद्धि में आने का, लिखने का बिल्कुल नहीं है। धर्मरत्न है, भगवतीस्वरूप है, भगवती माता है। आहाहा! ओहोहो! अन्दर में से यह बोले हैं। **तभी पुरुषार्थ अखण्ड रह पाता है।** तभी (अर्थात्) कब? मुझे सम्यग्दर्शन हुआ परन्तु करना बहुत बाकी है। ऐसी जो मान्यता रहती है, तभी पुरुषार्थ अखण्ड रह पाता है। तो पुरुषार्थ अखण्ड रहे। आहाहा!

गृहस्थाश्रम में सम्यक्त्वी ने मूल को पकड़ लिया है,... समकिती ने मूल को पकड़ लिया है। आत्मद्रव्य जो मूल वस्तु अखण्डानन्द प्रभु, पूर्णानन्द का नाथ महासत्ता जिसमें आवरण की गन्ध नहीं, आहा..! जिसमें अल्पता नहीं, आवरण नहीं, अशुद्धता

नहीं, मन्दता नहीं। आहा..! जिसमें विपरीतता नहीं, ऐसा चैतन्यपिण्ड प्रभु, अन्दर... आहाहा! ऐसे मूल को पकड़ लिया। समकिती ने मूल को पकड़ लिया। यह मूल। आहाहा! व्यवहार की बात लोगों को अच्छी लगे। क्योंकि किया है और करते हैं। उसमें करना क्या है? शरीर की क्रिया और बाहर की... निश्चय की बात अन्दर सूक्ष्म पड़े। थोड़ी कड़क लगे। भगवान! तेरे पुरुषार्थ की कमी नहीं है, नाथ! तेरे में तो अनन्त पुरुषार्थ पड़ा है न, प्रभु!

... जो किया, उसके सिवा भी बाकी है। सादी भाषा में कुदरती आ गया है। वे तो लिखे नहीं, बोले नहीं। ... **(दृष्टि-अपेक्षा से) सब कुछ कर लिया है,...** गृहस्थ ने। गृहस्थाश्रम में सम्यग्दर्शन होता है। दृष्टि अपेक्षा से सब कुछ कर लिया है। **अस्थिरतारूप शाखाऐं-पत्ते जरूर सूख जायँगे।** आहाहा! भगवान आत्मा को (ग्रहण किया), अतीन्द्रिय आनन्द का दल, अतीन्द्रिय चमत्कारिक चैतन्यरत्न का भण्डार भगवान, उसे पकड़ लिया, उसमें से सब आयेगा। अस्थिरता बाकी है। है? **अस्थिरतारूप शाखाऐं-पत्ते जरूर सूख जायँगे।** जिसने मूल पकड़ा है, उसे यह जरूर सूख जाएगा-नाश हो जाएगा। आहाहा! आगम में ऐसा लिखते हैं, अन्तिम के अन्तर्मुहूर्त में हजारों बार छठा-सातवाँ आता है, ऐसा पाठ है। अन्तिम के अन्तर्मुहूर्त में हजारों बार छठा-सातवाँ, छठा-सातवाँ, उसमें एकदम अन्दर लीन हो जाते हैं, केवलज्ञान प्राप्त करते हैं। अन्दर शक्ति में सब भण्डार भरा है। यही शक्ति ज्ञान सामर्थ्य। आहाहा! ज्ञान का सत्त्व, आनन्द का सत्त्व, उसमें सब भरा है। कभी देखा नहीं, कभी सुना नहीं। परमात्मा अन्दर रह गया। बाहर की पामरता की गिनती में प्रभुता मान ली। पामरता की परिणति-पर्याय में प्रभुता मान ली, प्रभु एक ओर बाकी रह गया। आहाहा! मुद्दे की रकम यह है। बातचीत करने में कल भी सार आया था। कल भी सबेरे मूल बात आयी थी।

मुमुक्षु :- आपसे ही सुन रहे हैं हम।

पूज्य गुरुदेवश्री :- यहाँ तो किसी ने कल कागज रखा था कि यह बोल पढ़ना। किसी का है, हमें क्या, ऐसे पढ़ेंगे। शिक्षण शिविर में बहिनश्री के वचनामृत यह-यह पढ़ना। किसी ने लिखा है। भले जिसने भी लिखा हो। हमें यह सुनने का भाव है। आत्मा है, कोई भी आत्मा है।

यहाँ कहते हैं, जिसने आत्मा का मूल पकड़ लिया, उसके पत्ते, फल, फूल सूख जाएँगे, रहेंगे नहीं। उसको चारित्र और केवलज्ञान हो जाएगा। आहाहा! **द्रव्यलिंगी साधु ने मूल को ही नहीं पकड़ा है;...** आहाहा! चैतन्यगुण का भण्डार प्रभु अरूपी निर्विकल्प आनन्द का कन्द, सच्चिदानन्द, सत् नित्य रहनेवाली चीज़ ज्ञान और आनन्द का कन्द प्रभु, वह तो महादल है। अतीन्द्रिय आनन्द का दल है, उसको पकड़ा नहीं। द्रव्यलिंगी ने साधु ने मूल को ही पकड़ा नहीं। आहाहा! ऐसी बात भी कम हो गयी है। साधारण प्राणी तो बेचारे एक घण्टा सुनने आये, सुनकर प्रसन्न हो जाए। **मूल को ही नहीं पकड़ा है; उसने कुछ किया ही नहीं।** आहाहा! द्रव्यलिंगी ने आत्मद्रव्य को निर्विकल्प को पकड़ा ही नहीं तो उसने कुछ किया ही नहीं। और समकिती ने मूल को पकड़ा है तो सब पीछे का चारित्र का दोष आदि है, वह सब नाश हो जाएगा। आहाहा!

ऋषभदेव भगवान। तीन ज्ञान, क्षायिक समकिती। फिर भी गृहस्थाश्रम में ८३ लाख पूर्व रहें। ऋषभदेव भगवान। ८३ लाख पूर्व। एक पूर्व में छप्पन करोड़ सत्तर करोड़ छप्पन लाख वर्ष। इतने तो वर्ष है। सत्तर लाख छप्पन करोड़ (वर्ष) एक पूर्व में। ऐसे ८३ लाख पूर्व मुनिपना के बिना रहे। आहाहा! चारित्र की कितनी कीमत होगी! आहाहा! तीन ज्ञान तो लेकर आये थे, समकित तो था। चारित्र लेने में काल की अनुकूलता थी, उसमें भी इतना काल निकालना पड़ा। आहाहा! ८३ लाख पूर्व के बाद चारित्र आया। परन्तु सम्यग्दर्शन है तो आये बिना रहे ही नहीं।

बाह्यदृष्टि लोगों को ऐसा भले ही लगे... बाह्यदृष्टि लोगों को बाह्य त्याग देखकर... आहाहा! **बाह्यदृष्टि लोगों को ऐसा भले ही लगे कि 'सम्यक्त्वी को अभी बहुत बाकी है...** लोग बहुत आये हैं। **द्रव्यलिंगी साधु ने मूल को ही नहीं पकड़ा है; उसने कुछ किया ही नहीं। बाह्यदृष्टि लोगों को ऐसा भले ही लगे...** ऐसा लगे, आहाहा! बहुत किया। **'सम्यक्त्वी को अभी बहुत बाकी है और द्रव्यलिंगी मुनि ने बहुत कर लिया';...** आहाहा! ऐसा मानकर संसार पोसते हैं। आहाहा! **द्रव्यलिंगी मुनि ने बहुत कर लिया'; परन्तु ऐसा नहीं है। परीषह सहन करे किन्तु अन्तर में कर्तृत्वबुद्धि नहीं टूटी,...** भगवान! सम्यग्दर्शन हुए बिना राग के कर्तृत्व की बुद्धि छूटती नहीं। मैं राग का कर्ता हूँ और राग मेरा कार्य है—ऐसी मिथ्याबुद्धि छूटती नहीं। समकित बिना गहराई में उसकी कर्ताबुद्धि रहती है। आहाहा!

सम्यग्दर्शन में आत्मज्ञान हुआ वहाँ राग की क्रिया का कर्ता और मेरा (राग) कार्य, ऐसा रहता नहीं। वह तो राग का ज्ञाता रहता है। जानने की पर्याय भी अपनी ताकत से अपने से उत्पन्न हुई है। राग आया तो उससे राग का ज्ञान हुआ, ऐसा भी नहीं है। अपने में ही अपनी स्व-परप्रकाशक ज्ञान की पर्याय प्रगट होती है। आहाहा! अज्ञानी को द्रव्यलिंग में सूक्ष्म विकल्प क्या चीज़ है अन्दर, उससे कैसे छूटना, उसकी खबर नहीं। आहाहा! अन्दर सूक्ष्म विकल्प क्या है और उस विकल्प में मेरी एकत्वबुद्धि कहाँ है, यह मिथ्यादृष्टि को द्रव्यलिंगी को अन्दर सूझ-बूझ होती नहीं। सूझ-बूझ होती नहीं। आहाहा! बात अच्छी आयी है।

परीषह सहन करे किन्तु अन्तर में कर्तृत्वबुद्धि नहीं टूटी,... अन्तर सम्यग्दर्शन बिना कर्ताबुद्धि कभी छूटती नहीं। क्या कहा?

करे करम सो ही करतारा, जो जाने सो जाननहारा।

कर्ता सो जाने नहीं कोई, जाने सो कर्ता नहीं होई। समयसार नाटक। आहाहा!

कर्ताबुद्धि अन्दर पड़ी है। ज्ञायकस्वभाव भगवान महाप्रभु भगवन्त, उसकी ओर झुका नहीं... आहाहा! तो राग की बुद्धि-कर्ताबुद्धि छूटी नहीं। कर्ताबुद्धि छूटी नहीं तो मिथ्यात्व छूटा नहीं और मिथ्यात्व का पोषण होता रहा। क्योंकि राग का कर्ता होता है तो मिथ्यात्व का पोषण साथ में रहता है। आहाहा! गजब बात है, प्रभु! जब तक राग की कर्ताबुद्धि है, तब तक मिथ्यात्व का पोषण चलता रहता है। आहाहा! और सम्यग्दर्शन में राग की बुद्धि-कर्ताबुद्धि छूट जाती है और अकर्ताबुद्धि में पुष्टि होती है। राग आता है, लड़ाई भी होती है, परन्तु उसका स्वामी नहीं होता। उस समय भी अपने ध्रुव ध्येय का ध्यान हटता नहीं। ध्रुव पर दृष्टि पड़ी है, वह हटती नहीं। खसती नहीं, हमारी काठियावाड़ी भाषा है। आहाहा! बहुत अच्छी बात आयी। आहा..!

अन्तर में कर्तृत्वबुद्धि नहीं टूटी, आकुलता का वेदन होता है,... इसकी उसको खबर नहीं है। मैं धर्मी नाम धराता हूँ, परन्तु आकुलता तो अन्दर है, शान्ति तो आयी नहीं। आहाहा! अन्तर में अतीन्द्रिय आनन्द का व्यक्तपना-प्रगटपना (है नहीं)। शक्ति तो भगवान आनन्द की पूरी पड़ी ही है। उसकी व्यक्तता का अंश तो आया नहीं। आहाहा!

इसलिए कर्तृत्वबुद्धि नहीं छूटी। आकुलता का वेदन होता है। आहाहा! ऐसी क्रिया करे, फिर भी अन्तर में तो आकुलता है। क्योंकि आनन्द का स्पर्श हुआ नहीं तो कर्ताबुद्धि छूटी नहीं। आहाहा! **उसने कुछ किया ही नहीं।** उसने कुछ किया ही नहीं। जहाँ कर्तृत्वबुद्धि छूटी नहीं, आकुलता छूटी नहीं, उसने कुछ किया ही नहीं। सूक्ष्मरूप से अन्दर में-अन्दर में राग की आकुलता बहुत सूक्ष्म, उसकी एकताबुद्धि छूटी नहीं। इसलिए अन्दर में से शान्ति, आत्मा में जो शान्ति है, उस शान्ति का झरना तो आया नहीं। शान्ति का झरना का वेदन है नहीं और कर्ताबुद्धि छूटी नहीं, इसलिए आकुलता रहती है। इतना त्याग करे, हजारों रानी छोड़े, फिर भी अन्दर में आकुलता और दु:खी है।

समकिती ९६ हजार स्त्रियों के साथ शादी करे। भरतेश वैभव में लेख है। भरतेश वैभव है न? भरत हमेशा सैकड़ों स्त्रियों से शादी करते थे। बाहर निकलते थे, वहाँ राजा-रानी अपनी लड़कियों को (शादी के लिये लाते थे)। एक दिन में सैकड़ों शादियाँ करते थे। ९६ हजार। फिर भी समकिती, क्षायिक समकिती आनन्द में रहते हैं। अरेरे..! राग के अभावस्वभावरूप भगवान और राग का सद्भावरूप आकुलता, दोनों की भिन्नता भासी नहीं, तब तक कुछ किया नहीं। आहाहा! राग की सूक्ष्म आकुलता और आत्मा अनाकुल आनन्दकन्द, इन दोनों की सूक्ष्म भिन्नता भासित नहीं होती, तब तक अन्तर में कोई (कल्याण) होता नहीं। बाहर से भले माने, लोग भी माने कि इसने बहुत किया, उसने यह त्याग किया और उसने यह किया। उसने कुछ किया ही नहीं। आहाहा! १९९ (पूरा हुआ)।

शुद्धनय की अनुभूति अर्थात् शुद्धनय के विषयभूत अबद्धस्पृष्टादिरूप शुद्ध आत्मा की अनुभूति, सो सम्पूर्ण जिनशासन की अनुभूति है। चौदह ब्रह्माण्ड के भाव उसमें आ गये। मोक्षमार्ग, केवलज्ञान, मोक्ष इत्यादि सब जान लिया। 'सर्वगुणांश सो सम्यक्त्व'—अनन्त गुणों का अंश प्रगट हुआ; समस्त लोकालोक का स्वरूप ज्ञात हो गया।

जिस मार्ग से यह सम्यक्त्व हुआ, उसी मार्ग से मुनिपना और केवलज्ञान होगा—ऐसा ज्ञात हो गया। पूर्णता के लक्ष्य से प्रारम्भ हुआ; इसी मार्ग से

देशविरतिपना, मुनिपना, पूर्ण चारित्र एवं केवलज्ञान—सब प्रगट होगा।

नमूना देखने से पूरे माल का पता चल जाता है। दूज के चन्द्र की कला द्वारा पूरे चन्द्र का ख्याल आ जाता है। गुड़ की एक डली में पूरी गुड़ की पारी का पता लग जाता है। वहाँ (दृष्टान्त में) तो भिन्न-भिन्न द्रव्य हैं और यह तो एक ही द्रव्य है। इसलिए सम्यक्त्व में चौदह ब्रह्माण्ड के भाव आ गये। इसी मार्ग से केवलज्ञान होगा। जिस प्रकार अंश प्रगट हुआ, उसी प्रकार पूर्णता प्रगट होगी। इसलिए शुद्धनय की अनुभूति अर्थात् शुद्ध आत्मा की अनुभूति, वह सम्पूर्ण जिनशासन की अनुभूति है॥२००॥

२०० (बोल)। **शुद्धनय की अनुभूति...** आहाहा! **शुद्धनय के विषयभूत अबद्धस्पृष्टादिरूप...** क्या कहते हैं? शुद्धनय की अनुभूति-सम्यग्दर्शन। **शुद्धनय के विषयभूत अबद्धस्पृष्टादिरूप...** जो १४-१५ गाथा में समयसार में (आया)।

जो पस्सदि अप्पाणं अबद्धपुट्ठं अणण्णयं णियदं।
अविसेसमसंजुत्तं तं सुद्धणयं वियाणीहि॥१४॥

(यह १४वीं गाथा) १५वीं में ऐसा आया है,

जो पस्सदि अप्पाणं अबद्धपुट्ठं अणण्णमविसेसं।
अपदेससंतमज्झं पस्सदि जिणसासणं सव्वं॥१५॥

*अर्थात् अखण्ड वस्तु, उसका जो कथन है शास्त्र में, वह 'अपदेश' कहने में आया, क्या कहा? जयसेनाचार्यदेव की टीका में **अपदेस** का अर्थ ... किया है।... **अपदेस** का अर्थ अखण्ड। ... (आवाज खराब है)। अन्दर शान्ति, वीतरागता आती है, वह भावश्रुत है। कहा था यह। यह करना। शुद्ध आत्मा की अनुभूति, उसका विषय तो अबद्धस्पृष्टादिरूप (शुद्ध आत्मा है)। विशेष कहेंगे...

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

* यहाँ से आवाज अस्पष्ट है।

विक्रम संवत-२०३५, श्रावण शुक्ल - ९, बुधवार, तारीख २०-८-१९८०
वचनामृत- २०० प्रवचन-१३

वचनामृत, २०० है न? मूल बात है, प्रभु! **शुद्धनय की अनुभूति...** मुद्दे की रकम की बात है, भाई! प्रथम सम्यग्दर्शन होने पर शुद्ध अनुभूति होती है। आत्मा का आनन्द आदि अनन्त गुण का वेदन व्यक्तपने के अंश में आता है। **शुद्धनय की अनुभूति अर्थात् शुद्धनय के विषयभूत अबद्धस्पृष्टादिरूप...** जो १५वीं गाथा में कहा। जो कोई **अप्पाणं** अबद्धस्पृष्ट, अनन्य, अव्यक्त, असंयुक्त देखता है, वह जिनशासन को देखता है। अन्तर में अनन्त आनन्द (है), ऐसी जो अनुभूति, वह सर्व जैनशासन का सार है। आहाहा! **शुद्धनय की अनुभूति अर्थात् शुद्धनय के विषयभूत अबद्धस्पृष्टादिरूप शुद्ध आत्मा की अनुभूति...** आहाहा! जहाँ बद्धस्पृष्ट-कर्म के साथ सम्बन्ध ही नहीं। भावकर्म के साथ सम्बन्ध नहीं है। ऐसी दृष्टि पर्याय के ऊपर से उठकर द्रव्य पर अन्दर जाती है, तब अबद्धस्पृष्ट आदि अनुभूति होती है। आहाहा! धर्म की शुरुआत यहाँ से होती है।

शुद्धनय की अनुभूति अर्थात् शुद्धनय के विषयभूत अबद्धस्पृष्टादिरूप... १४वीं और १५वीं गाथा। १४वीं गाथा में सम्यग्दर्शन का विषय है। १५वीं में सम्यग्ज्ञान का। जिसे यह आत्मा अबद्धस्पृष्ट, अनन्य, अविशेष, गुण-ज्ञान, दर्शन, आनन्द—ऐसा भेद भी जिस दृष्टि में से निकल जाता है। तब वह आत्मा का त्रिकाल का पत्ता लेकर, त्रिकाल का-आत्मा का अनुभव होता है, यह पूरे जैनशासन का सार है। आहाहा! शुरुआत यहाँ से होती है। जैनधर्म कोई पक्ष नहीं है, प्रभु! यह कोई सम्प्रदाय नहीं है। यह तो वस्तु का स्वरूप (है), जैसा वस्तु का स्वरूप है, ऐसा भगवान ने जाना, ऐसा वाणी में आया कि तेरी चीज़ अन्दर अबद्धस्पृष्ट है। अबद्धस्पृष्ट है - अबद्ध अर्थात् मुक्त। आहाहा! और राग से भी स्पर्श नहीं। आहाहा! और गुणभेद का भी स्पर्श नहीं। अभेद चीज़ है, अनुभव में आनेवाली चीज़ है, उसमें गुणभेद प्रभु! अनुभव में नहीं आता। क्योंकि गुणभेद विकल्प है। आहाहा! गुण हैं अनन्त। अनन्तानन्त। उसका एकरूप आत्मा, उसका अनुभव हुआ। अबद्धस्पृष्टादिरूप

शुद्ध आत्मा की अनुभूति (हुई)। आहाहा! पहली चीज़ यह है। बाद में दूसरी बात। व्रत, नियम तो सम्यग्दर्शन होने के बाद।

जो चीज़ जानने में आयी कि यह अनन्त आनन्द, अनन्त शान्ति का सागर नजर में आया, उसमें स्थिरता करने की चीज़ बाद में शुरु होती है। चारित्र की। पहली चीज़ ही दृष्टि में आयी नहीं तो कहाँ स्थिर रहना? कहाँ जमना? कहाँ रहना? कहाँ स्थिर रहना? जो चीज़ ही दृष्टि में आयी नहीं, अनुभव में यह चीज़ आनन्द है, अतीन्द्रिय आनन्द का रसकन्द है, ऐसा ज्ञान में ज्ञेयरूप पूर्ण ज्ञेयरूप ज्ञान में वेदन में न आये, तब तक स्थिरता किसमें करनी? चारित्र स्थिरता है। चरना है, रमना है। किसमें रमना? चीज़ ही जहाँ दृष्टि में-अनुभव में आयी नहीं। आहाहा! पहले मुद्दे की रकम की बात है।

मुमुक्षु : मुद्दे की बात है।

पूज्य गुरुदेवश्री : मुद्दे की बात है। बहिन ने तो स्वयं को अन्दर है, वह बात बाहर रखी है। दुनिया को बैठे, न बैठे, दुनिया जाने। आहाहा!

उन्होंने तो बात रखी कि अबद्धस्पृष्टादिरूप आत्मा की अनुभूति, वह शुद्धनय के विषयभूत है। शुद्धनय अर्थात् सम्यग्ज्ञान, जो स्वभाव-सन्मुख ज्ञान (हुआ), पर्याय और पर-ओर से जिसकी दशा विमुख (हुई), उस दशा की दिशा अबद्धस्पृष्ट की ओर जाती है। आहाहा! अन्तर में पूर्णानन्द का नाथ, अपनी पर्याय में अनुभव में आनेवाला आया तो कहते हैं कि उसने सर्व जाना। एगं जाणई सव्वं जाणई, ऐसा शब्द है, प्रवचनसार में। एक आत्मा ही जानो और एक आत्मा को जाना कब कहने में आये? आहाहा! अनादि-अनन्त पर्यायरूप आत्मा। अनादि-अनन्त पर्यायरूप आत्मा एक समय में जानने में आता है। एक आत्मा जाना, उसने तीनों काल की पर्याय अन्दर जानी है। आहाहा! प्रवचनसार में ४७-४८ गाथा में चलता है। आहाहा! कोई कहे कि दूसरे को न जाने तो आचार्य कहते हैं कि, हम कहते हैं कि तूने एक को तो जाना है या नहीं? तू तो त्रिकाली है। तू त्रिकाली है, एक समयमात्र का तो है नहीं। तुमको जाना तो तुम्हारी तीन काल की पर्याय जाननेवाला उसमें आ गया। आहाहा! समझ में आया?

यहाँ यह कहा, **शुद्धनय के विषयभूत अबद्धस्पृष्टादिरूप...** पाँच बोल है न? पाँच

बोल। **शुद्ध आत्मा की अनुभूति...** अबद्धस्पृष्टादिरूप मुक्तस्वरूप अभेद मैं हूँ, ऐसा अन्तर में अनुभव हुआ-अनुभूति हुई, आनन्द का स्वाद आया। आहाहा! और पूर्णानन्द का नाथ का पूर्ण जितनी चीज़ है, सबका पर्याय में नमूना आ गया। क्या कहा यह ? जितने अन्दर गुण हैं, संख्या से अनन्तानन्त (गुण), जहाँ सम्यग्दर्शन हुआ, अनुभूति हुई तो पूरे आत्मा के गुण का एक अंश व्यक्त सब आ गये। एक तो त्रिकाली में आ गया और सर्व गुण का व्यक्त एक अंश आ गया। एक को जाना तब कहा जाए कि त्रिकाली एक है, ऐसा जाना, तब त्रिकाली को जाना। कोई कहे कि वर्तमान ही जाने, भविष्य का नहीं जानते हैं। (उसे पूछे कि), तू एक है या नहीं ? तू त्रिकाली में है या एक वर्तमान काल है। तीन काल को जाननेवाला तू... ऐसा शब्द है वहाँ, वह चर्चा बहुत हुई थी। इन्दौर से बंसीधरजी आये थे। सेठ हुकमीचंदजी आदि आये थे।

एक को जाना, उसने तीन काल को जाना। क्योंकि आत्मा तीन काल में रहनेवाला है। आहाहा! और तीन काल की पर्याय का पिण्ड, उसे जाना तो तीन काल को जाना। त्रिकाल की पर्याय भी अन्तर में आ गयी है। द्रव्य की दृष्टि में पर्याय की दृष्टि, पर्यायदृष्टि नहीं, परन्तु पर्याय का भेद आ गया। आहाहा! सूक्ष्म बात है, प्रभु! यह कोई विद्वत्ता की वस्तु नहीं है। यह कोई पण्डिताई की चीज़ नहीं है। आहाहा!

मुमुक्षु : अनुभव की बात है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो अन्तर की बातें है, बापू! बोलने में कोई बात सीख ले, ऐसी यह बात नहीं है। यह तो अन्तर अनुभव की बात है। आहाहा!

जिसने शुद्धनय की अनुभूति अर्थात् शुद्धनय के विषयभूत अबद्धस्पृष्टादिरूप। सामान्यपना-भेद नहीं, पाँच बोल है न ? पर्याय का भेद नहीं। पाँच बोल आये हैं न ? उसे जाना। **शुद्ध आत्मा की अनुभूति, सो सम्पूर्ण जिनशासन की अनुभूति है।** आहाहा! जिसने आत्मा के अनुभव में अनन्त आनन्द (जाना), त्रिकाली को जाना और त्रिकाली का एक अंश वर्तमान वेदन में आया, वह चीज़ पूर्ण है। यहाँ तो नमूना आया है। जैसा अंश आया, ऐसी पूर्ण चीज़ है। अनन्त गुण का अंश वेदन में आया तो अनन्त अंश व्यक्त बाह्य में आया, (ऐसी) अव्यक्त पूर्ण चीज़ अन्दर है। अव्यक्त अर्थात् बाह्य पर्याय में वह चीज़

आ नहीं सकती। आहाहा!

द्रव्य जो है, वह पर्याय में नहीं आ सकता। क्योंकि वेदन तो पर्याय का ही होता है। ध्रुव का कभी वेदन होता नहीं। आहाहा! १७२ गाथा। अलिंगग्रहण के २० बोल लिये हैं, उसमें २०वें बोल में लिया है कि ध्रुव का अनुभव नहीं होता। ध्रुव तो एकरूप टिकनेवाली चीज़ है। सनातन त्रिकाल एकरूप, बिना पलटती हुई। उसकी दृष्टि पर्याय है, पर्याय में जो उसका अनुभव हुआ, वह पर्याय का वेदन है। और पर्याय का वेदन है, उसके द्वारा—नमूना द्वारा पूरी चीज़ ऐसी है, ऐसा प्रतीति में आ गया। जिसका नमूना आया नहीं, उसको यह चीज़ पूर्ण ऐसी है, उसकी प्रतीति कहाँ से होगी ? आहाहा!

यहाँ कहा, **सम्पूर्ण जिनशासन की अनुभूति है।** आहाहा! जिसने भगवान आत्मा त्रिकाली, वर्तमान में जानने में त्रिकाली आया और त्रिकाली का नमूना भी वर्तमान में आया। आहाहा! यह पूर्ण चीज़ अनादि-अनन्त ऐसी है, उसने पूरे चौदह ब्रह्माण्ड को जाना। सम्पूर्ण जिनशासन की अनुभूति है। **चौदह ब्रह्माण्ड के भाव उसमें आ गये।** ब्रह्माण्ड अर्थात् चौदह राजू लोक है न ? रात को प्रश्न आया था कि चौदह ब्रह्माण्ड अर्थात् क्या ? उसे राजू कहते हैं शास्त्र, चौदह राजू लोक। चौदह राजू लोक लम्बा है न ? चौदह ब्रह्माण्ड के भाव, एक जानने में आता है तो सब जानने में आता है, ऐसा प्रवचनसार में ४७-४८ गाथा में है। यहाँ तो इतना शब्द लिया। आहाहा! **चौदह ब्रह्माण्ड के भाव उसमें आ गये।** यह आत्मा ऐसा है, ऐसे ही अनन्त आत्मा हैं, और उससे विपरीत अनन्त जड़ भी अनुभूति की शक्ति से रहित है, ऐसा चौदह ब्रह्माण्ड का ख्याल उसमें आ गया। आहाहा! कठिन बात है, प्रभु! यह कोई पण्डिताई की चीज़ नहीं है। अन्तर की चीज़ है। व्यवहार पर वजन दे, (परन्तु) व्यवहार तो हेय है। कथनमात्र ... है। कथनमात्र कहे बिना समझे नहीं, ऐसा तो आवे शास्त्र में। पहले ८वीं गाथा में आया न ? कि आत्मा कहा गुरु ने, शिष्य ने सुना। पहले दृष्टान्त में आया कि ब्राह्मण ने स्वस्ति कहा। ब्राह्मण आया कोई, (उसने) स्वस्ति (कहा)। सुननेवाला समझा नहीं तो टग-टग, टग-टग देखता रहा। विरोध न किया, अनादर न किया। समझ में नहीं आया। समझ में नहीं आया तो अनादर न किया। ऐसा पाठ आता है। टग-टग-टग-टग देखता है। स्वस्ति क्या ? क्या कहते हैं ? बाद में जब उसका स्पष्टीकरण किया, प्रभु! स्वस्ति का अर्थ स्व—तेरा स्व उसका अस्ति,

जैसी चीज़ है, ऐसा तेरा कल्याण हो। आहाहा! स्व तेरी जैसी अस्ति है, उसका तुझे अनुभव हो। यह स्वस्ति का अर्थ है। तो सुननेवाले की आँख में आँसू आ गये। ओहोहो! यह बात!

ऐसे गुरु ने आत्मा कहा, सुना, परन्तु आत्मा जाना नहीं कि क्या है और अनादर नहीं किया कि आत्मा-आत्मा क्या करते हो? दूसरी बात तो लो। ऐसा कुछ नहीं (किया)। आत्मा कहा तो सुनने में टग-टग देखने लगा। ऐसा प्रश्न नहीं हुआ कि साहब! आत्मा के सिवा दूसरी बात तो करो पहले, पुद्गल की, छह द्रव्य की, देव-गुरु-शास्त्र की। ऐसा प्रश्न किया नहीं। गुरु ने आत्मा कहा तो विनयवन्त शिष्य टग-टग देखता है। समझा नहीं। आत्मा क्या, समझा नहीं। उसका उत्तर कहा, प्रभु! कहनेवाले ने कहा अथवा दूसरे ने कहा, ऐसा पाठ है। दूसरे ने अथवा कहनेवाले ने कहा, आत्मा दर्शन, ज्ञान, चारित्र को प्राप्त हो, वह आत्मा। बस। दर्शन, ज्ञान, चारित्र को प्राप्त हो। वह सम्यग्दर्शन निर्मल। निश्चय सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र को प्राप्त करे, वह आत्मा। इतना व्यवहार कथनी में आया। अन्दर में भेद नहीं है, वस्तु में भिन्न नहीं है। दर्शन, ज्ञान, चारित्र अभेद आत्मा में है। परन्तु कथनी में भेद करके आया तो कथनी तो जड़ की है। आहाहा! परन्तु वह कथनी आती है। परन्तु उस कथनी को समझ में आता नहीं। क्योंकि वह तो जड़ है। आहाहा! बाद में टग-टग देखता है। उसने कहा तो उत्तर यह कहा।

प्रभु! तेरा आत्मा अन्दर त्रिकाली है। दर्शन, ज्ञान, चारित्र को प्राप्त हो, वह आत्मा। राग को प्राप्त हो, व्यवहाररत्नत्रय को प्राप्त हो, वह आत्मा—ऐसा कहा ही नहीं। आहाहा! अभी तो प्रथम शिष्य है, आत्मा का अर्थ समझता नहीं। उसको भी यह कहा। आहाहा! जैनशासन की उत्कृष्टता अलौकिक है। जगत में तो कहीं नहीं है। वीतराग परमात्मा के सिवा, तीन लोक के नाथ सर्वज्ञदेव विराजते हैं, प्रभु। कुन्दकुन्दाचार्य वहाँ गये थे, आठ दिन रहे थे। सुनकर आये और यह शास्त्र बनाया। आत्मा कहकर, दर्शन, ज्ञान, चारित्र को प्राप्त करे, वह आत्मा, ऐसा बनाया। वह व्यवहार है, वह भी व्यवहार है। राग दया, दान, व्रत व्यवहार की बात तो ली ही नहीं। पण्डितजी! यह बात तो ली ही नहीं।

मात्र प्रभु अन्तर में दर्शन, ज्ञान, चारित्र जो स्वभाव है, वह व्यक्तपने पर्याय में जानने में आया और उसके द्वारा आत्मा जानने में आता है। इतना व्यवहार आये बिना रहता नहीं। फिर भी आचार्य कहते हैं, मैंने ऐसा कहा (कि) दर्शन, ज्ञान, चारित्र को प्राप्त करे, वह

आत्मा। प्रभु! मैं कहता हूँ, वहाँ पाठ है, यह बात मुझे भी अनुसरण करने लायक नहीं है और तुझे भी अनुसरण करने लायक नहीं है। आहाहा! है न? है अन्दर। मैं कहता हूँ, प्रभु! मुझे अनुसरण करने लायक नहीं है। दर्शन, ज्ञान, चारित्र को प्राप्त हो, वह आत्मा, ऐसा मुझे भी अनुसरण करने लायक नहीं है। तीन को छोड़कर अकेले आत्मा का अनुसरण करना ही मेरी चीज़ है। और तुझे भी मैंने भेद करके समझाया, तुझे भी वह भेद अनुकरण करने लायक नहीं है, हों! आहाहा! ऐसा पाठ है। मुझे और तुझे, जो व्यवहार कहा, वह अनुसरणीय नहीं है, अनुसरणीय नहीं है, अनुकरणीय नहीं है। जो कहते हैं, वह करने लायक नहीं है। अनुसरणीय नहीं है। कहते हैं, उसका वर्णन करना नहीं। आहाहा! पहले शब्द में (ऐसा कहा)। समयसार, ८वीं गाथा। **ज ह णवि सक्कमणज्जो अणज्जभासं।** आहाहा!

वैसे यहाँ कहते हैं, जिसे आत्मा की अनुभूति (हुई)... प्रवचनसार में भी ऐसा लिया है कि तू ऐसा माने कि तीन काल को न जान सके। तो मैं पूछता हूँ कि तू तीन काल में है या नहीं? तू तुझे जानता है तो तीन काल जाना है या नहीं? तुमको जाना तो उसमें तीन काल आया या नहीं? आहाहा! आचार्यों की तो बलिहारी है। बहुत संक्षिप्त शब्दों में अन्तर की अनुभव की बातें रखी है। यहाँ कहते हैं, **आत्मा की अनुभूति, सो सम्पूर्ण जिनशासन की अनुभूति है। चौदह ब्रह्माण्ड के भाव उसमें आ गये।** आहाहा! एक आत्मा ऐसा जाना तो अनन्त आत्मा ऐसे हैं और उससे-आत्मा से रहित अनात्मा भी जड़ अनन्त हैं। अस्ति का जहाँ भान हुआ तो नास्ति का भी ज्ञान आ गया। आहाहा! मेरे में अनन्त आत्मा की नास्ति है और अनन्त जड़ की भी नास्ति है। वह भी मेरे में अस्ति है। पर की नास्ति मेरे में अस्ति है। आहाहा! समझ में आया?

यह यहाँ कहते हैं, **चौदह ब्रह्माण्ड के भाव उसमें आ गये।** अनुभूति हुई, उसमें चौदह ब्रह्माण्ड के भाव आ गये। आहाहा! कठिन पड़े, प्रभु! प्रभु! तू त्रिकाली है न। एक समय का नहीं है। त्रिकाली है और अनन्त गुण का पिण्ड है। उसे जहाँ जाना... दूसरी चीज़ भी है, मैं एक ही हूँ—ऐसा ज्ञान में नहीं। ज्ञान में तो स्व-परप्रकाशक स्वभाव है, तो स्व का और पर का ज्ञान उसमें आ जाता है। आहाहा! सम्यग्दृष्टि के ज्ञान में भी अव्यक्तपने भी स्व-परप्रकाशक तो आ जाता है। पूरा प्रत्यक्ष केवली देखे ऐसे नहीं। मैं हूँ, दूसरी चीज़ भी

है परन्तु मेरे में नहीं है। आहाहा! एक आत्मा का ज्ञान होने से चौदह ब्रह्माण्ड का ज्ञान हो गया। आहाहा! चौदह ब्रह्माण्ड का नाथ जिसके हाथ में–अनुभव में आ गया, उसे क्या क्षति रही? आहाहा! प्रथम तो यह करने की चीज़ है, प्रभु! इसके बिना सब व्यथ है। बिना एक के शून्य है। लाख शून्य लिखे तो एक नहीं हो जाता। आहाहा! एक के बाद शून्य लिखे तो दस हो जाए। वैसे अनुभव होने के बाद स्वरूप में स्थिरता करे तो चारित्र हो जाए। समझ में आया? अन्तर की दृष्टि के अनुभव बिना स्थिरता भी होती नहीं, दृष्टि भी होती नहीं। आहाहा!

मोक्षमार्ग,... भी ख्याल में आ गया, कहते हैं। जहाँ आत्मा की अनुभूति हुई... आहाहा! वही मोक्षमार्ग है। भले चौथे गुणस्थान में लिया। समयसार में १४वीं गाथा समकिती की ही ली है, चौथे गुणस्थान की ही ली है। १५वीं भी समकिती की ही ली है। यह आत्मा को जाना, (उसने) जैनशासन जान लिया। जैनशासन का जो अन्दर मर्म था, त्रिकाल में अनन्त गुण (हैं), ऐसा जो द्रव्य का मर्म था, ऐसा भान हुआ तो चौदह ब्रह्माण्ड का भाव आ गया। आहाहा! समझ में आया?

यहाँ तो बहिन कहते हैं, मोक्षमार्ग भी जान लिया। आहा..! अनुभूति हुई तो मोक्ष का मार्ग यही है, (ऐसा जान लिया)। आहा..! अतीन्द्रिय आनन्द का वेदन ही मोक्ष का मार्ग है और अतीन्द्रिय आनन्द की पूर्णता, मोक्ष है। आहा..! आत्मा की अनुभूति में मोक्षमार्ग का भी ज्ञान हो गया। अरे..! केवलज्ञान का भी ज्ञान हो गया। आहाहा! क्योंकि एक सम्पूर्ण चीज़ पड़ी है, उसमें से नमूनामात्र प्रगट व्यक्ति आयी है, पूर्ण पड़ा है तो उसका नमूना आया। तो जब पूर्ण में से पूर्ण प्रगट होगा, पूर्ण में से पूर्ण प्रगट होगा केवलज्ञान। अनुभूति में केवलज्ञान का भी ज्ञान आ गया। आहाहा!

और **मोक्ष...** उसका ज्ञान भी आ गया। क्योंकि अबद्धस्पृष्ट है, वह मुक्त है। आत्मा मुक्त है। पूर्ण मुक्त हो जाएगा, वह तो उसमें आ गया। पर्याय में पूर्ण मुक्त हो जाएगा। द्रव्य मुक्त है। द्रव्य का भान हुआ तो पर्याय में मुक्त हो जाएगा। क्योंकि मुक्त की परिणति मुक्त होगी। आहाहा! तो मोक्ष का ज्ञान भी उसमें आ गया। **इत्यादि सब जान लिया।** इत्यादि सब जान लिया। आहाहा! तीन पंक्ति में बहुत भरा है। आहाहा! इत्यादि। मोक्ष इत्यादि।

आदि से लेकर सब जान लिया। आहा..! पर्याय का ज्ञान हो गया, गुण का ज्ञान हो गया। प्रगट हुई पर्याय, प्रगट शक्ति में से हुई है तो शक्ति-गुण है और एक ही पर्याय नहीं हुई, अनन्ती आयी है। अनन्त गुण जो हैं, अनन्त गुण का एकरूप द्रव्य भी है। अनन्त गुण का रूप एक द्रव्य भी है। द्रव्य का ज्ञान, गुण का ज्ञान, पर्याय का ज्ञान भी आ गया। आहाहा! **इत्यादि सब जान लिया।**

'**सर्वगुणांश सो सम्यक्त्व**'। यह श्रीमद् का वाक्य है। सर्व गुणांश। जितने अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. गुण भगवान आत्मा में संख्या से हैं, सबका एक अंश समकित में प्रगट होता है। अपने मोक्षमार्गप्रकाशक में रहस्यपूर्ण चिट्ठी में टोडरमलजी ने लिया है। वहाँ ऐसा शब्द लिया है, यहाँ श्रीमद् ने सर्वगुणांश सो समकित कहा है, उन्होंने ऐसा लिया है कि ज्ञानादि एकदेश सर्व प्रगट होते हैं। चिट्ठी में है। ज्ञानादि जितने गुण हैं, उन सबका एक अंश प्रगट होता है और केवलज्ञान में ज्ञानादि पूर्ण प्रगट होते हैं। दो लेख है। चिट्ठी में दोनों लेख है। रहस्यपूर्ण चिट्ठी। आहाहा! अरे..! प्रभु का एक वाक्य भी कितना रहस्ययुक्त है! हिन्दी आती है या नहीं?

'**सर्वगुणांश सो सम्यक्त्व**'—**अनन्त गुणों का अंश प्रगट हुआ;...** आहा..! सम्यग्दर्शन अर्थात् सत्य दर्शन। अर्थात् जितना सत्य है, जितना परम सत्य है, उन सबका एक अंश पर्याय में आता है। उसका नाम समकित कहने में आता है। वह अंश ज्ञान हुआ। अंश का ज्ञान होने से पूर्ण आत्मा का ज्ञान भी हो गया। बीज का ज्ञान होने से... बीज समझे? दूज। दूज लिखा है? दूज को दिखाती है, लेकिन आकार भी है उसमें। दूज के दिन भी पूर्ण आकार दिखता है। देखा है चंद्र? दूज इतनी है, परन्तु पूरा आकार-पूर्ण का आकार भी साथ में दिखता है। भले खुला नहीं है, आकार दिखता है। आहाहा!

ऐसे सम्यग्दर्शन में पूर्ण चीज़ है, परन्तु पूर्ण चीज़ क्या है, उन सबका ज्ञान अन्दर आता है। आहाहा! सम्यग्दर्शन और अनुभूति कोई अलौकिक चीज़ है! भले गृहस्थाश्रम में हो, राजपाट धन्धा, चक्रवर्ती का राज करे, फिर भी अनुभूति होती है। आहाहा! और द्रव्यलिंगी सब छोड़कर बैठे और नौवीं ग्रैवेयक अनन्त बार (गया)। ऐसी क्रियाकाण्ड की कि चमड़ी निकालकर नमक छिड़के तो भी क्रोध न करे, ऐसी क्रिया की, परन्तु एक भी अंश आत्मा का नहीं जाना। सब पुण्य की क्रिया, जहर की क्रिया, सब जहर के प्याले

हैं। आहाहा! मोक्ष अधिकार में है, विषकुम्भ। मोक्ष अधिकार। शुभभाव विषकुम्भ है, ऐसा लिखा है। जहर का घड़ा है। विषकुम्भ। भगवान अमृतकुम्भ। आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्द का नाथ अमृत का सागर है और यह पुण्यादि है... आहाहा! सागर नहीं कहा, जहर का घड़ा कहा। एक समय की पर्याय है न। समय की पर्याय है।

मुमुक्षु :- यहाँ तो जहर का घड़ा है, वहाँ अमृत का सागर है।

पूज्य गुरुदेवश्री :- सागर। भगवान अमृत का सागर है। यह एक अमृत का अंश है। तो इस अंश द्वारा पूरे अंशी का ख्याल आया। अंश के ख्याल में पूरे अंशी का (ख्याल आ गया)। जैसे दूज को देखने से दूज का ख्याल और पूर्ण आकार ऐसा है, आज ऐसी (कला) है, वह सब ज्ञान हो गया। आहाहा! अरे..! सब अंश तो प्रगट हुआ, **समस्त लोकालोक का स्वरूप ज्ञात हो गया।** इस जाति से जात की जहाँ छाप अन्दर में पड़ी, आहाहा! तो **समस्त लोकालोक का स्वरूप ज्ञात...** होता है। यह ज्ञान इतना है तो पूर्ण लोकालोक है और पूर्ण ज्ञान भी है, उसका ज्ञान हो जाता है। आहाहा!

जिस मार्ग से यह सम्यक्त्व हुआ... जिस मार्ग से अर्थात् अन्तर्मुख से भगवान अनन्त गुण का पिण्ड पूर्णरूप जहाँ बीज पड़ा है, **जिस मार्ग से यह सम्यक्त्व हुआ...** इस मार्ग से समकित हुआ। अन्तर्मुख दृष्टि से पूर्णानन्द के नाथ को दृष्टि में लिया तो सम्यग्दर्शन हुआ। **उसी मार्ग से मुनिपना...** आहाहा! जिस मार्ग से आत्मज्ञान हुआ, उसी मार्ग से मुनिपना होगा। मुनिपना कोई क्रियाकाण्ड से होगा, ऐसा नहीं। ऐसा कहते हैं। आहाहा! कठिन बात है, भाई! २०० नम्बर का वचनामृत है। पूर्ण.. पूर्ण। आहा..! **जिस मार्ग से यह सम्यक्त्व हुआ उसी मार्ग से मुनिपना...** आहाहा! अन्तर आनन्द के आश्रय से समकित की प्रतीति हुई, उसके आश्रय से मुनिपना उत्पन्न होता है। चारित्र की दशा, वीतराग की दशा, पंचम गुणस्थान की दशा, छठे गुणस्थान की दशा, जिस मार्ग से समकित हुआ, उसी मार्ग से यह मुनिपना आदि होता है। मार्ग कोई दूसरा नहीं है। आहाहा! **मुनिपना और केवलज्ञान होगा...** उसी मार्ग से मुनिपना भी होगा और केवलज्ञान भी होगा। आहाहा!

केवलज्ञान तो पर्याय है न? अंश है। पूरा अंशी दृष्टि में आया, यही मार्ग है। दृष्टि में से-वस्तु में से केवल अर्थात् पूर्ण दशा प्रगट होगी। ऐसा केवलज्ञान स्व के आश्रय से

होगा। मुनिपना स्व के आश्रय से होगा। स्वाश्रय से धर्म, पराश्रय से अधर्म। वीतराग के दो सिद्धान्त। अष्टपाहुड़ में है। '**परदव्वादो दुग्गइ सदव्वादो सुग्गइ**' ऐसा पद है। जितने परद्रव्य हैं, उसका लक्ष्य करने से राग ही होगा। '**सदव्वादो सुग्गइ**'। स्वद्रव्य के आश्रय से तेरी गति होगी। आहाहा! ऐसा मार्ग है। उसका साधन? साधन-बाधन होगा या नहीं? यह साधन। व्यवहार उपचार से पूर्णता न हो तो राग की मन्दता होती है। उपचार से साधन कहने में आता है। यथार्थ तो स्वद्रव्य के आश्रय से सम्यक् उत्पन्न हुआ, स्वद्रव्य के आश्रय से मुनिपना और स्वद्रव्य के आश्रय से केवलज्ञान। आहाहा!

ऐसा ज्ञात हो गया। पूर्णता के लक्ष्य से प्रारम्भ हुआ;... क्या हुआ? पूर्णता के लक्ष्य से। पूर्ण स्वरूप जो भगवन्त, उसके लक्ष्य से प्रारम्भ हुआ है। शुरुआत ऐसे हुई है। पूर्णता के लक्ष्य से शुरुआत हुई है। **इसी मार्ग से देशविरतिपना,...** आहाहा! इसी उपाय से आत्मा में पंचम गुणस्थान-श्रावकपना (आयेगा)। आत्मा के आश्रय से सम्यग्दर्शन हुआ, ऐसे पंचम गुणस्थान आत्मा के आश्रय से उत्पन्न होता है। आहाहा! कोई क्रियाकाण्ड के आश्रय से पंचम गुणस्थान नहीं होता। क्रियाकाण्ड होता है, भूमिका अनुसार राग की मन्दता, क्रिया होती है। परन्तु हेय है। **इसी मार्ग से देशविरतिपना,...** आहाहा! स्वद्रव्य के आश्रय से श्रावकपना (आता है)। उसको श्रावक कहते हैं। सम्प्रदाय में जन्म हुआ और कोई व्रतादि ले लिया, तो श्रावक है, ऐसा जैनमार्ग में है नहीं। आहाहा!

जैनमार्ग में **इसी मार्ग से देशविरतिपना,...** आत्मा के अवलम्बन से होता है। जैसे सम्यग्दर्शन, ज्ञान आत्मा के अवलम्बन से हुआ, वैसे पंचम गुणस्थान आत्मा के अवलम्बन से, आनन्द के अवलम्बन से (होता है)। सम्यग्दर्शन तो अवलम्बन से हुआ ही है, इससे विशेष अवलम्बन लेने से पंचम गुणस्थान होता है। जघन्य अवलम्बन लेने से समकित; मध्यम अवलम्बन लेने से पंचम, छठा आदि; उत्कृष्ट अवलम्बन लेने से केवलज्ञान। आहाहा! ऐसी बात है। **देशविरतिपना, मुनिपना, पूर्ण चारित्र एवं केवलज्ञान—सब प्रगट होगा।** इस मार्ग से। दूसरा कोई मार्ग है नहीं। आहाहा!

नमूना देखने से पूरे माल का पता चल जाता है। दृष्टान्त देते हैं। नमूना देखने से... रुई की बड़ी गाँठ होती है न? क्या कहते हैं? रुई का गोला। २५-२५ मण। उसका नमूना

बताये कि इस जात का है। गाँठ इस जात की है। कीमत देनी है तो यह कीमत है। पूरी गाँठ नहीं देखते, उसका नमूना देखे कि पूरी गाँठ ऐसी है। ऐसे **नमूना देखने से पूरे माल का पता चल जाता है।** आहाहा! एक सम्यग्दर्शन की पर्याय हुई तो अन्दर श्रद्धागुण पूर्ण है, ऐसा पता लगता है। आनन्द का अंश हुआ तो अन्दर पूर्णानन्द है, उसका पता लग जाता है। शान्ति प्रगट हुई–चारित्र का अंश तो अन्तर में पूर्ण शान्ति गुण में भरी है, ऐसा पता लग जाता है। ऐसे वीर्य का अंश प्रगट हुआ। वर्तमान निर्मल गुण की पर्याय की रचना करनेवाले को वीर्य कहते हैं। स्वरूप की रचना करनेवाले को वीर्य कहते हैं। ४७ शक्ति में आ गया है। समयसार, ४७ (शक्ति में) यह शब्द है। स्वरूप की रचना करे, सो वीर्य। आहाहा! अपना स्वरूप शुद्ध चैतन्यघन आनन्दकन्द है, उसमें जो रचना पर्याय में निर्मलता करे, उसका नाम वीर्य (है)। आहाहा! और राग की रचना करे, वह तो अति स्थूल (है)। सम्यग्दर्शन बिना शुभभाव को तो नपुंसकता की उपमा दी है। दो जगह है—पुण्य–पाप और अजीव अधिकार में, समयसार। आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि, पूर्णता के लक्ष्य से प्रारम्भ हुआ, उससे सब प्रगट होगा। **नमूना देखने से पूरे माल का पता चल जाता है। दूज के चन्द्र की कला द्वारा...** देखो! दृष्टान्त दिया। **दूज के चन्द्र की कला द्वारा पूरे चन्द्र का ख्याल आ जाता है।** पूरा चन्द्र देखा। उसकी ... देखा। विकास कितना है, अवरोध कितना है, पूर्ण कितना है, तीनों दिखने में आता है। आहा...! ऐसे सम्यग्दर्शन हुआ तो विकास कितना हुआ, कितना विकास बाकी है, विकास में अवरोध कितना है, उसका सब ज्ञान हो जाता है। सब अपने कारण से अवरोध है, कोई कर्म के कारण से नहीं। कोई परद्रव्य से आत्मा में कुछ होता है, (–ऐसा) बिल्कुल नहीं। आहाहा! अनादि–अनन्त आत्मा की पर्याय से होती है। विकारी, अविकारी, मिथ्यात्व या केवल (ज्ञान)।

गुड़ की एक डली में पूरी गुड़ की पारी का पता लग जाता है। गुड़... गुड़। एक कणिका में पूरा गुड़ कैसा है, पारी, गुड़ की पूरी पारी होती है, उसमें एक कणिका से भेली ख्याल में आ जाती है। ऐसे ख्याल में आ जाता है। **वहाँ (दृष्टान्त में) तो भिन्न-भिन्न द्रव्य हैं...** क्या कहते हैं? यहाँ तो भिन्न–भिन्न द्रव्य है। गुड़ एक द्रव्य नहीं। आहाहा! जैसे चन्द्रमा भी एक परमाणु नहीं है। एक द्रव्य नहीं। चन्द्रमा में तो अनन्त परमाणु है। गुण की एक

कणिका में अनन्त परमाणु हैं। आहाहा! यहाँ कहते हैं, **वहाँ (दृष्टान्त में) तो भिन्न-भिन्न द्रव्य हैं और यह तो एक ही द्रव्य है।** यह भगवान तो एक ही द्रव्य है। आहाहा! वह तो अनन्त द्रव्य में दूज का दिखाव हो, गुड़ का नमूना हो, वह अनन्त परमाणु हैं, एक परमाणु नहीं। आहाहा! इसमें तो एक में सब आता है। एक ही भगवान आत्मा... आहाहा! अपनी पर्याय में अकेले आत्मद्रव्य से प्रगट होता है, अकेले आत्मा के आश्रय से मुनिपना होता है, एक के आश्रय से केवलज्ञान होता है। मोक्ष तो होता ही है। आहाहा!

वहाँ (दृष्टान्त में) तो भिन्न-भिन्न द्रव्य हैं और यह तो एक ही द्रव्य है। आत्मा। क्या कहा? दूज में तो अनन्त परमाणु का प्रकाश है। एक परमाणु का नहीं। वैसे गुड़ की एक कणिका में अनन्त परमाणु का स्कन्ध है। ऐसा आत्मा में नहीं है। आहाहा! यह दृष्टान्त दिया है। आत्म भगवान एक ही वस्तु अखण्डानन्द प्रभु है। आहाहा! **यह तो एक ही द्रव्य है। इसलिए सम्यक्त्व में चौदह ब्रह्माण्ड के भाव आ गये।** आहाहा! एक द्रव्य का भान हुआ... अधिकार बहुत अच्छा आ गया है। बहिन ने तो उस समय बोला था। दोपहर को आते हैं। आहाहा! क्या कहा?

गुड़ और दूज, एक द्रव्य नहीं है, अनन्त परमाणु हैं। यह तो दृष्टान्त में आया। सिद्धान्त में आत्मा तो एक ही है, एक ही पूर्ण है, उसमें से पूर्णता प्रगट होती है, सम्यग्दर्शन प्रगट होता है, मुनिपना और केवलज्ञान उसमें से ही प्रगट होते हैं। दूसरा कोई उपाय है नहीं। आहाहा! दूसरा द्रव्य है नहीं, उसमें-प्रकाश में तो अनन्त द्रव्य हैं। इसमें तो एक ही द्रव्य है। आहाहा! अकेले द्रव्य के आश्रय से केवलज्ञान उत्पन्न होता है। अकेले आत्मा के आश्रय से केवलज्ञान उत्पन्न होता है। आहाहा! मनुष्यपना बिना मोक्ष होता है? वज्रनाराचसंहनन बिना केवलज्ञान होता है? ऐसा कुछ लोग कहते हैं। प्रश्न बहुत आते हैं। वह हो भले, उससे आत्मा में लाभ होता है, ऐसा नहीं। वज्रनाराचसंहनन तन्दुल मच्छ को भी होता है। अंगुल का असंख्यवाँ भाग। वज्रनाराच(संहनन होता है), और मरकर सातवीं नरक में जाता है। आहाहा! सुना है? तन्दुल मच्छ कहते हैं। है तो छोटा। तन्दुल तो चावल है, यह तो बड़ा है। वह तो बहुत सूक्ष्म है, अंगुल का असंख्यवाँ भाग। परन्तु है वज्रनाराचसंहनन। तो वह नरक में जाता है तो संहनन के कारण नहीं। वैसे यहाँ केवलज्ञान प्राप्त होता है, वह संहनन के कारण नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : यह वाणी सुनकर नरक में नहीं जाता।

पूज्य गुरुदेवश्री : सब आत्मा मोक्ष में जाओ, यहाँ तो यह बात है, भाई! सब आत्मा मोक्ष जाओ, ... होगा। द्रव्यसंग्रह में कहा, दुनिया में कोई भी दुश्मन है ही नहीं। कोई वैरी नहीं है। सब भगवान साधर्मी हैं। द्रव्य से, द्रव्य से साधर्मी हैं। पर्याय में स्वतन्त्र हैं। द्रव्य अन्दर भगवान है, सब साधर्मी हैं। यह तो तीन जगह, पाँच जगह कहा है। आहाहा! एक तो द्रव्यसंग्रह में कहा, पूर्ण हो जाओ। एक, यहाँ समयसार की ३८ गाथा में कहा, मैं ऐसे (लीन हो जाऊँ), ऐसे सब जीव आ जाओ। ३८ गाथा में है। समयसार की ३८ गाथा। सब जीव आ जाओ। आहाहा! भगवान! तेरी शक्ति तो पूर्ण है न, प्रभु! पूर्णता है, उसमें से पूर्णता प्रगट करनी है न, नाथ! तो सब भगवान आ जाओ। लोकालोक जानने में आ जाओ, ऐसा लिखा है। और समयसार में तीन जगह है। एक बन्ध अधिकार में अन्त में, मोक्ष अधिकार में अन्त में और सर्वविशुद्ध अधिकार में है। बड़ी बात। सर्व निर्विकल्पो। मन-वचन-काया रहित सब पूर्ण परमात्मा को प्राप्त होओ, ऐसी भावना करनी चाहिए। आहाहा! बहुत लम्बी बात है। उदासीन हूँ, भरितअवस्थ हूँ, भरितअवस्थ-अवस्थ अर्थात् पूर्ण। ऐसा शब्द पड़ा है। उदासीनो अहं, भरितोवस्थ अहं, शुद्धो अहं, बुद्धो अहं, उदासीनो अहं। ऐसे बहुत शब्द हैं। बन्ध अधिकार में अन्त में, सर्वविशुद्ध में पूरा होता है वहाँ, और मोक्ष पूरा होता है, वहाँ। आहा...! तीन जगह। सब जीव... भगवान! सर्व जीव मोक्ष को प्राप्त होओ। सर्व जीव कर्मरहित होओ, सर्व जीव आनन्द की पूर्ण दशा को प्राप्त होओ। ऐसी धर्मी की भावना है। आहाहा! समय हो गया.... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

विक्रम संवत-२०३५, श्रावण शुक्ल - १०, गुरुवार, तारीख २१-८-१९८०
वचनामृत- २१६, २१७ प्रवचन-१४

जो वास्तव में संसार से थक गया है, उसी को सम्यग्दर्शन प्रगट होता है। वस्तु की महिमा बराबर ख्याल में आ जाने पर वह संसार से इतना अधिक थक जाता है कि 'मुझे कुछ भी नहीं चाहिए, एक निज आत्मद्रव्य ही चाहिए' ऐसी दृढ़ता करके बस 'द्रव्य सो ही मैं हूँ' ऐसे भावरूप परिणमित हो जाता है, अन्य सब निकाल देता है।

दृष्टि एक भी भेद को स्वीकार नहीं करती। शाश्वत द्रव्य पर स्थिर हुई दृष्टि यह देखने नहीं बैठती कि 'मुझे सम्यग्दर्शन या केवलज्ञान हुआ या नहीं'। उसे—द्रव्यदृष्टिवान जीव को—खबर है कि अनन्त काल में अनन्त जीवों ने इस प्रकार द्रव्य पर दृष्टि जमाकर अनन्त विभूति प्रगट की है। द्रव्यदृष्टि होने पर, द्रव्य में जो-जो हो, वह प्रगट होता ही है; तथापि 'मुझे सम्यग्दर्शन हुआ, मुझे अनुभूति हुई' इस प्रकार दृष्टि पर्याय में चिपकती नहीं है। वह तो प्रारंभ से पूर्णता तक, सबको निकालकर, द्रव्य पर ही जमी रहती है। किसी भी प्रकार की आशा बिना बिलकुल निस्पृहभाव से ही दृष्टि प्रगट होती है॥२१६॥

वचनामृत। २१६, २१६। २०० चल गया है। किसी ने यहाँ लिखा है। **जो वास्तव में संसार से थक गया है,...** सर्वार्थसिद्धि का अवतार करने में थकान लगी हो, ऐसी अन्दर व्यवहार प्रतीति हुई हो कि अनन्त काल में अनन्त अवतार नरक, निगोद आदि के अनन्त किये और अभी भी यदि आत्मा का ज्ञान न हुआ तो जन्म-मरण चौरासी का चक्कर मिटेगा नहीं। **वास्तव में संसार से थक गया है,...** पूरा संसार। विकल्प से, विकल्प से भी थक गया हो। क्योंकि विकल्प है, वह भी दुःख और राग है। आहाहा! **उसी को सम्यग्दर्शन प्रगट होता है।** यह शर्त। **वास्तव में संसार से थक गया है, उसी को सम्यग्दर्शन प्रगट होता है।** अन्तर आनन्द का कन्द प्रभु, वह सर्व संसार की कल्पनाजाल में से रुचि हटकर,

रुचि अन्दर में जम जाए, तब आनन्द की दशा का अनुभव हो, तब सम्यग्दर्शन प्रगट होता है। आहाहा! संसार की कोई भी वासना, बड़ी समृद्धि, कुटुम्ब-कबीला, इज्जत, प्रसिद्धि, मान-सन्मान, उसमें कोई भी बात अन्दर रह गयी तो संसार की थकान लगी नहीं। आहाहा! संसार का... वास्तव में कहा न?

ऐसे तो बाहर से संसार छोड़कर अनन्त बार साधु हुआ है, परन्तु वह संसार नहीं है। संसार तो अन्दर में संसरण इति संसार:। संसार, कोई आत्मा की पर्याय को छोड़कर बाहर में नहीं रहता। अन्तर में जो चौरासी लाख योनि का बीज मिथ्यात्व आदि, उससे जब तक अन्दर में थकान न लगे तो अन्तर में नहीं उतर सकता। आहाहा! यह शर्त।

वास्तव में संसार से थक गया है,... थकान लगी है, अन्दर दुःख लगता है। वह अन्तर आनन्द की खोज करता है। जिसको विकल्प आदि दुःख लगे, संसार विकल्प भी संसार है। आहाहा! क्योंकि वह दुःख है, वह संसार है। उससे थकान लगे, वह अन्तर में जाकर सम्यग्दर्शन प्रगट कर सके। आहाहा! यह शर्त। **वस्तु की महिमा बराबर ख्याल में आ जाने पर...** वस्तु भगवान आत्मा क्या चीज़ है, यह ख्याल में आ जाने पर **वह संसार से इतना अधिक थक जाता है...** आहाहा! क्या कहा? **वस्तु की महिमा बराबर ख्याल में आ जाने पर...** चैतन्यप्रभु अनन्त आनन्द और अनन्त ज्ञानादि अनन्त गुण का खजाना, परमात्मस्वरूप आत्मा... आहाहा! इसकी जिसको महिमा ख्याल में आ जाए... आहाहा! तब संसार से इतना अधिक थक जाता है... आहाहा! कि **'मुझे कुछ भी नहीं चाहिए,'...** मान, सम्मान, दुनिया की प्रशंसा, दुनिया में मैं दूसरों से अधिक हूँ, ऐसा एक अभिमान अन्दर है, प्रभु! बहुत सूक्ष्म बात है। आहाहा!

संसारी प्राणी की चीज़ देखकर उसमें कुछ भी अपने में गहराई में अधिकता अपनी लगे और पर की अधिकता न लगे। परवस्तु दुःखरूप ही अधिक है। मैं उससे भिन्न आनन्द अधिक हूँ। आहाहा! ऐसा अन्तर भाव में पुण्य के विकल्प से भी थककर... क्योंकि अशुभभाव का भी अभ्यास अनन्त काल का है, ऐसे शुभभाव का भी अभ्यास प्रभु! अनन्त काल (का) है। अनन्त काल का है। नौवीं ग्रैवेयक अनन्त बार उत्पन्न हुआ है। वह शुभभाव का अभ्यास तो अनन्त काल का है। उससे भी थकान जाए। आहाहा! कठिन बात है।

इतना अधिक थक जाता है कि 'मुझे कुछ भी नहीं चाहिए, एक निज आत्मद्रव्य ही चाहिए'... भगवान आत्मा चैतन्यरत्न अमूल्य रत्न, जिसकी कोई कीमत नहीं, जिसका कोई मोल नहीं, ऐसी कोई चीज़ मैं अन्दर हूँ, ऐसा जिसको ख्याल में आता है, **'एक निज आत्मद्रव्य ही चाहिए'...** मुझे तो एक आत्मद्रव्य हो। पर्याय भी नहीं। आहाहा! भगवान आत्मद्रव्य जो त्रिकाली परमात्मस्वरूप अनन्त आनन्द के स्वभाव से भरा पड़ा प्रभु, ऐसी चीज़ की महिमा आकर, यही एक मुझे चाहिए, **ऐसी दृढ़ता करके बस 'द्रव्य, सो ही मैं हूँ'...** ओहो..! राग तो नहीं, पर्याय भी नहीं। पर्याय तो मानती है। **'द्रव्य, सो ही मैं हूँ'...** यह कहीं द्रव्य नहीं मानता है। द्रव्य तो ध्रुव है। आहाहा! पर्याय में ऐसी थकान लगे कि पर्याय में ऐसा लगे कि यह द्रव्य है, वही मैं हूँ। आहाहा! कोई विकल्पमात्र मेरी चीज़ नहीं। दुनिया में इज्जत मिले या अधिकता हो, वह कोई वस्तु नहीं है, प्रभु! आहाहा!

सातवीं नरक का नारकी, अरे..! प्रभु ने तो वहाँ तक कहा न, कुन्दकुन्दाचार्य ने, कोई महामुनि समकिती आनन्द में थे, कोई सहज ऐसा दोष लग गया कि असुरकुमार का बन्धन हो गया। ओहोहो! फिर भी अन्दर में खटक बहुत है। आहाहा! छद्मस्थ है, अन्तर प्रेम का प्याला फट गया है। आहा..! तो भी कोई कारण से अन्दर में सहज कोई चारित्र का दोष, हाँ! श्रद्धा का नहीं, थोड़ा चारित्र का दोष लगे तो असुर में उत्पन्न होता है न। छठी गाथा में कहा न। प्रवचनसार। एक ओर प्रभु ऐसा कहे कि सम्यग्दृष्टि तो वैमानिक देव में ही उत्पन्न हो, मनुष्य, हों! मनुष्य, नारकी ... परन्तु मनुष्य समकिती तो वैमानिक देव में ही उत्पन्न होते हैं। स्त्रीपने नहीं, भवनपति, व्यन्तर, ज्योतिष में नहीं। आहाहा! दूसरी ओर स्वयं ऐसा कहे, भगवान कुन्दकुन्दाचार्य स्वयं कहे, दुनिया को विरोध लगे। विरोध नहीं है, प्रभु! उन्होंने जगत को देख लिया है। पंचम काल है, अन्दर महा उग्र पुरुषार्थ से आगे बढ़ा है, परन्तु उसमें कहीं कुछ ऐसा भाव में रह जाए तो कोई असुरकुमार में उत्पन्न हो जाए, परन्तु हम कहते हैं कि वहाँ से निर्वाण प्राप्त होगा। अन्तर में थक गया है। अन्दर कोई प्रमाद से ऐसा कोई भाव आ गया कि असुरकुमार का आयुष्य बँध गया। आहाहा! वह तो मिथ्यात्व में बँधता है। चारित्रदोष तो कोई अनन्तवें भाग में नहीं है। मिथ्यात्व का दोष तो बड़ा मुख्य दोष यह है। अनन्त संसार का कारण ही मिथ्यात्व है। आहा...!

मिथ्यात्व गया और समकित एवं मुनि हुआ, तो भी भगवान कुन्दकुन्दाचार्य को

ऐसा लगा कि कोई ऐसा साधु होगा, कदाचित् कोई असुरकुमार में जाएगा। आहाहा! गजब बात! पंचम काल है। परन्तु सम्यग्दर्शन लेकर तो नहीं जाएगा। भले उत्पन्न होगा पहले मिथ्यात्व में, बाद में वहाँ सम्यग्दर्शन पायेगा। असुरकुमार में भी। जैसे सातवीं नरक में जानेवाला सब मिथ्यादृष्टि ही जाते हैं और निकलते समय सब मिथ्यादृष्टि ही निकलते हैं। बीच के काल में कोई समकित प्राप्त करते हैं। कोई, असंख्य जीव में से कोई। असंख्य में से कोई असंख्यवें भाग में। आहाहा! तो उसका भी ख्याल करके भगवान ने कहा कि मिथ्यात्व लेकर गया और फिर मिथ्यात्व लेकर निकलेगा। भले बीच में सम्यग्दर्शन, अनुभव हो जाएगा।

यहाँ तो यह कहते हैं कि थोड़ी भी थकान न लगे और कहीं भी संसार के कोई भी विकल्प में मिठास रह जाए, कोई चिन्ता में, कोई विकल्प में... आहाहा! तो उसे आत्मद्रव्य ही चाहिए, ऐसी दृढ़ता नहीं आती। यहाँ तो आत्मद्रव्य ही चाहिए। आत्मद्रव्य ही। 'ही' लिया है। एकान्त। एकान्त यह है। दूसरा नहीं, यही अनेकान्त है। आत्मद्रव्य भी चाहिए और राग भी चाहिए, यह अनेकान्त नहीं। आहाहा! लोग ऐसा कहते हैं कि निश्चय भी हो और व्यवहार भी हो, यह अनेकान्त है। ऐसा नहीं है। निश्चय है, वही लाभकारक है; व्यवहार लाभकारक थोड़ा भी नहीं, उसका नाम अनेकान्त है।

यहाँ भी वही कहते हैं, **ऐसी दृढ़ता करके बस 'द्रव्य, सो ही मैं हूँ'...** आहाहा! मानती है पर्याय, परन्तु मानती है कि मैं द्रव्य हूँ। आहाहा! गजब बात है! द्रव्य का कभी अभ्यास नहीं किया। द्रव्य क्या चीज़ है अन्दर ? आहाहा! यह कहते हैं, एक आत्मद्रव्य ही चाहिए। एकान्त कहा। **ऐसी दृढ़ता करके बस 'द्रव्य, सो ही मैं हूँ'...** आहाहा! भगवान आत्मा अनन्त चैतन्य रत्नाकर देव, अनन्त चैतन्य रत्नाकर देव की प्रतीति, अनुभव में प्रतीति, मात्र अकेली प्रतीति नहीं। उसका आनन्द के अनुभव में प्रतीति कि यह आत्मा आनन्दमय है, पूरा आत्मा पूर्ण अखण्ड अभेद चीज़ है, ऐसी प्रतीति द्रव्य, सो ही मैं हूँ, बस। आहाहा! बाकी कोई चीज़ मुझे नहीं चाहिए। आहाहा!

ऐसे भावरूप परिणमित हो जाता है,... द्रव्य, सो ही मैं हूँ। (उसमें) तो परिणमन नहीं है। द्रव्य, सो ही मैं हूँ, ऐसा परिणमन पर्याय में होता है। आहाहा! भावरूप परिणमन। अन्तर की निर्विकल्पदशा-पर्याय। निर्विकल्प चीज़ है, उसकी निर्विकल्पदशा में वह

प्रतीति और अनुभव होता है तो भावरूप परिणमित हो जाता है। भावरूप परिणमित हो जाता है। जैसा द्रव्य है, ऐसा ही परिणमन हो जाता है। उसका नाम सम्यग्दर्शन है। आहाहा! **अन्य सब निकाल देता है।** आहाहा! कोई भी विकल्प छोड़ देता है। मेरे लाभ की चीज़ नहीं, वह नुकसान की चीज़ है। आहाहा! थोड़ी सूक्ष्म बात है। अपने सिवा कोई भी परद्रव्य की, पंच परमेष्ठी की कल्पना, भक्ति का विकल्प... आहाहा! वह सब निकाल देता है। दृष्टि में से निकाल देता है, अस्थिरता में आ जाता है। अस्थिरता में आ जाओ, परन्तु दृष्टि में से निकाल देता है। आहाहा!

दृष्टि एक भी भेद को स्वीकार नहीं करती। दृष्टि-सम्यग्दृष्टि एक भी भेद को स्वीकार नहीं करती। पर का तो स्वीकार करती नहीं... आहाहा! यह बहिन की वाणी। अनुभव में से बोलकर निकली है। आहाहा! आये नहीं। इस समय नहीं आते हैं, कमजोरी है न। **दृष्टि एक भी भेद को स्वीकार नहीं करती।** पर का तो स्वीकार नहीं करती, मुझे लाभदायक है, ऐसे। परद्रव्य मुझे लाभदायक है, ऐसा स्वीकार तो है नहीं, परन्तु द्रव्य और गुण, ऐसे भेद का भी स्वीकार नहीं करती। आहाहा! दृष्टि तो अभेद का स्वीकार करती है। अकेला चिदानन्द भगवान प्रभु, गुण और गुणी की एकता, इसको ही दृष्टि में (स्वीकारती है)। दृष्टि है पर्याय, दृष्टि है अवस्था, परन्तु वह स्वीकार पूर्ण का करती है। आहाहा! उस पर्याय की कीमत कितनी होगी! लोगों को अन्दर की प्रतीति-श्रद्धा की कीमत नहीं है। कुछ आचरण करे, फलाना छोड़े, यह छोड़ा, ब्रह्मचर्य ले लिया, बाहर से कुछ छोड़ दिया तो कीमत हो जाए। आहाहा!

यहाँ कहते हैं, **दृष्टि एक भी भेद को स्वीकार नहीं करती। शाश्वत द्रव्य पर स्थिर हुई...** आहाहा! ध्रुव शाश्वत पदार्थ भगवान, उस पर दृष्टि स्थिर हुई... आहाहा! **यह देखने नहीं बैठती... शाश्वत द्रव्य पर स्थिर हुई दृष्टि...** ध्रुव पर स्थिर हुई, वह दृष्टि ऐसा देखती नहीं.. क्या? **यह देखने नहीं बैठती कि 'मुझे सम्यग्दर्शन या केवलज्ञान हुआ या नहीं'।** आहाहा! पर्याय पर लक्ष्य करती नहीं। ज्ञान हो जाता है, परन्तु दृष्टि बदलती नहीं। आहाहा! ऐसी सूक्ष्म बात है। लोगों को बाहर की थोड़ी क्रिया हो, आचरण हो तो कुछ भभका लगे, कुछ त्याग किया, कुछ धर्म करते हैं ऐसा लगे। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं, विकल्पमात्र से थककर अन्तर्दृष्टि द्रव्य पर हुई तो वह दृष्टि भेद

को स्वीकार नहीं करती। पर को तो स्वीकार नहीं करती, भेद को भी स्वीकार नहीं करती। आहाहा! भेद है। भगवान आत्मा में अनन्त गुण का भेद है परन्तु वह भेद को स्वीकार नहीं करती। अभेद पर दृष्टि (स्थिर हो गई है)। आहाहा! दृष्टान्त दिया था न ? मेरी माँ, मेरी माँ। छोटी लड़की माँ की अंगुली से छूट जाए। आठ साल की या छह साल की हो, पुलिस पूछे तो एक ही कहे। हमने सुना है, पोरबन्दर। छोटी लड़की वहाँ गुम हो गयी। अपासरा के पीछे। पुलिस आयी, पूछे, कुछ भी पूछे, परन्तु मेरी माँ, मेरी माँ। बस, एक ही बात। ऐसे समकिती को एक मेरा द्रव्य, ऐसी एक ही बात है। आहाहा! दुनिया मानो, न मानो और दुनिया अज्ञान की भी महिमा करती है। हाथी के हौदे पर बैठाये तो भी उसे शंका नहीं होती कि मिथ्यादृष्टि को यह ? और मैं... मेरे पास सब है। आहाहा! मेरे पास सब है, मुझे कुछ नहीं चाहिए। आहाहा!

अतीन्द्रिय आनन्दरत्न का खजाना मिल गया। आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्द हीरा, अनन्त हीरा का खजाना मिल गया। उसके समक्ष भेद का भी दिखावा नहीं। भेद को भी दृष्टि नहीं देखती। आहाहा! मुझे सम्यग्दर्शन हुआ या नहीं, उस पर जोर नहीं है। ख्याल आ जाए कि अनुभव हो गया। परन्तु उस पर जोर नहीं है। समझ में आया ? जोर द्रव्य पर एकाकार है। मेरी माँ, मेरी माँ, मेरी माँ वह है। आहाहा!

भगवन्! द्रव्य और पर्याय में भी बड़ा भेद है। द्रव्य इतना शक्तिवन्त है कि साक्षात् परमात्मा है। आहाहा! साक्षात् परमात्मा है, तो पर्याय में परमात्मा होता है। क्या कहते हैं ? ऐनलार्ज। ऐनलार्ज कहते हैं न ? छोटा हाथी हो वह (बड़ा हो जाता है)। यह तो क्षेत्र छोटा है, भाव छोटा नहीं है। भाव-इतनी शक्ति है कि उसको ऐनलार्ज करे, एकाकार हो तो केवलज्ञान प्राप्त हो जाएगा। आहाहा! बात रूखी लगे। कुछ करना हो तो उसे (लगे, कुछ किया)। क्योंकि करने का अभ्यास अनादि से हो गया है। करना ऐसा अभ्यास हो गया है। और करना, वह तो मिथ्यात्व है। राग का करना और देह की क्रिया मेरे से होती है, ऐसी मान्यता सब मिथ्यात्व है। आहाहा! परन्तु अनादि का अभ्यास हो गया है। उससे छूटना महा पुरुषार्थ द्रव्य का होता है और द्रव्य चमत्कारिक चीज़ की कीमत और महिमा आ जाती है, तब यह बाहर की महिमा छूट जाती है। आहाहा! ऐसा धर्म।

मुझे सम्यग्दर्शन हुआ कि नहीं, उसका भी ख्याल नहीं करती। ख्याल ज्ञान में आ

जाए, फिर भी दृष्टि बदलती नहीं। दृष्टि में दौलत एक भगवान ही रहे। पूर्णानन्द का नाथ उसकी दृष्टि में तिरता है। आहाहा! यहाँ तो केवलज्ञान हुआ या नहीं, ... खलास हो गया। आहाहा! दृष्टि ही नहीं स्वीकारती, ऐसा कहते हैं। केवलज्ञान हुआ तो भी दृष्टि को उसकी विशेषता नहीं है। क्योंकि दृष्टि में तो ऐसा केवलज्ञान, अनन्त केवलज्ञान, अनन्त सादि-अनन्त केवलज्ञान की पर्याय एक ज्ञानगुण में पड़ी है। केवलज्ञान तो एक समय की स्थिति है। ऐसा सादि-अनन्त केवलज्ञान। आहाहा! उत्पन्न हुआ बाद में भविष्य में अनन्त काल रहेगा। कभी अन्त नहीं। ऐसी पर्याय का पिण्ड ज्ञानगुण है। जैसे एक गुण इतना है तो अनन्त-अनन्त गुण का पिण्ड द्रव्य है। आहाहा! ऐसे द्रव्य की जिसको अन्तर्दृष्टि हुई तो केवलज्ञान हुआ या नहीं, उसकी भी दरकार नहीं। क्योंकि वह तो पर्याय है। आहाहा! ऐसी बात है।

उसे—द्रव्यदृष्टिवान जीव को—खबर है कि अनन्त काल में अनन्त जीवों ने... अनन्त काल में अनन्त जीवों ने **इस प्रकार द्रव्य पर दृष्टि जमाकर...** अनन्त (जीव) मोक्ष पधारे। छह महीने और आठ समय में ६०८ तो हमेशा मुक्ति में जाते हैं। यहाँ से अभी नहीं जाते हैं तो महाविदेह से जाते हैं। अभी केवलज्ञान (पाकर) मोक्ष जाते हैं। आहाहा! कहते हैं कि **द्रव्यदृष्टिवान जीव को—खबर है कि अनन्त काल में अनन्त जीवों ने इस प्रकार द्रव्य पर दृष्टि जमाकर अनन्त विभूति अनन्त प्रगट की है।** आहाहा! अपना द्रव्य अर्थात् सामान्य ध्रुव नित्यानन्द प्रभु सच्चिदानन्द सत् सत्, बस। पूर्ण सत् (हूँ), ऐसा जहाँ दृष्टि हुई... आहाहा!

इस प्रकार द्रव्य पर दृष्टि जमाकर अनन्त विभूति प्रगट की है। अनन्त जीवों ने, अनन्त जीवों ने अनन्ती विभूति प्रगट की है। ऐसा नहीं है कि दुर्लभ है, इसलिए प्रगट न हो। दुर्लभ है। दुर्लभ भावना में आता है, परन्तु असम्भव नहीं है। असम्भव नहीं है। दुर्लभ अर्थात् महापुरुषार्थ चाहिए असम्भव नहीं है, नहीं हो सके, ऐसी बात नहीं है। आहाहा! समझ में आया? अनन्त-अनन्त पुरुषार्थ चाहिए, ऐसा जानते हैं परन्तु असम्भव है, नहीं हो सकता - ऐसा नहीं मानते। आहाहा! सम्यग्दृष्टि अनन्त जीवों ने विभूति प्रगट की है।

द्रव्यदृष्टि होने पर, द्रव्य में जो-जो हो वह प्रगट होता ही है;... आहाहा! अधिकार तो बहुत अच्छा (आया है)। किसी ने कागज में लिखा है। कागज में बोल लिखे हैं।

किसने लिखे हैं, मालूम नहीं। यहाँ रखा है तो उस हिसाब से पढ़ते हैं। आहाहा! **द्रव्यदृष्टि होने पर, द्रव्य में जो-जो हो...** द्रव्य अर्थात् पदार्थ प्रभु, उसकी दृष्टि में जब द्रव्य पर हो तो द्रव्य में जो-जो है, द्रव्य में जो-जो है, अनन्त चमत्कृति चैतन्य के अनन्त गुण चमत्कारिक चीज़ है, वह सब प्रगट होता है। अन्दर में है, वह प्रगट होता है। आहाहा! **वह प्रगट होता ही है;...** आहाहा! ही है। होता ही है। अन्दर में है और प्राप्त की प्राप्ति न हो, ऐसा नहीं बनता। आहाहा! ऐसी दृष्टि जम गई कि प्राप्त की प्राप्ति। है, वह मिलता है, उसमें नवीन क्या है? क्षायिक समकित हो, मन:पर्ययज्ञान हो, तो भी उसमें क्या? वह तो अनन्तवें भाग में वह चीज़ निकली है। अन्तर तो अनन्त... अनन्त... अनन्त... चमत्कारिक चीज़ पड़ी है। आहाहा!

वह प्रगट होता ही है; तथापि 'मुझे सम्यग्दर्शन हुआ, मुझे अनुभूति हुई' इस प्रकार दृष्टि पर्याय में चिपकती नहीं है। आहाहा! सम्यग्दृष्टि की दृष्टि ध्रुव पर जम गई। अनुभूति हुई, वहाँ चिपकती नहीं, वहाँ नहीं चिपकती। आहाहा! वहाँ रुकते नहीं। मुझे अनुभूति हो गई, बस, वहाँ सन्तोष हो गया – ऐसा है नहीं। आहाहा! **मुझे अनुभूति हुई' इस प्रकार दृष्टि पर्याय में चिपकती नहीं है।** आहाहा! अवस्था में अवस्थायी चीज़ की दृष्टि के जोर में; अवस्थायी, जिसमें अवस्था प्रगट होती है – ऐसा अवस्थायी द्रव्य, ऐसी दृष्टि हुई, उसको अवस्था पर से दृष्टि उठ जाती है। आहाहा! यह बात है। लोगों को कठिन लगे।

भगवान ने यही कहा है। कुन्दकुन्दाचार्य ने तो ११वीं गाथा में एक ही कहा, **'भूदत्थमस्सिदो खलु'।** भूतार्थ त्रिकाल भगवान द्रव्य, उसका आश्रय लेने से सम्यग्दर्शन होता है। आहाहा! ११वीं गाथा में शुरु किया है। त्रिकाल भूतार्थ एक समय में त्रिकाली चीज़। आहाहा! उसके आश्रय से, उसके अवलम्बन से, उसकी महिमा जागने से सम्यग्दर्शन होता है। दूसरा कोई उसका उपाय नहीं। आहाहा!

इस प्रकार दृष्टि पर्याय में चिपकती नहीं है। आहाहा! पर्याय उत्पन्न होती है, परन्तु वहाँ दृष्टि रहती नहीं। दृष्टि का जोर तो द्रव्य पर है। आहाहा! जहाँ जिस स्थान में जाना हो, उस स्थान में लक्ष्य होता है। बीच में मकान, गाँव आदि बहुत आते हैं। सबको छोड़ देता है। कहीं अटकता नहीं। मुझे तो सिद्धपुर जाना है। सिद्धपुर जाने का रास्ता क्या? यह प्रश्न

आया है शास्त्र में। मुझे तो सिद्धपुर जाना है। सिद्धपुर जाने का रास्ता क्या? दूसरा कोई रास्ता पूछता नहीं। आहाहा! कोई कहे कि, वह बाड़ है, थूहर की बाड़ है, उसके बीच में चले जाओ। ऐसे प्रतिकूलता-थूहर की बाड़ बीच में आती है, परन्तु उसे छोड़कर अन्दर चला जा। आहाहा! वस्तु ऐसी है, बापू! आहाहा! लोगों को एकान्त लगे। बाह्य आचरण के समक्ष, बाह्य आचरण के समक्ष यह तुच्छ लगे। बाह्य आचरण हो वह उसे विशेष लगे। यहाँ कहते हैं कि बाह्य आचरण की तो कोई कीमत नहीं है। परन्तु सम्यग्दर्शन, अनुभूति (हुई), उस पर भी उसकी दृष्टि चिपकती नहीं। आहाहा! दृष्टि में तो भगवान अन्दर बैठा है, सर्वज्ञ भगवान के स्थान में-बैठक में बैठा है। आहाहा! धन्य भाग्य! ऐसी बात है, प्रभु! यह तो बहिन ऐसा शब्द बोले थे, उसे लिख लिया। आहा..! अन्तर की अनुभूति से यह भाषा आयी है।

अनुभूति हुई' इस प्रकार दृष्टि पर्याय में चिपकती नहीं है। वह तो प्रारंभ से पूर्णता तक,... प्रारम्भ से पूर्णता तक, शुरुआत से पूर्णता तक। शुरुआत सम्यग्दर्शन, पूर्ण केवलज्ञान। आहाहा! **प्रारंभ से पूर्णता तक, सबको निकालकर,...** बीच की दशा जो आती है, सबकी दृष्टि छोड़कर। आहाहा! दृष्टि द्रव्य पर जम गई है। दृष्टि पर्याय को स्वीकारती ही नहीं। आहाहा! पर्यय द्रव्य को स्वीकारती है। स्वीकार पर्याय में होता है न? वेदन और कार्य तो पर्याय में होता है, ध्रुव में काम होता नहीं। परन्तु उस पर्याय का कार्य सम्यक् कब कहने में आये? कि द्रव्यदृष्टि आयी, लक्ष्य में-दृष्टि में (द्रव्य) आया तब। आहाहा!

वह तो प्रारंभ से पूर्णता तक, सबको निकालकर, द्रव्य पर ही जमी रहती है। आहाहा! शुरुआत से विकल्प छोटा या बड़ा, सबको निकालकर दृष्टि पहले से ही अन्त तक द्रव्य पर ही रहती है। आहाहा! २१६। सोलह, सोलह। २१६। आहाहा! यह तो बहिन के अनुभव के वचन हैं। अन्तर आनन्द के अनुभव में से निकले हुए वचन हैं। कोई कृत्रिम नहीं है, किसी का रटा हुआ नहीं, किसी का पढ़कर नहीं। आहाहा! अन्तर की बातें हैं, प्रभु! क्या करें? अन्तर की बातें अन्तर को जाननेवाले जाने। आहाहा! बाह्य दिखाववाले अन्तर की बात की कीमत नहीं जानते। आहाहा! **द्रव्य पर ही जमी रहती है।**

किसी भी प्रकार की आशा बिना... जहाँ भगवान मिल गये, फिर आशा क्या?

भगवान ही केवलज्ञान प्राप्त करवायेंगे। आहाहा! दूज उगी है तो पूर्णिमा होगी ही। आहाहा! ऐसे सम्यग्दर्शन-दूज अन्दर से उगी, दूज का ज्ञान है, पूर्ण का ज्ञान है और बीच में अवरोध कितना है, उसका भी ज्ञान है। आहाहा! **किसी भी प्रकार की आशा बिना बिलकुल निस्पृहभाव से ही दृष्टि प्रगट होती है।** आहाहा! है न? **किसी भी प्रकार की आशा बिना बिलकुल निस्पृहभाव से ही दृष्टि प्रगट होती है।** २१६ (पूरा हुआ)। अब २१७ है। इसमें लिखा है, कोई रखकर गया है।

द्रव्य में उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य सब होने पर भी कहीं द्रव्य और पर्याय दोनों समान कोटि के नहीं हैं; द्रव्य की कोटि उच्च ही है, पर्याय की कोटि निम्न ही है। द्रव्यदृष्टिवान को अन्तर में इतना अधिक रसकसयुक्त तत्त्व दिखायी देता है कि उसकी दृष्टि पर्याय में नहीं चिपकती। भले ही अनुभूति हो, परन्तु दृष्टि अनुभूति में—पर्याय में—चिपक नहीं जाती। 'अहा! ऐसा आश्चर्यकारी द्रव्यस्वभाव प्रगट हुआ अर्थात् अनुभव में आया!' ऐसा ज्ञान जानता है, परन्तु दृष्टि तो शाश्वत स्तम्भ पर—द्रव्यस्वभाव पर—जमी सो जमी ही रहती है॥२१७॥

२१७। **द्रव्य में उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य सब होने पर भी...** २१७। द्रव्य अर्थात् पदार्थ। बहुत लोग (आये हैं)। शान्ति रखते हैं। बहुत लोग है। कितने तो ऊपर बैठे हैं। अभी और आयेंगे। दूज पर, बहिन की दूज पर नौ लोग तो हीरा से बधायेंगे। उनका पूरा घर आयेगा। दूसरे भी आयेंगे। लोग तो आयेंगे। आहाहा! **द्रव्य में उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य सब होने पर भी...** क्या कहा? ये जो द्रव्य है न? उसमें तीनों हैं। अपना द्रव्य त्रिकाली, उसमें अनन्त गुण और अनन्ती पर्याय। एक समय में एक पर्याय नहीं है, अनन्ती पर्याय (है)। आहाहा! क्योंकि कार्य तो पर्याय में होता है न। गुण और द्रव्य में कार्य नहीं होता। गुण और द्रव्य तो ध्रुव है। आहाहा! अनन्ती पर्याय बाह्य प्रगट है, वह कार्य है। उस कार्य का कारण त्रिकाली द्रव्य-गुण है।

द्रव्य में उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य सब होने पर भी... क्या कहते हैं? जहाँ द्रव्य पर दृष्टि ही है, उस द्रव्य में तीनों हैं। गुण और पर्याय भले हो। **कहीं द्रव्य और पर्याय दोनों समान**

कोटि के नहीं हैं;... आहाहा! द्रव्य और पर्याय दोनों समान कोटि के नहीं है। भले द्रव्य में उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य सब हो। आहाहा! परन्तु द्रव्य और पर्याय दोनों समान कोटि के नहीं हैं। ऐसी अनन्त.. अनन्त... अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. पर्याय का तो एक गुण, ऐसे अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. गुण का एक द्रव्य। आहाहा! केवलज्ञान उत्पन्न हुआ सादि-अनन्त तो कितनी पर्याय हुई? सादि-अनन्त। एक समय ही एक पर्याय रहती है। सादि-अनन्त। सादि-अनन्त पर्याय और भूतकाल की पर्याय भले अज्ञान हो, सब मिलकर एक ज्ञानगुण है। आहाहा!

ऐसे क्षायिक समकित प्रगट हुआ। सिद्ध में भी क्षायिक रहता है। श्रेणिक राजा को क्षायिक समकित उत्पन्न हुआ। नरक में हैं। वही क्षायिक लेकर सिद्ध में जाएँगे। वहाँ से निकलकर तीर्थंकर होंगे। आहाहा! भले नरक में हैं, परन्तु क्षायिक समकिती है। वहाँ से (निकलकर) प्रथम तीर्थंकर होंगे, मोक्ष में जाएँगे। सिद्ध होंगे। क्षायिक समकित उत्पन्न हुआ, वही समकित सिद्ध में लेकर चले जाएँगे। आहाहा!

द्रव्य में उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य सब होने पर भी कहीं द्रव्य और पर्याय दोनों समान कोटि के नहीं हैं; द्रव्य की कोटि उच्च ही है,... द्रव्य अर्थात् वस्तु की कोटि-प्रकार तो महान उच्च है! ओहो..! पर्याय तो एक समय में अनन्त गुण की अनन्त पर्याय हैं। एक ही पर्याय नहीं है। प्रत्येक द्रव्य-एक परमाणु में, एक परमाणु में भी अनन्त पर्याय प्रगट है, अनन्त! क्योंकि परमाणु में अनन्त गुण हैं। जितनी संख्या आत्मा में गुण की है, उतनी संख्या एक परमाणु में जड़ गुण की है। आहाहा! और उतनी ही अनन्ती पर्याय प्रगट है। जितने गुण हैं, उसकी अनन्त पर्याय एक समय में (प्रगट है)। पर्याय बिना का कभी द्रव्य नहीं रहता। विशेष बिना सामान्य तो गधे के सींग के बराबर है। समझ में आया? विशेष बिना अकेला सामान्य कभी रहता नहीं। आहाहा! और सामान्य भी कभी विशेष बिना रहता नहीं। सामान्य को प्रति समय पर्याय होती है। आहाहा! ऐसी चीज़ है अन्तर में।

द्रव्य की कोटि उच्च ही है, पर्याय की कोटि निम्न ही है। एक समय की पर्याय, ऐसी अनन्त-अनन्त पर्याय एक गुण की, ऐसी अनन्त-अनन्त पर्याय का एक गुण, ऐसे अनन्त गुण का एक द्रव्य। तो पर्याय की कोटि से द्रव्य की कोटि उच्च हो गयी। आहाहा! एक समकित, चारित्र, ज्ञान, दर्शन, कर्ता, कर्म, करण, सम्प्रदान आदि सब गुण की अनन्त

पर्याय प्रगट है। प्रत्येक द्रव्य में अनन्त पर्याय प्रगट हैं। परमाणु में भी वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श आदि अनन्त गुण की अनन्त पर्याय प्रगट है। आहाहा! परन्तु पर्याय की कोटि द्रव्य में नहीं आ सकती। द्रव्य की कोटि बलवान है। ऐसी अनन्त पर्याय निकले तो द्रव्य कभी खत्म नहीं हो जाता। आहाहा!

अक्षर के अनन्तवें भाग में निगोद में रहा। पर्याय में। तो भी द्रव्य परिपूर्ण है और सिद्ध में केवलज्ञान हुआ तो द्रव्य परिपूर्ण है। केवलज्ञान हुआ तो द्रव्य में कमी हुई, क्योंकि बड़ा ज्ञान अनन्त-अनन्त बाहर आया, तो द्रव्य में कुछ कमी हुई, ऐसा है नहीं। आहाहा! वीतराग का मार्ग अलौकिक है, भाई! आहाहा! अक्षर के अनन्तवें भाग में निगोद में पर्याय होती है, तो भी द्रव्य उतना का उतना ही है। बाह्य में बहुत नहीं है, इसलिए अन्दर अधिक पुष्ट है, (ऐसा नहीं है)। अक्षर के अनन्तवें भाग में अनन्त गुण बाह्य में प्रगट है, तो अन्दर गुण में विशेष पुष्टि है, ऐसा नहीं है और केवलज्ञान में केवलज्ञान की पर्याय अनन्त गुण की अनन्त पूरी पर्याय प्रगट हुई तो द्रव्य में कुछ कम हो गया, ऐसा है नहीं। आहाहा! गजब बात है! वीतराग का मार्ग...

केवलज्ञान की यह सब पर्याय आयी, अन्दर से आयी तो कुछ कमी हुई या नहीं? घटाडो क्या कहते हैं? कमी। कमी होती या नहीं? और अनन्तवें भाग में, अक्षर के अनन्तवें भाग में उघाड़ रहा निगोद में तो अन्तर में पुष्टि होगी या नहीं? बाहर में अल्प है तो अन्दर द्रव्य में पुष्टि होगी या नहीं? ना, प्रभु! ना। द्रव्य उस समय भी पूर्ण है और केवलज्ञान हुआ, उस समय भी द्रव्य तो परिपूर्ण ही है। आहाहा! अरे..! द्रव्य की महिमा, द्रव्य की अचिन्त्यता, चमत्कारिक चीज़ द्रव्य क्या है, उसे सुना नहीं। आहाहा! अन्तर में द्रव्य की चमक क्या है! ओहोहो! जिसकी चमक का पार नहीं। चाहे जितनी चमक पर्याय प्रगट हो, फिर भी द्रव्य में कमी होती नहीं। द्रव्य में अल्पता होती नहीं। समझ में आता है? भाषा तो (सादी है)। आहाहा!

यह द्रव्य। उस द्रव्य पर दृष्टि हुई, पूरा हो गया। जन्म-मरण का अन्त आकर, केवलज्ञान पाकर मुक्ति होगी। आहाहा! उसकी कीमत नहीं और बाह्य त्याग की और इसकी, उसकी महिमा। आहाहा! क्या हो?

मुमुक्षु :- बाहर ज्यादा दिखाई देता है।

पूज्य गुरुदेवश्री :- बाहर ज्यादा दिखाई देता। बाहर में दिखाव ज्यादा लगे। उसने त्याग किया हो, अकेली लंगोटी पहनी है, कोई कपड़ा नहीं है। भगवान! कोई व्यक्ति का काम नहीं है, प्रभु! यहाँ तो द्रव्य और पर्याय की बात अभी चलती है। आहाहा! पर्याय अनन्तवें भाग में हो, प्रत्येक गुण की, तो भी गुण में कोई पुष्टि और विशेष है, ऐसा नहीं है। और गुण में से केवलज्ञान, केवलदर्शन, क्षायिक समकित सादि-अनन्त... ओहो! अनन्त.. अनन्त.. अनन्त वीर्य, अनन्त वीर्य प्रगट हुआ तो सादि-अनन्त वीर्य (रहेगा), तो भी द्रव्य में कोई कमी हुई है, बाहर में ऐसा अनन्त वीर्य प्रगट हुआ तो अनन्त काल रहेगा, इसलिए द्रव्य में कुछ कमी है - ऐसा नहीं है। आहाहा!

मुमुक्षु :- .....

पूज्य गुरुदेवश्री :- यह एक चीज़ ऐसी है। आहा..! केवलज्ञान आदि अनन्त-अनन्त गुण पूर्ण प्रगट हो, पूर्ण। तो भी द्रव्य तो पूर्ण ही है। द्रव्य में एक अंश भी कमी हुई है, ऐसा नहीं है। आहाहा! ऐसे द्रव्य की खबर नहीं, प्रभु! आहाहा! और उस द्रव्य की दृष्टि हुए बिना धर्म का प्रारम्भ-शुरुआत होती नहीं। आहाहा! ऐसा ही द्रव्य चैतन्य भगवान विराजता है। अरे..! वह क्या, परमाणु भी ऐसा है। परमाणु में वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श अनन्त भरे हैं। पर्याय में अनन्त गुण पर्याय आ जाए, अनन्त गुण काली पर्याय आ जाए, तो अन्दर वर्णगुण में कुछ कमी हुई है, अल्पता हुई है, ऐसा नहीं है। और एक गुण वर्ण बाहर रहे तो वहाँ वर्ण में पुष्टि हुई है, ऐसा कोई नहीं है। आहाहा! पर्याय की कमी-अधिकता कुछ भी हो, भगवान द्रव्य तो जैसा है वैसा त्रिकाल एकरूप रहता है। आहाहा! उसमें कमी-अधिकता कभी होती नहीं। ऐसा यहाँ कहते हैं। बहिन ऐसा कहना चाहती है। देखो!

द्रव्यदृष्टिवान को अन्तर में इतना अधिक रसकसयुक्त तत्त्व दिखायी देता है... रसकस, देखो! **द्रव्यदृष्टिवान को अन्तर में इतना अधिक रसकस...** रस और कस-माल। ऐसा **रसकसयुक्त तत्त्व दिखायी देता है...** आहाहा! **कि उसकी दृष्टि पर्याय में नहीं चिपकती।** पर्याय में सन्तुष्ट नहीं होती। आहाहा! दृष्टि जहाँ अन्दर द्रव्य पर जम गई है, वह पर्याय पर कहीं चिपकती नहीं, कहीं भी अटकती नहीं। ठीक हुआ, इतना हुआ ठीक हुआ, ऐसे नहीं। आहा..! पूर्ण प्रगट हो तो भी इतना ठीक हुआ, ऐसा नहीं है। पूर्ण का नाथ

तो परमात्मा स्वयं भगवान पूर्णानन्द का नाथ अनादि-अनन्त एकरूप विराजमान है। आहाहा! (ऐसा) **तत्त्व दिखायी देता है कि उसकी दृष्टि पर्याय में नहीं चिपकती। भले ही अनुभूति हो,...** सम्यग्दर्शन और अनुभूति हो, **परन्तु दृष्टि अनुभूति में—पर्याय में—चिपक नहीं जाती।** अनुभूति पर पर्याय चिपकती नहीं। आहाहा! वहाँ दृष्टि चिपकती नहीं। आहाहा! आज सूक्ष्म बात आयी है, प्रभु! माल का माल है। उसका माल है, वह माल है। **दृष्टि अनुभूति में—पर्याय में—चिपक नहीं जाती।** आहाहा!

'ऐसा आश्चर्यकारी द्रव्यस्वभाव प्रगट हुआ अर्थात् अनुभव में आया!' आहाहा! **ऐसा ज्ञान जानता है,...** ज्ञान सब जानता है। **परन्तु दृष्टि तो शाश्वत स्तम्भ पर—**शाश्वतस्तम्भ, वज्र का स्तम्भ द्रव्य। आहाहा! एकरूप त्रिकाली अनन्त गुण की सत्ता का एकरूप। पर्याय में कम-अधिक पर्याय कुछ भी हो, द्रव्य में कमी-अधिकता कभी होती नहीं। आहाहा! **ऐसा ज्ञान जानता है, परन्तु दृष्टि तो शाश्वत स्तम्भ पर—द्रव्यस्वभाव पर—जमी सो जमी ही रहती है।** आहाहा! द्रव्य पर दृष्टि तो जमी, सो जमी ही रहती है।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

विक्रम संवत-२०३५, श्रावण शुक्ल - ११, शुक्रवार, तारीख २२-८-१९८०
वचनामृत- २४१, २४४, २५१ प्रवचन-१५

ओहो! यह तो भगवान आत्मा! सर्वांग सहजानन्द की मूर्ति! जहाँ से देखो वहाँ आनन्द, आनन्द और आनन्द। जैसे मिश्री में सर्वांग मिठास, वैसे ही आत्मा में सर्वांग आनन्द॥२४१॥

वचनामृत २४१, किसी ने इसमें लिखा है, उस अनुसार पढ़ते हैं। कोई कागज रखकर गया है। **ओहो! यह तो भगवान आत्मा!** जहाँ दृष्टि का विषय का अनुभव हुआ, सम्यग्दर्शन होने पर आत्मा के आनन्द का अनुभव होता है। इस आनन्द के अनुभव में, **ओहो! यह तो भगवान आत्मा! सर्वांग सहजानन्द की मूर्ति!** आहाहा! तेरी दृष्टि वहाँ लगा दे। भगवान अहो! आश्चर्यकारी, सहजानन्दस्वरूप। यह सहजानन्द स्वामीनारायण के नहीं। सहज स्वाभाविक अतीन्द्रिय आनन्द की मूर्ति प्रभु है। तो कहते हैं, **जहाँ से देखो वहाँ आनन्द, आनन्द और आनन्द।** आहाहा! भगवान आत्मा को आनन्दमय देखने से जहाँ से देखो वहाँ आनन्द ही आनन्द अन्दर है। अन्दर में कोई विकल्प, दुःख, राग है नहीं। आहाहा! सहजानन्द की मूर्ति। सहज आनन्द का स्वरूप प्रभु। **जहाँ से देखो वहाँ आनन्द, आनन्द और आनन्द।** आहाहा!

जैसे मिश्री में... शक्कर में **मिश्री में सर्वांग मिठास, वैसे ही आत्मा में सर्वांग आनन्द है।** आहा..! जैसे मिश्री में सर्वांग मिठास है, वैसे भगवान आत्मा में सर्वांग अतीन्द्रिय आनन्द भरा है। अतीन्द्रिय आनन्द सम्यग्दर्शन का ध्येय-विषय है। उसके ध्येय से सम्यग्दर्शन होता है। आहाहा! तब सम्यग्दर्शन में ऐसा भास हुआ, अहो..! सहजानन्द की मूर्ति प्रभु! जहाँ देखो वहाँ आनन्द, आनन्द और आनन्द अतीन्द्रिय।

मिश्री में जहाँ देखो वहाँ मिठास (भरी है)। शक्कर में। वैसे भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द का पिण्ड है। शक्कर जैसे मिठास का पिण्ड है। वैसे भगवान आत्मा

अतीन्द्रिय आनन्द का पिण्ड है। वही सम्यग्दर्शन का विषय है। आहाहा! उस विषय में आनन्द आता है, तब सम्यग्दृष्टि को ऐसा भासता है कि अहो..! यह आत्मा! अकेले आनन्द से भरा हुआ, जिसमें कोई अंश मात्र संसार, संसार का उदयभाव, अरे..! उपशम, क्षयोपशम, क्षायिकभाव भी जिसमें नहीं है। आहाहा! ऐसे भगवान आत्मा की दृष्टि जहाँ अन्तर हुई, तो जैसे मिश्री में चारों ओर से मिठास (भरी) है; वैसे भगवान में चारों ओर से अतीन्द्रिय आनन्द (भरा) है। आहाहा! सूक्ष्म बात है, प्रभु! मूल बात तो यह है।

सम्यग्दृष्टि अर्थात् श्रद्धामात्र, ऐसे नहीं। आहाहा! देव-गुरु-धर्म की श्रद्धा या तत्त्वार्थ की श्रद्धा, उतने मात्र नहीं। अन्तर में अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप में अनुभव का आनन्द होकर श्रद्धा (हुई हो)। आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्द का सर्वांग पूर्ण प्रभु, अतीन्द्रिय आननद से भरा पड़ा, जहाँ देखो वहाँ नजर में आनन्द आता है। उसका नाम आत्मा और उसका नाम सम्यग्दर्शन। उसका विषय यह आत्मा है। आहाहा! सूक्ष्म बात है, प्रभु! बहिन ने तो अन्दर में अनुभव करते-करते बोले हैं। ऐसी भाषा भी बाहर आनी मुश्किल है। आहाहा! कोई बार ऐसे शब्द बोल दिये। आहा..!

मिश्री में सर्वांग मिठास,... मिश्री तो अनन्त परमाणु का पिण्ड है। शक्कर की डली अनन्त परमाणु का पिण्ड है। यह तो एक ही द्रव्य है। आहाहा! एक द्रव्य में आनन्द का आनन्द, अतीन्द्रिय आनन्दमय प्रभु असंख्य प्रदेश में पूर्ण अतीन्द्रिय आनन्द भरा है। उस आनन्द का अनुभव करके सम्यग्दृष्टि को सर्वांग आनन्द दिखता है। आहाहा! २४१ (पूरा हुआ)। फिर २४४। २४४ लिया है।

ओहो! आत्मा तो अनन्त विभूतियों से भरपूर, अनन्त गुणों की राशि, अनन्त गुणों का विशाल पर्वत है! चारों ओर गुण ही भरे हैं। अवगुण एक भी नहीं है। ओहो! यह मैं? ऐसे आत्मा के दर्शन के लिये जीव ने कभी सच्चा कौतूहल ही नहीं किया॥२४४॥

ओहो! आत्मा तो अनन्त विभूतियों से भरपूर,... आहाहा! आत्मा अर्थात् क्या है, प्रभु! चैतन्य की चमत्कृति अनुभव में सम्यग्दर्शन हो, तब उसमें चमत्कृति क्या है, उसका पता मिल जाए तो दुनिया की सब उड़ जाए। सब बात में से, सब विकल्प में से मिठास

उड़ जाए और सबमें ज्ञाता-दृष्टा हो जाए। आहाहा! अपने आनन्दस्वरूप में जहाँ अनुभव हुआ तो पूरी दुनिया से उदास हुआ। दुनिया में ठीक-अठीक, ऐसी कोई चीज़ है नहीं। क्योंकि ज्ञेय है, वह एक प्रकार का है। ज्ञान एक प्रकार का ज्ञेयस्वरूप जानता ही है। कोई अच्छा या बुरा, ऐसा उसमें है नहीं। ऐसी दृष्टि आनन्द की होती है, तब होती है। आहाहा! सूक्ष्म बात है, प्रभु!

बाह्य प्रवृत्ति के समक्ष अन्तर आनन्द की कीमत उड़ गई। आहा..! बाह्य प्रकृति के प्रेम में पुण्य की क्रिया के-शुभ की क्रिया के प्रेम में आनन्दस्वरूप भगवान उस शुभ के पीछे पड़ा है, उसकी कीमत-महत्ता-महिमा-उड़ गई और पुण्य की महिमा रह गई। अनादि काल से। नौवीं ग्रैवेयक अनन्त बार गया साधु होकर। कितनी क्रिया की। वर्तमान में तो ऐसी क्रिया है भी नहीं। फिर भी आनन्दस्वरूप भगवान, उसके तल में नहीं गया। पर्याय का तल है, तलिया.. तलिया समझते हो? भाषा है? अन्दर पर्याय के तल में दृष्टि जहाँ रुकती है, तब आनन्द... आनन्द... आनन्द का अनुभव करता है। इस आनन्द के समक्ष सर्वार्थसिद्ध के देव का आनन्द भी जिसके आगे, सम्यग्दर्शन है उतना आनन्द है, परन्तु उससे आगे बढ़कर जो पंचम गुणस्थान हुआ हो आत्मा में... आहाहा! सर्वार्थसिद्ध का देव समकिती एकावतारी, एक भवतारी को जो आनन्द है, उससे पंचम गुणस्थानवाला श्रावक, सच्चा श्रावक, उसका आनन्द सर्वार्थसिद्ध के देव से भी विशेष आनन्द बढ़ गया है। आहाहा! जो एक भवतारी है। कितने तो बारह अंगधारी है। सर्वार्थसिद्ध में भी बारह अंगधारी। क्योंकि यहाँ बारह अंग का ज्ञान हुआ था, वह बारह अंग का ज्ञान लेकर गये और उसका आनन्द भी साथ में है। उसके आनन्द से पंचम गुणस्थानवाला श्रावक, जो सच्चा श्रावक है, आत्मा का आननद का अनुभवसहित स्थिरता, आंशिक शान्ति बढ़ गई है। जो शान्ति की स्थिति चौथे गुणस्थान में है, उससे पंचम में शान्ति और आनन्द थोड़ा बढ़ गया। आहाहा! इसलिए। आहाहा!

ओहो! आत्मा तो अनन्त विभूतियों से भरपूर है। अनन्त विभूतियों से भरपूर है। शब्द क्या काम करे? ओहो..! शब्द की जहाँ गन्ध नहीं। कल आया था न? स्वर, आत्मा में है नहीं। आहाहा! विकल्प और यह स्वर शब्द, स्वरूप में है नहीं। वहाँ स्वर क्या काम करे? आहाहा! शब्द जड़, भगवान चेतन। दोनों विरुद्ध। दुश्मन के पास सज्जन के गुण

बुलाये तो वह कितना बोले ? आहाहा ! ऐसे भगवान आत्मा का अनुभव होने पर, वाणी जड़ है, वह कितना काम करे ? आहाहा ! जो अनुभव में आता है, वह बात वाणी कह सकती नहीं। वाणी जड़ विरुद्ध है। आहाहा ! चैतन्य और परमाणु के बीच में तो अत्यन्त अनन्त अभाव है। भगवान की वाणी भी जड़ है। आहाहा ! वाणी में कितना आता है ? अनन्तवें भाग में आता है, ऐसा पाठ है।

भगवान सर्वज्ञदेव अतीन्द्रिय आनन्द की पूर्ण मूर्ति खिल गई है। पूरा कमल खिल गया है। आहाहा ! बत्तीस पंखुड़ी से जैसे कमल खिलता है, वैसे भगवान अनन्त गुण से खिल गया है। ऐसे सर्वज्ञ भगवान, उनकी वाणी भी आत्मा से तो विरुद्ध है। आहाहा ! वाणी में कितना आवे ? वाणी तो जड़, अजीव और रूपी है। **भगवान आत्मा अनन्त विभूतियों से भरपूर...** आहाहा ! वह तो सम्यक् हो, तब उसे खबर पड़े कि यह चीज़ क्या है। आहाहा ! और वह चीज़ करने की पहली चीज़ है। आत्मा तो **अनन्त विभूतियों से भरपूर...** आहा.. ! कोई भी विभूति—ज्ञान, दर्शन, आनन्द, शान्ति, अस्तित्व, वस्तुत्व, प्रभुत्व, स्वच्छत्व आदि। अरे.. ! सर्वज्ञ, सर्वदर्शी और सर्व वीर्य आदि पूर्ण भरा है। अन्तर में सर्वज्ञशक्ति पूर्ण पड़ी है। सर्वज्ञशक्ति, सर्वदर्शीशक्ति, पूर्ण वीर्यशक्ति, पूर्ण वीर्य-बल। आत्मानुभव में जो बल का अनुभव का अंश आता है, वह पूरा अकेले बल का अनुभव है। वह अनन्त बल का धनी है। ओहोहो ! आत्मा की बात सुनी नहीं, प्रभु ! सुनी हो तो दूसरे कान से निकाल दी है। करना तो यह है या नहीं ? चाहे जितनी बात करे, करना तो यह है। आहा.. ! दोनों में आया न ? पहले में भी ओहो.. ! आया था। इसमें भी अहो ! (आया)।

आत्मा तो **अनन्त विभूतियों से भरपूर...** अनन्त विभूतियों से भरपूर। दुनिया के पास कितने पैसे हों ? अरब रुपया। अरे.. ! हमारे समय में तो सौ अरब को खरब कहते हैं और सौ खरब को निखरब कहते हैं। खरब, निखरब, महापद्म, ... ऐसे बोल आते हैं। स्कूल में ८० साल पहले यह चलता था। ... तक संख्या चलती थी। सौ अरब का एक खरब। तो ... भी क्या है ? आहाहा ! खरब की तो बात क्या, लेकिन ... भी क्या है ? यह तो अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. भाषा शब्द में अनन्त आता है, परन्तु वाच्य जो अनन्त है... आहाहा ! अनन्त, यह वाचक शब्द है। जैसे शक्कर शब्द है, उस शब्द में शक्कर नहीं है और शक्कर है, उसमें शब्द नहीं है। ऐसे अनन्त विभूति शब्द है, वह भगवान में नहीं है। आहाहा !

शक्कर में शक्कर शब्द नहीं है और शब्द में शक्कर नहीं है। वैसे वाणी में भगवान नहीं और भगवान में वाणी नहीं। आहाहा! ऐसी बात है, प्रभु!

ओहो! आत्मा तो अनन्त विभूतियों से भरपूर, अनन्त गुणों की राशि,... अनन्त गुण का ढ़ेर-राशि पड़ी है। अरूपी है, क्षेत्र भले छोटा हो। अरे..! निगोद का आत्मा हो, तो भी ऐसा ही है। पर्याय में अन्तर है। आत्मा तो अनन्त विभूति से भरा पड़ा है और अनन्त गुणों की राशि है। परन्तु उसको खबर नहीं। यहाँ तो खबर है, वह कहते हैं कि अनन्त गुणों की राशि है। ज्ञान हुआ, वस्तु का ज्ञान हुआ, वस्तु की प्रतीति हुई, वस्तु का ज्ञान में पूर्ण ज्ञेय बन गया, ज्ञान में पूरी चीज़ ज्ञेय पूर्ण बन गयी। उसे वाणी कहती है, वह वाणी भी उसमें तो है नहीं। आहाहा! कितनी बात करे? आहा..!

अनन्त गुणों की राशि, अनन्त गुणों का विशाल पर्वत है! आहाहा! अरूपी चिदानन्द भगवान अरूपी शान्ति का महा पर्वत है। अनन्त विभूति, अनन्त शक्ति, अनन्त गुण उसका महाप्रभु पर्वत है। आहाहा! पर्वत में तो अनन्त परमाणु हैं। वह तो अनन्त द्रव्य हैं, यह एक द्रव्य है। आहाहा! (एक) द्रव्य में भी अनन्त-अनन्त विभूति इतनी है कि कोई संख्या में पार न आवे। आहा..! पर्वत की तो उपमा दी है। पर्वत तो अनन्त परमाणु का पिण्ड / स्कन्ध है, स्कन्ध। एक द्रव्य नहीं है। आहाहा! भगवान तो एक द्रव्य है। पर्वत तो प्रभु! अनन्त-अनन्त परमाणु का पिण्ड पर्वत। उसमें से जैसे पानी झरता है, ऐसे भगवान एक-एक द्रव्य अनन्त गुण का भण्डार, उसकी अन्तर्दृष्टि हुई तो समय-समय में आनन्द झरता है। आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्द का वेदन समकिती को समय-समय में वेदन है। आहाहा!

ऐसा भगवान! **चारों ओर गुण ही भरे हैं।** आहाहा! चारों ओर अर्थात् किसी भी ओर से देखो अकेले गुण ही भरे हैं। विभूति कहा, अनन्त गुण का पर्वत कहा, अनन्त गुण की राशि कहा और चारों ओर गुण ही भरे हैं, ऐसा कहा। आहाहा! देखो! यह वचनामृत! कहा न?

गोपनाथ का कोई एक साधु है। गोपनाथ है। उसके हाथ में यह पुस्तक गया। पुस्तक बहुत छप गयी हैं। लगभग ८०००० छप गयी हैं। और २०००० बाकी है। एक लाख कहा था। जब पहली बार हाथ में आया था, तब रामजीभाई को कहा। तीस लाख पुस्तक यहाँ से छपे हैं, अभी तक किसी को कहा नहीं कि पुस्तक छपवाओ। ... यह

पुस्तक हाथ में आया (तो कहा), ओहो.. ! एक लाख पुस्तक छपवाओ। लगभग ८०००० तो छप गये हैं। आहा.. ! ऐसी चीज़। मठवाला, गोपनाथ में अन्यमति मठ (है) । और यहाँ एक प्रोफेसर है, भावनगर। स्कूल में बड़ा ब्राह्मण। उसे यहाँ आया और यह दिया। और वाँचन करके पत्र आया, महाराज! आपने क्या दिया! यह क्या है ? उसमें कितनी चीज़ भरी है, वह जब मैं पढ़ता हूँ तब खबर पड़ती है। वह जब उसके गुरु के पास जाता था, गोपनाथ, जब वह गया तो उसके हाथ में यह पुस्तक था। गोपनाथ के जो गुरु थे, उसके हाथ में यह पुस्तक था। इस पुस्तक की महिमा करने वहाँ गया। वहाँ गया तो उसके हाथ में यह पुस्तक थी। फिर दोनों प्रशंसा करते थे। पत्र आया था। हम कुछ नहीं कह सकते। चाहे जितनी प्रशंसा करे, परन्तु यह पुस्तक क्या है! उपनिषद में नहीं है, ऐसी बातें इसमें आ गयी है। ऐसा उसके पत्र में आया था। आहाहा! मध्यस्थता से अभिमान छोड़कर, मैं कुछ जानता हूँ और मैं कुछ क्रियाकाण्ड करने में विचक्षण हूँ, उसे यह बात बैठनी कठिन पड़े। यह बात बैठनी, अन्दर में बैठे... आहाहा!

यहाँ तो अनन्त गुण भरे हैं। **अवगुण एक भी नहीं है।** वस्तु में अवगुण एक नहीं, अवगुण तो पर्याय है। गुण की विपरीत पर्याय है। इसलिए प्रश्न होता है न, कि सिद्ध में आठ गुण कहे, तो क्या वह गुण है ? सिद्ध में आठ गुण कहे न ? आठ कर्म के नाश के आठ गुण। वह गुण नहीं है, पर्याय है। गुण उत्पन्न नहीं होता। आहाहा! सिद्ध आठ गुण सहित, व्यवहार से। निश्चय से तो अनन्त गुण सहित। आहाहा! आठ कर्म थे, उसका निमित्त का अभाव होकर यहाँ दशा प्रगट हुई तो आठ गुण कहने में आये। वह गुण नहीं है। गुण तो त्रिकाल होते हैं। आठ गुण कहने में आते हैं, वह पर्याय है। सिद्ध के इतने गुण है, इतने गुण हैं, वह सब पर्याय है। गुण तो ध्रुव है। पर्याय प्रगट होती है, गुण प्रगट नहीं होता। आठ पर्याय तो प्रगट हुई है। कर्म का नाश होकर प्रगट हुई है। वह तो पर्याय है। अरे.. ! सिद्ध स्वयं पर्याय है। आहाहा! वह भी एक भेष है।

भगवान अनादि-अनन्त... आहाहा! अनादि-अनन्त अनन्त गुण का भण्डार, उसके समक्ष सिद्धपद तो एक भेष है, भेष है। आहाहा! वह भी समयसार में मोक्ष अधिकार पूर्ण करके कहा, मोक्ष का भेष चला गया। मोक्ष का भेष आया था। अधिकार है, मोक्ष अधिकार। मोक्ष चला गया अर्थात् जान लिया। वस्तु तो त्रिकाली है। मोक्ष तो एक

समय की पर्याय है। आहाहा! मोक्ष की पर्याय वैसी की वैसी सादि-अनन्त काल रहेगी, परन्तु वह नहीं। जो उत्पन्न हुई, वह नहीं रहेगी। जो उत्पन्न हुई है, वह तो एक समय की रहेगी। क्योंकि उत्पाद-व्यय-ध्रुव युक्तं सत्। सत् जो है, वह ध्रुव है और उत्पाद-व्यय है, वह पर्याय है। जितने उसको गुण प्रगट हुए, उसको गुण कहा, वह तो पर्याय है।

यहाँ कहना है, अवगुण। गुण की पर्याय को गुण कहा। तो गुण की विरुद्ध पर्याय को अवगुण कहा। अवगुण भी पर्याय है। आहाहा! समझ में आया? यहाँ अवगुण कहा है न? अवगुण तो यह गुण है? अवगुण तो गुण की विरुद्ध एक पर्याय है। अवगुण विरुद्ध पर्याय (है)। जो पर्याय प्रगट हुई, उसको गुण कहा। परन्तु वह गुण नहीं है। गुण तो त्रिकाली पड़ा है अन्दर। उसमें कोई हलचल होती ही नहीं। जैसा है अनादि, ऐसा अनन्त काल (रहता है)। आहाहा! निगोद से लेकर सिद्ध तक द्रव्य स्वभाव तो जैसा है, वैसा है। त्रिकाल एकरूप है। उसमें फेरफार बिल्कुल होता नहीं। आहाहा! चाहे तो सिद्धपर्याय हो तो भी द्रव्य में फेरफार नहीं होता। चाहे तो निगोद हो तो भी द्रव्य में फेरफार नहीं होता। आहाहा! ऐसी द्रव्य की विभूति (है)। उसमें **अवगुण एक भी नहीं है।** आहाहा!

ओहो! यह मैं! ऐसे आत्मा के दर्शन के लिये जीव ने कभी... भूतकाल में **सच्चा कौतूहल ही नहीं किया।** आहाहा! कौतूहल करे, क्या है यह चीज़? इतनी-इतनी आत्मा की प्रशंसा करते हैं तो यह चीज़ है क्या? ऐसा कौतुहल भी कभी नहीं किया। आहाहा! अपनी चीज़ को देखने का कौतूहल नहीं किया। आहाहा! **ऐसे आत्मा के दर्शन के लिये जीव ने कभी...** भूतकाल में। भूतकाल अनन्त काल में कौतूहल ही नहीं किया। अनन्त जीव अनन्त काल से उसको देखने को कौतूहल ही कभी नहीं किया।

कोई रानी निकली हो तो कौतूहल करता है। क्या कहते हैं? ओजल में। भावनगर की रानी ओजल में थी। वह एक बार निकली, खुली हो गई। ओजल निकाल दिया। गाँव के लोग सब ठाठ देखे। बाई ने ओजल (निकाल दिया)। मैंने भी.. यह वडिया है न? वडिया। वडिया के दरबार आदि सब आते थे। दरबार बहुत होशियार था। उसके पास जो राजकुमार था, उसके पास पढ़ने को आता था। वडिया। आसपास के राजकुमार। उन्होंने एक बार विनती की, महाराज! मेरे घर मेरी स्त्री के पास आहार लेने को (पधारिये)। लोगों को ऐसा लगे, उसकी स्त्री कैसी होगी? अन्दर आहार लेने को गये तो (शरीर देखो तो)

लटक गया था। दिखाव का कोई ठिकाना नहीं। लोगों को महिमा (आये)। परन्तु अन्दर देखा तो कुछ नहीं, कुछ नहीं था बेचारी। बोली, महाराज! शरीर ऐसे लटक गया था। चमड़ी... कोई आकार का दिखाव नहीं, सुन्दर नहीं, कुछ नहीं। दुनिया को ऐसा लगे, राजा की रानी कैसी होगी?

वैसे यहाँ नहीं है। आहाहा! प्रभु! यह तो अनन्त गुण का वैभव कोई अलौकिक है। जिसको अन्तर में देखने में आता है, वह कभी देखा नहीं। कभी सुना नहीं। कभी कौतूहल किया नहीं, देखने का कौतूहल किया नहीं। यह क्या चीज़ है? जानने में मैं सबको जानता हूँ, परन्तु जाननेवाला कौन है? आहाहा! यह है, यह है, यह है। परन्तु यह है—ऐसा जाना किसने? ऊर्ध्वता नाम का एक गुण है। आता है न? समता। समता, रमता, ऊर्ध्वता। श्लोक आता है। समयसार नाटक में। ऊर्ध्वता की व्याख्या श्रीमद् ने की है। पुस्तक में ऊर्ध्वता की व्याख्या की है।

कोई भी चीज़ जानने के पहले विचारने के पहले ज्ञान न हो तो जाने कौन? कोई भी चीज़, ज्ञान की मुख्यता न हो तो जाने कौन? तो वास्तव में तो ज्ञान में वह चीज़ ज्ञात होती है, वह तो ज्ञान ज्ञात होता है। आहा..! यह चीज़, यह.. यह.. यह.. जिसकी सत्ता में यह सब दिखता है, वह पर को स्पर्श किये बिना, पर को स्पर्श किये बिना अपनी पर्याय के सामर्थ्य से स्व-परप्रकाशक सामर्थ्य से सब देखने में आता है। जिसकी एक पर्याय में इतना-इतना देखने में आये, उसको छुए बिना अपने दिखने में आये, तो उसके गुण का क्या कहना? प्रभु! आहाहा! उसका गुण जो त्रिकाल, जिसकी पर्याय में यह जानने में आता है, ऐसा है नहीं। ज्ञान की पर्याय जानने में आती है। क्यों? - कि परद्रव्य को तो कभी छूता नहीं। ज्ञान है, वह तो परद्रव्य को कभी छूता नहीं। फिर भी परद्रव्य सम्बन्धी अपना ज्ञान अपने से उत्पन्न हुआ है। वह भी कोई अलौकिक चीज़ है कि अनन्त को जाने, तो उसके गुण का क्या कहना! आहा..!

यह कहते हैं, **ऐसे आत्मा के दर्शन के लिये...** अरे! **जीव ने कभी सच्चा कौतूहल...** सच्चा (कौतूहल) शब्द क्यों लिया है? कौतूहल तो ऐसे करता है कि कैसा है? परन्तु सच्चा कौतूहल नहीं किया। कौतूहल के साथ सच्चा शब्द विशेष लिया। आहाहा! बहिन के शब्द हैं। **कभी सच्चा कौतूहल ही नहीं किया।** आहाहा! क्या चीज़ है यह?

सबको एक ओर रखो, यह चीज़ क्या है ? इस चीज़ की पहिचान बिना और अनुभव बिना सब क्रियाकाण्ड आदि नौवीं ग्रैवेयक गया, अनन्त भव ऐसे ही रहे। अनन्त-अनन्त भव निगोद में भी गया। द्रव्यलिंगी मुनि... लिंगपाहुड़ में ऐसा पाठ है, द्रव्यलिंग कितनी बार लिया ? कि अनन्त बार। और द्रव्यलिंग लेने के बाद भी एक कण खाली नहीं है कि जिसमें अनन्त जन्म-मरण नहीं किये हो। ऐसा लिंगपाहुड (में कहा है)। अष्टपाहुड में लिंगपाहुड है। द्रव्यलिंग अट्ठाईस मूलगुण और पंच महाव्रत, नग्नपना और आचरण की कड़क क्रिया, एक दाना भी उसके लिये बनाया हो तो आहार न ले, ऐसी क्रिया तो अनन्त बार हुई। आहाहा! कभी आत्मा क्या चीज़ है (उसका कौतूहल किया नहीं)।

'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रैवेयक उपजायो, पै आतमज्ञान बिन लेश सुख न पायो।' पंच महाव्रत, अट्ठाईस मूलगुण क्रियाकाण्ड सब दु:ख है। आहाहा! राग है, विकल्प है, दु:ख है, जहर है। भगवान अमृतस्वरूप है। उससे विरुद्ध ये भाव है। अमृतस्वरूप देखने का कौतूहल भी नहीं किया। प्रगट भले न किया, कहते हैं। आहाहा! दूसरी कोई अनजानी चीज़ आये, कहा न ? महारानी जब घोड़ागाड़ी में बाहर निकली थी, भावनगर। लोग देखने के लिये (उमड़ पड़े), रानी साहिबा ने ओजल छोड़ दिया। रानी साहिबा ने ओजल छोड़ दिया।

ऐसे भगवान आत्मा में राग की एकता छोड़ देता है, ओजल छूट जाता है। पूरी चीज़ दिखने में आती है। आहाहा! उसका कौतूहल भी कभी नहीं किया, ऐसा कहते हैं। उसके सिवा दूसरी चीज़ की महिमा में ठीक है, ऐसा रुककर, वही रुक गया है। आहाहा! भगवान एक ओर रह गया। कौतूहल ही नहीं किया। २४४ (पूरा हुआ)। इसके बाद २५१।

द्रव्य उसे कहते हैं जिसके कार्य के लिये दूसरे साधनों की राह न देखना पड़े॥२५१॥

२५१। बहुत सरस बात है, है दो पंक्ति। इसका तो बैनर बना है। इस पंक्ति का बैनर बना है। मुम्बई में। यहाँ है ? राजकोट में... इस दो पंक्ति का।

द्रव्य उसे कहते हैं... आहाहा! **द्रव्य उसे कहते हैं...** भगवान आत्मा का द्रव्य। आहाहा! यहाँ तो समुच्चय द्रव्य लिया है। परन्तु द्रव्य उसे कहते हैं कि **जिसके कार्य के लिये...** द्रव्य की पर्याय के कार्य के लिये। द्रव्य की पर्याय के कार्य के लिये। **दूसरे साधनों की राह न देखना पड़े।** आहाहा! यह चीज़ है। यह वीतराग का मर्म है। तीन लोक के नाथ सर्वज्ञदेव का अभिप्राय-हृदय यह है। द्रव्य उसको कहते हैं कि जिसके कार्य के लिये दूसरे द्रव्य की, साधन की राह देखनी पड़े, ऐसा है नहीं। आहाहा! उसमें तो कितना भरा है! आहाहा! आहाहा! बहिन को स्त्री का देह आ गया न, इसलिए लोगों को बाहर में कीमत नहीं आती। आहाहा!

यह महा शब्द है। पदार्थ-द्रव्य उसको कहते हैं कि उसके कार्य के लिये, जिसके कार्य के लिये-सम्यग्दर्शन के कार्य के लिये, सम्यग्ज्ञान के कार्य के लिये, सम्यक्चारित्र के कार्य के लिये, केवलज्ञान के कार्य के लिये, सिद्धपद के कार्य के लिये... यह सब कार्य है। आहाहा! **द्रव्य उसे कहते हैं जिसके कार्य के लिये दूसरे साधनों की राह न देखना पड़े।** न देखना पड़े। आहाहा! अपनी तैयारी होवे तो निमित्त साधन तो जगत में पड़ा ही है। राह नहीं देखनी पड़े कि यह निमित्त मिले, तब मेरा कार्य होगा। ऐसा निमित्त मिले तो कार्य होगा, ऐसी राह देखनी न पड़े। प्रभु! ऐसा तेरा द्रव्य है। तेरा द्रव्य क्या, सब द्रव्य ऐसे हैं। आहाहा! यह तो सामान्य व्याख्या है न।

द्रव्य उसे कहते हैं... आहाहा! तीन लोक के नाथ सर्वज्ञ भगवान द्रव्य उसे कहते हैं कि **जिसके कार्य के लिये...** जिसकी पर्याय के लिये... आहाहा! पर्याय बिना का तो द्रव्य कभी कहीं नहीं है। तीन काल में कोई द्रव्य पर्याय बिना का तो है नहीं। तो वह पर्याय प्रगट करनी हो, उसमें पर की राह देखना पड़े, ऐसा है नहीं। आहाहा! वज्रनाराच संहनन होना चाहिए, फलाना... वह तो तू कार्य करेगा वहाँ वह होगा ही। राह देखना नहीं पड़े। तेरे केवलज्ञान की तैयारी यहाँ की, तो वज्रनाराच संहनन, मनुष्य आदि तो होंगे ही। परद्रव्य की राह देखना पड़े अपने कार्य के लिये—ऐसा द्रव्य है नहीं। आहाहा! यह तो द्रव्य को पराधीन, पराधीन (मान लिया है)। ऐसा अमुक निमित्त मिले तो ठीक पड़े, अमुक निमित्त मिले तो ठीक पड़े। निमित्त तो निमित्त की पर्याय से निमित्त आता है। द्रव्य में कोई निकम्मा द्रव्य नहीं है। क्या कहा? द्रव्य जितने हैं, उसमें कोई निकम्मा नहीं है। निकम्मा अर्थात्

पर्यायरूपी कार्य बिना वह द्रव्य रहता नहीं। जितने अनन्त द्रव्य हैं, वह निकम्मे अर्थात् काम अर्थात् पर्याय... पर्याय को काम कहते हैं। कार्य कहो, काम कहो। काम-पर्याय बिना-कार्य बिना कोई द्रव्य कहीं कभी रहता नहीं। समझ में आया?

परमाणु हो, धर्मास्तिकाय हो, आकाश हो, भगवान आत्मा हो, अपनी पर्याय करने में... आहाहा! अपनी अवस्था करने में सम्यग्दर्शन प्रगट करने में, कोई गुरु की राह देखना पड़े, चारित्र प्रगट करने में कोई शरीर की मजबूताई की जरूरत पड़े, ऐसी राह देखना नहीं पड़ती। आहाहा! सूक्ष्म बात है, प्रभु! भले कठिन लगे। थोड़े शब्द में बहुत भरा है। आहाहा!

तीन लोक के नाथ तीर्थंकर की पुकार है कि द्रव्य उसे कहते हैं कि उसकी पर्याय के बिना द्रव्य कभी होता नहीं और उसकी पर्याय के लिये परद्रव्य की राह देखनी पड़ती नहीं। आहाहा! गजब बात है! दो पंक्ति है। पूरे जैनदर्शन का सार है। यह तो बहिन के मुख से उस समय निकल गया। आहाहा! वस्तु उसे कहें कि अपने कार्य के लिये-अपनी पर्याय के लिये, कार्य अर्थात् पर्याय, पर्याय है वही कार्य है न! दूसरा क्या कार्य है? कोई द्रव्य निकम्मा नहीं है, उसका अर्थ कि कोई द्रव्य पर्याय बिना नहीं है। कोई द्रव्य पर्याय बिना तीन काल में नहीं रहता। आहाहा! पर्याय बिना रहे तो, पहिचानने में तो पर्याय ही कारण है। ध्रुव तो ध्रुव वस्तु है। पर्याय से ही वह वस्तु जानने में आती है। आहाहा!

नजर में द्रव्य-गुण-पर्याय तीनों ख्याल में आते हैं परन्तु पर्याय के ख्याल से सबका ख्याल आता है। यह पर्याय इस गुण की है, यह गुण इस द्रव्य का है। समझ में आया? आहाहा! ऐसा उपदेश। क्या करें? आहा..! यहाँ तो पर बिना चले नहीं, पर बिना चले नहीं। बहुत बार ऐसा कहते हैं, एक द्रव्य को दूसरे द्रव्य बिना चले नहीं। प्रभु! एक द्रव्य में अनन्त अस्तित्वगुण पड़ा है और एक द्रव्य में उससे अनन्तगुने जो गुण हैं, उसका नास्तिपना पड़ा है। आहाहा! अनन्त अस्तित्व है और अनन्त नास्तित्व है। छोटे परमाणु में भी ऐसा है, प्रभु! आहाहा! अरे..! निगोद के जीव। विज्ञान मान न सके। ऐसा एक पाठ है, सम्प्रदाय में हम कहते थे कि जिसे यथार्थ खबर नहीं है, वह अनेक प्रकार से कलंक लगाते हैं, सत्य को कलंक लगाते हैं। आल समझे? अभ्याख्यान करते हैं-कलंक। ऐसा

नहीं, ऐसा नहीं। ऐसा जिसने बहुत कलंक लगाया है, वह जीव कहाँ जाएगा कि वह जीव है, ऐसा नहीं माननेवाली (गति में जाएगा)। क्योंकि उसने बहुत कलंक लगाया है। वह वहाँ जाएगा कि उसको जीव मान सके नहीं, वहाँ जाएगा। निगोद में जाएगा। आहाहा! भगवान के सिवा कौन कहे यह ?

जो स्वयं को कलंक लगाता है, वह सबको कलंक लगाता है। जो सबको कलंक लगाता है, वह स्वयं को कलंक लगाता है, ऐसा पाठ है। कलंक अर्थात् यह नहीं, यह ऐसा नहीं है। आप कहते हो ऐसा नहीं है। ऐसे सत्य बात को ऐसा नहीं है, (ऐसे ना करके), असत्य बात की हाँ कहकर सत्य को कलंक लगाया, ऐसा सत्य नहीं है, इनकार किया तो वह ऐसे स्थान में जाएगा, उसको दूसरा 'जीव है'—ऐसा मान सके नहीं। उसने सत् को कलंक लगाया है। अपने सत् को दूसरा मान सके, ऐसे स्थान में नहीं जाएगा। आहाहा! समझ में आया ? आहाहा! ऐसी बात है।

द्रव्य उसे कहते हैं... आहाहा! प्रभु आत्मा को ऐसा कहते हैं कि जिसके कार्य के लिये-सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र से लेकर केवलज्ञान तक, अपने निर्मल कार्य के लिये, दूसरे साधनों की (राह देखना न पड़े)। आहाहा! हो, साधन साधन के कारण से हो, परन्तु कार्य के लिये उसकी राह देखना पड़े, ऐसा है नहीं। इसलिए उस साधन का निषेध कर दिया है। आहाहा! अपनी स्वतन्त्रता, कर्ता होकर पर्याय करता है, पर्याय में कर्ता होकर (कार्य करता है)। कर्ता की परिभाषा यह है कि स्वतन्त्रपने करे, सो कर्ता। व्याकरण में है, स्कूल में भी है।

कर्ता उसको कहते हैं,... हमारे चौथी कक्षा में आया था, उस दिन। स्कूल में। बहुत विस्तार है। एक पुस्तक मँगवायी थी। यहाँ बोर्डिंग है न ? उसमें छः बोल का अर्थ दिया है। कर्ता, कर्म, करण। कर्ता उसे कहें कि स्वतन्त्रपने करे, सो कर्ता। जिसको दूसरे की सहायता की अपेक्षा रहे नहीं, उसका नाम कर्ता है। प्रत्येक द्रव्य में एक समय में षट्कारक की परिणति होती है, अनादि-अनन्त। प्रति समय षट्कारक की परिणति—कर्ता, कर्म, करण, सम्प्रदान, अपादान, अधिकरण, एक समय में प्रत्येक द्रव्य की, परमाणु की पर्याय में भी षट्कारक, सिद्ध की पर्याय में षट्कारक। आहाहा! निगोद की पर्याय में षट्कारक

(है)। षट्कारक में पहले कर्ता आता है। षट्कारक आते हैं न? व्याकरण में आते हैं। स्वतन्त्र कर्ता। किसी की अपेक्षा नहीं। आहाहा!

भगवान आत्मा (को) अपनी पूर्ण दशा प्राप्त करने में किसी की अपेक्षा नहीं है। पूर्ण करने में थोड़ी मदद ... आलम्बन मिले, गुरु आदि का, तो आगे बढ़ जाए, ऐसा द्रव्य स्वभाव है नहीं। आहाहा! वाणी में ऐसा कहने में आता है, व्यवहार में, कि गुरु मिले तो सच्ची बात समझ में आवे। सब व्यवहार है। व्यवहार का पार नहीं। आहाहा! यहाँ द्रव्य पर दृष्टि करने से व्यवहार का अन्त आ जाता है। आहाहा! द्रव्य ऐसा है... बहुत गहरी बात है। आहाहा! चाहे तो निगोद में द्रव्य हो, किसी की मदद से वहाँ रहा है, ऐसा नहीं। अपनी पर्याय की स्वतन्त्रता एक समय में कर्ता, कर्म, करण, सम्प्रदान से वहाँ पर्याय हुई है। तो वह कर्ता स्वतन्त्र है। निश्चय से तो कर्ता पर्याय, द्रव्य की अपेक्षा रखती नहीं, परन्तु लक्ष्य हो जाता है। पर्याय का लक्ष्य द्रव्य पर होता है, वह स्वतन्त्रपने होता है। क्या कहा? पर्याय में जो षट्कारक है, उस पर्याय का आश्रय तो द्रव्य है। लक्ष्य तो वहाँ है। परन्तु वह स्वतन्त्र कर्ता होकर लक्ष्य करती है। आहा..! ऐसी बातें। समझ में आया?

अपनी पर्याय में... प्रत्येक द्रव्य। जड़ में भी ऐसी बात है। परमाणु में भी अनन्त-अनन्त गुण पड़े हैं। अनन्त गुण में एक समय की पर्याय होती है। उसमें षट्कारक के परिणमन में दूसरे गुण की पर्याय की भी अपेक्षा नहीं है। आहाहा! प्रभु आत्मा... वह चीज़ है कि नहीं, उसकी तो जड़ को खबर भी नहीं। उसको जाननेवाला आत्मा तो महाप्रभु स्वतन्त्र है। आहाहा! कोई भगवान उसको करता है कि कोई भगवान मिले तो कुछ हो जाए, आहाहा! ऐसा है नहीं।

द्रव्य उसे कहते हैं जिसके कार्य के लिये... कार्य अर्थात् पर्याय। कार्य अर्थात् अवस्था। कार्य अर्थात् द्रव्य की दशा। वर्तमान उसकी दशा। उस दशा-कार्य के लिये **दूसरे साधनों की...** उसके साधन सिवा... क्योंकि द्रव्य में करण / साधन नाम का गुण पड़ा है। प्रत्येक द्रव्य में करण / साधन नाम का गुण पड़ा है। कर्ता, कर्म, करण गुण है। अन्दर गुण पड़े हैं। कर्ता गुण है, कर्म गुण है, करण गुण है। यहाँ पर्याय की बात चलती है। आत्मा में भी एक करण नाम का गुण है। ४७ शक्ति में आता है। करण अर्थात् साधन। अपना

साधन अपने से होता है। अपने साधन में पर के साधन की अपेक्षा नहीं है। आहाहा! ऐसी बात है।

द्रव्य उसे कहते हैं जिसके कार्य के लिये दूसरे साधनों की... आहाहा! यहाँ तो कहे, पर बिना चले नहीं, पर बिना चले नहीं। पैसे बिना सब्जी मिले नहीं, पैसे बिना आहार का दाना मिले नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : बेचारे निमित्त का क्या होगा?

समाधान : निमित्त द्रव्य नहीं है? द्रव्य नहीं है? वह पर की सहायता की (अपेक्षा) नहीं रखता।

कार्य के लिये दूसरे साधनों की राह न देखना पड़े, उसका नाम यहाँ द्रव्य कहते हैं। (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

विक्रम संवत-२०३५, श्रावण शुक्ल - १२, शनिवार, तारीख २३-८-१९८०
वचनामृत- २७९, २८२, २९४, २९५ प्रवचन-१६

विचार, मंथन सब विकल्परूप ही है। उससे भिन्न विकल्पातीत एक स्थायी ज्ञायकतत्त्व, सो आत्मा है। उसमें 'यह विकल्प तोड़ दूँ, यह विकल्प तोड़ दूँ' वह भी विकल्प ही है; उसके उस पार भिन्न ही चैतन्यपदार्थ है। उसका अस्तिपना ख्याल में आये, 'मैं भिन्न हूँ, यह मैं ज्ञायक भिन्न हूँ' ऐसा निरन्तर घोटन रहे, वह भी अच्छा है। पुरुषार्थ की उग्रता तथा उस प्रकार का आरम्भ हो तो मार्ग निकलता ही है। पहले विकल्प नहीं टूटता परन्तु पहले पक्का निर्णय आता है॥२७९॥

वचनामृत। २७९। प्रभु कहते हैं, प्रभु! विचार चले न, और **मंथन सब विकल्परूप ही है।** दूसरी चीज़ का तो सम्बन्ध है नहीं। शरीर, वाणी, मन का भी सम्बन्ध तो है नहीं। परन्तु अन्दर आत्मा का मंथन चले, विचार चले, वह भी विकल्प है, राग है, आहाहा! विचार और मंथन सब विकल्परूप ही है। विकल्परूप ही है। आत्मा को लाभ का कारण नहीं। आहाहा!

उससे भिन्न विकल्पातीत... अन्दर भगवान विकल्प अर्थात् राग की कल्पना के भाव, असंख्य प्रकार की चिन्ताओं के विकल्प, उससे भगवान अन्दर भिन्न है। विकल्पातीत, विकल्प से अतीत है। **एक स्थायी ज्ञायकतत्त्व,...** एक स्थायी अर्थात् नित्य। स्थायी, स्थिर, नित्य, एकरूप नित्य प्रभु **ज्ञायकतत्त्व, सो आत्मा है।** आहाहा! यहाँ तक जाना, प्रभु! तब जन्म-मरण का अन्त आवे। आहा..! जन्म-मरण कर-करके अनन्त अवतार (किये)। आहाहा! निगोद के अवतार अन्तर्मुहूर्त में ६६००० बार। ओहोहो! वैराग्य, वैराग्य, वैराग्य आये। अंतर्मुहूर्त में निगोद के भव। एक शरीर में अनन्त और असंख्य भाग में। अन्तर्मुहूर्त में ६६३३६ भव अन्तर्मुहूर्त में किये। प्रभु! ऐसे तो अनन्त बार किये।

आहाहा ! तेरी सूझ नहीं की। मैं कौन हूँ ? मैं क्या हूँ ? उसकी सूझ बूझ नहीं ली। आहाहा ! **विकल्पातीत एक स्थायी ज्ञायकतत्त्व,...** एक स्थायी स्थिर बिम्ब नित्यानन्द अचल अर्थात् चले नहीं, बदले नहीं, जिसमें पर्याय नहीं है, ऐसा अचल बिम्ब आत्मा, **सो आत्मा है।** आहाहा !

नियमसार में ३८ वीं गाथा है, उसमें भी यही है। प्रभु ! तू आत्मा कौन है ? विकल्प तो नहीं, परन्तु पर्याय भी नहीं। ३८वीं गाथा में ऐसा कहा है। निश्चय ध्रुव स्वरूप भगवान अनादि-अनन्त एकरूप, चौरासी (लाख) योनि में घूमा, फिर भी जिसका एकरूप कभी पलटा नहीं, ऐसी स्थायी चीज़, ऐसी नित्य अविनाशी चीज़ प्रभु तू (है) । आहाहा ! वहाँ उसे आत्मा कहा। ३८ वीं गाथा में एक त्रिकाली को आत्मा कहा, पर्याय को नहीं। वह यहाँ कहा। आहाहा !

एक स्थायी ज्ञायक तत्त्व, सो आत्मा है। आहाहा ! आत्मा तो यह है। इसकी दृष्टि करने से सम्यग्दर्शन, सत्य वस्तु जैसी है, ऐसे दर्शन की प्रतीति होती है। सत्य वस्तु जैसी-जैसी जैसे है, उसकी अन्दर दृष्टि करने से सम्यक् अर्थात् सत्य जैसा है, वैसी प्रतीति उत्पन्न होती है। धर्म की शुरुआत वहाँ से है। आहाहा ! इसके सिवा दूसरे उपाय चाहे जितने करे, मंथन और... आहाहा ! विचार और मंथन।

कलश टीका में लिया है, कलश टीका है, उसमें यह लिया है। विचार और मंथन आदि भी राग है। आहाहा ! प्रभु ! तू तो निरागी ज्ञायकस्वरूप है न, प्रभु ! अकेला चैतन्यबिम्ब, चैतन्यबिम्ब। उसमें तो पर्याय का भी अभाव है। उसको यहाँ निश्चय आत्मा कहते हैं। ३८ (गाथा में) लिया, वही यहाँ बहिन ने कहा। निश्चय है, वही आत्मा है। विकल्पातीत.. आहाहा ! और वह स्थायी। पर्याय बिना का स्थायी। आहाहा ! ऐसा स्थायी, यह ज्ञायकतत्त्व, सो आत्मा है। आहाहा ! दूसरे का करना अथवा दूसरे से कुछ लेना, यह तो उसमें है नहीं, परंतु अपने में अपना विचार और मंथन चले, वह विकल्प भी उसमें है नहीं। ऐसा आत्मा जो है, वह स्थायी है, स्थिर है, नित्य है, अविनाशी, अचल, शाश्वत वस्तु पड़ी है। आहाहा !

उसमें 'यह विकल्प तोड़ दूँ,... उसमें,... आत्मा ऐसा दृष्टि में लेकर निश्चय आत्मा.. कठिन बात तो है, प्रभु ! परन्तु मार्ग तो यह है, भाई ! आहाहा ! चँवरेजी नहीं आये हैं ? राजकोट गये हैं। आहाहा ! **'यह विकल्प तोड़ दूँ, यह विकल्प तोड़ दूँ' वह भी**

विकल्प ही है;... आहाहा! स्थायी चीज़ में स्थिर नित्यानन्द प्रभु, उसमें विकल्प आता है कि मैं आत्मा हूँ या मैं ज्ञायक हूँ—ऐसा विकल्प, उसे तोड़ दूँ, वह भी विकल्प है। आहाहा! क्योंकि विकल्प तोड़ने में पर्याय पर दृष्टि जाएगी। अपना शुद्ध प्रभु में से हट जाएगा और पर्याय में आ जाएगा। आहाहा! ऐसा आत्मा।

ऐसा आत्मा सुना भी न हो, वह कब प्राप्त करे? महाप्रभु पर्याय बिना की जो वस्तु है; राग तो नहीं, विकल्प तो नहीं, परन्तु पर्याय बिना की चीज़ है। क्योंकि पर्याय तो निर्णय करना है। पर्याय में पर्याय से ध्रुव का निर्णय करना है। तो जिसमें निर्णय करना है, वह चीज़ अन्दर में नहीं है। आहाहा! ऐसी कठिन बात है, प्रभु! आहाहा!

'यह विकल्प तोड़ दूँ' वह भी विकल्प ही है;... आहाहा! **उसके उस पार भिन्न ही चैतन्यपदार्थ है।** उसके उस पार—विकल्प के पार। आहाहा! **भिन्न ही चैतन्यपदार्थ है।** अन्दर भगवान चैतन्यपदार्थ तो विकल्प से भिन्न ही है। उसे पकड़े बिना, उसकी अनुभूति-अनुभव हुए बिना उसका सम्यग्दर्शन होता नहीं। आहा..! सम्यग्दर्शन बिना धर्म की शुरुआत-प्रारम्भ भी होता नहीं। आहाहा! ऐसी चीज़ भगवान तेरी चीज़ तू ऐसी है। आहा! **उसका अस्तिपना ख्याल में आये,...** उसका अस्तिपना है, मौजूद है, स्थायी है, स्थिर है, नित्य है—ऐसा अस्तिपना ख्याल में आये **'मैं भिन्न हूँ,...** मैं तो राग से भी भिन्न हूँ और पर्याय से भिन्न हूँ। **यह मैं ज्ञायक भिन्न हूँ।** आहाहा! **ऐसा निरन्तर घोटन रहे...** आहाहा! समय कहाँ मिलता है? यहाँ तो कहते हैं, निरन्तर घोटन रहे। आहाहा! क्योंकि भगवान आत्मा निरन्तर नित्य है, तो नित्य में पहुँचने के लिये निरन्तर घोटन चाहिए। आहाहा! समझ में आया? प्रभु नित्य है, अविनाशी अविचल है। तो उसको प्राप्त करने में निरन्तर उसका घोटन (चाहिए)। विकल्प नहीं, उसके सन्मुख घोटन (चलना)। आहाहा!

निरन्तर घोटन रहे, वह भी अच्छा है। अन्तर सन्मुख होकर उसका रटन रहे, वह भी अच्छा है। उसका ही रटन। विकल्प का भी रटन छोड़ दे। आता है, व्यवहार है, परन्तु वह आदरणीय नहीं। व्यवहार तो समस्त लोकालोक, अपने सिवा सब चीज़ व्यवहार है। निश्चय में तो उसकी पर्याय भी व्यवहार है न! आहाहा! वह तो त्रिकाली भगवान अनन्त नित्य अविनाशी अविचल गुण का खजाना है। **उसको मैं ज्ञायक भिन्न हूँ' ऐसा निरन्तर घोटन रहे, वह भी अच्छा है।**

पुरुषार्थ की उग्रता... पुरुषार्थ की उग्रता। वीर्य को स्वभाव-सन्मुख करना, वीर्य-पुरुषार्थ जो पर सन्मुख अनादि से रहा है, उस पुरुषार्थ को स्वसन्मुख करना। **पुरुषार्थ की उग्रता तथा उस प्रकार का आरम्भ हो तो मार्ग निकलता ही है।** आत्मा प्राप्त होता ही है। उस प्रकार का निरन्तर रटन रहे और प्राप्त न हो, ऐसा है नहीं। परन्तु इस प्रकार प्राप्त होता है, दूसरे प्रकार से प्राप्त होता नहीं। आहाहा! **उस प्रकार का आरम्भ हो तो मार्ग निकलता ही है। पहले विकल्प नहीं टूटता...** आहाहा! **परन्तु पहले पक्का निर्णय आता है।** अखण्डानन्द प्रभु अनन्त गुण की राशि, ऐसा पक्का निर्णय आता है। निर्णय बिना विकल्प टूटे नहीं। आहाहा! करना है तो यह है। लाख बात की बात अन्तर आणो, छोड़ी जगत द्वन्द्व-फन्द एक निज आतम ध्यावो। निज आतम ध्यावो - ऐसा कहा। वह यहाँ कहा। पहले पक्का निर्णय आता है। आहाहा! २७९ पूरा हुआ।

यह जो बाह्य लोक है, उससे चैतन्यलोक पृथक् ही है। बाह्य में लोग देखते हैं कि 'इन्होंने ऐसा किया, ऐसा किया', परन्तु अन्तर में ज्ञानी कहाँ रहते हैं, क्या करते हैं, वह तो ज्ञानी स्वयं ही जानते हैं। बाहर से देखनेवाले मनुष्यों को ज्ञानी बाह्य में कुछ क्रियाएँ करते या विकल्पों में पड़ते दिखायी देते हैं, परन्तु अन्तर में तो वे कहीं चैतन्यलोक की गहराई में विचरते हैं॥२८२॥

२८२। **यह जो बाह्य लोक है,...** विकल्प से लेकर जो बाह्य लोक है, **उससे चैतन्यलोक पृथक् ही है।** बाह्य लोक से चैतन्यलोक पृथक् ही है। आहाहा! बाह्य लोक में चैतन्य एकमेक होता नहीं और चैतन्य में वह एकमेक आता नहीं। ऐसा ही है। राग और भगवान आत्मा के बीच साँध है-सन्धि है। तड... तड हमारी काठियावाड़ी भाषा में तड़ कहते हैं। (दरार)। दरार है तो अन्दर जाती है। आहाहा! राग और आत्मा के बीच सन्धि है, प्रभु! उसमें सन्धि कर। आहाहा! **चैतन्यलोक पृथक् ही है।**

बाह्य में लोग देखते हैं कि 'इन्होंने ऐसा किया,... बाहर की क्रिया देखे, उन्होंने यह किया, वह किया, यह छोड़ा, कपड़े छोड़े, खाना छोड़ा, रस छोड़ा, खाने में एक चीज़ खाते हैं, दूसरी छोड़ते हैं, वह सब बाह्य की बात है। वह कोई चीज़ से आत्मा की प्राप्ति होती है, ऐसा है नहीं। आहाहा! **बाह्य में लोग देखते हैं कि 'इन्होंने ऐसा किया, ऐसा**

किया',... स्त्री छोड़ दी, कुटुम्ब छोड़ दिया, दुकान छोड़ दी, धन्धा छोड़ दिया, उसमें क्या हुआ? प्रभु! विकल्प छोड़ दिया, ऐसा जब तक नहीं आये, तब तक कुछ छूटा नहीं। आहाहा!

परन्तु अन्तर में ज्ञानी कहाँ रहते हैं,... आहाहा! अन्तर में भगवान आत्मा जानने में-ज्ञान में, अनुभव में आया तो धर्मी अन्दर में कहाँ रहते हैं, क्या करते हैं, आहाहा! अन्तर की बात लोग नहीं जान सकते। आहाहा! बाह्य में तो चक्रवर्ती का राज है। अन्दर में भिन्न है। अन्दर में राग से भिन्न है। आहाहा! **'इन्होंने ऐसा किया, ऐसा किया', परन्तु अन्तर में ज्ञानी कहाँ रहते हैं,...** आहा..! सम्यग्दृष्टि-ज्ञानी, जिसने आत्मा का पता ले लिया, निर्विकल्प आत्मा विकल्प से पार, पर्याय में भी उससे पार, परन्तु पर्याय में निर्णय कर लिया। निर्णय तो पर्याय में होता है। वस्तु पर्याय से पार है। आहाहा! जिसका निर्णय करना है और जो निर्णय करता है, दोनों वस्तु भिन्न हैं। आहाहा! बहुत कठिन बात, प्रभु! निर्णय करती है पर्याय; निर्णय करने लायक ध्रुव। आहाहा! दो चीज़ भिन्न हैं। आहाहा! **अन्तर में ज्ञानी कहाँ रहते हैं, क्या करते हैं, वह तो ज्ञानी स्वयं ही जानते हैं।** धर्मी को खबर पड़े कि मैं कहाँ हूँ। बाहर के साधारण प्राणी बाह्य चेष्टा देखने से अनुमान कर ले कि यह ऐसा है। ऐसा है नहीं। आहाहा!

बाहर से देखनेवाले मनुष्यों को ज्ञानी बाह्य में कुछ क्रियाएँ करते या विकल्पों में पड़ते दिखायी देते हैं,... आहाहा! अन्तर में विकल्प से रहित निरन्तर ज्ञानधारा (चलती है)। भेदज्ञान हुआ बाद में भेदज्ञान करना नहीं पड़ता। वह शुरु हो गया। राग से भिन्न हुआ तो भिन्न ही रहेगा। अन्दर में क्या होता है (वह ज्ञानी ही जानते हैं)। **ज्ञानी बाह्य में कुछ क्रियाएँ करते या विकल्पों में पड़ते दिखायी देते हैं, परन्तु अन्तर में तो वे कहीं चैतन्यलोक की गहराई में विचरते हैं।** आहाहा! बाहर में विकल्प में दिखते हैं। बाह्य क्रिया करते दिखाई देते हैं, परन्तु अन्तर में.. आहाहा! चैतन्यलोक की गहराई में (विचरते हैं)। चैतन्यलोक अन्दर भगवान, उसकी गम्भीरता, उसकी गहनता.. आहाहा! ज्ञानी उसमें विचरते हैं। उसका पता बाह्य क्रियाकाण्डवाले को नहीं होता। बाह्य से देखता है कि इसने इतना त्याग किया, इसने त्याग नहीं किया, इसने किया,.. इसने यह किया.. आहाहा!

ज्ञानी को तो कदाचित् चारित्रमोह के उदय में कोई दोष भी आता है। परन्तु अन्दर में क्या है ? आहाहा ! अन्दर में आनन्द में रमते हैं। आहाहा ! बाह्य की क्रिया भिन्न रह जाती है, विकल्प की क्रिया भी भिन्न रहती है। आहाहा ! अन्दर में राग से, विकल्प से भिन्न ज्ञान में काम लेते हैं, वह बाहरवाले को दिखाई नहीं देता। आहाहा ! बहुत सूक्ष्म बात, भाई ! मूल बात तो यह है।

चैतन्यलोक की गहराई में विचरते हैं। चैतन्यलोक की गम्भीरता, अनन्त गुण की गम्भीरता में धर्मी तो विचरते हैं। बाह्य क्रिया देखनेवाले को पता नहीं चलता। आहाहा ! बाह्य क्रिया देखे, चारित्रमोह के उदय में जुड़ जाए, चारित्रदोष आ जाए, परन्तु अन्दर में क्या करते हैं... आहाहा ! कठिन बात है। ९६ हजार स्त्री चक्रवर्ती को। फिर भी अन्दर में क्या करते हैं ? सबसे भिन्न। उस ओर के विकल्प से भी भिन्न काम करते हैं। आहाहा ! भिन्न काम जो अन्दर शुरु हो गया, वह क्या चीज़ है, उसका अज्ञानी पता नहीं लेता, अज्ञानी जान नहीं सकते। आहा..! बाह्य की क्रिया, कैसे निवृत्ति ली है, ऐसे पर उसका लक्ष्य है। **चैतन्यलोक की गहराई में विचरते हैं।** २८२ (पूरा हुआ)।

ज्ञानी को 'मैं ज्ञायक हूँ' ऐसी धारावाही परिणति अखण्डित रहती है। वे भक्ति-शास्त्रस्वाध्याय आदि बाह्य प्रसंगों में उल्लासपूर्वक भाग लेते दिखायी देते हैं, तब भी उनकी ज्ञायकधारा तो अखण्डितरूप से अन्तर में भिन्न ही कार्य करती रहती है॥२९४॥

यद्यपि दृष्टि-अपेक्षा से साधक को किसी पर्याय या गुणभेद का स्वीकार नहीं है...

मुमुक्षु :- ऊपर-ऊपर... मुमुक्षु को... २९४

पूज्य गुरुदेवश्री :- २९४...

२९४। दो सौ चौरानवे कहते हैं न ? **ज्ञानी को 'मैं ज्ञायक हूँ' ऐसी धारावाही परिणति अखण्डित रहती है।** मैं ज्ञायक हूँ, यह दृष्टि और परिणति अखण्डित रहती है। किसी भी प्रसंग में बाह्य में आ जाओ, परन्तु अन्दर की दृष्टि टूटती नहीं। **ज्ञानी को 'मैं**

ज्ञायक हूँ' ऐसी धारावाही... धारावाही ज्ञानधारा। वह आत्मा है न कलश में? दो धारा साथ में चलती है। जब तक कर्म से भिन्न हो, ज्ञानधारा और कर्मधारा (दो धारा चलती है)। अन्दर आत्मा का ज्ञान का आनन्द, वह भी चले और राग का दोष हो, वह भी चले। (जब तक) वीतराग न हो जाए। परन्तु अन्दर में राग से भिन्न काम कैसे करते हैं, उसे लोग नहीं देख सकते। राग और राग की क्रिया देखते हैं। आहाहा! ऐसा स्वभाव। आहाहा! **ऐसी धारावाही परिणति अखण्डित रहती है।**

वे भक्ति-... भगवान की भक्ति, **शास्त्रस्वाध्याय आदि बाह्य प्रसंगों में उल्लासपूर्वक भाग लेते...** हैं। आहा..! बाहर में दिखे कि उल्लासपूर्वक भाग लेते हैं। **दिखायी देते हैं,... उल्लासपूर्वक भाग लेते दिखायी देते हैं,...** आहाहा! **तब भी उनकी ज्ञायकधारा...** आहा..! अन्दर में ज्ञायक-ज्ञानधारा जो आनन्दधारा प्रगट हुई है, वह अखण्डितरूप से अन्तर में, **अखण्डितरूप से अन्तर में भिन्न ही कार्य करती रहती है।** आहाहा! देह की क्रिया भी होती है, विकल्प भी दिखता है, परन्तु अन्दर में उससे भिन्न काम करते हैं। आहाहा! धर्मी की दृष्टि ध्रुव द्रव्य पर होती है। आहाहा! ध्रुव के अवलम्बन में ध्रुव का खेल खेलती है। आहाहा! पर ऊपर का लक्ष्य होने के बावजूद अन्तर में से छूट गया है। आहाहा! बाहर की क्रिया और विकल्प होने पर भी अन्तर में से छूट गया है। आहाहा! यह बात कौन जाने? बाहर देखनेवाला बाहर देखे। आहाहा!

एक जंगल में रहता है, कपड़े का टुकड़ा नहीं, बोलता नहीं, मौन रहता है और एक ज्ञानी लड़ाई में खड़ा हो, अब दोनों में भेद कैसे देखना? भले जंगल में अकेला रहता हो, परन्तु अन्दर विकल्प में एकता है। सब छोड़ दिया, परन्तु अन्दर विकल्प की एकता है तो मिथ्यात्व है। और यह लड़ाई में है, विकल्प की एकता टूट गयी है तो लड़ाई में भी वह समकिती है। क्षायिक समकिती है। आहाहा! कठिन बात। बाहर से नाप निकलना कठिन है। अन्तर की चीज़ का बाहर से नाप आना कठिन है। बाहर की चीज़ अन्दर में नहीं और अन्दर की चीज़ बाह्य में नहीं। आहाहा! दोनों भिन्न-भिन्न काम करती है। ऐसा नहीं देखता और बाहर से देखता है, वह ज्ञानी की पहिचान नहीं कर सकता। आहाहा! **अखण्डितरूप से अन्तर में भिन्न ही कार्य करती रहती है।** आहाहा!

यद्यपि दृष्टि-अपेक्षा से साधक को किसी पर्याय का या गुणभेद का स्वीकार नहीं है, तथापि उसे स्वरूप में स्थिर हो जाने की भावना तो वर्तती है। रागांशरूप बहिर्मुखता उसे दुःखरूप से वेदन में आती है और वीतरागता-अंशरूप अन्तर्मुखता सुखरूप से वेदन में आती है। जो आंशिक बहिर्मुख वृत्ति वर्तती हो, उससे साधक न्यारा का न्यारा रहता है। आँख में किरकिरी नहीं समाती; उसी प्रकार चैतन्यपरिणति में विभाव नहीं समाता। यदि साधक को बाह्य में—प्रशस्त-अप्रशस्तराग में—दुःख न लगे और अन्तर में—वीतरागता में—सुख न लगे तो वह अन्तर में क्यों जाये ? कहीं राग के विषय में 'राग आग दहै' ऐसा कहा हो, कहीं प्रशस्तराग को 'विषकुम्भ' कहा हो, चाहे जिस भाषा में कहा हो, सर्वत्र भाव एक ही है कि—विभाव का अंश, वह दुःखरूप है। भले ही उच्च में उच्च शुभभावरूप या अतिसूक्ष्म रागरूप प्रवृत्ति हो, तथापि जितनी प्रवृत्ति, उतनी आकुलता है और जितना निवृत्त होकर स्वरूप में लीन हुआ, उतनी शान्ति एवं स्वरूपानन्द है॥२९५॥

२९५। **यद्यपि दृष्टि-अपेक्षा से साधक को किसी पर्याय का...** आहाहा! कोई भी पर्याय का **या गुणभेद का स्वीकार नहीं है,...** सूक्ष्म बात है, भगवान! दृष्टि जहाँ आत्मा की हुई, सम्यक् अनुभव (हुआ), उसको... आहाहा! **दृष्टि-अपेक्षा से साधक को किसी पर्याय का...** किसी पर्याय का। अपनी कोई भी पर्याय हो, किसी पर्याय का **या गुणभेद का स्वीकार नहीं है,...** आहाहा! क्योंकि अभेद पर दृष्टि पड़ी है। अभेद में दृष्टि का विषय अन्दर में से ले लिया है। दृष्टि का विषय अभेद अन्दर में ले लिया है। अतीन्द्रिय आनन्द की धारा चलती है। आहाहा! **दृष्टि-अपेक्षा से साधक को किसी पर्याय का...** कोई पर्याय का। आहाहा! **या गुणभेद का...** ओहोहो! आत्मा आनन्द है, अनन्त ज्ञान है, भगवान उसका धरनेवाला है, गुणी का गुण है और गुण गुणी का है,.. आहा... ! ऐसे भेद का भी स्वीकार नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु :- चमत्कारिक बात है।

पूज्य गुरुदेवश्री :- चमत्कारिक बात है। वचनामृत। आहाहा!

अनुभव में से बात बाहर निकल गयी है, बाहर आ गयी है। जगत को रुचे, न रुचे स्वतन्त्र है। बात कोई अलौकिक है ! कहा न ?

यद्यपि दृष्टि-अपेक्षा से साधक को... साधक को **किसी पर्याय का...** कोई भी पर्याय का पक्ष नहीं है। **या गुणभेद का स्वीकार नहीं है,...** पर्याय का और गुणभेद का। ओहोहो ! दृष्टि तो त्रिकाली अभेद में एकाकार हो गयी है। एकाकार का अर्थ उस ओर झुक गयी है। पर्याय और द्रव्य एक होते नहीं। उस ओर झुक गयी तो उसको एकाकार कहने में आता है। आहाहा ! एक पर्याय अन्दर में झुक गयी तो (भी) द्रव्य पर्याय को स्वीकारता नहीं। आहाहा !

तथापि उसे स्वरूप में स्थिर हो जाने की भावना तो वर्तती है। तथापि धर्मी को.. आहाहा ! स्वरूप में स्थिर होने की भावना तो वर्तती है। तथापि **रागांशरूप बहिर्मुखता उसे दुःखरूप से वेदन में आती है...** आहा.. ! उसको राग दुःखरूप लगता है। महाव्रत का परिणाम, परमात्मा की भक्ति में उल्लास दिखे, आठवें द्वीप में नन्दीश्वर में इन्द्र जाते हैं। घुँघरू बाँधकर नाचते हैं। बाहर की क्रिया दुनिया देखे, परन्तु अन्दर में उसको कोई सम्बन्ध नहीं है। आहाहा ! एकावतारी है। शक्रेन्द्र ३२ लाख विमान का स्वामी। एक पर्याय का भी स्वामी नहीं है। एक पर्याय का भी स्वीकार नहीं। पर्याय ने द्रव्य का स्वीकार किया तो अब पर्याय का स्वीकार नहीं है। आहाहा ! सूक्ष्म बात है। अन्तर की बात है।

स्वरूप में स्थिर हो जाने की भावना तो वर्तती है। रागांशरूप बहिर्मुखता... आहाहा ! राग का अंश आता है। चारित्र का दोष होता है। आहाहा ! समकिती को क्षायिक समकिती श्रेणिक राजा। उसका पुत्र जेल में से छुड़ाने आया। हाथ में हथियार लेकर तोड़ने को आया। उन्हें शंका हुई। है सम्यग्ज्ञानी, है क्षायिक समकिती। वहम पड़ गया कि यह मुझे मारने आ रहा है। आहाहा ! फिर भी वह ज्ञान मिथ्याज्ञान नहीं है। समझ में आया ?

कोणिक आता है, उसका लड़का कोणिक। कोणिक जब गर्भ में था तो बुरे (सपने) आते थे, उसकी माता को बुरे स्वप्न आते थे। श्रेणिक राजा का कलेजा खा जाऊँ। ऐसे। श्रेणिक राजा की रानी को बालक आया। उसे लगा, ऐसा स्वप्न आया तो उसके पिताजी को क्या करेगा ? जैसा आया वैसा, कचरे के ढ़ेर में डाल दिया। आहाहा ! श्रेणिक राजा आते हैं। क्या हुआ ? बालक कहाँ है ? प्रसव हो गया है। बालक को मैंने कचरे के

ढ़ेर में... हमारी भाषा उकरडा, उसमें फैंक दिया है। क्योंकि जब वह (गर्भ में) था, तो आपका कलेजा खाने का स्वप्न आया था। आपका कलेजा खाना है, ऐसा सपना आता था। तो भी श्रेणिक राजा... अन्दर में तो क्षायिक समकित पड़ा है। आहाहा! बाहर से... अरे..! कहाँ लड़का पड़ा है? कचरे के ढ़ेर में। वहाँ गये, वहाँ गये। उठा लिया बालक को। बालक तो अभी ताजा था। वहाँ मुर्गा था। चोंच मारी होगी। परु हो गया। पीड़ा.. पीड़ा... पीड़ा। बालक रोता था। एक दिन का बालक था। रोता था। पिताजी... आहाहा! क्षायिक समकिती। क्रिया ऐसी दिखे। आहा..! उसका हाथ चूसते थे। अरेरे! इस बच्चे को ऐसा दुःख! उसकी स्त्री को सपना आया था, वह भूल गया। रोता है तो छोड़ दे। यह बालक अभी दुःखी है। आहाहा! मुर्गे ने चोंच मारी है तो अंगुली में मवाद हो गया है, खून में मवाद हो गया है। तो स्वयं चूसते हैं, खून चूसते हैं। आहाहा! कोई देखे कि अरेरे! इतना प्रेम! बालक को इतना प्रेम! जिसका मवाद चूसते हैं। प्रभु! वह क्रिया भिन्न है। हों! आहाहा! अन्तर की क्रिया भिन्न है। आहाहा! अन्तर में तो क्षायिक समति है कि जिस समकित को ठेठ केवलज्ञान में ले जाना है। वही समकित सिद्ध में जाएगा। आहा...!

उसकी यह क्रिया देखकर अज्ञानी को ऐसा लगे, यह क्या करते हैं? परन्तु वह क्रिया होनेवाली हो तो हो, अन्तर्दृष्टि तो आत्मा पर-आनन्द पर है, वह किसी को स्वीकारती नहीं। विकल्प को चूसने की क्रिया को स्वीकार नहीं करती। वह क्रिया मेरी नहीं और मैं कर्ता नहीं। आहाहा! चूसने की क्रिया होती है तो वह क्रिया मेरी नहीं और मैं कर्ता नहीं। आहाहा! ऐसी अन्दर में क्षायिक समकित में परिणति निरन्तर धारा बहती है। आहा..! अन्तर धारा और बाहर की क्रिया में बहुत अन्तर है। ज्ञानधारा भिन्न है।

यह कहते हैं, **रागांशरूप बहिर्मुखता उसे दुःखरूप से वेदन में आती है...** ज्ञानी को भी... यह बात बैठती नहीं थी न, दीपचन्दजी सेठिया। सरदारशहर। यहाँ बारह महीने में एक बार आठ दिन आये। उसमें सोगानी का पढ़ा। सोगानी का द्रव्यदृष्टि प्रकाश। उनको सहन नहीं हुआ। ये कौन जागा? ये तो शुभभाव को भी दुःख कहते हैं। उसमें ऐसा हो गया कि ज्ञानी को दुःख होता ही नहीं, दुःख वेदे, वह ज्ञानी नहीं। ऐसी दृष्टि बदल गयी। आहा..! विरोध हो गया था। ज्ञानी को दुःख है ही नहीं। यहाँ बहिन काती है, ज्ञानी को **रागांशरूप बहिर्मुखता उसे दुःखरूप से वेदन में आती है...** जितना राग है, इतना दुःख

है। तीन कषाय गया नहीं। श्रेणिक राजा को क्षायिक समकित है। एक कषाय गयी है। तीन कषाय नहीं गये हैं तो तीन कषाय का दुःख है। आहाहा! भले उसे भिन्न जानते हैं, परन्तु वेदन में है। जितना कषाय गया, उतना आनन्द का वेदन है। आहाहा! जितना कषाय रहा, उतना दुःख का वेदन है। समकिती को दो वेदन है।

बड़ी चर्चा दीपचन्दजी से विरोध हो गया था। दीपचन्दजी... भाई ने कहा था न। सोगानी। समकिती को शुभभाव भी दुःखरूप लगता है। वह उन्हें नहीं जँचा। यहाँ बारह महीने में आठ दिन आते थे। प्रेम बहुत था। परन्तु आखिर में द्रव्यदृष्टि (प्रकाश) देखकर फेरफार हो गया। ज्ञानी को दुःख होता ही नहीं। दुःख वेदे, वह तीव्र कषाय है-ऐसा कहते थे। यहाँ तो रागांश है, ऐसा कहते हैं। तीव्र कषाय नहीं। तीव्र कषाय तो समकिती को गया है। अनन्तानुबन्धी तो गया है। आहाहा!

रागांशरूप बहिर्मुखता उसे दुःखरूप से वेदन में आती है... दुःखरूप दिखता है। आहाहा! कोई चीज़ दुःखरूप नहीं लगती। चीज़ पर लक्ष्य जाता है, वह दुःखरूप लगता है। चीज़ को तो छूते भी नहीं। एक चीज़ दूसरी चीज़ को छूती नहीं। वह तो तीसरी गाथा में आया। समयसार। एक द्रव्य दूसरे द्रव्य को कभी चूमता नहीं, छूता नहीं, स्पर्श करता नहीं, प्रवेश करता नहीं, स्पर्शता नहीं। आहाहा! फिर भी धर्मी-समकिती को कमजोरी से चारित्र का दोष आता है। वह दुःख का वेदन है। आहाहा! एक ओर आनन्द का वेदन है, एक ओर दुःख का वेदन है। आहाहा! गजब बात, प्रभु! तीर्थंकर त्रिलोकनाथ परमात्मा के अभिप्राय का हृदय कोई अलौकिक है! दुनिया में कहीं नहीं है। आहा..! ऐसी चीज़ है।

यहाँ कहा, रागांश लिया न? क्योंकि समकिती तो है। वह तो कहा। दृष्टि अपेक्षा से तो कहा है। साधक तो लिया है। साधक तो है। **किसी पर्याय का या गुणभेद का स्वीकार नहीं है,...** इतना स्वीकार नहीं है, फिर भी **तथापि...** तो भी। आहाहा! **उसे स्वरूप में स्थिर हो जाने की भावना तो वर्तती है। तथापि रागांशरूप बहिर्मुखता...** आहाहा! चारित्रदोष दूसरी चीज़ है, समकित चीज़ दूसरी है। एक गुण का दोष यदि दूसरे गुण को करे तो गुण उत्पन्न होता ही नहीं। चारित्र का दोष समकित को बिल्कुल अवरोध नहीं करता। आहाहा! वह अस्थिरता का दोष है, समकित में पूरे चैतन्य का अन्दर से आदर हुआ है। पूर्णानन्द का नाथ का आदर है। वहाँ राग का अंश आता है। आदर नहीं, स्वीकार

नहीं, फिर भी वेदन है। आहाहा! क्योंकि अपनी पर्याय में है न। दूसरे में नहीं होता। आहाहा!

रागांशरूप बहिर्मुखता उसे दुःखरूप से वेदन में आती है... आहाहा! श्रेणिक राजा लड़के को चूसते हैं, उस समय जो राग आया है, उसको दुःख का वेदन है। आहाहा! आत्मा का भाव तो है ही, परन्तु चूसते समय राग है। धन्नालालजी! राग का वेदन है। आहाहा! तीर्थंकर होंगे। अभी भी तीर्थंकरगोत्र बाँधते हैं। नरक में भी तीर्थंकरगोत्र समय-समय में बाँधते हैं। यहाँ से शुरु हो गया है। वहाँ से निकलेंगे, तब तक बाँधेगे। आहाहा! और माता के पेट में आयेंगे... आहाहा! इन्द्र, उनका आना ख्याल में है, तो इन्द्र माता के पेट को साफ करते हैं। जैसे कोई बड़ा आदमी आये तो जमीने आदि साफ करते हैं, वैसे इन्द्र... आहाहा! इन्द्र भी समकिती है, एकावतारी है, अभी, अभी। आहाहा! श्रेणिक राजा अभी चौथे गुणस्थान में है। तीर्थंकर होनेवाले हैं। माता के पेट में आनेवाले हैं तो माता का पेट साफ करते हैं। जैसे सिंहासन साफ करे, वैसे। सवा नव महीने... आहाहा!

माता के पेट में क्षायिक समकिती तीर्थंकर का जीव, बाहर निकलकर तीर्थंकर होंगे, आहाहा! अभी जन्म होगा, तब इन्द्र आकर माता को पाद वन्दन करेगा। जनेता! माता! तुझे पहले नमस्कार! ऐसे पुत्र को जन्म दिया। ऐसा पाठ है। आहाहा! जगत का कल्याण करने में निमित्त होंगे। ऐसे पुत्र को माता! तूने जन्म दिया। जनेता! तू उनकी जनेता नहीं, तू पूरे जगत की माता है। आहाहा! माता! तुझे हम नमस्कार करते हैं। बाद में पुत्र को नमस्कार करते हैं। आहाहा! ऐसी चीज़ में दर्शन भिन्न है, दोष भिन्न है। श्रेणिक को भी भिन्न है, इन्द्र को भी भिन्न है। आहाहा! इन्द्र भी समकिती है। शास्त्र में लेख है, वहाँ से निकलकर मोक्ष जाता है। आहाहा!

यह कहा था न एक बार? भगवान जब मोक्ष पधारे, (तब) भरत अष्टापद पर्वत पर भरत गये। ऐसे देखा तो जीवरहित। आँख में आँसू की धारा चली। पिता को देखकर, देह छूट गया, आँसू की धारा (चलती है)। इन्द्र आया। इन्द्र भी साथ में था। भैया! क्या करते हो? क्या है? क्यों रोते हो? आपका अन्तिम देह है, मुझे तो अभी एक देह धारण करना है। देव कहते हैं, अभी तो मुझे एक देह धारण करना है। तेरा तो यह अन्तिम देह है। इन्द्र! सब ख्याल में है। ऐसा कहा। सब ख्याल में है, बापू! परन्तु राग का काम राग करता है,

हमारा काम हम करते हैं। ये दो चीज़ की भिन्नता जानना। आहाहा! सम्यग्दर्शन और राग, एक समय में दोनों होते हैं। उसका वेदन भी है। वेदन नहीं है, ऐसा नहीं। वेदन करे, इसलिए तीव्र कषायवन्त है, ऐसा है नहीं।

रागांशरूप बहिर्मुखता उसे दुःखरूप से वेदन में आती है और वीतरागता-... साथ में वीतरागता है, उतने **अंशरूप अन्तर्मुखता सुखरूप से वेदन में आती है।** एक समय में एकसाथ। आहाहा! साधक जीव को, साधक को कहा न? ऊपर साधक। **दृष्टि-अपेक्षा से साधक को...** ऐसा आया है। अपने स्वभाव सन्मुख का आनन्द भी है और राग भी आता है, क्रियाकाण्ड का अनेक प्रकार का, उसका दुःख भी है। आहाहा! दोनों एकसाथ हैं।

मिथ्यादृष्टि को पूर्ण दुःख है, केवली को पूर्ण सुख है, साधक को अपूर्ण आनन्द और अपूर्ण दुःख है। आहाहा! मिथ्यादृष्टि को पूर्ण दुःख। चाहे राजा हो, बड़ा करोड़पति, अरबपति हो, सुन्दर रूप हो, बाहर में खाने-पीने में मौज करता हो, महादुःखी है, कषाय है। आहाहा! और समकिती सुखी है। नरक में भी जितना राग गया, उतना सुखी है। श्रेणिक राजा को अनन्तानुबन्धी गया है, उतना तो सुख है वहाँ नरक में भी। जितना कषाय है, उतना दुःख है। साधक को बाधकपना बाकी है। नहीं तो साधक क्यों कहा? नहीं तो साध्य पूर्ण हो जाना चाहिए। आहा...! थोड़ा राग है, उतना वेदन आता है।

जो आंशिक बहिर्मुख वृत्ति वर्तती हो, उससे साधक न्यारा का न्यारा रहता है। आहाहा! विशेष है। **आँख में किरकिरी नहीं समाती;...** आँख में रजकण नहीं समाता। **उसी प्रकार चैतन्यपरिणति में विभाव नहीं समाता।** चैतन्य की आनन्द परिणति में विभाव नहीं आता। जैसे आँख में रजकण नहीं समाता, वैसे चैतन्य में (विभाव) नहीं समाता। विशेष कहेंगे...... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

विक्रम संवत-२०३५, श्रावण शुक्ल - १३, रविवार, तारीख २४-८-१९८०
वचनामृत- २९५, २९८ प्रवचन-१७

वचनामृत। २९५। कल थोड़ा चला है, फिर से लेते हैं। **यद्यपि...** यद्यपि **दृष्टि-अपेक्षा से...** सम्यग्दर्शन का विषय तो ध्रुव चीज़ है। इस सम्यग्दर्शन की अपेक्षा से साधक को-धर्म का साधन करनेवाले को **किसी पर्याय का या गुणभेद का स्वीकार नहीं है,...** आहाहा! दृष्टि सम्यक्-सत्य दर्शन पूर्णानन्द का नाथ प्रभु, उसका सत्य दर्शन अन्दर हुआ, इस सत्यदर्शन में पर्याय का और गुणभेद का स्वीकार नहीं। वह तो ध्रुव को स्वीकारती है, दृष्टि तो ध्रुव को ही स्वीकारती है। आहाहा! क्योंकि जिसमें अनन्त-अनन्त गुणों की खान-खजाना (है), उस ओर की दृष्टि पर्याय और गुणभेद को भी सम्यक् दृष्टि स्वीकारती नहीं। आहाहा!

तथापि'.. तो भी **उसे स्वरूप में स्थिर हो जाने की भावना तो वर्तती है।** समकिती को तो अन्दर में ही जाना, अन्तर आनन्द में ही जाने की भावना वर्तती है। फिर भी **रागांशरूप बहिर्मुखता...** समकिती को भी राग आता है। पूर्ण वीतराग न हो, तब दृष्टि में चाहे तो पर्याय और गुणभेद न हो और दृष्टि में विषय अकेला ध्रुव ही हो, फिर भी उसे रागांश आता है। **रागांशरूप बहिर्मुखता उसे दुःखरूप से वेदन में आती है...** आहाहा! सम्यग्दर्शन के विषय में भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द का जहाँ भान हुआ, मैं तो अतीन्द्रिय आनन्दकन्द हूँ, उसको जब तक वीतराग न हो, तब तक रागांश आता है। वह रागांश बहिर्मुख उसे दुःखरूप से वेदन में आता है। राग का अंश महाव्रतादि, व्रतादि का विकल्प उठता है, परन्तु वेदन दुःखरूप लगता है। आहाहा! क्योंकि भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द का सागर, ऐसा जहाँ दृष्टि में आया और उसके ज्ञान में राग से प्रज्ञाछैनी से भिन्न हुआ, तब तो उसके विषय में पर्याय और गुणभेद तो नहीं, फिर भी रागांश आता है, वह दुःख का वेदन करते हैं।

समकिती श्रेणिक राजा नरक में हैं। सम्यग्दर्शन (है)। अनन्तानुबन्धी का अभाव

हुआ इतना सुख तो हमेशा है। इसके अलावा तीन कषाय है, उसका दु:ख तो है। जितना कषाय का अंश है, वह दु:ख का ही स्वरूप है। दु:ख का वेदन बहिर्मुख राग से वेदन में तो आता है। आहाहा! **और वीतरागता-अंशरूप अन्तर्मुखता सुखरूप से वेदन में आती है।** उसी क्षण जो सम्यग्दर्शन में द्रव्य स्वभाव का अनुभव हुआ, उतनी वीतरागता का अंश सुखरूप वेदन में आता है। एक क्षण में सुखरूप वेदन स्वसन्मुखता का और उसी समय बहिर्मुख जितना राग आता है, उतना दु:ख का वेदन एक समय में साथ में है। संयोग की बात यहाँ नहीं है। प्रतिकूल संयोग है तो दु:ख है अथवा अनुकूल संयोग है तो सुख है, यह शब्द है ही नहीं। संयोग तो ज्ञेयरूप चीज़ है। अन्तर में प्रतिकूलता मानकर अज्ञानी द्वेष करता है, ज्ञानी प्रतिकूलता देखकर द्वेष नहीं करते। अपनी कमजोरी से द्वेष आ जाता है। आहाहा! उसका दु:ख का वेदन करते हैं। साथ में वीतराग अंश का भी वेदन है, सुख का भी वेदन है। अतीन्द्रिय चमत्कारिक आनन्द का भी अनुभव-वेदन है और साथ में जितना राग है, उतना दु:ख का वेदन है। आहाहा! **वीतरागता-अंशरूप अन्तर्मुखता सुखरूप से वेदन में आती है।**

जो आंशिक बहिर्मुख वृत्ति वर्तती हो,... आंशिक बहिर्मुख वृत्ति वर्तती हो, **उससे साधक न्यारा का न्यारा रहता है।** दृष्टि में भेदज्ञान की अपेक्षा से राग से अन्तर में तो न्यारा रहते हैं। फिर भी राग है, उसका वेदन भी है। वेदन से न्यारे रहते हैं कि यह मेरी चीज़ नहीं। मैं तो ज्ञान और आनन्दस्वरूप हूँ। फिर भी राग का अंश आता है, उसको वेदते हैं। वीतरागता-अंशरूप... आ गया। **आंशिक बहिर्मुख वृत्ति वर्तती हो,...** आहाहा! कोई भी बहिर्मुख में पंच परमेष्ठी को वन्दन, भक्ति, श्रवण आदि। श्रवण, मनन, चिन्तन, मंथन सब एक राग है। इतना तो दु:खवेदन आता है। **उससे साधक न्यारा का न्यारा रहता है।** अन्तर में उससे भिन्न चीज़ हो गयी है तो भिन्न में एकता कभी होती नहीं। पानी के दल में तेल का बिन्दु ऊपर डालो तो ऊपर चिकनापन दिखता है। परन्तु पानी में चिकनेपन का प्रवेश नहीं है। पाँच-दस सेर पानी हो, ऊपर तेल डालो तो अन्दर प्रवेश नहीं करेगा। क्योंकि दोनों का स्वभाव भिन्न है।

ऐसे भगवान आत्मा आनन्द (पानी) समान, अन्दर राग तेल समान और अन्दर पानी आनन्द समान। दो की भिन्नता रहती है। राग ऊपर ही ऊपर तैरता है। पानी के ऊपर

तेल का बिन्दु ऊपर का ऊपर रहता है। वैसे भगवान आत्मा के आनन्द के ऊपर राग रहता है, अन्दर प्रवेश नहीं करता। फिर भी वेदन भी है। आहाहा! क्योंकि वह कोई परचीज़ नहीं है। परचीज़ को तो छूता नहीं, परन्तु अपने में अपनी कमजोरी से रागादि, द्वेषादि आया उसका वेदन भी है। दुःख भी है। आहाहा! संयोग को दुःख कहा नहीं, संयोग को सुख कहा नहीं। संयोगी चीज़ तो बिल्कुल पर है, उसको तो आत्मा छूता भी नहीं। कभी आत्मा अपने सिवा, परपदार्थ कर्म से लेकर शरीर, वाणी, मन, स्त्री, कुटुम्ब-परिवार किसी को आत्मा अनन्त काल में कभी स्पर्शा ही नहीं। परन्तु अपनी पर्याय में कमजोरी से जो राग आता है, उसका वेदन करते हैं। वीतरागता है, उतना आनन्द है; राग है, उतना दुःख है। वह तो अपनी-अपनी पर्याय में है। पर के साथ सम्बन्ध नहीं है। आहाहा!

आँख में किरकिरी नहीं समाती;... आँख में रजकण नहीं समाता। यहाँ किरकिरी शब्द आपका हिन्दी में है। हमारे यहाँ कहते हैं, आँख में कणिका-कणिका, रजकण या तिनका, तिनका अन्दर नहीं समाता। अन्दर आवे तो भी बाहर निकाल देता है। अन्दर नहीं जा सकता। आहाहा! **आँख में किरकिरी नहीं समाती; उसी प्रकार चैतन्यपरिणति में...** आहाहा! भगवान आत्मा की निर्मल परिणति में **विभाव नहीं समाता।** विभाव उसमें अन्दर एकरूप नहीं होता। ऊपर-ऊपर तिरता है। आहाहा! ऐसा मार्ग प्रभु का।

तीन लोक के नाथ सर्वज्ञ भगवान की यह वाणी है। बहिन को अन्दर से आयी है, वह बोले हैं, और लिख लिया है। वे तो आनन्द में रहते हैं, अतीन्द्रिय आनन्द में रहते हैं। परन्तु ऐसा थोड़ा बोले होंगे तो लिख लिया है। आहा..!

कहते हैं, जैसे **आँख में किरकिरी नहीं समाती; उसी प्रकार चैतन्यपरिणति में...** भगवान चैतन्य की पर्याय में; चैतन्यवस्तु जो पदार्थ अनादि सत् सत्ता, सत् सत्ता, सत् परमेश्वर परम स्वरूप, उसमें **चैतन्यपरिणति में विभाव नहीं समाता।** चेतन में तो नहीं (समाता), परन्तु चैतन्य की परिणति में विभाव नहीं समाता। आहाहा! क्या कहा? चेतन जो द्रव्य है, उसकी तो बात ही क्या करनी? उसमें तो केवलज्ञान भी नहीं जाता। ये तो अपनी जो चैतन्य की निर्मल परिणति प्रगट हुई, सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की निर्मल दशा, उसमें भी विभाव नहीं समाता। आहाहा! तेल का बिन्दु जैसे पानी में ऊपर रहता है, वैसे

चैतन्यपरिणति से राग ऊपर रहता है। राग और परिणति दो एक नहीं होते, कभी तीन काल में साधक को। यह साधक। आहाहा!

वीतराग सर्वज्ञदेव त्रिलोकनाथ का यह कथन है। दिव्यध्वनि का सार यह है। आहा..! तेरी चीज़ में तो राग और विभाव नहीं समाता, परन्तु तेरी चैतन्य की परिणति तुझे हुई-धर्म दशा, उसमें भी राग समाता नहीं। क्योंकि वह वीतरागभाव है। धर्म है वह वीतरागभाव है। वस्तु वीतरागमूर्ति है, चैतन्य वीतरागमूर्ति है। उसके अवलम्बन से वीतरागपरिणति हुई, वह धर्म है। उसमें रागादि का प्रवेश नहीं होता। आहाहा! ऐसी बात है। अरे..! चौरासी के अवतार करके अनन्त अवतार हो गये, प्रभु! मान बैठा, कुछ नहीं था और मान बैठा कि मैं कुछ धर्म करता हूँ। अन्दर तो सब शल्य पड़े हैं। आहाहा! ऐसे अनन्तानन्त भव किये, परन्तु चैतन्य की परिणति निर्मलानन्द है, वह प्रगट नहीं की। और वह प्रगट करे तो साथ में राग आता है, उसका भी परिणति में प्रवेश नहीं होता। आहाहा! तो पूरी दुनिया तो दूर रह गयी। स्त्री, कुटुम्ब, परिवार, धन्धा-व्यापार उसको तो आत्मा की राग की परिणति भी छूती नहीं। क्या कहते हैं? आत्मा के सिवा सब चीज़, उसको राग की मन्दता आती है, वह परिणति को छूती नहीं, तथा वह राग परद्रव्य को छूता नहीं। आहाहा! ऐसा प्रभु का मार्ग है।

राग की दशा धर्मी जीव को धर्म परिणति प्रगट हुई, वह तो वीतरागदशा है। वीतरागदशा में राग आता नहीं। परन्तु राग आये बिना रहता नहीं। परन्तु रागपरिणति से भिन्न रहता है। अरे..! प्रभु! वह राग परिणति से तो भिन्न (रहता है), परन्तु राग पूरी दुनिया के संयोग से भी भिन्न (रहता है)। दुनिया की कोई चीज़ को राग छूता है.. आहाहा! गजब, प्रभु! ऐसी बात अन्तर में बैठनी और उसका परिणमन होना, वह बात अलौकिक बात है। आहा..!

भगवान त्रिलोकनाथ की दिव्यध्वनि में आया, गणधरों ने सुना, इन्द्रों ने सुना, उसमें से यह सब बात आयी है। आहाहा! **आँख में किरकिरी नहीं समाती; उसी प्रकार चैतन्यपरिणति में विभाव नहीं समाता। यदि साधक को बाह्य में—प्रशस्त-अप्रशस्तराग में...** आहाहा! साधक को शुभ-अशुभराग में **दुःख न लगे और अन्तर में—वीतरागता में—सुख न लगे तो वह अन्तर में क्यों जाए?** आहाहा! क्या कहते हैं? बहिर्मुख दृष्टि

कुछ भी चलो, दया, दान, व्रत, भक्ति आदि कोई भी परिणाम, वाँचन, श्रवण, मनन। वाँचन, श्रवण, मनन, चिन्तवन, मंथन के विकल्प में यदि दुःख न लगे.. आहाहा! और अन्तर में सुख न लगे तो अन्तर में क्यों जाए? क्या आया, समझ में आया? भगवान आत्मा सच्चिदानन्द प्रभु में सुख न लगे, वेदन में, हों! पर्याय में। वेदन में पर्याय में सुख न लगे और राग में दुःख न लगे तो वह आत्मा अन्तर में क्यों प्रवेश करे? राग से भी हटकर अपनी परिणति अन्तर में ले जाते हैं। आहाहा! ऐसा मार्ग (है)।

प्रभु का मार्ग है शूर का, कायर का नहि काम। वीर का मार्ग है शूर का। अन्दर में वीर्य की रचना में तो आत्मा की रचना हो, उसका नाम वीर्य कहते हैं। भगवान ने समयसार में ४७ शक्ति का वर्णन किया। उसमें एक वीर्य-बल शक्ति ली। वीर्य शक्ति क्या करती है? कि धर्म दृष्टि सम्यग्दर्शन हुआ तो सब गुण की रचना, अनन्त गुण की व्यक्तता की रचना करे, उसका नाम वीर्य और वीरता कहने में आती है। आहाहा! वह वीर्य स्वरूप की रचना करे। रचना अर्थात् गुण की, द्रव्य की नहीं। गुण-द्रव्य तो ध्रुव है। आहाहा! परन्तु ध्रुव पर नजर जाने पर ध्रुव का स्वीकार होने से ध्रुव में जो वीर्य है, वह अपनी निर्मल परिणति की रचना करे। राग की रचना वीर्य नहीं करता। आहाहा! समझ में आता है? स्वरूप की रचना... ४७ शक्ति में आता है। शब्द यही है।

वीर्यगुण अर्थात् स्वरूप की रचना करे वह। है उसमें, है। छठा बोल है। **स्वरूप की (-आत्मस्वरूप की) रचना की सामर्थ्यरूप वीर्यशक्ति।** ४७ शक्ति। ऐसी अनन्त शक्ति है। यहाँ तो ४७ शक्ति में एक वीर्यशक्ति ली है। वीर्य जो पुत्र-पुत्री हो, वह रेत-वीर्य नहीं। वह तो धूल है। आहाहा! अपना वीर्य इसको प्रभु कहते हैं कि आत्मस्वरूप की, वह शब्द कोष्टक में है, मूल शब्द स्वरूप है। **स्वरूप की रचना की सामर्थ्यरूप वीर्यशक्ति।** आहाहा! देखो! संस्कृत पाठ है। **स्वरूपनिर्वर्तनसामर्थ्यरूपा वीर्यशक्ति।** संस्कृत में है। **स्वरूपनिर्वर्तनसामर्थ्यरूपा।** आहाहा! स्वरूप को उत्पन्न करनेवाली ऐसी वीर्यशक्ति। आहाहा! **सामर्थ्यरूपा** अपने सामर्थ्य से वीर्य अपने स्वरूप की पर्याय में रचना करता है, निर्मल वीतरागता प्रगट करता है, निर्मल आनन्द और शान्ति प्रगट करता है, उसका नाम वीर्य है। जो वीर्य शुभ-अशुभ करे, उस वीर्य को नपुंसक कहा है। पुण्य-पाप अधिकार और अजीव अधिकार, दो जगह (आया है)। शुभभाव करनेवाले को नपुंसक-क्लीव

कहा है, संस्कृत शब्द में क्लीव है। क्लीव का अर्थ नपुंसक है। आहाहा! गजब बात है! गजब बात!! प्रभु! लोगों ने बाहर में मान लिया। समझ में आया?

यहाँ कहते हैं, वीर्यशक्ति उसको कहना चाहिए कि स्वरूप की रचना करे। उसमें- राग में यदि दुःख न लगे और आनन्द में सुख न लगे तो प्रभु अन्दर में कैसे जाए? वह तो बाहर भटकता है। राग-बाहर में ठीक लगता है, शुभ और अशुभराग में रहता है, भटकता है, बनाता है, रचता है और उसमें खुश होता है। शुभ-अशुभ वीर्य, वह वीर्य नहीं। आहाहा!

यहाँ कहते हैं, सुख न लगे-आत्मा के आनन्द में सुख न लगे और राग में दुःख न लगे तो **वह अन्तर में क्यों जाए?** वह अन्तर में कैसा जा सकेगा? आहाहा! **कहीं राग के विषय में 'राग आग दहै' ऐसा कहा हो,...** छहढाला में। छहढाला में 'राग आग दाह दहै सदा' राग आग दाह दहै सदा। छहढाला में है। आहाहा! राग दाह दहै सदा। चाहे तो शुभराग दया, दान, भक्ति, व्रत, ब्रह्मचर्य के विकल्प में शुभराग हो, आहाहा! राग दाह दहै सदा। रागरूपी दाह-अग्नि आत्मा को जलाती है। आहाहा! शुभराग; भगवान की शान्ति, आनन्द का भान हुआ फिर भी कमजोरी में जो राग आता है, वह राग दाह-अग्नि समान है। आहाहा! राग आग दहै सदा, ऐसा कहा है। कहीं प्रशस्त राग को आग कहा, छहढाला में। राग को आग कहा है, छहढाला में। और विषकुम्भ कहा है, समयसार में। समयसार के मोक्ष अधिकार में शुभभाव को जहर का घड़ा (कहा है)। आहाहा! विषकुम्भ मूल पाठ है। पुण्य और पाप का भाव दोनों जहर का घड़ा है। आहाहा! गजब बात है! आदमी को कहाँ जाना? पूरे दिन धन्धा करना... मार्ग बापू! बहुत अलग प्रकार का है, प्रभु!

यहाँ बहिन कहते हैं, **कहीं राग के विषय में 'राग आग दहै' ऐसा कहा हो, कहीं प्रशस्तराग को...** प्रशस्त, हों! शुभराग को **'विषकुम्भ' कहा हो,...** मोक्ष अधिकार में। आहाहा! **चाहे जिस भाषा में कहा हो, सर्वत्र भाव एक ही है...** सर्वत्र भाव (यही है कि) राग दुःख ही है। किसी भी प्रकार का राग-शुभराग। आहाहा! राग के पीछे अन्दर वीतरागमूर्ति भगवान विराजता है। उसकी दृष्टि और अनुभव हुआ, बाद में चाहे जितना राग हो, परन्तु सब दुःखरूप लगता है। आहाहा! **चाहे जिस भाषा में कहा हो, सर्वत्र भाव एक ही है...** क्या? **कि—विभाव का अंश, वह दुःखरूप है।** आहाहा! विभाव का अंश दुःखरूप ही है। मोक्ष अधिकार में भगवान कुन्दकुन्दाचार्य ने विष का घड़ा-विषकुम्भ

कहा है। क्योंकि एक ओर प्रभु है वह अमृत का सागर है। अतीन्द्रिय आनन्द का सागर, उसके समक्ष राग का कण जहर समान, जहर के प्याले समान है। आहाहा! उस राग से आत्मा को लाभ होगा, राग की क्रिया करो, करते-करते लाभ होगा, वह मिथ्यात्व है, प्रभु! मानो, मनानेवाले मिलेंगे। वस्तु यह है। आहा..!

त्रिलोकनाथ के फरमान में, सीमन्धर प्रभु के पास से यह बात आयी है। बहिन के हृदय में जातिस्मरण में ऐसा आया है। आहाहा! असंख्य अरब वर्षों का जातिस्मरण बहिन को प्रत्यक्ष है। नौ भव। वहाँ का तो बहुत याद है। कभी-कभी तो ध्यान में भूल जाते हैं, मैं महाविदेह में हूँ कि भरत मैं हूँ, भूल जाते हैं। बाहर में बहुत ख्याल करे तो (मालूम पड़े कि) ओहो..! भरतक्षेत्र में हूँ। भगवान के पास यह सब बात सुनी है। आहाहा! वह बात यह है।

विभाव का अंश, वह दुःखरूप है। भले ही उच्च में उच्च शुभभावरूप... उच्च शुभभाव हो, ऊँचा शुभभाव हो, तीर्थंकरगोत्र बाँधने का, आहारकशरीर बाँधने का, यशकीर्ति बाँधने का, पुण्य बाँधने का किसी भी प्रकार का राग हो। **या अतिसूक्ष्म रागरूप...** अतिसूक्ष्म राग, सूक्ष्म। अन्तर में सूक्ष्म राग से भिन्न करके सूक्ष्म राग होता है, तब उससे भेदज्ञान में भिन्नता करते हैं। ऐसा सूक्ष्म राग हो, **तथापि जितनी प्रवृत्ति, उतनी आकुलता है...** आहाहा! भगवान तो अन्दर निवृत्तस्वरूप प्रभु है। हिले नहीं, चले नहीं, विकल्प आवे नहीं। आहाहा! ऐसी बात है।

यह पुस्तक पढ़कर तो अन्यमति प्रसन्न हो जाते हैं। कुदरती ऐसी बात बाहर आ गयी है। एकदम बाहर आ गयी। बहिनों ने लिख लिया, वह भी किसी को मालूम नहीं था। कब बोले और कब लिख लिया, मालूम नहीं। मैंने तो कहा था, जिन्होंने लिख लिया था, रामजीभाई को कहा, जिन्होंने लिखा, उन्हें कुछ दो। तो प्रत्येक को सौ रुपये का चाँदी का बहिन के फोटो सहित (दिया)। रुपये की क्या कीमत है। आहा..! यहाँ तो बोले तो रुपये का ढ़ेर हो जाएगा। बहिन वधायेंगे, ८०००० रुपये तो कम से कम आयेंगे। इस बुधवार को बहिन का जन्मदिन है। कम से कम ८००००। उससे भी बढ़ेंगे। उसमें क्या? उसकी क्या कीमत है। आहाहा!

चीज़ तो यह है। **जितनी प्रवृत्ति, उतनी आकुलता है...** आहाहा! प्रभु निवृत्तस्वरूप

अतीन्द्रिय आनन्द का धाम, उस क्षेत्र से-उस धाम से हटकर कुछ भी रागांश आवे, सब आकुलता है। आहाहा! **और जितना निवृत्त होकर...** राग से निवृत्त होकर आनन्द प्रभु में विराजता है, जितना स्थिर होता है, पर्याय से, हों! ध्रुव में तो कोई हलन-चलन है नहीं। पर्याय अन्दर में स्थिर होती है, उतने अंश में अतीन्द्रिय आनन्द के धाम में वर्तमान पर्याय का अंश जितना उसमें निवृत्त होकर वर्तता है, **स्वरूप में लीन हुआ, उतनी शान्ति...** आहाहा! **एवं स्वरूपानन्द है।** आहाहा! मुद्दे के माल की रकम है, बापू! **उतनी शान्ति एवं स्वरूपानन्द है।**

ज्ञानी जीव निःशंक तो इतना होता है कि सारा ब्रह्माण्ड उलट जाए, तब भी स्वयं नहीं पलटता; विभाव के चाहे जितने उदय आयें, तथापि चलित नहीं होता। बाहर के प्रतिकूल संयोग से ज्ञायकपरिणति नहीं बदलती; श्रद्धा में फेर नहीं पड़ता। पश्चात् क्रमशः चारित्र बढ़ता जाता है॥२९८॥

२९८। पास में ही है, सामने। २९८। **ज्ञानी जीव...** आहाहा! अनुभवी... कहा था न? ८० साल पहले। अब तो ९१ वर्ष हुए। १०-११ वर्ष की उम्र में हमारे पड़ोसी, हमारी माँ के मायके के ब्राह्मण थे। उसे हम मामा कहते थे। मूलजी मामा। पड़ोस में रहते थे, अकेले रहते थे। स्त्री-पुत्र नहीं थे। भुंगली, भावनगर के पास भुंगली है। हमारी माँ का ननिहाल भुंगली था। वह नहाकर-स्नान करके बोलते थे,

अनुभवीने एटलुं रे आनंदमां रहेवुं रे,
भजवा परिब्रह्म ने बीजुं कांई न कहेवुं रे...

मामा यह क्या बोलते हैं? हम तो बालक थे, ११ वर्ष की उम्र। आहाहा! उनको भी कुछ मालूम नहीं था। 'अनुभवीने एटलुं रे आनंदमां रहेवुं रे,...' आहाहा! उतारा है, दरबारी उतारा है उसमें कारकून थे। बड़ा कारकून था। हमारे मकान के साथ ही उनका मकान था। अकेले रहते थे। नहाकर रोज बोलते थे। मालूम कुछ नहीं। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं, अनुभवी को, आत्मा का अनुसरण करके अनुभव करनेवाला समकिती, उसको आनन्द में रहना। अतीन्द्रिय आनन्द पर्याय में प्रगट होता है। भजवा

परिब्रह्म। परिब्रह्म अर्थात् आत्मा। उन लोगों में ईश्वर कहते हैं। परिब्रह्म, उनको भजना। अन्यमति में। यहाँ तो परिब्रह्म अर्थात् आत्मा। परि-समस्त प्रकार से ब्रह्म-आनन्द की मूर्ति प्रभु। 'भजवा परिब्रह्मने बीजुं कांई न कहेवुं रे...' परिब्रह्म प्रभु ऐसा भगवान, आनन्द में रहने से दूसरी कोई चीज़ उसको लागू पड़ती नहीं। बाहर की कोई चीज़ को वह छूता नहीं। आहाहा! ऐसा आत्मा।

ज्ञानी जीव निःशंक तो इतना होता है... २९८ है न? इतना निःशंक, निर्भय, निडर होता है। धर्मीजीव पूरी दुनिया से बेदरकार रहते हैं। कौन क्या मानता है, कौन क्या मानता है, उसकी उसे दरकार नहीं है। ज्ञानी जीव-धर्मी जीव **निःशंक तो इतना होता है कि सारा ब्रह्माण्ड उलट जाए,...** आहाहा! सारा ब्रह्माण्ड विपरीत हो जाए। उलट जाए अर्थात् विपरीत हो जाए। **तब भी स्वयं नहीं पलटता;...** जो अपनी चीज़ है, उसमें से क्यों पलटे? पाताल मिल गया, पाताल में-पर्याय के पाताल में भगवान था, वह मिल गया। चौदह ब्रह्माण्ड पलटे, परन्तु वह पलटता नहीं। **तब भी स्वयं नहीं पलटता; विभाव के चाहे जितने उदय आयें,...** आहा..! धर्मी को भी विभाव तो आता है। वासना विषय की, क्रोध की, मान की, माया, लोभादि रागादि। **विभाव के चाहे जितने उदय आयें, तथापि चलित नहीं होता।** स्वरूप में से चलित नहीं होता। उसका ज्ञाता-दृष्टा रहता है। आहाहा! राग और आत्मा का आनन्द दोनों चीज़, जैसे अग्नि और पानी दोनों चीज़ भिन्न, और भिन्न स्वभाव (है), दो चीज़ भिन्न और भिन्न स्वभाव (है), ऐसे भगवान और राग भिन्न और भिन्न स्वभाव (हैं)। आहाहा! ऐसी बातें हैं, प्रभु! सुने तो सही कि करना तो यह है। यह निर्णय तो करे। भले विकल्प से पहले निर्णय करे कि करना तो यह है। इसके बिना कभी जन्म-मरण का अन्त आयेगा नहीं और भवभ्रमण में कहाँ जाना? आहाहा! चौरासी के अवतार। आहाहा!

यहाँ एक खिसकोली थी। खिसकोली को क्या कहते हैं? गिलहरी। अन्दर में एक थी, गिर गयी। निकलने गयी, परन्तु वहाँ छेद था तो उसमें घुस गयी। छेद में घुस गयी और वहाँ मर गयी। आहाहा! उसे ऐसा था कि यह बचने का साधन है। बड़ा छेद था, उसमें चली गयी। आहाहा! ऐसे बेचारी गिर गयी, गिरकर (भागने का) प्रयत्न करती थी। उसे कोई निकालने गया, निकालने गया तो उसे एकदम भय लगा। अन्दर छेद था, उसमें घुस

गयी। मर गयी। वहाँ से निकली नहीं। आहाहा! ऐसे दु:ख तो प्रभु! यह तो साधारण है। आहाहा!

धंधुका में अभी थोड़े वर्षों पहले मुसलमानों ने एक गाय को सजाकर गाँव में घुमाया। फिर घर ले गये। घर जाकर उसके टुकड़े कर दिये। टुकड़े करके अपनी जाति में बाँटे। धंधुका में। २५-३० वर्ष हुए।

मुमुक्षु :- हिन्दी में फरमाईये।

पूज्य गुरुदेवश्री :- हिन्दी में नहीं आया? हमको खबर नहीं पड़ती, हिन्दी है या गुजराती? धंधुका है न धंधुका? उसमें एक बार मुसलमानों ने ऐसा किया था, २५-३० वर्ष या ५०-६० साल हो गये। बहुत वर्ष हो गये। यहाँ तो ९१ वर्ष हुए। कल के भाँति बात याद आये। मुसलमानों ने गाय को सजाकर गाँव में घुमाया। हिन्दु लोगों को थोड़ा दु:ख लगे तो ठीक। घुमाकर बाद में घर ले गये। टुकड़े-टुकड़े कर दिये। धंधुका। कौन पूछता है? सरकार में कोई शिकायत चलती है? जीवित गाय के टुकड़े। आहाहा! ऐसा तो अनन्त बार हुआ है, प्रभु! एक बार नहीं। यह तो सुना है, वह बात कही। आहाहा!

अरे..! हमारे नारणभाई कहते थे, पोस्टमास्टर थे न। हमारे पास दीक्षा ली थी। वे कहते थे, उनका एक पारसी मित्र था। उसके पास कोई कारण से गया था। वहाँ सूअर के पैर को सलिये से बाँधते थे। बाँधकर उसे जिन्दा अग्नि में डाला। जिन्दा सूअर। आहाहा! ऐसी वेदना कितनी बार हुई है, प्रभु! भूल गया। वर्तमान में थोड़ी अनुकूलता मिली तो घुस गया। आहाहा! ऐसे दु:ख तो अनन्त बार (सहे)।

यहाँ कहते हैं, ज्ञानी को **विभाव के चाहे जितने उदय आयें,...** ज्ञानी को रागादि का उदय तो आता है। आहाहा! द्वेष आये, राग आये, विषयवासना आ जाए। समकिती को पंचम गुणस्थान में होता है। आहाहा! क्योंकि चौथे, पाँचवे गुणस्थान में आत्मज्ञान में रौद्रध्यान भी कहा है। रौद्रध्यान। छठे गुणस्थान में नहीं होता। मुनि होते हैं, उनको आर्तध्यान होता है। रौद्रध्यान नहीं होता। ऐसे समकिती को भी रौद्रध्यान होता है तो यहाँ कहते हैं, **चाहे जितने उदय आयें, तथापि चलित नहीं होता।** आ जाओ। मेरी कमजोरी है। मेरी चीज़ नहीं। मेरी चीज़ में वह नहीं है। आहाहा! कठिन बात है। **चाहे जितने उदय आयें, तथापि चलित नहीं होता।**

बाहर के प्रतिकूल संयोग से ज्ञायकपरिणति नहीं बदलती;... आहाहा! शक्कर की डली हो। चाहे जिसमें डालो तो वह शक्कर स्वयं कहीं जहर नहीं होगी। शक्कर स्वयं मैल नहीं होगी। शक्कर तो शक्कर के पानीरूप प्रवाह होगी। वैसे भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द की शक्कर की डली,... आहाहा! उसमें एकाग्र होकर, उसका प्रवाह चलता है। आहाहा! शक्कर का जितना प्रवाह है, वह मीठा प्रवाह है। आसपास में चाहे जितना मैल हो, मीठा प्रवाह कभी छूटता नहीं। आहाहा! ऐसे भगवान आत्मा अपना आनन्द की दृष्टि में उदय कोई भी आवे, तथापि चलित नहीं होता। आहाहा! भाषा आसान है, प्रभु! भाव बहुत अन्दर (गम्भीर) है। भाव का पलटा मारना... दूसरी सब क्रिया कर सकते हैं, नग्न हुआ, अनन्त बार मुनिपना लिया, अट्ठाईस मूलगुण पाले, पंच महाव्रत पाले, वह राग था, जहर था। आहाहा!

धर्मी जीव अपने आनन्द के स्वाद के समक्ष नित्यानन्द के अवलम्बन के समक्ष कोई भी प्रतिकूलता आवे, तथापि चलित नहीं होता। **बाहर के प्रतिकूल संयोग से ज्ञायकपरिणति नहीं बदलती;...** आहाहा! श्रेणिक राजा ने जेल में जहर पिया। नरक का आयुष्य बँध गया था। नहीं तो कहीं समकिती नरक में नहीं जाता। परन्तु पहले नरक का आयुष्य बँध गया था। बाद में क्षायिक समकित हुआ। आहाहा! उसमें उसका पुत्र आया। स्वयं ने जहर खा लिया। आहाहा! फिर भी क्षायिक समकित में बाधा नहीं आती। वह भाग और चैतन्य का भाग दोनों भिन्न रहते हैं। आहाहा!

संयोग से ज्ञायकपरिणति नहीं बदलती;... चाहे जैसे संयोग आये, परन्तु उसकी परिणति अर्थात् पर्याय चलती नहीं, बदलती नहीं, पर के साथ एकरूप परिणमती नहीं। चैतन्य की परिणति और राग, दोनों कभी एकरूप नहीं होते। **श्रद्धा में फेर नहीं पड़ता।** चाहे जितना राग आये, विभाव आये,... आहाहा! सिर फोड़ा, जहर पिया, फिर भी क्षायिक समकित (है)। भले गये नरक में। इस कारण से नहीं, पहले नरक का आयुष्य बँध गया था। आयुष्य बँध गया, उसमें फेरफार नहीं होता। फेर उतना पड़ता है, लड्डू बनाया हो, लड्डू, उसमें थोड़ा घी डाले। दो-चार दिन उस लड्डू को सूखने दे। वैसे पूर्व का आयुष्य बँधा हो, उसमें कुछ घट भी जाए, कुछ बढ़ भी जाए। आयुष्य में फेरफार नहीं होता। आहाहा! आयुष्य तो वहाँ भोगना ही पड़े। आहाहा! नरक का आयुष्य बँध गया था, तैंतीस

सागर का। स्थिति घट गयी, चौरासी हजार वर्ष की रही। चौरासी हजार वर्ष की रही। आहाहा!

एक क्षण का दुःख, भगवान, रत्नकरण्डश्रावकाचार में कहते हैं, उस दुःख को प्रभु, क्या कहें? करोड़ भव में और करोड़ जीभ से एक क्षण के दुःख का वर्णन नहीं हो सकता। आहाहा! जैसे उसकी-चैतन्य की महिमा का पार नहीं, वैसे उसे दुःख का पार नहीं। आहाहा! ऐसे दुःख में तैंतीस-तैंतीस सागर। एक बार नहीं, अनन्त बार गया। भूल गया। वहाँ कितना दुःख था। एक लाख मण का लोहे का गोला हो, टीप-टीपकर मजबूत किया हो। उस लाख मण के गोले को सातवीं नरक में ले जाएँ तो जैसे पार पिघल जाता है, वैसे वह लाख मण का गोला पिघल जाता है। उतनी तो वहाँ सर्दी है। ऐसी सर्दी में जीव तैंतीस सागर निकालता है। ऐसे अनन्त भव किये। आहा..!

यहाँ तो साधारण कुछ मिले तो अभिमान हो जाए। मैं इतना पढ़ा हूँ, मैं ऐसा अधिकारी हूँ, अमलदार हूँ, कार्यकर्ता हूँ। कर्ता है। आहा..! प्रभु! कर्ता तो ना कहते हैं, प्रभु! कोई किसी का कुछ कर सकता नहीं न! आहा..! व्यवस्थापक व्यवस्था करते हैं, सब झूठ है। व्यवस्थापक ऐसा कहे कि यह व्यवस्थापक आदमी है, उसे आगे कार्यभार सौंपो। व्यवस्था तो उस समय जो होनेवाली है, वह होगी, होगी और होगी ही। व्यवस्थापक से कुछ फेरफार होता नहीं। आहाहा! अरेरे! कैसे बैठे?

मुमुक्षु :- अभिमान तो होता है न।

पूज्य गुरुदेवश्री :- अभिमान होता है कि मैंने किया। मेरी उपस्थिति में यह सब सुधर गया। मेरी हाजरी में सब पलट गया। कौन पलटे? प्रभु! जगत की चीज़ तो उसके कारण उस समय क्रमबद्ध, क्रमबद्ध—जिस समय जो परिणाम जिस द्रव्य में जिस प्रकार से होनेवाला है, वह होगा, होगा और होगा। क्रमबद्ध। एक के बाद एक, एक के बाद एक होनेवाला है। आगे-पीछे कभी नहीं होता। कोई द्रव्य का परिणाम आगे-पीछे नहीं होता। यह परिणाम अभी पन्द्रहवें नम्बर में है, उसे पच्चीसवें नम्बर में ले जाओ (ऐसा नहीं हो सकता)। आहाहा! अनन्त आत्मा और अनन्त परमाणु, प्रत्येक की समय-समय में जो पर्याय क्रम में होनेवाली है, वह होती है। ज्ञानी उसको जानते हैं, उसके कर्ता होते नहीं। आहाहा! ऐसी बात है। आया न? २९८।

ज्ञायकपरिणति नहीं बदलती; श्रद्धा में फेर नहीं पड़ता। पश्चात् क्रमशः चारित्र बढ़ता जाता है। चारित्र में दोष है। परन्तु वह फेरफार चला जाएगा। चारित्र का दोष धीरे-धीरे निकल जाएगा और पूर्ण चारित्र प्राप्त कर, केवलज्ञान प्राप्त कर मोक्ष में ही जाएगा। क्योंकि मूल पकड़ लिया है। मूल चैतन्यद्रव्य पकड़ लिया है। वृक्ष का मूल पकड़ लिया है तो उसका फल, फूल तो आयेगा ही। आहाहा! ऐसे भगवान आत्मा ध्रुव को जिसने पकड़ लिया, उसे केवलज्ञान आदि फल, फूल तो आयेंगे ही। बाहर की प्रतिकूलता से चलित नहीं होता। चारित्र में दोष लगता है। **पश्चात् क्रमशः चारित्र बढ़ता जाता है।** स्वरूप में रमणता बढ़ती जाती है। समकित तो है, उस ओर का पुरुषार्थ तो है ही। वह करते-करते चारित्र बढ़ जाएगा, केवलज्ञान हो जाएगा। परन्तु प्रतिकूलता में दुःख का वेदन है, परन्तु वह अपना है, ऐसा मानते नहीं। वह पर चीज़ है, मेरी कमजोरी से होती है, ऐसा करके उसको निकाल देता है और भिन्न रहता है। विशेष कहेंगे...

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

विक्रम संवत-२०३५, श्रावण शुक्ल - १४, सोमवार, तारीख २५-८-१९८०
वचनामृत- ३०६, ३१०, ३२१ प्रवचन-१८

रुचि का पोषण और तत्त्व का मंथन चैतन्य के साथ एकाकार हो जाए तो कार्य होता ही है। अनादि के अभ्यास से विभाव में ही प्रेम लगा है, उसे छोड़। जिसे आत्मा रुचता है, उसे दूसरा नहीं रुचता और उससे आत्मा गुप्त-अप्राप्य नहीं रहता। जागता जीव विद्यमान है, वह कहाँ जाएगा ? अवश्य प्राप्त होगा ही॥३०६॥

वचनामृत। ३०६। आज इसमें चिट्ठी पड़ी थी। **रुचि का पोषण और तत्त्व का मंथन चैतन्य के साथ एकाकार हो जाए तो कार्य होता ही है।** क्या कहते हैं ? भगवान आत्मा शुद्ध चैतन्यघन, उसकी जिसको रुचि है, 'रुचि अनुयायी वीर्य', उसकी रुचि है तो उस ओर वीर्य झुके बिना रहता नहीं। जिसकी जरूरत अन्दर लगे, उस ओर दृष्टि का विषय हुए बिना रहता नहीं। अनादि काल से ऐसा है। उसमें भी अभी वर्तमान में तो काल महा दुर्लभ हो गया है। सत्य बात बाहर आने पर भी मुश्किल हो गयी। आहाहा!

यहाँ तो रुचि का पोषण। अपना आत्मस्वरूप ज्ञान, आनन्द, शान्ति, स्वच्छता, प्रभुता ऐसी शक्ति से भरा पड़ा (है)। उसकी रुचि, उसका पोषण यदि हो, उसकी रुचि का पोषण। बारम्बार रुचि का उस ओर झुकाव हो। और **मंथन चैतन्य के साथ एकाकार हो...** वैसे तो मंथन में तो विकल्प है, प्रभु! परन्तु उस विकल्प को छोड़कर अन्तर में जाने का प्रयत्न कर। मंथन में से अन्तर में जा। मंथन है तो विकल्प, राग। **मंथन चैतन्य के साथ एकाकार हो जाए तो कार्य होता ही है।**

अनादि के अभ्यास से विभाव में ही प्रेम लगा है,... आहाहा! प्रभु एक ओर पड़ा रहा और बाह्य पदार्थ में प्रेम (लग गया)। छोटी-बड़ी, सूक्ष्म, स्थूल अनेक प्रकार के बाह्य प्रकार में रुचि लग गयी है। उस ओर का झुकाव हो गया है। अन्तर्मुख झुकाव नहीं किया।

अनादि के अभ्यास से विभाव में ही प्रेम लगा है,... विभाव अर्थात् सूक्ष्म राग अन्दर होता है, चैतन्य के विचार में भी जो राग होता है, शुद्ध भगवान आत्मा के विचार का भी राग हो, उस राग को भी छोड़कर अन्तर में रुचि जाए। कलश टीका में लिखा है, कलश टीका है। उसमें लिखा है कि आत्मा का विचार, मंथन सब विकल्प है। राजमलजी की कलश टीका है। आहाहा! वह तो ज्ञायक चैतन्यमूर्ति जिसको कोई अपेक्षा ही नहीं, ऐसी निरपेक्ष चीज़ अन्तर में दृष्टि करने से... महान पुरुषार्थ, महान पुरुषार्थ। अन्तर में महान वीर्य अन्तर में झुकने से आत्मा की प्राप्ति होती ही है। आहा..!

जिसे आत्मा रुचता है, उसे दूसरा नहीं रुचता... जिसको आत्मा रुचता है, उसको दूसरी कोई चीज़ रुचती नहीं। आये, विकल्प आये। आहाहा! परन्तु उसे रुचे नहीं। **और उससे आत्मा गुप्त-अप्राप्य नहीं रहता।** जिसे अपना आनन्दस्वरूप, उसके प्रमाण में रुचि का वीर्य अन्तर में झुकाया है तो उसे प्राप्त हुए बिना नहीं रहता। प्रभु प्राप्त हुए बिना रहे नहीं। आहाहा! जितने प्रमाण में अन्दर पहुँचने का वीर्य चाहिए, उतना वीर्य करे और प्राप्त न हो, ऐसा नहीं बनता। आहाहा! अन्दर से भेदज्ञान हो जाएगा। राग और भगवान दोनों भिन्न पड़ जाते हैं। दोनों भिन्न-भिन्न चीज़ है। चाहे तो व्यवहार में ... शुभराग का अनेक प्रकार का सदाचरण करने में आता है।... सदाचरण है नहीं। शुभराग सदाचरण नहीं है। आहाहा! सदाचरण तो सत् निर्विकल्प चैतन्यप्रभु ऐसा सत्, उसमें आचरण करना, वह सदाचरण है। दुनिया से अलग चीज़ है, भैया! आहाहा! दुनिया सदाचरण (उसे कहती है), बाहर से ब्रह्मचर्य पाले, स्त्री से विवाह न करे, पैसा की ममता घटाकर पैसे की मर्यादा रखे। वह कोई चीज़ नहीं। आहाहा!

अन्तर भगवान पूर्णानन्द का नाथ विराजता है, उसकी जितनी रुचि, वीर्य चाहिए, उतना वीर्य चले और प्राप्त न हो, ऐसा नहीं बनता। **आत्मा गुप्त-अप्राप्य नहीं रहता।** आहाहा! जितने प्रमाण में आत्मा के प्रति रुचि और दृष्टि चाहिए, उतनी दृष्टि और रुचि हो तो आत्मा अप्राप्य रहता नहीं। आहाहा! आत्मा अप्राप्य रहता है तो समझना कि उसमें जितना वीर्य चाहिए, उतना पुरुषार्थ नहीं है। पुरुषार्थ कहीं दूसरे में रुक गया है। आहाहा! मात्र बातें हैं, करना क्या?

जागता जीव विद्यमान है,... जागता जीव चैतन्यस्वरूप से जागता जीव विद्यमान

है, त्रिकाल विद्यमान है। आहा..! **वह कहाँ जाएगा ?** जागता जीव... आहाहा! विद्यमान है, वह कहाँ जाएगा ? आहाहा! थोड़े शब्द में बहुत अन्दर भर दिया है। जो वीर्य उपयोग अन्दर में जाने का चाहिए, उतना नहीं हो तो समझना कि कहीं बाहर में उपयोग है। आहाहा! कोई बाह्य में, चाहे किसी भी प्रकार से परन्तु बाह्य में ही उपयोग है। अन्तर में जाने का उपयोग उतना हो तो प्राप्त हुए बिना रहे नहीं। आहाहा! **अवश्य प्राप्त होगा ही। वह कहाँ जाएगा ?** जागती ज्योत अनादि-अनन्त विराजती है, आहाहा! वह प्रभु जाएगा कहाँ ? तेरी रुचि और वीर्य के अभाव के कारण उस ओर तेरा झुकना नहीं हुआ। आहा..! कहीं-कहीं जगत की प्रपंच जाल अनेक प्रकार की, सदाचार के नाम पर भी शुभराग का पोषण करता है, वह भी जहर है। आहाहा! सदाचरण करते हैं। सदाचरण में तो प्रभु सत् पड़ा है न! सत् का आचरण तो त्रिकाली सत् है, उसका आचरण चाहिए। सदाचरण तो उसको कहते हैं। बाकी त्रिकाल सत् है, उससे विरुद्ध भाव है, वह असत् आचरण है। चाहे तो दया, दान, व्रत रागादि की क्रिया के परिणाम हो। आहाहा! है बिल्कुल, कड़क भाषा में कहें तो अधर्म है। आहाहा! दुनिया जिसे सदाचरण मानती है, वह असदाचरण है। सदाचरण अन्दर रहता है, प्रभु! सच्चिदानन्द प्रभु सदा जागती ज्योत चैतन्यबिम्ब ज्ञान के प्रकाश का पिण्ड, सूर्य चैतन्यसूर्य जागती ज्योत अनादि-अनन्त विद्यमान है। उस ओर की जितने प्रमाण में रुचि और वीर्य चाहिए, उतना वीर्य रुचि हो और प्राप्त न हो, ऐसा नहीं बनता। आहाहा! यह मूल की बात है, प्रभु! इसके बिना सब बिना अंक के शून्य हैं।

अन्तर भेदज्ञान... आहाहा! सूक्ष्म विकल्प से भी भेदज्ञान, उसके बिना आत्मा का पता मिले नहीं और दूसरी कोई क्रियाकाण्ड से जन्म-मरण का अन्त आता नहीं। आहाहा! **अवश्य प्राप्त होगा ही।** ३०६। आज किसी ने रखा था। अपने यहाँ ३१०।

चैतन्यलोक अद्भुत है। उसमें ऋद्धि की न्यूनता नहीं है। रमणीयता से भरे हुए इस चैतन्यलोक में से बाहर आना नहीं सुहाता। ज्ञान की ऐसी शक्ति है कि जीव एक ही समय में इस निज ऋद्धि को तथा अन्य सबको जान ले। वह अपने क्षेत्र में निवास करता हुआ जानता है; श्रम पड़े बिना, खेद हुए बिना जानता है। अन्तर में रहकर सब जान लेता है, बाहर झाँकने नहीं जाना पड़ता॥३१०॥

३१०। **चैतन्यलोक अद्भुत है।** प्रभु! तेरा चैतन्यलोक अन्दर अद्भुत है। उसकी अद्भुतता के समक्ष इन्द्र का इन्द्रासन सड़े हुए तिनके जैसा है। ऐसा अन्दर में महा वैभव पड़ा है। **चैतन्यलोक अद्भुत है।** आहाहा! **उसमें ऋद्धि की न्यूनता नहीं है।** कोई भी अन्तर शक्ति अनन्त है, अनन्त-अनन्त शक्ति संख्या से। संख्या से अनन्त-अनन्त गुण हैं। कोई गुण में क्षति नहीं है, न्यूनता नहीं है। आहाहा! ऋद्धि की न्यूनता बिल्कुल नहीं है। आहाहा! **रमणीयता से भरे हुए...** भगवान तो रमणीयता से भरा है। अन्दर रमना, आनन्द में रमना, ऐसा भरा है। रमणीयता बाह्य में कहीं नहीं है। इन्द्र के इन्द्रासन में भी जहर है। आहाहा! विषय की वासना इन्द्राणी, इन्द्र को... समकिती हो, अभी इन्द्र समकिती है। फिर भी जितना पर-ओर राग आता है, उतना राग दु:ख और जहर है। यहाँ तो पहले से लेना है, वहाँ तो आत्मा के प्रमाण में पुरुषार्थ चाहिए। जितने प्रमाण में पुरुषार्थ चाहिए, उतने प्रमाण में पुरुषार्थ हो तो आत्मा प्राप्त होता है। आहाहा!

रमणीयता से भरे हुए इस चैतन्यलोक में से बाहर आना नहीं सुहाता। जिसको भेदज्ञान हुआ, सम्यग्दर्शन हुआ, आत्मा की सम्पदा सम्यग्दर्शन में प्राप्त हुई। आहाहा! जिसको **रमणीयता से भरे हुए इस चैतन्यलोक में से बाहर आना नहीं सुहाता।** अन्दर रह सकते नहीं, विकल्प में बाहर आना ही पड़े परन्तु वह दु:ख है। आहा..! चाहे तो शुभराग हो। प्रभु का वचन तो ऐसा है, त्रिलोकनाथ वीतराग का वचन... पुरुषार्थसिद्धि उपाय शास्त्र है, अमृतचन्द्राचार्य ने बनाया है, समयसार की टीका की, उन्होंने पुरुषार्थसिद्धि उपाय बनाया है। वहाँ तो ऐसा कहते हैं, प्रभु! पर की दया तो पाल सकता नहीं, एक द्रव्य दूसरे द्रव्य को छूता नहीं तो तू कैसे पर की दया पाल सकते हो? आहाहा! वह तो ठीक, परन्तु दया पालने का भाव आया, वह कर सकता तो नहीं; भाव आया, वह आत्मा की हिंसा है। अरेरे..! गजब बात! पुरुषार्थसिद्धि उपाय, अमृतचन्द्राचार्य। श्लोक मूल पाठ (है)।

पर की दया, वह हिंसा है। अरर..र..! क्योंकि वहाँ विकल्प-राग उठता है। आहाहा! एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का कुछ कर सकता तो नहीं। छूता नहीं, स्पर्शता नहीं, प्रवेशता नहीं। वह बात तो दूर रही। परन्तु उस द्रव्य की दया का भाव आया... आहाहा! पुरुषार्थसिद्धि उपाय, अमृतचन्द्राचार्य कहते हैं, प्रभु! वह राग तेरी हिंसा है। अरेरे! गजब! यहाँ तो लौकिक काम करे।.... कार्यवाहक के रूप से, अग्रणी बनकर काम लेना, वह

बड़प्पन में गिनने में आता है। यहाँ परमात्मा कहते हैं, पर की दया पाल सकते नहीं। फिर भी पर की दया का भाव आना, वह तेरे स्वरूप की हिंसा है, प्रभु! पुरुषार्थसिद्धि उपाय में दिगम्बर सन्त जगत की दरकार छोड़कर, समाज सन्तुलित रहेगा या नहीं, एकजुट रहेगा या नहीं; दो भाग हो जाएँगे, दरकार नहीं है उनको। मार्ग यह है। सत् को संख्या की जरूरत नहीं। क्या कहा ?

दो, पाँच, पच्चीस हजार, लाख-दो लाख माने तो वह सत्। ऐसी कोई सत् को संख्या की जरूरत नहीं है। आहाहा! एक ही निकले सत् को माननेवाला तो भी सत् तो सत् ही है। आहाहा! असत्य को तो माननेवाली पूरी दुनिया है, परन्तु सत् को माननेवाले की संख्या ज्यादा हो तो वह सत् को माननेवाले की प्रसिद्धि होगी, ऐसा है नहीं। आहाहा! सत् को संख्या की जरूरत नहीं है, सत् को सत् के स्वभाव की जरूरत है। आहाहा! भगवान आत्मा, जैसा-जैसा जितना जैसा है, उतना दृष्टि में लेकर भेदज्ञान करना, उसको-सत् को संख्या की जरूरत नहीं कि बहुत लोग माने तो ठीक कहलाये। आहाहा! कड़क लगे, क्या करें ?

गाँधीजी प्रवचन में आये थे, राजकोट में। समयसार चलता था। वहाँ तो ऐसे चले कि पर की दया करना, वह भाव भी हिंसा है। आहाहा! वह सदाचरण नहीं। और उसका... आहाहा! पर की मैं दया पालता हूँ, सत्य बोलता हूँ, अहिंसा करता हूँ, चोरी नहीं करता हूँ, ब्रह्मचर्य पालता हूँ, परिग्रह मैंने छोड़ दिया है, ऐसे भाव को भी भगवान हिंसा कहते हैं। क्योंकि वह विकल्प उठा है। आहाहा! सुनना कठिन लगे। सत्य वस्तु भगवान कोई अलौकिक बात है। आहाहा!

यहाँ कहा, **चैतन्यलोक में से बाहर आना नहीं सुहाता।** जिसको चैतन्यलोक की रुचि हो गयी अन्दर, भेदज्ञान हुआ तो राग चाहे तो शुभ हो या अशुभ, दोनों जहर है और भगवान अमृतस्वरूप है—ऐसा दोनों के बीच का भेदज्ञान हो गया। आहाहा! इस लोक में से बाहर आना नहीं चाहता। **ज्ञान की ऐसी शक्ति है...** ज्ञान अर्थात् आत्मा। भगवान आत्मा का ऐसा सामर्थ्य है कि **जीव एक ही समय में...** एक ही समय में **इस निज ऋद्धि को...** आहाहा! अपनी अनन्त ऋद्धि, प्रभु! एक समय में पा सकता है, ऐसी उसमें ताकत है। आहाहा! अपनी अनन्त अपूर्व ऋद्धि अनन्त काल में अपूर्व अर्थात् पूर्व में कभी पायी नहीं।

वह ऋद्धि भी विद्यमान सत् तैयार है। एक समय में पूर्ण ऋद्धि प्राप्त कर सके, ऐसी ताकत है। आहाहा! अरे..रे..! वह आत्मा का कैसे बैठे? शरीर के सामर्थ्य का बैठे। आहा..!

एक बार तो ऐसा हुआ कि सब योद्धा इकट्ठे हुए। सभा (भरी)। नेमिनाथ भगवान भी साथ में बैठे थे। संसार (गृहस्थ) में थे। भीम, अर्जुन आदि सब योद्धा साथ में थे। सब प्रशंसा करने लगे। किसी ने कहा, भीम (बड़ा) योद्धा। शरीर का सामर्थ्य, हों! आत्मा का नहीं। किसी ने कहा, उसका बल ज्यादा है, कोई भीम का कहे, कोई अर्जुन का कहे, फलाना का कहे। एक ने सभा में ऐसा कहा, नेमिनाथ भगवान विराजते हैं। गृहस्थाश्रम में थे। उसके शरीर के सामर्थ्य के आगे किसी का सामर्थ्य नहीं है। शरीर का सामर्थ्य। आहाहा! ऐसा हुआ कि भगवान भी बैठे थे। गृहस्थाश्रम में थे। राग-विकल्प आता था। ऐसी बात हुई तो दोनों पैर नीचे रखे। कोई इस पैर को उठाओ। कोई बलवान योद्धा इस पैर को ऊपर करो। श्री कृष्ण आये। पाठ ऐसा है। श्रीकृष्ण पैर को ऊँचा करते हैं। शरीर का इतना सामर्थ्य। तीर्थंकर के शरीर का। आहाहा! श्रीकृष्ण जैसे लौट गये। वज्रबिम्ब खिसके तो पैर खिसके। ऐसा तो शरीर का बल था, जड़ का। ऐसा विकल्प आ गया। भगवान को भी ऐसा विकल्प आ गया। यह लोग बातें करते हैं, चलो, भले देख ले। आहाहा! वह भी दु:खरूप तो लगता था, विकल्प। कमजोरी के कारण से वह विकल्प आया। श्रीकृष्ण ने पैर उठाने की बहुत मेहनत की। एक तसू (-एक इंच जितना नाप) खिसका नहीं। परन्तु वह तो शरीर के बल की बात है। वह कोई आत्मा के बल की बात नहीं है। आत्मा एक परमाणु को भी पलट सकता नहीं। आत्मा, आँख की पलक झपकती है, वह आत्मा से नहीं। आहाहा! थोड़ी पलक झपकती है, वह आत्मा से नहीं। तीन काल में आत्मा से नहीं। आत्मा उसको छूता नहीं, आत्मा में उसका अत्यन्त अभाव है, और पलक में आत्मा का अत्यन्त अभाव है। अभाव है, उसमें छुए कहाँ से? पलक झपकाये कैसे? अंगुली हिलाना... आहाहा! आत्मा की ताकत नहीं। अंगुली ऐसे हिलाये, वह आत्मा की ताकत नहीं। वह आत्मा से हिलती नहीं। यह अंगुली अपने परमाणु के सामर्थ्य से हिलती है। आहाहा! वह माननेवाला निकले, जड़ की शक्ति। परन्तु चैतन्य के बल का पार नहीं, प्रभु! वह तो जड़ है, यह तो प्रभु आत्मा है। अनन्त-अनन्त चैतन्यऋद्धि भरी है। एक ऋद्धि की भी अमोल कीमत है। आहाहा! जिसका मूल्य नहीं, ऐसा भगवान आत्मा...

यहाँ कहते हैं, **ऐसी शक्ति है कि जीव एक ही समय में इस निज ऋद्धि को तथा अन्य सबको जान ले।** करे किसी का नहीं। करना किसी भी चीज़ का पर का – एक परमाणु का नहीं और जानने में कोई चीज़ बाकी नहीं। आहाहा! प्रभु! ऐसा मार्ग है। ऐसा मार्ग गुप्त हो गया है। अभी तो धमाधम बाहर की धमाधम में लोग मान बैठते हैं, प्रभु! जीवन चला जाता है। आयुष्य पूरा हो जाएगा। कहाँ जाएगा प्रभु? तेरी सत्ता तो अनादि-अनन्त है। उसकी सत्ता भविष्य में अनन्त काल रहनेवाली है। तेरी सत्ता तो अनन्त काल रहनेवाली है। प्रभु! कहाँ रहेगा? तेरे में जो रुचि, दृष्टि और भेदज्ञान नहीं किया (तो) कहाँ रहेगा? प्रभु! आहाहा! यहाँ तो एक समय में अनन्त ऋद्धि और तीन काल जानने की उसमें शक्ति है। उस शक्ति का भरोसा, विश्वास आता नहीं। आहाहा! भाई नहीं आये हैं न? बाबूभाई।

वह अपने क्षेत्र में निवास करता हुआ... क्या कहते हैं? पर की ऋद्धि अपने क्षेत्र में रहकर जानता है। अपनी ऋद्धि अपने में रहकर जानता है और अपने सिवा सब लोकालोक, त्रिलोकनाथ केवली का केवलज्ञान ऋद्धि भी यह आत्मा जानता है, अपने क्षेत्र में रहकर जानता है। अपने क्षेत्र में रहकर जानता है। अपने क्षेत्र को छोड़कर जानता है, ऐसा नहीं। आहा..! ऐसी बात कठिन लगे, भाई!

बहिन की वाणी तो निकल गयी है। आहा..! बहिन तो कल नहीं आये थे। बरसात आयी थी। ... आते हैं न, नहीं आये थे। उनकी स्थिति तो अलौकिक है। परसों है न? जन्मदिन। ६८। स्त्री का देह आ गया है। उनकी जो शक्ति है, उसका नाप करने का साधारण का काम नहीं। ऐसी शक्ति है अन्दर। अनुभव-अनुभूति सम्यग्दर्शन। असंख्य अरब वर्षों का जातिस्मरण। असंख्य अरब में देव आया, इसलिए देव का आयुष्य तो बड़ा आयुष्य है न। स्वर्ग का। पहले स्वर्ग का दो सागर का आयुष्य है। एक सागर में दस कोड़ाकोड़ी पल्योपम, एक पल्योपम के असंख्यवें भाग में असंख्य अरब वर्ष। क्या कहा? एक भव सौधर्म (देवलोक का) हो और जानने में आया। वहाँ दो सागर की स्थिति है। एक सागर में दस कोड़ाकोड़ी पल्योपम होता है। दस कोड़ाकोड़ी पल्योपम। एक पल्य के असंख्यवें भाग में असंख्य अरब वर्ष जाते हैं। आहाहा! ऐसा नौ भव का ज्ञान (है)। कुछ नहीं। मुर्दे की भाँति खड़े रहते हैं। वस्तु तो वस्तु है। लोग स्वीकारे, न स्वीकारे, उसके साथ

कोई सम्बन्ध नहीं है। सत् को संख्या की जरूरत नहीं है। यह माने और माननेवाले मिले तो मेरा सत् और मेरा माननेवाला नहीं मिले तो मेरा असत् हो जाए। सत् तीन काल में असत् होता नहीं और तीन काल में सत् प्राप्त हुआ, वह असत् हो जाता नहीं। दुनिया निन्दा करे, विरोध करे, निश्चयाभासी कहे, चाहे जैसी भाषा कहे, वस्तु में अंश... नहीं। आहा..! ऐसी आत्मा में ताकत है। आहा..!

ज्ञान की ऐसी शक्ति है कि जीव एक ही समय में इस निज ऋद्धि को तथा अन्य सबको... अपने क्षेत्र में रहकर जानता है। **वह अपने क्षेत्र में निवास करता हुआ जानता है;...** आहाहा! एक आदमी घर में खड़ा हो। (बाहर) ताबूच या लाखों आदमी निकले हो। घर में खड़े रहकर जैसे देखे, ऐसे आत्मा में खड़े-खड़े पूरी दुनिया जाने। तीन काल-तीन लोक को आत्मा जाने। आहाहा! घर में खड़े रहकर जाने। ऐसे प्रभु की तुझे... आहाहा! उस ओर की रुचि, उस ओर की वृत्ति, उस ओर की सन्मुखता, उस ओर का झुकाव... आहाहा! उसके बिना तो सब निरर्थक है। पूरी जिन्दगी निरर्थक चली जाएगी।

यहाँ कहते हैं, **अपने क्षेत्र में निवास करता हुआ जानता है;...** पर को जानने के लिये पर क्षेत्र में जाना पड़ता नहीं। अलोक। अलोक को जाने कि अलोक कितना है? चौदह ब्रह्माण्ड-यह चौदह राजूलोक। अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... किसी भी दिशा में चले जाओ, इस ओर आकाश है, (उस दिशा में) ऐसे ही चला जाए, कोई पता नहीं, उस ओर चला जाए, तो वहाँ भी पता नहीं। आहाहा! ऐसी आकाश की श्रेणी इतने में असंख्य है। एक-एक श्रेणी लोक में चले जाए तो लोक तो पूरा हो गया। बाहर भी श्रेणी गई तो अन्त में क्या? उसका अन्त कहाँ? आहाहा! क्षेत्र का भी ऐसा स्वभाव। तो क्षेत्रज्ञ-क्षेत्र को जाननेवाला भगवान। आहाहा! उसकी शक्ति क्या कहनी! क्षेत्र का ऐसा स्वभाव, थोड़ा विचार करे तो खबर पड़े। श्रेणी, शास्त्र में लिखा है। लोक और अलोक दो भाग दिखे। एक श्रेणी ऐसे ही चली जाती है, दूसरी, तीसरी चली जाती है। अनन्त श्रेणी, कहीं अन्त नहीं। ऊपर अन्त नहीं, इस ओर अन्त नहीं, उस ओर अन्त नहीं, नीचे अन्त नहीं। आहाहा! ऐसे अलोक को भी अपने क्षेत्र में रहकर, अलोक में गये बिना अपने सामर्थ्य से अपने क्षेत्र में जानता है। आहाहा! विचार कब किया है? ... अन्दर सत् क्या है, ऐसा भगवान आत्मा **अपने क्षेत्र में निवास करता हुआ जानता है;...**

श्रम पड़े बिना,... इतना जानने में श्रम पड़ जाए, थकान लगे, ऐसा है नहीं। आनन्द के सागर में, आनन्द के सागर में आनन्द का अनुभव करते हुए, आनन्द के साथ का ज्ञान लोकालोक को जान लेता है। आहाहा! **श्रम पड़े बिना, खेद हुए बिना जानता है।** इतना जाना तो श्रम पड़े या नहीं? खाताबही लिखता है, एक-दो खाताबही ५००-५०० पन्ने की लिखे तो थक जाए। पढ़ते-पढ़ते थक जाए। दिवाली के दिन बड़ी-बड़ी खाताबही हो, पैसेवाला हो। हमारे मकान के पास ... वडोदरा में, लोटिया वोरा। बड़े गृहस्थ थे। खाताबही लिखने बैठे, तब बड़ी खातबही निकाले। नूतन वर्ष के दिन। पार नहीं, उतना लिखते रहे। मानो ज्यादा लिखे तो ज्यादा पैसे मिलेंगे। आहाहा! खुदा को नमस्कार, खुदा को नमस्कार, खुदा को ऐसा और खुदा को वैसा। दुकान के पास था। .... नरुद्दिन नाम का बड़ा वोरा, वडोदरा का। लोग ऐसा माने कि... यहाँ बनिये भी लिखते हैं न। शालिभद्र की ऋद्धि हो। कहाँ डालेगा तू? क्या है तुझे? आहाहा!

मुमुक्षु :- बाहुबली का बल होओ।

पूज्य गुरुदेवश्री :- बाहुबली का बल होओ। किसके साथ तुझे लड़ना है, प्रभु? क्या करना है? अभयकुमार की बुद्धि हो। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं, आत्मा की बुद्धि होओ। जिस बुद्धि में अन्तर में रहकर तीन काल तीन लोक जाने, फिर भी श्रम नहीं, परन्तु आनन्द है। अनन्त-अनन्त आनन्द है। आहाहा! भेदज्ञान में भी आनन्द है तो सर्वज्ञ में तो क्या कहना? आहा..!

अन्तर में रहकर सब जान लेता है,... अन्तर में रहकर सब जान लेता है। करना है कुछ नहीं, कर सके नहीं कुछ, जान सके (सब कुछ), एक भी चीज़ बाकी रखे बिना। आहाहा! **सब जान लेता है,... अन्तर में रहकर सब जान लेता है, बाहर झाँकने नहीं जाना पड़ता।** आहाहा! अलोक को जानना हो तो उपयोग बाहर नहीं रखता। उपयोग बाहर जाए तो बाहर जान सके, ऐसा नहीं। अन्तर में रहा उपयोग पर को जान सकता है। आहाहा! अभी भी ऐसा है। गिरनार आदि पर्वत पर चढ़े। नीचे उतरे तो कितना दिखे। आँख तो इतनी है, परन्तु दिखता है कितना? मालूम है, सब देखा है न। चारों ओर नीचे दिखे, दस-दस, पन्द्रह-पन्द्रह, बीस कोस तक। इतनी छोटी आँख में नीचे उतरते समय (दिखाई दे)। ऊपर चढ़ते समय तो सामने पर्वत देखता है। परन्तु उतरते समय... यह किया है न, सब

देखा है न। उतरते समय देखे तो कहीं की कहीं नजर (पहुँचे) । कहाँ जैतपुर और कहाँ जूनागढ़। वहाँ से दिखे। वहाँ जाना पड़ता है ? आहाहा! अपने में रहकर सबको जानने की इतनी ताकत है। कभी जाँच करे तो मालूम पड़े न। आहाहा! सम्मेदशिखर पर जाए। फिर नीचे नजर करे तो कितनी बात जान सकता है। श्रम बिना। परन्तु रागी प्राणी है। आहाहा!

यहाँ तो राग रहित आत्मा की शक्ति खिली, श्रम पड़े बिना, खेद बिना अपने क्षेत्र में रहकर सब भाव को अपने क्षेत्र में सब भाव को जान लेता है। ऐसी ताकत आत्मा में है। आहाहा!

मुमुक्षु :- यह चैतन्य की ऋद्धि ?

पूज्य गुरुदेवश्री :- चैतन्य की ऋद्धि। सेठपना नहीं कर सकता। आहाहा! एक पैसा किसी को दे सकता नहीं। किसी से एक पैसा ले सकता नहीं। अरर..! ऐसी चीज़। भगवान! तू तो ज्ञानस्वरूप है न, प्रभु! ज्ञानस्वरूप में क्या है ? प्रभु! ज्ञान जानने का काम करे ? या ज्ञान पर का काम करे ? क्या करता है ? आहाहा! इतने-इतने काम किये, इतने काम हमने किया, हमने व्यवस्था की। इस बड़ी संस्था के हम व्यवस्थापक हैं।.... लेकिन बापू! प्रभु! वह वस्तु व्यवस्था तो समय-समय में होनेवाली होगी ही। वह व्यवस्था होती है और तू व्यवस्था करनेवाला बन जा, कहाँ जाना है तुझे ? आहाहा! जिसको देखने से अभिमान होता है, वहाँ लोक में भटकने जाना है। लोक में भटकने जाना है। आहाहा!

यहाँ कहते हैं, आहाहा! **बाहर झाँकने नहीं जाना पड़ता।** ३१० हुआ ? किसी ने इसमें लिखा है। ३२१।

पर्याय पर दृष्टि रखने से चैतन्य प्रगट नहीं होता, द्रव्यदृष्टि करने से ही चैतन्य प्रगट होता है। द्रव्य में अनन्त सामर्थ्य भरा है, उस द्रव्य पर दृष्टि लगाओ। निगोद से लेकर सिद्ध तक की कोई भी पर्याय, शुद्धदृष्टि का विषय नहीं है। साधकदशा भी शुद्धदृष्टि के विषयभूत मूल स्वभाव में नहीं है। द्रव्यदृष्टि करने से ही आगे बढ़ा जा सकता है, शुद्ध पर्याय की दृष्टि से भी आगे नहीं बढ़ा जा सकता। द्रव्यदृष्टि में मात्र शुद्ध अखण्ड द्रव्यसामान्य का ही स्वीकार होता है॥३२१॥

३२१। **पर्याय पर दृष्टि रखने से...** है ? आहाहा! पर-ऊपर दृष्टि रखने से, उसकी तो बात कहाँ करनी ? **पर्याय पर दृष्टि रखने से चैतन्य प्रगट नहीं होता,...** आहाहा! भगवान आत्मा... पर-ऊपर लक्ष्य करने से, श्रवण, मनन, संग, सत्संग, उससे कोई आत्मा प्रगट नहीं होता। उससे तो नहीं होता, परन्तु पर्याय पर दृष्टि रखने से चैतन्य प्रगट नहीं होता। आहाहा! ऐसी बात है। अपनी पर्याय। दूसरी चीज़ की दृष्टि करने से बहिरात्मा (हो) जाता है। बहिर आत्मा-बाह्य चीज़ मेरी है, मैं पर को जानता हूँ, यह चीज़ मेरी है, यह चीज़ है तो मैं जानता हूँ; मेरे में ताकत है तो मैं जानता हूँ, ऐसा नहीं मानता। वह चीज़ है तो मैं जानता हूँ। जानने की शक्ति .... मेरे में ज्ञान की ताकत है। क्षेत्र बदले बिना (जानता हूँ)। आहाहा! ३२१ है न ? आहा..!

द्रव्य में अनन्त सामर्थ्य भरा है,... द्रव्य में अनन्त सामर्थ्य (भरा है)। द्रव्य अर्थात् पैसा नहीं। द्रव्य अर्थात् वस्तु। उसकी शक्ति-गुण, और उसकी दशा को अवस्था (कहते हैं)। द्रव्य, गुण और पर्याय तीन है। उसकी सत्ता तीन में है, बाहर कहीं नहीं है। बाहर के साथ कहीं कुछ सम्बन्ध नहीं। अपने में द्रव्य, गुण, पर्याय तीन है। द्रव्य अर्थात् त्रिकाली वस्तु, गुण अर्थात् त्रिकाली शक्ति। पर्याय अर्थात् वर्तमान दशा-अवस्था। आहाहा! **पर्याय पर दृष्टि रखने से चैतन्य प्रगट नहीं होता,...** आहाहा! सुनने से (नहीं होता)। कठिन बात है, प्रभु! प्रत्यक्ष दिखता हो, वह झूठी कैसे ? क्या दिखता है ? प्रभु! आहाहा!

पर्याय पर दृष्टि रखने से चैतन्य प्रगट नहीं होता, द्रव्यदृष्टि करने से ही... त्रिकाली भगवान पूर्णानन्द का नाथ, एकरूप त्रिकाल। पर्याय तो पलटती है। पर्याय तो एक समय में एक और दूसरे समय दूसरी पलटती है। पलटती के पीछे अन्दर भगवान पाताल में विराजता है। पर्याय की अपेक्षा से पाताल अन्दर। **द्रव्यदृष्टि करने से ही चैतन्य प्रगट होता है।** आहाहा! द्रव्यदृष्टि करने से ही। एकान्त हुआ। दूसरा कोई उपाय नहीं, प्रभु! दूसरी कोई रीति नहीं है, तीन काल तीन लोक में। तीन लोक के नाथ तीर्थंकर, अनन्त तीर्थंकरों, अनन्त सर्वज्ञों, अनन्त सन्तों, यह बात करके गये हैं। आहाहा! **द्रव्यदृष्टि करने से ही चैतन्य प्रगट होता है।** तेरी पर्याय पर दृष्टि करने से पर्यायमूढ़ हो जाता है। आहा..! प्रवचनसार ९३ गाथा। पहली में लिया है, पर्यायमूढा परसमया। अपनी पर्याय में भी दृष्टि रखनेवाला, पर्यायमूढ़ परसमया-वह परात्मा, अनात्मा है। वह आत्मा नहीं। आहाहा!

अरे.. ! दुनिया के पास ऐसी बात ? मार्ग तो ऐसा है। बचाव करने के लिये कुछ भी कहे, दूसरा होता नहीं।

द्रव्य में अनन्त सामर्थ्य भरा है, उस द्रव्य पर दृष्टि लगाओ। आहाहा ! भगवान चैतन्यस्वरूप अनन्त गुण का भण्डार, अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. तीन काल के समय से भी अनन्त.. अनन्त। एक सेकेण्ड में असंख्य समय। ऐसे तीन काल का समय, उससे भी अनन्त गुना तेरे में गुण है। आहाहा ! तेरे में उससे भी अनन्तगुनी ऋद्धि है। आहाहा ! **उस द्रव्य पर दृष्टि लगाओ। निगोद से लेकर सिद्ध तक की कोई भी पर्याय, शुद्धदृष्टि का विषय नहीं है।** क्या कहते हैं ? सम्यग्दर्शन—धर्म की प्रथम शुरुआत, धर्म की पहली सीढ़ी, धर्म का प्रथम सोपान, यह द्रव्यदृष्टि... आहाहा ! **निगोद से लेकर सिद्ध तक....** बीच में सब आ गया। पंच परमेष्ठी आदि। **निगोद से लेकर सिद्ध तक की कोई भी पर्याय, शुद्धदृष्टि का विषय नहीं है।** आहाहा ! सम्यग्दर्शन का, निगोद से लेकर सिद्ध भगवान तक, बीच में पंच परमेष्ठी, अरिहन्त आदि बीच में आ गये। आहाहा ! **निगोद से लेकर सिद्ध तक की कोई भी पर्याय, शुद्धदृष्टि का विषय नहीं है।** आहाहा ! सम्यग्दर्शन का विषय कोई (पर्याय) नहीं है। निगोद से लेकर सिद्ध, सम्यग्दर्शन का विषय-ध्येय नहीं है। आहाहा ! अरे..रे.. ! ऐसा सुनना...

यह तो भगवान की वाणी है। अनुभव में से ... भगवान के पास सुना था। जातिस्मरण है। असंख्य अरबों वर्ष का, बहिन को। जगत को बैठना कठिन पड़े। अपनी होशियारी के आगे ... चीज़ क्या है, उसका नाप करना कठिन पड़े।

यहाँ कहते हैं, यह बहिन के शब्द है। **कोई भी पर्याय, शुद्धदृष्टि का विषय नहीं है। साधकदशा भी...** आहाहा ! अरे.. ! साधकदशा। सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र, यह मोक्षमार्ग भी **शुद्धदृष्टि के विषयभूत मूल स्वभाव में नहीं है।** आहाहा ! कठिन पड़े, पाटनीजी ! ऐसी बात है। **साधकदशा भी...** मोक्षमार्ग प्रगट हुआ तो भी **शुद्धदृष्टि के विषयभूत मूल स्वभाव में नहीं है।** आहाहा ! वह भी सम्यग्दर्शन का विषय नहीं है। सम्यग्दर्शन का सम्यग्ज्ञान भी विषय नहीं है। सम्यग्दर्शन का चारित्रदशा वह भी विषय नहीं। वह तो नहीं, अपितु पंच परमेष्ठी और सिद्ध भी उसका विषय नहीं है। आहाहा ! अपनी पर्याय भी चार ज्ञान प्रगट हुआ हो, तो भी वह दृष्टि का विषय नहीं है। आहाहा ! बड़ी कठिन बात। **कोई**

भी पर्याय, शुद्धदृष्टि का विषय नहीं है। साधकदशा भी शुद्धदृष्टि के विषयभूत मूल स्वभाव में नहीं है। शुद्धदृष्टि का विषय तो त्रिकाल स्वभाव है, साधकदशा तो पर्याय है। पर्याय तो उसमें है नहीं। आहाहा! गजब बात है! ऐसी बात बाहर आये तो सुनने में... पुण्य है तो बाहर यह बात सुनते हैं, नहीं तो मुश्किल हो जाए। आहाहा!

साधकदशा भी... मोक्ष का मार्ग–निश्चयमोक्षमार्ग। सम्यग्दर्शन, ज्ञान और चारित्र। क्षायिक समकित; क्षायिक समकित भी समकित का विषय नहीं है। आहाहा! ऐसा है, भगवान! तेरी दृष्टि का विषय तो अलौकिक ... है। आहाहा! पूर्णानन्द का नाथ, उसमें विपरीतता तो नहीं, अल्पता नहीं और पूर्णता से पूर्ण भरा भगवान (है)। अनन्त गुण,... **साधकदशा भी शुद्धदृष्टि के विषयभूत मूल स्वभाव में नहीं है।** मूल स्वभाव में साधकदशा नहीं है। आहाहा! दृष्टि, दृष्टि के विषयभूत मूल स्वभाव में नहीं है। (मूल स्वभाव है), उसमें दृष्टि नहीं है, ऐसा कहते हैं। साधकदशा का विषय है, परन्तु साधकदशा उसमें नहीं है। आहाहा! ऐसी बात है। सुनने तो मिले।

द्रव्यदृष्टि करने से ही आगे बढ़ा जा सकता है,... सबके ऊपर से दृष्टि उठाकर, पर्याय पर से दृष्टि उठाकर... आहाहा! अपने द्रव्य पर दृष्टि देने से आगे बढ़ सकता है। चारित्र, केवलज्ञान ले सकता है। **शुद्ध पर्याय की दृष्टि से भी आगे नहीं बढ़ा जा सकता।** क्या कहते हैं? शुद्ध पर्याय चार ज्ञान प्रगट हुए, अवधिज्ञान प्रगट हुआ। उससे भी, **शुद्ध पर्याय की दृष्टि से भी आगे नहीं बढ़ा जा सकता।** आगे बढ़ने में तो दृष्टि का विषय है, उसे पकड़ने से आगे बढ़ सकता है। उत्पन्न भी उससे होता है और उसी के आश्रय से आगे बढ़ सकता है। पर्याय जो निर्मल हुई, उसके आश्रय से बढ़ नहीं सकता। आहाहा!

द्रव्यदृष्टि में मात्र शुद्ध अखण्ड द्रव्यसामान्य का ही स्वीकार होता है। आहाहा! (समय हो गया)। (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

विक्रम संवत-२०३५, श्रावण शुक्ल - १५, मंगलवार, तारीख २६-८-१९८०
वचनामृत- ३२१, ३२३, ३२९ प्रवचन-१९

वचनामृत-३२१। मुद्दे की बात यहाँ तो, भाई! बहिन अन्दर में अनुभव में से असंख्य अरब वर्षों का तो जातिस्मरण (ज्ञान) है। वह कौन है, साधारण प्राणी पहचान सके ऐसा नहीं है। मुर्दे जैसा लगे। असंख्य अरबों वर्षों का जातिस्मरण। नौ भव। अनुभूति, सम्यग्दर्शन और आनन्द का स्वाद (आया है), उसमें से यह वाणी निकली है। कोई बार बोले होंगे, उसमें से लिखा है। इसमें अतिश्योक्ति से कुछ नहीं (कहा) है, हों! आहाहा!

बहिन की वाणी में यह आया, **पर्याय पर दृष्टि रखने से चैतन्य प्रगट नहीं होता,...** आहाहा! परपदार्थ पर दृष्टि रखने से, त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव पर दृष्टि रखने से भी समकित तो नहीं होता। उनकी वाणी पर लक्ष्य रखने से भी समकित नहीं होता। आहाहा! उनकी वाणी निमित्त और अपने में ज्ञान होने की लायकता से ज्ञान हुआ हो, उससे भी समकित नहीं होता। आहाहा! गजब बात, प्रभु! अन्तर की द्रव्य की दृष्टि जो पर्याय, उस पर्याय पर दृष्टि रहने से चैतन्य प्रगट नहीं होता। निर्मल पर्याय प्रगट होती हो, उस पर भी दृष्टि रखने से नहीं होता। आहाहा! नियमसार में ५०वीं गाथा में तो वहाँ तक कहा, प्रभु! तेरी पर्याय को भी हम तो परद्रव्य कहते हैं। आहाहा! ५०वीं गाथा। जगत प्राणी कुछ भी मानो या कुछ भी स्वच्छन्द करो, परन्तु अन्तर भगवान द्रव्य, गुण और पर्याय ये तीन पर, पर्याय पर दृष्टि देने से भी सम्यग्दर्शन नहीं होता। आहाहा!

द्रव्यदृष्टि करने से ही चैतन्य प्रगट होता है। चैतन्य भगवान पूर्णानन्द का नाथ, उस पर दृष्टि करने से सम्यग्दर्शन होता है। जिसमें अनन्त-अनन्त विभूति भरी है। जिसमें अनन्त-अनन्त समृद्धि की सम्पदा पड़ी है। ऐसा भगवान आत्मा, **द्रव्यदृष्टि करने से ही चैतन्य प्रगट होता है।** आहाहा! भाषा संक्षेप में है, परन्तु... आहा..! इसमें मान-अपमान का कुछ नहीं है। हम ऐसा कहे और आप ऐसा कहते हो। बापू! प्रभु! ऐसा कुछ नहीं है। मार्ग तो यह है। हम व्यवहार से कहते हैं, पर्याय से कहते हैं, आप हमें ना कहकर झूठा

ठहराते हो। बापू! आपको झूठा नहीं ठहराते। प्रभु! मार्ग तो यह है। भगवन्त! माफ करना, तुझे दूसरी तरह से दु:ख लगे तो। आहाहा! दूसरा क्या कहें?

पद्मनन्दि आचार्य महाराज भी ऐसा बोले,.. आहाहा! उसमें उतना लिखा है, ब्रह्मचर्य का २६वाँ अध्याय लिखा। लिखने के बाद कहते हैं, हे युवानों! शरीर से ब्रह्मचर्य पालना, वह ब्रह्मचर्य नहीं है। काया से विषय न लेना, वह कोई ब्रह्मचर्य नहीं है। आहाहा! मन से विकल्प उठता है कि मैं ब्रह्मचर्य पालूँ। वह भी कोई ब्रह्मचर्य नहीं है। आहाहा! आचार्य महाराज पद्मनन्दि प्रभु ऐसा कहते हैं,.. आहाहा! प्रभु! द्रव्यदृष्टि... तेरी दृष्टि शास्त्र में जाए तो भी व्यभिचारी है, प्रभु! आहाहा! गजब बात! लोगों को कठिन लगे।

उज्जैनवाले आये थे। एक बार कहा था। उज्जैनवाले सेठ नहीं थे? पण्डित। सत्येन्द्र, उज्जैन का पण्डित है न? आये थे। उसे कहा था, बापू! यह है, भाई! वीतराग के शास्त्र पर दृष्टि करने से, प्रभु! मुनि पंच महाव्रतधारी एकावतारी, केवलज्ञान के पथिक ऐसा फरमाते हैं, पर ऊपर राग करने से तो राग ही होता है। पर के आश्रय से धर्म बिल्कुल होता नहीं। आहाहा! यह बात, प्रभु! क्या करें? यह वीतराग सर्वज्ञदेव की बात, भाव, दिगम्बर में रह गया है। बाकी कोई सम्प्रदाय में यह बात है नहीं। स्थानकवासी और श्वेताम्बर जैन नहीं है। वे जैन नहीं है। मोक्षमार्गप्रकाशक में टोडरमल स्पष्ट लिखते हैं, स्थानकवासी और श्वेताम्बर अन्यमति हैं, जैन नहीं हैं। अर..र..र..! क्योंकि उसमें यह वाणी सुनने मिलती नहीं। उसमें है ही नहीं। आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि, **द्रव्यदृष्टि करने से ही चैतन्य प्रगट होता है। द्रव्य में अनन्त सामर्थ्य भरा है,...** ओहो..! प्रभु! द्रव्य में तो अनन्त सामर्थ्य है। केवलज्ञानी परमात्मा ने तो प्रत्यक्ष देखा है। सम्यग्दर्शन में भी वह अचिन्त्य चमत्कार अन्दर में होता है। वेदन थोड़ा, वेदन थोड़ा है, परन्तु अन्तर की अनन्त चमत्कृति सम्यग्दर्शन में भी चैतन्य का चमत्कार भास में आता है। आहाहा! ऐसी बात है, पाटनजी! अरे..! प्रभु! कितनों को दु:ख लगे कि हमको.. बापू! प्रभु! तेरे आत्मा को शान्ति मिले। भगवान होओ, यहाँ तो सब प्रभु बन जाओ। मार्ग दूसरा है। आहाहा! बाकी तो सब भगवान हो जाओ। परन्तु इस रास्ते भगवान होंगे, दूसरे रास्ते से नहीं होंगे। आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि **द्रव्य में अनन्त सामर्थ्य भरा है,...** द्रव्य अर्थात् भगवान आत्मा।

त्रिकाली सनातन सत्य, त्रिकाली अनादि–अनन्त सत्, ऐसा प्रभु, उसमें तो अनन्त सामर्थ्य भरा है। आहाहा! **उस द्रव्य पर दृष्टि लगाओ।** बहुत संक्षेप में कहा बहिन ने। द्रव्य पर दृष्टि लगा दो। बाकी सब बातें हैं, कुछ भी हो। आहाहा! १३वीं गाथा में तो वहाँ तक कहा कि नय, निक्षेप, प्रमाण से आत्मा का विचार करना, परन्तु वह भी अभूतार्थ है। आहाहा! १३वीं गाथा में कहा है। समयसार। समयसार 'ग्रंथाधिराज तारामां भावो ब्रह्मांडना भर्या।' 'ग्रंथाधिराज तारामां भावो ब्रह्मांडना भर्या।' एक–एक पद में, एक–एक गाथा में। यहाँ तो बहिन स्वयं अनुभव से कहते हैं। आहाहा! **द्रव्य पर दृष्टि लगाओ।**

निगोद से लेकर सिद्ध तक की कोई भी पर्याय, शुद्धदृष्टि का विषय नहीं है। आहाहा! सिद्ध भी सम्यग्दर्शन का विषय नहीं। आहाहा! कठिन लगे, लोगों को एकान्त लगे, प्रभु! क्या हो? भगवान का विरह हुआ, प्रभु वहाँ रह गये। सीमन्धर भगवान तो महाविदेह में रह गये। आहाहा! उनका विरह हुआ। पीछे यह बात रह गयी। कितने ही लोगों को यह अतिश्योक्ति का एकान्त है, ऐसा लगता है। प्रभु! ऐसा नहीं है। प्रभु! वस्तु का स्वरूप ऐसा है। तीन लोक के नाथ सीमन्धर भगवान वहाँ कह रहे हैं। प्रभु! आहाहा! बहिन को तो ध्यान में आने पर, आँख खुलने के बाद कोई बार ऐसा भी लगता है, मैं भरत में हूँ कि महाविदेह में हूँ, भूल जाते हैं। कौन माने? आहाहा! ऐसे देखो तो मुर्दे। ऐसे खड़े रहे। आहाहा! भाई! शरीर की स्थिति कोई भी हो, मन की स्थिति कोई भी हो। आहाहा! भाई! शरीर की स्थिति कोई भी हो, मन की स्थिति कोई भी हो। आहाहा! वाणी की स्थिति कोई भी हो, भगवान तो मन, वाणी, देह से पार है अन्दर में। आहाहा! पर्याय से भी पार है। मन, वचन, काया से तो पार है... आहाहा! पर्याय से भी पार है। कहा न?

निगोद से लेकर सिद्ध तक की कोई भी पर्याय, शुद्धदृष्टि का विषय नहीं है। शुद्ध दृष्टि का सिद्ध भी विषय नहीं है। आहाहा! **साधकदशा भी...** मोक्ष का मार्ग प्रगट हुआ, ज्ञायकभाव का आनन्द का अनुभव हुआ और साधकदशा प्रगट हुई और साधक से सिद्ध तो अवश्य होनेवाले हैं। दूज उगी है तो पूर्णिमा होगी है। ऐसे अपने में अपना अनुभव जहाँ हुआ तो अल्प काल में केवलज्ञान तो होगा ही। परन्तु यहाँ कहते हैं कि **साधकदशा भी शुद्धदृष्टि के विषयभूत मूल स्वभाव में नहीं है।** आहाहा! जिस भाव से निश्चित होता है कि मैं अल्प काल में सिद्ध होऊँगा। वह दशा भी दृष्टि का विषय नहीं। साधकदशा, मोक्ष का मार्ग निश्चय, स्वद्रव्य के आश्रय से सम्यग्दर्शन—ज्ञान हुआ, चारित्र हुआ, वह भी दृष्टि

का विषय नहीं। आहाहा! प्रभु! कठिन लगे, परन्तु रास्ता तो तेरे घर में है न, नाथ! प्रभु! तू जितना बड़ा है, उसकी बात करते हैं। तूने चाहे जैसा माना हो, परन्तु तेरी महत्ता का तो पार नहीं है। सर्वज्ञ भी...

जो पद झलके श्री जिनवर के ज्ञान में,
कह न सके पर वह भी श्री भगवान जब।
उस स्वरूप को अन्य वचन से क्या कहूँ,
अनुभवगोचार मात्र रहा वह ज्ञान जब॥
अपूर्व अवसर ऐसा किस दिन आयेगा॥

सिद्धपद कब आयेगा? सिद्धदशा की झंखना। आहा..! श्रीमद् राजचन्द्र गृहस्थाश्रम में थे। स्त्री, परिवार, पुत्र-पुत्री थे। हजारों का, लाखों का जोहरी का व्यापार था। परन्तु अन्दर में से नारियल में जैसे गोला भिन्न रहता है, श्रीफल-गोला। सूखा गोला जैसे भिन्न रहता है, वैसे ये देह में भिन्न रहते हैं, प्रभु! ऐसा आत्मा अन्दर भगवान पूर्णानन्द की सम्पदा से भरा पड़ा (है)।

साधकदशा भी शुद्धदृष्टि के विषयभूत मूल स्वभाव में नहीं है। आहा! अर्थात् क्या कहा? मूल स्वभाव जो त्रिकाल है, उसमें साधकदशा भी, दृष्टि का विषय मूल स्वभाव में नहीं है। आहाहा! ऐसा उपदेश। आहा..! **साधकदशा भी शुद्धदृष्टि के विषयभूत...** विषयभूत क्या? **मूल स्वभाव में नहीं है।** त्रिकाली स्वभाव में साधकदशा नहीं है। त्रिकाली स्वभाव, मूल स्वभाव भगवान स्वभाव, ध्रुव आनन्दस्वभाव में साधकदशा का अभाव है। क्योंकि साधकदशा तो पर्याय है। आहाहा! वह साधकदशा भी ध्रुव पर ऊपर-ऊपर तैरती है। आहाहा! जिसका मूल स्वभाव में प्रवेश नहीं। आहाहा! ऐसा मार्ग है, प्रभु! कठिन लगे या कुछ भी लगे, दूसरी बात आसान लगे और यह बात कठिन लगे, परन्तु मार्ग तो प्रभु यह है। दूसरा तो कोई मार्ग है नहीं। 'एक होय त्रण काणमां परमार्थनो पंथ' आहाहा! परमार्थ का पंथ तो सिद्धदशा पाने को, जिसमें सिद्धदशा भी नहीं है। आहाहा! सिद्धदशा पाने को, जिसमें सिद्धदशा भी नहीं है, ऐसी द्रव्यदृष्टि से साधकपना प्रगट होता है और उसके आश्रय से सिद्धदशा उत्पन्न होती है। आहाहा! ऐसा मार्ग है, प्रभु! चाहे जिस प्रकार से बाहर से बात करे, परन्तु मार्ग तो यह है। आहाहा!

१४२-१४३ गाथा में वहाँ तक लिया है, प्रभु नयातिक्रान्त है। विकल्पवाला नय, हों! विकल्पवाला नय से नयातिक्रान्त है। आहा..! जो नय है, वह भी दृष्टि का विषय नहीं। आहाहा! नय तो ज्ञान का अंश है और भगवान तो अनन्त सम्पदा से भरा पड़ा भगवान है। आहाहा! यह कहते हैं, **द्रव्यदृष्टि करने से ही...** वस्तु की दृष्टि करने से ही। 'ही'। एक ही बात। कथंचित् साधक दूसरा और कथंचित् दूसरा मार्ग, ऐसा कुछ नहीं। कोई कहते हैं न (कि) कथंचित् व्यवहार मार्ग भी है। व्यवहार है सही, व्यवहार है सही, व्यवहारनय है तो विषय है सही, परन्तु उससे आत्मा का लाभ हो, ऐसा किंचित् भी नहीं है। आहाहा! दो नय का विषय तो अनादि-अनन्त है। पर्याय है न! पर्याय, व्यवहारनय का विषय है। हो, परन्तु उसका आश्रय करने लायक नहीं। आहाहा! आश्रय करने लायक तो त्रिकाली भगवान (है)।

शुद्ध पर्याय की दृष्टि से भी आगे नहीं बढ़ा जा सकता। आहाहा! क्या कहा? ३२१ है न? **शुद्ध पर्याय की दृष्टि से भी आगे नहीं बढ़ा जा सकता।** शुद्ध पर्याय सिद्ध की है, वह प्रगट होती है, उससे आगे जा नहीं सकता। पर्याय में उससे आगे जा नहीं सकता। द्रव्य तो है, वह है। द्रव्य तो अनन्त-अनन्त सम्पदा से भरपूर (है)। तो भी सिद्धदशा के आगे बढ़ जाता है, ऐसा नहीं है। सिद्धदशा प्रगट हुई, सो हुई। उससे विशेष द्रव्य में बहुत भरा है तो सिद्धदशा से आगे कुछ विशेष आनन्द आयेगा, ऐसा है नहीं। आहाहा!

अरे..! कितनों को तो ऐसा लगे, यह क्या है? बापू! प्रभु के वचन यह है। आहा..! भगवान! सीमन्धर भगवान विराजते हैं। उनके यह वचन हैं। महाविदेह से बहिन आयी हैं। आहाहा! वहाँ से आने के बाद छोटी उम्र से वहाँ के संस्कार याद आते थे। आहाहा!

यहाँ कहते हैं, कि **शुद्ध पर्याय की दृष्टि से भी आगे नहीं बढ़ा जा सकता।** यह क्या कहते हैं? द्रव्य में अनन्त सम्पदा और अनन्त-अनन्त शक्ति एवं सामर्थ्य है। फिर सिद्धदशा के बाद भी आगे बढ़ते जाते हैं या नहीं? सिद्धदशा होने के बाद भी आनन्द और सुख बढ़ता है या नहीं? नहीं। बस, पूर्ण हो गया। सिद्धदशा पूर्ण हो गयी। उससे आगे बढ़ते नहीं। द्रव्य परिपूर्ण पड़ा है। उस समय भी द्रव्य तो परिपूर्ण पड़ा है। फिर भी उसके बाद आगे नहीं बढ़ता। आहाहा! **शुद्ध पर्याय की दृष्टि से भी...** आहाहा! क्या कहते हैं? राग और पुण्य, दया, मैं जगत का उद्धार करूँ, वह विकल्प तो है ही नहीं, परन्तु जो सिद्धदशा

प्रगट हुई, उससे भी आगे नहीं बढ़ा जा सकता। पर्याय में उससे आगे नहीं बढ़ा जा सकता। पूर्णानन्द का नाथ जहाँ पर्याय में पूर्णरूप से प्रगट हुआ, पर्यायरूप से; द्रव्य तो द्रव्य है। फिर सिद्धदशा से आगे बढ़ना, द्रव्य में बहुत भरा है तो सिद्ध से भी आगे शुद्धता बढ़ती जाती है, ऐसा है नहीं। आहाहा! शब्द ऐसा है न।

द्रव्यदृष्टि में मात्र... आहाहा! वस्तु त्रिकाली भगवान, चारों ओर से चिन्ता को छोड़ दे। भगवान परमात्मा पूर्ण पड़ा है, उस पर दृष्टि लगा दे। जहाँ नय, निक्षेप और प्रमाण भी, आचार्य कलश में कहते हैं (कि) वहाँ नय, निक्षेप और प्रमाण तो दिखते नहीं, आहाहा! परनतु हम अनुभव करते हैं, ऐसा भी दिखता नहीं। अनुभव करते हैं। आहाहा! परन्तु उसे देखने के लिये वहाँ रुकते नहीं। आहाहा! याद कर-करके वहाँ रुकना, ऐसा नहीं। आहाहा! ऐसी बात है, प्रभु! बात तो सूक्ष्म है। थोड़े शब्द में इतना है।

द्रव्यदृष्टि में मात्र शुद्ध अखण्ड द्रव्यसामान्य का ही स्वीकार होता है। द्रव्यदृष्टि में। कोई ऐसा कहे कि द्रव्यदृष्टि से सिद्धपद की निर्मल पर्याय से भी बढ़ जाएगा, ऐसा है नहीं। **द्रव्यदृष्टि में मात्र शुद्ध अखण्ड द्रव्यसामान्य का ही स्वीकार होता है।** द्रव्यदृष्टि से मात्र। पर्याय भी नहीं। आश्रय लेनेवाली तो पर्याय है। उसकी दृष्टि है, वह तो पर्याय है। परन्तु वह पर्याय, **द्रव्यदृष्टि में मात्र शुद्ध अखण्ड द्रव्यसामान्य...** जो त्रिकाल भगवान; विशेष भी नहीं। विशेष तो निर्णय करता है। विशेष तो अनुभव करता है। विशेष बिना तो सामान्य होता नहीं। आहाहा! सामान्य और विशेष, दो तो उसका त्रिकाल स्वभाव है। सामान्य-विशेष बिना होता नहीं; विशेष, सामान्य बिना होता नहीं। दोनों चीज़ वस्तु की चीज़ है। भगवान ने बनायी है, इसलिए कहा है, ऐसा है नहीं। ऐसी वस्तु अनादि से अकारणरूप थी। छहढाला में आता है, यह चौदह ब्रह्माण्ड अकारणरूप है, किसी ने बनाया नहीं। ऐसे ही सत् अनादि से (है)। आहाहा!

उसमें **द्रव्यसामान्य का ही स्वीकार होता है।** सब छोड़कर... आहाहा! एक द्रव्यसामान्य का ही स्वीकार है। पर्याय का भी स्वीकार नहीं। वह तो ठीक कहा, परन्तु आत्मा में इतनी सम्पदा है, अनन्त-अनन्त, तो सिद्धपर्याय से भी कोई विशेष पर्याय होगी कि नहीं? प्रभु! बस! सिद्धपर्याय फिर बढ़े, वह तीन काल में बढ़ती नहीं। देखो! यह बहिन के वचन! सिद्धदशा के बाद भले पूर्णानन्द का नाथ अनन्त आनन्द और अनन्त

शान्ति पड़ी है, परन्तु सिद्धदशा के बाद शुद्धि बढ़े, ऐसा है नहीं। पूर्ण शुद्धि हो गयी। आहाहा! ३२१ हुआ न? बाद में कौन-सा है? ३२३। लिख लिया है?

जिसने शान्ति का स्वाद चख लिया हो, उसे राग नहीं पुसाता। वह परिणति में विभाव से दूर भागता है। जैसे एक ओर बर्फ का ढेर हो और दूसरी ओर अग्नि हो तो उन दोनों के बीच खड़ा हुआ मनुष्य अग्नि से दूर भागता हुआ बर्फ की ओर ढलता है, उसी प्रकार जिसने थोड़ा भी सुख का स्वाद चखा हो, जिसे थोड़ी भी शान्ति का वेदन वर्त रहा है, ऐसा ज्ञानी जीव दाह से अर्थात् राग से दूर भागता है एवं शीतलता की ओर ढलता है॥३२३॥

३२३। **जिसने शान्ति का स्वाद चख लिया हो,...** आहाहा! जिसने सम्यग्दर्शन में, शुरुआत के सम्यग्ज्ञान में आत्मा का स्वाद चख लिया... आहाहा! भगवान त्रिलोकनाथ का... ध्रुव का स्वाद नहीं, हों! स्वाद तो पर्याय में आता है। आहाहा! ध्रुव पर दृष्टि पड़ती है तो दृष्टि में स्वाद आता है, ध्रुव में नहीं। प्रवचनसार, १७२ गाथा में तो वहाँ तक कहा, कि वेदन आया, वही मैं तो आत्मा हूँ। ध्रुव-ब्रुव का हमें क्या काम? १७२ गाथा। २०वाँ बोल है। प्रवचनसार। मुझे तो प्रत्यभिज्ञान (अर्थात्) जो (कल) था, वही आज है, ऐसे द्रव्य के आलिंगन बिना, द्रव्य के आलिंगन बिना, द्रव्य के स्पर्श बिना.. आहाहा! २०वाँ बोल है। मुझे तो वेदन होता है, वही मैं आत्मा हूँ। आहाहा! कहो, एक ओर द्रव्य का माहात्म्य, एक ओर कहे कि वेदन है, वही मैं आत्मा हूँ। मुझे तो वेदन में आया, वह आत्मा हूँ। भले आया ध्रुव में से। परन्तु आया वेदन। आहाहा! १७२ में है। प्रवचनसार।

मुमुक्षु :- पर्याय को आत्मा कहा?

पूज्य गुरुदेवश्री :- पर्याय को ही आत्मा कहा। सच्ची बात। यही मैं हूँ। यहाँ है प्रवचनसार? प्रवचनसार नहीं होगा। है? यह है? हाँ, प्रवचनसार (है)। १७२ गाथा क्या कहते हैं? देखो!

लिंग अर्थात्... लिंग अर्थात् यहाँ गुजराती है। **प्रत्यभिज्ञान का कारण...** प्रत्यभिज्ञान का कारण अर्थात् कल था, वह यह है, यह है, यह है। यह.. यह.. यह.. त्रिकाल ध्रुव रहेगा। **प्रत्यभिज्ञान का कारण ऐसा जो ग्रहण अर्थात् अर्थावबोध सामान्य...** अर्थात् पदार्थ के

ज्ञान का सामान्यपना जो त्रिकाली। वह **जिसके नहीं है...** आहाहा! इतना दृष्टि का जोर द्रव्य में और यहाँ कहे कि द्रव्य नहीं है। मैं द्रव्य को छूता नहीं। मुझे तो आनन्द का वेदन आता है, वह मैं हूँ। देखो! **वह अलिंगग्रहण है; इस प्रकार 'आत्मा द्रव्य से नहीं आलिंगित'...** आहाहा! प्रभु! उसकी वेदन की जो पर्याय है, वह पर्याय द्रव्य को आलिंगन करती नहीं। आहाहा! गजब बात है, भाई! पाठ है न? देखो! २०वाँ बोल।

लिंग अर्थात् प्रत्यभिज्ञान का कारण ऐसा जो ग्रहण अर्थात् अर्थावबोध सामान्य... द्रव्य, वह **जिसके नहीं है...** द्रव्य जिसे नहीं है। आहाहा! एक ओर द्रव्य की बात, एक ओर कहे, द्रव्य नहीं है। किस अपेक्षा से? **वह अलिंगग्रहण है। इस प्रकार 'आत्मा द्रव्य से नहीं आलिंगित ऐसी शुद्ध पर्याय है' ऐसे अर्थ की प्राप्ति होती है।** अलिंगग्रहण में से ऐसा अर्थ निकलता है। अलिंगग्रहण। लिंग अर्थात् सामान्य द्रव्य, उसके स्पर्श बिना पर्याय जो होती है, वह मैं हूँ। आहाहा! २०वाँ बोल है, प्रवचनसार। सबका वाँचन हो गया है, व्याख्यान हो गया है। चार महीने में हुए हैं। मुम्बई से छपेंगे। आहाहा!

शुद्ध पर्याय की दृष्टि से भी आगे नहीं बढ़ा जा सकता। वह नहीं। ३२३। **जिसने शान्ति का स्वाद चख लिया हो, उसे राग नहीं पुसाता।** आहाहा! जिसने अन्तर भगवान शान्ति का स्वाद जितना आया, द्रव्यस्वभाव का पर्याय में अनुभव आया, उसको.. आहाहा! राग नहीं सुहाता। चाहे तो तीर्थंकरगोत्र का राग हो, चाहे तो भगवान की भक्ति का राग हो, वह राग नहीं सुहाता। आहाहा! राग सुखरूप नहीं लगता। आहा..! राग आता है। जब तक वीतराग न हो, तब तक साधक को राग आता है, परन्तु राग सुहाता नहीं। आहाहा! ऐसी बात। आहा..!

वह परिणति में... उसकी परिणति में—साधकजीव की परिणति में, **विभाव से दूर भागता है।** आहाहा! भगवान आत्मा की परिणति जहाँ हुई, अवस्था, निर्मल आनन्द की जहाँ दशा हुई, आहा..! वह विभाव से दूर भागता है। विभाव की ओर जाता ही नहीं। उसका ज्ञान हो जाता है, परन्तु विभाव की ओर उसका उपयोग भी नहीं जाता है। आहाहा! फिर भी विभाव का ज्ञान होता है। उपयोग न होय तो भी ज्ञान का स्वभाव उस समय अपने को और पर को जानने का पर्याय का स्वभाव है तो स्व-पर प्रकाशक ज्ञान होता है। उपयोग न रखे तो भी। अपना स्वभाव है स्व-परप्रकाशक पर्याय। आहाहा! **विभाव से दूर भागता है।**

जैसे एक ओर बर्फ का ढेर हो... एक ओर बर्फ का ढ़ेर (पड़ा हो) **और दूसरी ओर अग्नि हो तो उन दोनों के बीच खड़ा हुआ...** दोनों के बीच खड़ा हुआ **मनुष्य अग्नि से दूर भागता हुआ बर्फ की ओर ढलता है,...** झुकता है। आहाहा! अग्नि और बर्फ दो तरफ हों। बीच में खड़ा है। तो अग्नि से दूर भागता है, बर्फ की ओर ढलता है। वैसे भगवान साधकदशा... आहाहा! एक ओर निर्मल दशा है, एक ओर निर्मल दशा का बर्फ का ढ़ेर है, एक ओर राग का विकल्प है। दोनों के बीच खड़ा है। आहाहा! साधक चौथे, पाँचवें, छठे में। आहाहा! तो भी, अग्नि और बर्फ के बीच खड़ा हुआ (मनुष्य) अग्नि से हटकर बर्फ की ओर जाता है। वैसे भगवान आत्मा आत्मा के सम्यग्दर्शन में ज्ञान का स्वाद आया, वहाँ राग आता है, पूर्ण वीतराग नहीं है तो, वह राग अग्नि समान है। वहाँ से भागकर आत्मा की शान्ति की ओर आता है। आहाहा! दृष्टान्त देकर... (सरल किया है)। **दूर भागता हुआ बर्फ की ओर ढलता है,...**

उसी प्रकार जिसने थोड़ा भी सुख का स्वाद चखा हो,... सम्यग्दर्शन में-अनुभूति में थोड़ा ही (स्वाद आया है)। चौथे गुणस्थान में अनुभूति में भी आत्मा के आनन्द का स्वाद थोड़ा चखा है। आहा..! स्वाद चखा है। **जिसे थोड़ी भी शान्ति का वेदन वर्त रहा है,...** जिसे थोड़ी भी शान्ति का वेदन वर्त रहा है। **ऐसा ज्ञानी जीव दाह से अर्थात् राग से दूर भागता है...** राग को दाह कहा है न? राग आग दाह दहै सदा। छहढाला में है। राग आग दाह दहै सदा। यहाँ राग से धर्मी (दूर) भागता है, कहते हैं। भागने का अर्थ (यह कि) उसका प्रयत्न-वृत्ति आत्मा की ओर है। द्रव्य की ओर झुकता है। है राग, आता है। वीतराग न हो, तब तक आता है। राग न हो साधक को (ऐसा नहीं है)। साधक है, वहाँ बाधक आता है। मिथ्यादृष्टि पूर्ण दु:खी, पूर्ण विकारी। सिद्ध पूर्ण सुखी, पूर्ण निर्विकारी। आहाहा! साधक आनन्द और राग-दु:ख दोनों में है। पूर्ण आनन्द नहीं, इतना राग है परन्तु राग की ओर नहीं झुकता। पुरुषार्थ शान्ति की ओर, स्वभाव की ओर, द्रव्य की ओर ढलता है। आहाहा! ऐसा मार्ग समझना मुश्किल पड़े।

दाह से अर्थात् राग से दूर भागता है एवं शीतलता की ओर ढलता है। शीतलता की ओर ढलता है। अपना भगवान शीतलता, शान्ति.. शान्ति.. शान्ति.. शान्ति.. जिसमें आकुलता का, गुण-गुणी भेद के विकल्प की आकुलता भी नहीं। गुण-गुणी भेद का

विकल्प और गुण एवं यह पर्याय, ऐसा लक्ष होता है तो विकल्प आता है। वह विकल्प भी अशान्ति है। प्रभु में शान्ति प्रगट हुई है तो शान्ति की ओर झुकता है। शान्ति की ओर झुकता है। साधक का झुकाव शान्ति की ओर है। साधक का झुकाव राग की ओर नहीं है। फिर भी राग आता है। फिर भी राग का ज्ञान करते हैं, ऐसा कहने में आता है। वास्तव में तो वह ज्ञान का ज्ञान करता है। ज्ञान का वही स्वभाव है। राग आया, इसलिए राग का ज्ञान हुआ — ऐसा नहीं। वह ज्ञान का स्वभाव उस समय का इतना है कि अपने को जाने और राग को जाने। राग की अस्ति है, इसलिए ज्ञान हुआ, ऐसा भी नहीं। आहाहा! दोनों का ज्ञान उसी समय प्रगट होने का स्वत: कर्ता, कर्म, करण षट्कारक से परिणति उत्पन्न होती है। आहाहा! साधक को शान्ति का, समकित का थोड़ा अनुभव हुआ, उसमें जो पर्याय षट्कारकरूप परिणमति है, उसके कर्ता का लक्ष्य स्वद्रव्य की पर झुकता है। राग आता है, परन्तु उस ओर झुकता नहीं। आहाहा! ऐसा मार्ग है। पहले तो समझ करनी मुश्किल पड़े। आहाहा! और यह किये बिना प्रभु! किसी भी प्रकार से जन्म-मरण का अन्त आये, ऐसा नहीं है। जन्म और मरण का अन्त... आहाहा! भले एकेन्द्रिय, दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय में माँ-बाप नहीं होते, फिर भी जन्म तो है न! मनुष्य और तिर्यंच में जन्म में माँ-बाप होते हैं। देव में माँ-बाप होते नहीं परन्तु जन्म तो है न। नारकी में माँ-बाप होते नहीं, परन्तु जन्म तो है न। नारकी में माँ-बाप नहीं है, परन्तु जन्म तो होता है न। एकेन्द्रिय में माँ-बाप नहीं है, फिर भी जन्म तो होता है न। आहाहा! ये जन्म-मरण का दु:ख, उससे ज्ञानी भागते हैं। आहाहा! अन्तर में शान्ति.. शान्ति.. शान्ति.. उसकी ओर का झुकाव। आहाहा!

एक आता है, प्रवचनसार। भगवान की स्तुति में... '**एवं खु णाणिणो सारं**' हमारे गुरु कहते थे, परन्तु उल्टा कहते थे। '**एवं खु णाणिणो सारं जं न हिंसइ किंचणम।**' किसी भी प्राणी का घात नहीं करना, वह बात करते थे। ऐसा अर्थ नहीं है। '**एवं खु णाणिणो सारं**' ज्ञान का सार वह है कि '**जं न हिंसइ किंचणम**'। राग का अंश करके भी आत्मा की हिंसा होती है, वह नहीं करते। आहाहा! '**एवं खु**' '**एवं खु**' अर्थात् निश्चय। '**णाणिणो सारं**' हमारे सम्प्रदाय के गुरु थे। शान्त थे, बहुत कषाय मन्द, ब्रह्मचारी थे। परन्तु दृष्टि में बिल्कुल विपरीतता। इसका ऐसा अर्थ करते थे। शान्ति से करते थे, हों! उद्धत नहीं। परन्तु यह वस्तु नहीं मिली। '**एवं खु णाणिणो सारं जं न हिंसइ किंचणम**'

किसी का घात नहीं करना। आहाहा! '**एवं खु णाणिणो सारं जं न हिंसइ किंचणम, अहिंसा समयं चेव**' समय अर्थात् सिद्धान्त का सार, पर को घात नहीं करना, यह सिद्धान्त का सार है। अहिंसा। ऐसा कहते थे। '**अहिंसा समयं चेव एयावत्त वियाणिया**' पर की थोड़ी भी हिंसा न करनी, यह अहिंसा पूरे सिद्धान्त का सार है। यह जाना, उसने सब जान लिया। आहाहा! ऐसा है नहीं।

यहाँ तो '**एवं खु णाणिणो सारं जं न हिंसइ किंचणम**' राग के अंश की उत्पत्ति नहीं करते। आहाहा! '**एवं खु णाणिणो सारं जं न हिंसइ किंचणम,...** आहाहा! **अहिंसा समयं चेव**' राग की अनुत्पत्ति और शान्ति की उत्पत्ति, वह अहिंसा। यह समय का— सिद्धान्त का सार है। '**अहिंसा समयं चेव**' अहिंसा, यह अहिंसा, हों! पर की छहकाय की अहिंसा कहते हैं, परन्तु छह काय में प्रभु! तू है या नहीं? छह काय की हिंसा नहीं करना। परन्तु छह काय में तू है या नहीं? तो तेरी हिंसा नहीं करना, उसका अर्थ क्या? आहाहा! '**समयं चेव**' राग की उत्पत्ति नहीं करना और अरागी आत्मदशा उत्पन्न करना, यह समस्त सिद्धान्त का सार है। निर्मल दशा उत्पन्न करनी सार है। दृष्टि का विषय क्या, यह तो उसमें नहीं है। पर्याय की व्याख्या है। आहाहा!

'**एयावत्त वियाणिया**' जिसने इतना जाना, उसने सब जाना, ऐसा कहते थे। पर एकेन्द्रिय जीव, हरितकाय को भी न मारना, उसने सब जाना। ऐसा यहाँ है नहीं। किसी की हिंसा आत्मा कर सकता नहीं। किसी की दया पाल सकता नहीं। एक द्रव्य दूसरे द्रव्य को छूता नहीं। आहाहा! तेरी अहिंसा—राग की अनुत्पत्ति, वह तेरी अहिंसा। राग की उत्पत्ति, वह तेरी हिंसा। आहाहा! यह मार्ग है। पुरुषार्थसिद्धि उपाय में है। अमृतचन्द्राचार्य पुरुषार्थसिद्धि में रखा है कि पर की दया का भाव... पाठ है, हिंसा है। ऐसा पाठ है। पुरुषार्थसिद्धि उपाय। पर की दया का भाव, हिंसा है। क्योंकि पर ओर के लक्ष्य में राग आया। राग में आत्मा के स्वभाव का घात हुआ। आहाहा!

मुमुक्षु :- कोई दया नहीं करेंगे।

पूज्य गुरुदेवश्री :- कौन करता है? कर ही नहीं सकता। सेठाई नहीं कर सकता। वहाँ दुकान पर सेठाई करते हैं न सब? आहाहा! वह नहीं कर सकता, ऐसा कहते हैं। भैया! तू कर सकता है तो राग-द्वेष अथवा मिथ्यात्व अथवा सम्यक् अथवा वीतरागता।

इसके अलावा कुछ नहीं कर सकता। कठिन पड़े जगत को, परन्तु सत्य तो यह है। यहाँ वही कहा है न। आहा..!

शान्ति का वेदन वर्त रहा है, ऐसा ज्ञानी जीव दाह से अर्थात् राग से दूर भागता है एवं शीतलता की ओर ढलता है। आहाहा! ३२३ पूरा हुआ न? अब कौन-सा है? ३२९।

मुनिराज बारम्बार निर्विकल्परूप से चैतन्यनगर में प्रवेश करके अद्भुत ऋद्धि का अनुभव करते हैं। उस दशा में, अनन्त गुणों से भरपूर चैतन्यदेव भिन्न-भिन्न प्रकार की चमत्कारिक पर्यायोंरूप तरंगों में एक आश्चर्यकारी आनन्दतरंगों में डोलता है। मुनिराज तथा सम्यग्दृष्टि जीव का यह स्वसंवेदन कोई और ही है, वचनातीत है। वहाँ शून्यता नहीं है, जागृतरूप से अलौकिक ऋद्धि का अत्यन्त स्पष्ट वेदन है। तू वहाँ जा, तुझे चैतन्यदेव के दर्शन होंगे॥३२९॥

३२९। तुम्हारी भाषा क्या है? तीन सौ उनतीस। आहाहा! **मुनिराज बारम्बार निर्विकल्परूप से चैतन्यनगर में प्रवेश करके अद्भुत ऋद्धि का अनुभव करते हैं।** यह मुनि। पंच महाव्रत पालते हैं, समिति, गुप्ति पालते हैं, शिष्य बनाते हैं, संघ की रक्षा करते हैं, (ऐसा नहीं कहा है)। आहाहा! **मुनिराज बारम्बार निर्विकल्परूप से चैतन्यनगर में प्रवेश करके अद्भुत ऋद्धि का अनुभव करते हैं।** भाई का प्रश्न था न? वह यहाँ आया। **उस दशा में, अनन्त गुणों से भरपूर चैतन्यदेव भिन्न-भिन्न प्रकार की चमत्कारिक पर्यायोंरूप तरंगों में...** आहाहा! द्रव्य पर झुकाव होने से मुनिराज को निर्विकल्पदशा में... आहाहा! उस दशा में **अनन्त गुणों से भरपूर चैतन्यदेव भिन्न-भिन्न प्रकार की चमत्कारिक पर्यायोंरूप...** चमत्कारिक पर्यायोंरूप, आहाहा! आनन्द, शान्ति, स्वच्छता, प्रभुता... आहाहा! निष्कलंकता, अतीन्द्रिय आनन्द का खेल उस समय में, अनन्त गुण की व्यक्तता चमत्कारिक प्रगट होती है। अनन्त गुणों की शक्ति। आहा...! **चमत्कारिक पर्यायोंरूप तरंगों में एक आश्चर्यकारी आनन्दतरंगों में डोलता है।** मुनिराज तो इसको कहते हैं। आहाहा!

अतीन्द्रिय आनन्द जिनको खुल गया है। अतीन्द्रिय आनन्द तो समकित में खुला

है, परन्तु मुनि को तो तीन कषाय का अभाव होकर अतीन्द्रिय आनन्द का गंज आ गया है। समयसार पाँचवीं गाथा में कहा। कुन्दकुन्दाचार्य मुनि थे। प्रचुर स्वसंवेदन मेरा वैभव, ऐसा कहते हैं। महाव्रत आदि मेरा वैभव नहीं। प्रचुर स्वसंवेदन मेरा वैभव है। इस वैभव से मैं समयसार कहूँगा। आहाहा! मुनिराज ऐसा कहते हैं। हमारा निज वैभव प्रचुर। प्रचुर क्यों लिया? कि समकिती को भी अंश तो आता है और पाँचवें गुणस्थान में उससे विशेष आनन्द आनन्द आता है। मुनि को तो प्रचुर होता है। आहाहा! प्रचुर अर्थात् बहुत। आनन्द की बाढ़ आ जाती है। भरमार आनन्द.. आनन्द.. आनन्द। राग आता है, परन्तु उस राग पर नजर नहीं है। आहा..! ऐसा अनुभव करते हैं। अद्भुत ऋद्धि का अनुभव करते हैं।

उस दशा में, अनन्त गुणों से भरपूर चैतन्यदेव भिन्न-भिन्न प्रकार की चमत्कारिक पर्यायोंरूप तरंगों में एक आश्चर्यकारी आनन्दतरंगों में डोलता है। आहाहा! मुनिपना बापू! अलौकिक है। आहाहा! जिसमें अतीन्द्रिय आनन्द का सागर छूटा है। अतीन्द्रिय आनन्द का सागर भगवान। आहाहा! वह उछाला मारता है। अतीन्द्रिय आनन्द से भरा पड़ा भगवान, मुनिराज को पर्याय में उसका उछाला (आता है), बाढ़ आती है, आनन्द का उछाला आता है। अतीन्द्रिय आनन्द की। आहा..! **मुनिराज तथा सम्यग्दृष्टि जीव का यह स्वसंवेदन कोई और ही है,...** आहाहा! स्वसंवेदन कोई और जाति का है। **वचनातीत है।**

वहाँ शून्यता नहीं है,... स्वसंवेदन विकल्प से शून्य है, परन्तु स्वभाव से शून्य नहीं है। विकल्प से शून्य हो गया। आहाहा! परन्तु स्वभाव से अशून्य है। स्वभाव के अस्तित्व का दल प्रगट हुआ है। आनन्द के तरंग उठते हैं। आहाहा! **जागृतरूप से अलौकिक ऋद्धि का अत्यन्त स्पष्ट वेदन है।** मुनि को तो जागृतरूप से भगवान अतीन्द्रिय आनन्द का खजाना खुल गया है। खजाना खुल गया है, कपाट खुल गया है। आहाहा! राग की एकता में ताला मार दिया था। भगवान की ऋद्धि को राग की एकता में ताला मार दिया था, वह खुल गया। आहाहा! राग की एकता टूटकर ऋद्धि की एकता हो गयी। आहाहा! **जागृतरूप से अलौकिक ऋद्धि का अत्यन्त स्पष्ट वेदन है।** आहाहा! प्रभु! **तू वहाँ जा,** आहाहा! **तुझे चैतन्यदेव के दर्शन होंगे।** यह अन्तिम बात कही।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

विक्रम संवत-२०३५, श्रावण कृष्ण - २, बुधवार, तारीख २७-८-१९८०
वचनामृत- ३४४, ३४९ प्रवचन-२०

जब तक सामान्य तत्त्व—ध्रुव तत्त्व—ख्याल में न आये, तब तक अन्तर में मार्ग कहाँ से सूझे और कहाँ से प्रगट हो ? इसलिए सामान्य तत्त्व को ख्याल में लेकर उसका आश्रय करना चाहिए। साधक को आश्रय तो प्रारम्भ से पूर्णता तक एक ज्ञायक का ही—द्रव्यसामान्य का ही—ध्रुव तत्त्व का ही होता है। ज्ञायक का—'ध्रुव' का जोर एक क्षण भी नहीं हटता। दृष्टि ज्ञायक के सिवा किसी को स्वीकार नहीं करती—ध्रुव के सिवा किसी पर ध्यान नहीं देती; अशुद्ध पर्याय पर नहीं, शुद्ध पर्याय पर नहीं, गुणभेद पर नहीं। यद्यपि साथ वर्तता हुआ ज्ञान सबका विवेक करता है, तथापि दृष्टि का विषय तो सदा एक ध्रुव ज्ञायक ही है, वह कभी छूटता नहीं है।

पूज्य गुरुदेव का ऐसा ही उपदेश है, शास्त्र भी ऐसा ही कहते हैं, वस्तुस्थिति भी ऐसी ही है॥३४४॥

३४४। सूक्ष्म बात है, भैया! यह तो आत्मा की बात है। हो-हा में कुछ मिलनेवाला नहीं है। बाहर में हो-हा। आहाहा! यहाँ तो, **जब तक सामान्य तत्त्व...** जब तक सामान्य तत्त्व **ध्रुव तत्त्व—ख्याल में न आये,...** आहाहा! मुद्दे की रकम है। भगवान आत्मा चैतन्य रत्नाकर दीपक, बड़ा देव, वह जब तक सामान्य तत्त्व अर्थात् ध्रुव तत्त्व ख्याल में न आये, **तब तक अन्तर में मार्ग कहाँ से सूझे...** आहाहा! बाहर की चाहे कितनी प्रवृत्ति में लाखों, करोड़ों पैसा खर्च करे, बाहर में धामधूम (करे), प्रभु! मार्ग तो बिल्कुल निवृत्ति का है। अन्तर में शान्ति का सागर, उस ओर जाकर उसमें बसे बिना, उसे निजघर बनाये बिना दूसरी चीज़ कोई भी करे, उससे जन्म-मरण नहीं मिटेंगे। आहाहा! इसमें विद्वता का काम नहीं है, कोई करोड़ों रुपया खर्च करे तो जन्म-मरण मिटे, ऐसा नहीं है। आहाहा!

जब तक सामान्य तत्त्व... सामान्य तत्त्व अर्थात् आत्मा ध्रुव। आहा..! पुण्य-पाप तो नहीं, परवस्तु तो नहीं, वर्तमान पर्याय भी जिसके लक्ष्य में नहीं लेनी है, उसे—पर्याय को तो ध्रुव को लक्ष्य में लेना है। आहाहा! यह सार है। **सामान्य तत्त्व—ध्रुव तत्त्व—ख्याल में न आये, तब तक अन्तर में मार्ग कहाँ से सूझे...** आहा..! तब तक अन्तर में जाने का रास्ता, जिसने रास्ता ही नहीं देखा, जिसने रास्ता नहीं देखा है, वह अन्दर में कैसे जाए? अन्दर में जाने की जो कला और रीत है, वह नहीं जानी है तो अन्दर में कैसे जा सके? और अन्दर में जा सके बिना जन्म-मरण का अन्त प्रभु, आये, ऐसा नहीं है। दुनिया में चाहे जितनी बाहर से उल्लास बताये या उल्लास करे, परन्तु यह चीज़ समझे बिना सब बिना अंक के शून्य हैं। आहाहा!

कहते हैं, **तब तक अन्तर में मार्ग कहाँ से सूझे और कहाँ से प्रगट हो?** जो लक्ष्य में ही नहीं लिया, तो उस मार्ग की सूझ कहाँ से पड़े? सूझ न पड़े तो प्रगट तो कहाँ से होगा? पर्याय में प्रगट सामान्य का आनन्द का अनुभव आना चाहिए, वह प्रगट में ध्रुव के ख्याल बिना, अन्तर में प्रवेश किये बिना उस आनन्द का ख्याल नहीं आता। और आनन्द का ख्याल न आये तो वह तत्त्व कैसा है, (वह मालूम नहीं पड़ता)। आहाहा! भगवान आनन्द की मूर्ति प्रभु है। आहा..! अतीन्द्रिय आनन्द, सर्वांग में अतीन्द्रिय आनन्द। हड्डी, चमड़ी का लक्ष्य छोड़ दे, प्रभु! यह तो बाहर की धूल की वस्तु है। अन्दर में कर्म है, वह भी परचीज़ है। पुण्य और पाप का भाव हो, वह भी संसार है। आहाहा! संसरण इति संसार। स्वरूप सामान्य में से हटकर पुण्य-पाप में आता है, वह संसार है। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं, वहाँ से हटकर अन्तर में न आये, तब तक कहाँ से सूझे और कहाँ से प्रगट हो? आहाहा! **इसलिए सामान्य तत्त्व को ख्याल में लेकर...** सार यह है, प्रभु! समवसरण में तो अरबों मनुष्य, करोड़ों मनुष्य (आते हैं)। बाघ, सिंह और नाग (आते हैं), उसमें यह भगवान की दिव्यध्वनि ऐसा कहती है। आहाहा! भगवान की दिव्यध्वनि का यह सार है। आहाहा! जानपना चाहे जितना हो, बाह्य क्रियाकाण्ड चाहे जितनी भी हो, परन्तु ध्रुव ख्याल में आये बिना अन्तर में कैसे जाना, वह खबर न पड़े तो जाना कहाँ से? आहाहा! ऐसा मार्ग है। **उसका आश्रय करना चाहिए।** इसलिए, इस कारण से **सामान्य तत्त्व...** एकरूप रहनेवाले तत्त्व को, पर्याय बिना की चीज़ जो है, उसका ख्याल में लेकर

उसका आश्रय करना चाहिए। ख्याल में लेकर आश्रय करना चाहिए। जो ख्याल में ही न आये, ज्ञान में चीज़ न आये, तो उसका आश्रय कहाँ से होगा? आहाहा! जो भगवान अन्दर अतीन्द्रिय आनन्द का नाथ नजर में, ख्याल में, ज्ञान में ज्ञेयरूप से ख्याल में न आये तो वहाँ ठहरने का, प्रवेश करना कैसे बने? किसमें प्रवेश करे? वस्तु को तो जाना नहीं। आहाहा! ऊपर की माथापच्ची करनेवाले व्रत, नियम, तप को करे तो उससे कोई आत्मा प्राप्त नहीं होता। आहाहा! वह तो चिदानन्द सहजानन्दमूर्ति प्रभु (है)।

साधक को आश्रय तो प्रारम्भ से पूर्णता तक एक ज्ञायक का ही— साधकजीव-धर्मी को प्रारम्भ से आश्रय लेकर **प्रारम्भ से पूर्णता तक...** सम्यग्दर्शन प्रारम्भ, सिद्धपद पूर्ण। वहाँ तक आत्मा का आश्रय करना। आहाहा! दिशा पलट देनी, प्रभु! पर ओर की दिशा की ओर दशा है, पर-ओर की दिशा की ओर जो दशा है, वह तो मिथ्यात्व और विकार है। आहाह! अपने प्रभु के सिवा बाहर की चीज़ की दिशा की ओर जाना, वह तो संसार है। आहाहा! कठिन लगे। पंच परमेष्ठी के सामने देखे तो भी राग और संसार है। क्योंकि परद्रव्य है। परद्रव्य में जाना, लक्ष्य करने से तो राग ही आता है। आहाहा!

साधक को... शान्ति का साधक। धर्म का अन्तर साधक। उसे **आश्रय तो प्रारम्भ से पूर्णता तक एक ज्ञायक का ही—** आश्रय है। ज्ञायक-जानन स्वभाव का पिण्ड। उसका ही पहले से पूर्णता तक आश्रय तो उसका है। बीच में चाहे जितनी प्रवृत्ति आये, परन्तु आश्रय तो द्रव्य का है। द्रव्य का आश्रय छूटता नहीं। आहाहा! **एक ज्ञायक का ही—द्रव्यसामान्य का ही...** उसका अर्थ-लाईन का अर्थ। ज्ञायक अर्थात् क्या? ज्ञायक माने क्या? ज्ञायक अर्थात् द्रव्य सामान्य। लाईन की है न? वह ज्ञायक का अर्थ किया। द्रव्य सामान्य जो त्रिकाली भगवान, अनादि-अनन्त सनातन सत्य जो अनादि से गुप्त है, अपनी कला खिली नहीं और अपनी कला खिले बिना संसार की चाहे जो भी कला हो, ७२ कला, उसमें कोई संसार का अन्त नहीं आता। आहाहा! **ध्रुव तत्त्व का ही होता है।** कहा न? **साधक को आश्रय तो प्रारम्भ से पूर्णता तक एक ज्ञायक का ही...** आहाहा! बीच में व्यवहार आये, वह तो जानने लायक है। आहाहा! आश्रय और अवलम्बन तो एक ज्ञायक का अर्थात् द्रव्यसामान्य का—ध्रुव तत्त्व का ही आश्रय होता है। आहाहा! ऐसी बात कैसी धर्म की? चाहे जितने व्रत करे, चाहे जितने दान, दया, तपस्या करे, वह कोई धर्म

नहीं है। वह तो राग और विकल्प है।...भाई! यह सब सुना नहीं है। जहाँ-तहाँ... यह सुनने मिले, ऐसा भी नहीं है। आहाहा!

ऐसा मनुष्य का देह, उसमें प्रभु! तूने अनन्त-अनन्त काल परिभ्रमण करते हुए अनन्त भव हुए। आहाहा! और यहाँ से भी देह छोड़कर कहाँ जाना? अपनी सत्ता तो अनादि-अनन्त है। उस सत्ता का कहाँ रहना? यदि उसका आश्रय किया होगा तो वहाँ रहेगा। आहाहा! आहाहा! ऐसी बात है।

ज्ञायक का—'ध्रुव' का जोर एक क्षण भी नहीं हटता। धर्मी जीव को प्रारम्भ से ध्रुव ओर की खटक, ध्रुव का जोर क्षणभर के लिये भी नहीं हटता। आहाहा! ध्रुव को रखकर सब बात है। भले भजन हो, भक्ति हो, व्रतादि हो। होता है व्यवहार, परन्तु यह चीज़ हो तो वह व्यवहार पुण्यबन्ध का कारण है। अन्तर की चीज़ न हो तो व्यवहार राग करोड़ करे, आत्मा को कुछ लाभ नहीं है। आहाहा! ज्ञायक एक क्षण भी नहीं हटता। **दृष्टि ज्ञायक के सिवा किसी को स्वीकार नहीं करती...** आहाहा! सम्यग्दृष्टि-सत्य दृष्टि ध्रुव के सिवा किसी का स्वीकार नहीं करती। आहाहा! दृष्टि अपना स्वयं का भी स्वीकार नहीं करती। आहाहा! अन्दर ध्रुव चीज़ भगवान विराजता है। आहाहा! एक पामर प्राणी साधारण हो, उसे ऐसा कहना कि तू प्रभु है। उसे ऐसा लगे, यह क्या कहते हैं। भाई! तू प्रभु है, पूर्ण भगवान है। अन्दर पूर्ण शक्ति पड़ी है। तेरा लक्ष्य उस ओर गया नहीं। ध्रुव ओर का तेरा झुकाव अनन्त काल में कभी गया नहीं। आहाहा!

दृष्टि ज्ञायक के सिवा किसी को स्वीकार नहीं करती... ओहोहो! पंच परमेष्ठी को दृष्टि स्वीकार नहीं करती। दृष्टि में तो भगवान पूर्णानन्द का नाथ ध्रुव स्वरूप... आहाहा! उसमें शरीर सुन्दर मिले, उसमें कुछ पैसा मिले; इसलिए घुस जाए। जन्म-मरण का अन्त आये नहीं। कहाँ-कहाँ भटकता है। कहाँ निगोद और नरक, चौरासी लाख योनि। आहाहा! उसे टालने का उपाय तो यह एक ही है। **ध्रुव के सिवा किसी पर ध्यान नहीं देती;...** दृष्टि ध्यान नहीं देती। दृष्टि ध्रुव के सिवा कहीं ध्यान नहीं देती। आहाहा! यह बहिन के वचन है। आज बहिन का जन्मदिवस है। आहा..!

अशुद्ध पर्याय पर नहीं,... वीतराग ओर का स्मरण आदि, उस पर भी दृष्टि नहीं है।

आहा..! शुद्ध पर्याय पर नहीं। आहाहा! शुद्ध पर्याय आनन्द की प्रगट हुई, त्रिकाली ध्रुव के अवलम्बन से; दृष्टि शुद्ध पर्याय पर भी नहीं है। आहाहा! कठिन बात है। शुद्ध पर्याय पर भी दृष्टि नहीं है। दृष्टि तो एक ही त्रिकाल भगवान अतीन्द्रिय आनन्द एवं सुख का धाम। आहा..! ऐसी जो वज्र जैसी शाश्वत चीज़, दृष्टि उसके सिवा कहीं टिकती नहीं। धर्मी की दृष्टि इसके सिवा कहीं टिकती नहीं। **किसी पर ध्यान नहीं देती;...** हो, सुने। परन्तु अन्दर दृष्टि जिस पर है, वह दृष्टि दूसरी जगह ध्यान नहीं देती। आहाहा!

यद्यपि साथ वर्तता हुआ... दृष्टि सम्यग्दर्शन है, उसका ध्येय तो ध्रुव है। उसके सिवा कहीं ध्यान नहीं देते। परन्तु दृष्टि के साथ जो ज्ञान है,... आहा..! है? **ज्ञान सबका विवेक करता है,...** ज्ञान सबको जानता है। विवेक का अर्थ जानता है। जैसा है, वैसा उसे जाने। आहाहा! १२वीं गाथा में कहा है न? समयसार। ११ में कहा, **भूदत्थमस्सिदो** भूतार्थ त्रिकाल.. त्रिकाल.. त्रिकाल सनातन सत्य को पकड़ने से प्रभु! तुझे सम्यग्दर्शन होगा। उस सम्यग्दर्शन में केवलज्ञान लेने की ताकत है। आहाहा! उसके सिवा अपूर्ण दशा हो, शुद्ध अल्प हो, अभी पूर्ण न हो और शुद्धता अल्प हो, अशुद्धता हो, वहाँ कहा है कि जाना हुआ प्रयोजनवान है। **तदात्वे** ऐसा संस्कृत पाठ है। वह है, व्यवहार का विषय है, परन्तु वह विषय जाननेलायक है; आश्रय करनेलायक नहीं। आहाहा! ऐसा सब फेरफार। पूरा दिन व्रत करना, तपस्या करनी, उपवास में रुकना, चोविहार (रात्रि भोजन का त्याग), जमीकन्द नहीं खाना, छह परबी दया पालनी, छह परबी ब्रह्मचय्र पालना। प्रभु! वह सब क्रिया है। आत्मा तो आनन्द का नाथ ज्ञायकस्वरूप है। वह ज्ञायक कोई भी विकल्प में आता नहीं। ज्ञायक विकल्प में कभी आता नहीं। आहा..! विकल्प और ज्ञायक, दोनों बिल्कुल भिन्न चीज़ रहती है। आहाहा!

कहते हैं कि दृष्टि के साथ... दृष्टि द्रव्य के सिवा किसी को स्वीकारती नहीं, परन्तु उस दृष्टि के साथ वर्तता ज्ञान सबका विवेक करता है। जाने कि यह मर्यादा इतनी खिली है, अभी इतना बाकी है, मुझे अभी केवलज्ञान बाकी है। यह सब विचार ज्ञानदृष्टि में आते हैं, द्रव्यदृष्टि में नहीं। आहाहा! कल तो कहा था न? आहाहा! भगवान! पूर्णानन्द जिसकी अपार महिमा, अपार शक्ति, उसके आश्रय से सिद्धपद जो हुआ तो यहाँ परमात्मा में तो अभी उससे अनन्त गुना पड़ा है। परन्तु वह द्रव्य, अब सिद्धपर्याय से विशेष पर्याय करेगा,

ऐसा होता नहीं। क्या कहा ? द्रव्य के आश्रय से समकित से सिद्धपद प्राप्त हुआ, परन्तु उतनी ताकतवाला है तो वह सिद्धपद से आगे कोई शुद्धि बढ़ाये, ऐसा नहीं है। वह तो सिद्धपद की पर्याय वहाँ पर्यायरूप से पूर्ण है, वस्तु स्वरूप से अन्दर पूर्ण है। और पूर्ण होने पर भी अचिंत्य और अपार होने पर भी सिद्धपद की पर्याय के सिवा आगे और भी शुद्धि कर दे, ऐसा है नहीं। आहाहा! पूर्ण पद प्राप्त किये बिना रहे नहीं। स्व का आश्रय लेते हैं तो पूर्ण पद प्राप्त किये बिना रहे नहीं और पूर्ण से आगे जाने का करना नहीं है। कहाँ जाए ? आहाहा! द्रव्य महाप्रभु है। पर्याय तो उसके समक्ष पामर है। द्रव्य के समक्ष पर्याय कोटि, कीमत अलग है। उस पर्याय में बढ़ावा करना, द्रव्य में बहुत महिमा है, बहुत गुण है, बहुत गम्भीर... गम्भीर... गम्भीर चीज़ पड़ी है तो प्रारम्भ से सिद्धपद तक आश्रय लेगा, उसके बाद विशेष पर्याय करनी है, ऐसा है नहीं। आहाहा! वहाँ मर्यादा हो गयी।

मुमुक्षु : सिद्धपद तो...

पूज्य गुरुदेवश्री : पर्याय में पूरी हुई है। वस्तु में नहीं। आहाहा! वस्तु तो पूर्णानन्द का नाथ। ऐसी तो अनन्त-अनन्त सादि-अनन्त, केवलज्ञान की सादि-अनन्त पर्याय एक ज्ञानगुण में है। आहाहा! ऐसी क्षायिक समकित की सादि-अनन्त पर्याय एक श्रद्धागुण में है। शान्ति / वीतरागता-शान्ति, सादि-अनन्त शान्ति / वीतरागता अन्दर एक चारित्रगुण में है। आहाहा! ऐसी सादि-अनन्त अनन्त... अनन्त... अनन्त पर्याय उसके गुण में है। फिर भी वह गुण विशेष करे नहीं और गुण पूर्ण किये बिना रहे नहीं। आहाहा! अरे..! उसका विश्वास कैसे आये ? क्योंकि बाहर से सब किया है। शरीर, वाणी, मन, यह, वह। अन्दर चैतन्य दल प्रभु सनातन अस्ति, मौजूदगी, हयाती अनादि सनातन सत्य उस पर दृष्टि किये बिना, सम्यग्दर्शन—प्रारम्भ दशा होती नहीं। प्रारम्भ से पूर्णता तक परमात्मा द्रव्य का आश्रय है। आहाहा! खूबी तो देखिये!

पूर्ण पर्याय प्रगट हुई। भूतकाल से भविष्यकाल अनन्तगुना है। भूतकाल में जितनी पर्याय हो गयी, उसकी संख्या से भविष्य की पर्याय अनन्तगुनी हैं। आहाहा! फिर भी वह पर्याय शुद्ध हो गयी, बस, यहाँ पूर्ण हो गयी। अन्दर का तो पार नहीं है। पर्याय में इतनी है, परन्तु अन्दर में पार नहीं है। ओहोहो! महा खजाना चित् चमत्कारी अन्दर वस्तु, वह तो ज्ञान में ज्ञेयरूप से ख्याल में आये, तब उसकी महिमा और महत्ता की कीमत हो। खबर

बिना किसकी कीमत करे? वस्तु अन्दर कौन है प्रभु? देहदेवल में भगवान विराजता है। आहाहा! वही यहाँ कहते हैं।

यद्यपि साथ वर्तता हुआ ज्ञान सबका विवेक करता है,... जहाँ-जहाँ जो-जो हो, वह जानता है। **तथापि दृष्टि का विषय तो सदा एक ध्रुव...** आहाहा! दृष्टि का विषय अर्थात् ध्येय अर्थात् लक्ष्य; दृष्टि का लक्ष्य तो अकेला ध्रुव है। वह कभी हटता नहीं। और ध्रुव से हटा, वह धर्म में आया नहीं। आहाहा! ऐसी बात है। लोगों ने बाहर से मान लिया है। अन्दर में क्या चीज़ है, कितनी ताकत है, कितना सामर्थ्य है, उसमें कितनी चमत्कारिक वस्तु पड़ी है, अनन्तानन्त चमत्कारिक शक्ति है। अनन्त चमत्कृतिवाली अनन्ती शक्ति है। आहाहा! फिर भी सिद्धपद पूर्ण हुआ तो बस, पूरा हो गया। परन्तु यह पूर्ण यहाँ रहा, वह पूर्ण वहाँ रहा। यहाँ कमी होती नहीं। सिद्धपद प्रगट हुआ तो भी द्रव्य में कमी नहीं होती। आहाहा! इतना सब आया न? केवलज्ञान, केवलदर्शन, अनन्तवीर्य, अनन्त आनन्द। आहा..! सर्व गुण की अनन्त-अनन्त व्यक्ति प्रगट हुई, फिर भी अन्दर में कुछ कमी नहीं हुई। आहाहा! वह तो पूर्णानन्द का नाथ वही का वही है। और उसकी पर्याय में हीन अवस्था-एक अक्षर के अनन्तवें भाग में निगोद में है तो भी द्रव्य में पुष्टि है। बाहर ज्यादा निकला नहीं है, इसलिए अन्दर ज्यादा पुष्टि है, ऐसा है नहीं। आहाहा! कोई अलौकिक वस्तु है। आहाहा! इस वस्तु की दृष्टि बिना दूसरी चीज़ की कोई कीमत नहीं है। आहाहा! ग्यारह अंग के ज्ञान की भी कीमत नहीं। आहा..! इस चीज़ के समक्ष बारह अंग भी विकल्प है। आहाहा! बारह अंग का लक्ष्य करे तो भी विकल्प है। प्रभु तो निर्विकल्प दशा अन्दर है। उसके समक्ष बारह अंग तो साधारण है। अरे..! लोगों को बैठना कठिन पड़े।

बारह अंग कि जिसमें अरबों-अरबों अक्षर हैं, उसका अन्तर्मुहूर्त में स्वाध्याय कर ले। आहाहा! कैसे यह सब? असंख्य समय में अनन्त गुणों की अनन्त पर्यायों की स्वाध्याय कर ले। छहों द्रव्य की स्वाध्याय अन्तर्मुहूर्त में करे। बारह अंग का स्वाध्याय अन्तर्मुहूर्त में करे। क्या है यह? आहाहा! यहाँ तो थोड़ा-बहुत आये, पाँच-पच्चीस-पचास श्लोक आये तो (अभिमान चढ़ जाए)। यहाँ तो कहते हैं, आहाहा! वह पूर्ण हुआ, वहाँ पूर्ण दशा ज्ञायक के आश्रय से हुई। फिर भी पूर्ण दशा हुई तो ज्ञायक में कुछ हीनता आई, कुछ कमी हुई, ऐसा नहीं है। और पर्याय में अल्प ज्ञान अक्षर के अनन्तवें भाग में निगोद

में हो तो उसके द्रव्य में वृद्धि नहीं हुई। आहाहा! ऐसा कैसा स्वरूप! इतना केवलज्ञान आदि अनन्त-अनन्त गुण प्रगट हो, तो भी अन्दर वैसा का वैसा! आहाहा! अचिन्त्य चमत्कारी भगवान है। उसकी बातें, बापू!

पंचाध्यायीकार तो कहते हैं कि बारह अंग भगवान के श्रीमुख से आये हैं, वह स्थूल बात आयी है। लालचन्दभाई! आहाहा! उसकी गम्भीरता जो अन्दर जानने में आये, वह बात बाहर नहीं आती। आहा..! बारह अंग। चौदह पूर्व तो उसका एक भाग है। बारह अंग तो उससे विशेष है। आहाहा! अन्तर्मुहूर्त में असंख्य समय में बारह अंग का स्वाध्याय कर ले। गजब बात! यह क्या है? प्रभु! आहा..! इतनी ताकत तो श्रुतज्ञान की भूमिका में है। श्रुतज्ञान की भूमिका में इतनी ताकत है। आहाहा! अन्तर्मुहूर्त असंख्य समय में कितने शब्द! एक आचारंग के १८००० पद, एक पद में ५१ करोड़ श्लोक, उससे डबल सूयगडांग, उससे डबल ठाणांग। बारह अंग की बात ही क्या करनी! ओहो..! प्रभु! अन्दर बहिन में आया है, इसमें एक जगह आया है। बारह अंग अन्तर्मुहूर्त में पारायण कर ले, तो भी उसकी कोई विशेष कीमत नहीं है। आहाहा! अन्तर्मुहूर्त में बारह अंग! प्रभु! किसको कहें! पारायण कर ले तो भी उसकी कीमत नहीं है।

भगवान ध्रुव, वहाँ से दृष्टि हटती नहीं। आहाहा! यह चीज़ करने की है। पढ़कर, समझकर, समझकर या निवृत्ति लेकर यह करना है। आहाहा! **ज्ञान सबका विवेक करता है, तथापि दृष्टि का विषय तो सदा एक ध्रुव ज्ञायक ही है, वह कभी छूटता नहीं है।** आहा..! बाद में बहिन ने यहाँ का नाम दिया है। यह उपदेश यहाँ का है, ऐसा कहा। अब, ३४९। इसमें किसी ने लिखा है। साढ़े तीन सौ में एक कम।

चक्रवर्ती, बलदेव और तीर्थंकर जैसे 'यह राज्य, यह वैभव—कुछ नहीं चाहिए' इस प्रकार सर्व की उपेक्षा करके एक आत्मा की साधना करने की धुन में अकेले जंगल की ओर चल पड़े! जिन्हें बाह्य में किसी प्रकार की कमी नहीं थी, जो चाहें वह जिन्हें मिलता था, जन्म से ही, जन्म होने से पूर्व भी, इन्द्र जिनकी सेवा में तत्पर रहते थे, लोग जिन्हें भगवान कहकर आदर देते थे—ऐसे उत्कृष्ट पुण्य के धनी सब बाह्य ऋद्धि को छोड़कर, उपसर्ग-

परिषहों की परवाह किये बिना, आत्मा का ध्यान करने के लिए वन में चले गये, तो उन्हें आत्मा सबसे महिमावन्त, सबसे विशेष आश्चर्यकारी लगा होगा और बाह्य का सब तुच्छ भासित हुआ होगा, तभी तो चले गये होंगे न? इसलिए, है जीव! तू ऐसे आश्चर्यकारी आत्मा की महिमा लाकर, अपने स्वयं से उसकी पहिचान करके, उसकी प्राप्ति का पुरुषार्थ कर। तू स्थिरता-अपेक्षा से बाहर का सब न छोड़ सके तो श्रद्धा-अपेक्षा से तो छोड़! छोड़ने से तेरा कुछ नहीं जाएगा, उल्टा परम पदार्थ-आत्मा-प्राप्त होगा।।३४९।।

चक्रवर्ती, बलदेव और तीर्थंकर... अरे..! उनका वैभव क्या था, वह उसके ख्याल में आना मुश्किल है। आहाहा! रावण जैसे नरक में जानेवाला, जिनके स्फटिक के मकान। आहाहा! यहाँ से मरकर नरक में गये। उसकी कोई कीमत नहीं। आहाहा! यहाँ कहते हैं, **चक्रवर्ती, बलदेव और तीर्थंकर जैसे 'यह राज्य, यह वैभव-कुछ नहीं चाहिए'...** हमें यह राज्य और वैभव नहीं चाहिए, प्रभु! आहाहा! चक्रवर्ती का राज नहीं, इन्द्र का इन्द्रासन नहीं। आहाहा! बलदेव तीन खण्ड के धनी। हमें कुछ नहीं चाहिए, हमें तो एक आत्मा चाहिए। बस। आहाहा!

लागी लगन हमारी जिनराज सुजस सुण्यो मैं,
लागी लगन हमारी जिनराज सुजस सुण्यों मैं,
काहू के कहैं अब कबहू न छूटे, लोकलाज सब डारी॥

दुनिया कैसे मानेगी, क्या कहेगी। निश्चयभासी है, ऐसा कहेगी। आहाहा! 'लागी लगन हमारी जिनराज...' जिनराज अर्थात् आत्मा। हों! सुजस सुना। इस भगवान की बात सुनी। भगवान का सुजस सुना कि यह तो चैतन्यमूर्ति महा भगवान। आहाहा!

लागी लगन हमारी जिनराज सुजस सुण्यों मैं,
काहू के कहैं अब कबहू न छूटे, लोकलाज सब डारी॥

दुनिया को दूसरी कीमत है। ऐसे-ऐसे व्रत और तप करे, उसका कुछ नहीं और यह एक आत्मा का ध्यान करे उसमें केवलज्ञान हो जाए। आपकी बातें बहुत (ऊँची)! ऐसे मश्करी करे। करे, बापू! आहाहा!

यहाँ कहते हैं, राज्य आदि वैभव कुछ नहीं चाहिए। आहाहा! इन्द्र का इन्द्रासन इन्द्र को नहीं चाहिए, प्रभु! अभी समकिती इन्द्र है। उनकी एक रानी है। करोड़ों रानी में एक रानी है, वह भी एकावतारी-एक भवतारी मोक्ष जानेवाली है। वहाँ से निकलकर मनुष्य होकर मोक्ष जानेवाली है। आहाहा! वह भी हमें कुछ नहीं चाहिए। एक मेरा नाथ, जिस ध्रुव में मेरी दृष्टि पड़ी, वह दृष्टि हटती नहीं और सिद्धपद लेकर ही छुटकारा है। सिद्धपद लेकर ही छुटकारा है। उसके सिवा कहीं अटकना नहीं है। और पीछे... वह तो पहला काल अच्छा था। अच्छे काल में गिरना तो नहीं है, परन्तु इस पंचम काल में ऐसा आता है, ३८वीं गाथा। आहाहा! जो हमें यह प्रगट हुआ है, वह अब गिरनेवाला नहीं है। परन्तु प्रभु आपको वीतराग तो मिले नहीं हैं। पंचम काल में वीतराग का तो विरह है। परन्तु प्रभु! वीतराग के सिवा महा महिमावन्त प्रभु मैं तो यहाँ हूँ न!! आहाहा! पंचम काल में भी मैं तो आत्मा अनन्त-अनन्त वैभव, अनन्त-अनन्त ऋद्धि और अनन्त चैतन्य चमत्कारी वस्तु अन्दर पड़ी है। आहाहा! उसके आगे दुनिया की कोई कीमत नहीं है। आहाहा!

इस प्रकार सर्व की उपेक्षा करके... चक्रवर्ती, बलदेव और तीर्थंकर। पौने नौ बजने आये न? पौन घण्टा करना है? **एक आत्मा की साधना करने की धुन में अकेले जंगल की ओर चल पड़े।** आहाहा! ९६ करोड़ स्त्री का साहिबा अकेला जंगल में चला गया। इस ऋद्धि में बाह्य में प्रगट करने को। भगवान परमात्मा स्वयं है, उसे प्रगट करने को चल पड़े। पौन घण्टा हो गया। (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

विक्रम संवत-२०३५, श्रावण कृष्ण - ५, रविवार, तारीख ३१-८-१९८०
वचनामृत- ३४९, ३५० प्रवचन-२१

३४९। थोड़ा चला है, फिर से लेते हैं। **चक्रवर्ती, बलदेव और तीर्थंकर जैसे 'यह राज्य, यह वैभव—कुछ नहीं चाहिए'...** तीर्थंकर, चक्रवर्ती और बलदेव। उनका राज कैसा होगा! **'यह राज्य, यह वैभव—कुछ नहीं चाहिए' इस प्रकार सर्व की उपेक्षा करके एक आत्मा की साधना करने की...** आहाहा! सब छोड़कर एक आत्मा की साधना की **धुन में अकेले जंगल की ओर चल पड़े!** आहाहा! आत्मा की महिमा कैसी होगी! लोगों को आत्मा की (महिमा नहीं है)। बाहर की क्रिया, यह क्रिया, वह क्रिया (की महिमा है)। अन्तर में भगवान चैतन्यरत्न से भरा पड़ा कैसा है, उसकी महिमा के समक्ष चक्रवर्ती, बलदेव और तीर्थंकरों ने राज छोड़ दिया। अकेले जंगल में चल पड़े। आहाहा! १६-१६ हजार देव सेवा करते हैं, चक्रवर्ती की। तीर्थंकर की तो बात ही क्या करनी! वह सब छोड़कर अकेले जंगल-वन में चले गये। आत्मा अन्दर महिमावाला महाप्रभु, ज्ञान और दर्शन, आनन्द आदि परिपूर्ण भरे हैं।

जिन्हें बाह्य में किसी प्रकार की कमी नहीं थी, जो चाहें वह जिन्हें मिलता था, जन्म से ही,... अरे..! **जन्म होने से पूर्व भी,...** तीर्थंकर आदि। **इन्द्र जिनकी सेवा में तत्पर रहते थे, लोग जिन्हें भगवान कहकर आदर देते थे...** आहाहा! **ऐसे उत्कृष्ट पुण्य के धनी...** उत्कृष्ट पुण्य के धनी **सब बाह्य ऋद्धि को छोड़कर,...** आहाहा! **उपसर्ग-परिषहों की परवाह किये बिना,...** बाह्य में उपसर्ग और परिषह हो अथवा न हो, उसकी दरकार किये बिना **आत्मा का ध्यान करने के लिए...** आहाहा! भान तो था, आत्मज्ञान तो था। परन्तु आत्मा का ध्यान करने के लिये, अब उसमें लीन होने के लिये। आहा..! ऐसा सब छोड़कर **आत्मा का ध्यान करने के लिए वन में चले गये,...** आहाहा! **तो उन्हें आत्मा सबसे महिमावन्त,...** सबसे महिमावन्त लगा होगा, तब छोड़ा होगा न? पूरा राज्य, स्त्री, कुटुम्ब, इज्जत, निधान चक्रवर्ती को (होते हैं), आहाहा! **उन्हें आत्मा सबसे महिमावन्त,**

सबसे विशेष आश्चर्यकारी... आहा.. ! सबसे विशेष आश्चर्यकारी। रात्रि को कहा था, **णाणसहावाधियं मुणदि आदं।** ३१वीं गाथा में कहा है। भगवान आत्मा अन्य सब पदार्थ से भिन्न तीर्थंकर और केवली से भी भिन्न यह आत्मा (है)। आहाहा! उसका **णाणसहावाधियं** अपने ज्ञानस्वभाव से सब पदार्थ से अधिक अर्थात् जुदा। आहाहा! ३१वीं गाथा। तीर्थंकर और तीर्थंकर की वाणी, उसको भी इन्द्रिय में गिनने में आया है। आहाहा! उसका भी लक्ष्य और ध्यान छोड़कर, अपने आत्मा के आनन्द का ध्यान, सच्चिदानन्द प्रभु, उसका ध्यान विशेष **आश्चर्यकारी लगा होगा...** आत्मा सबसे महिमावन्त, सबसे विशेष आश्चर्यकारी लगा होगा **और बाह्य का सब तुच्छ भासित हुआ होगा,...** आहाहा! चक्रवर्ती का राज्य भी तुच्छ। एक ओर तुच्छ और एक ओर महा महिमावन्त। तुच्छ को छोड़कर, तुच्छ की उपेक्षा करके अन्तर भगवान आत्मा में ध्यान लगाने... आहाहा! सब छोड़ दिया। **बाह्य का सब तुच्छ भासित हुआ होगा,...** अर्थात् क्या कहते हैं ? कि बाह्य की सब चीज़ तुच्छ भासित हुई होगी, तभी अन्तर में उतरने को, ध्यान में उतरने को वन में चले गये। आहाहा!

इसलिए, हे जीव! इतनी बात कहकर अब आत्मा के लिये कहते हैं, **हे जीव! तू ऐसे आश्चर्यकारी आत्मा की महिमा लाकर,...** आहाहा! अन्तर चिदानन्दस्वरूप ज्ञानानन्द -स्वरूप आनन्दस्वरूप, पूर्ण प्रभुता के स्वभाव से भरा हुआ भगवान आत्मा, उसकी महिमा ला। महिमा लाकर **अपने स्वयं से...** कोई मदद के बिना, किसी की अपेक्षा बिना **स्वयं से उसकी पहिचान करके,...** आहाहा! वर्तमान ज्ञान में उसको ज्ञेय बनाना, वह आश्चर्यकारी वस्तु है। सब ज्ञेय को छोड़कर, अपनी पर्याय में अपना ज्ञेय बनाना। पूर्णानन्द के नाथ का। आहाहा! **स्वयं से उसकी पहिचान करके,...** यह करना है। बाकी सब व्यर्थ है। आहाहा! स्वयं को पहिचान करके। स्वयं से, ऐसा कहा न ? अर्थात् वहाँ किसी की मदद नहीं है। आहाहा! **स्वयं से उसकी पहिचान करके, उसकी प्राप्ति का पुरुषार्थ कर।** आहाहा! अन्तर भगवान आनन्दस्वरूप शान्तरस का कन्द प्रभु, उसके अन्तर ध्यान में जाने को, सर्व की अपेक्षा छोड़कर, स्व की अपेक्षा करके स्वयं स्वतः अपने से जानकर, पुरुषार्थ कर। पुरुषार्थ बिना मिलेगा नहीं।

तू... आहाहा! अब थोड़ी बात करते हैं। आहाहा! **तू स्थिरता-अपेक्षा से बाहर का सब न छोड़ सके...** चारित्र में सिथरता करने के लिये बाह्य का त्याग कदाचित् न कर सके

तो श्रद्धा-अपेक्षा से तो छोड़! आहाहा! श्रद्धा में तो अपने आत्मा के सिवा कुछ भी आदरणीय नहीं है। वह तो छोड़, कहते हैं। स्थिरता-अपेक्षा से, चारित्र-अपेक्षा से समय लगेगा। ऋषभदेव भगवान का ८४ लाख पूर्व का आयुष्य था। ८३ लाख पूर्व गृहस्थाश्रम में रहे। स्थिरता की अपेक्षा नहीं थी। करोड़ों, अरबों वर्ष (स्थिरता नहीं हुई), परन्तु श्रद्धा-अपेक्षा से सब छोड़ दिया है। आहाहा! तीर्थंकर जैसे आत्मा, तीर्थंकर का आत्मा। चतुर्थ काल का प्रथम (तीर्थंकर)। आहाहा! ८३ लाख पूर्व किसे कहें! तब तक बाह्य त्याग नहीं हुआ। बाह्य त्याग अर्थात् बाह्य त्याग की अस्थिरता। बाह्य का तो त्याग ही है। बाह्य त्याग सम्बन्धित अस्थिरता। उसे छोड़ नहीं सके। परन्तु **श्रद्धा-अपेक्षा से तो छोड़!** आहाहा! कठिन बात है।

एक विकल्पमात्र भी श्रद्धा-अपेक्षा से तो छोड़ दे। अरे..! श्रद्धा-अपेक्षा से अपनी पर्याय का आश्रय भी छोड़ दे। श्रद्धा की अपेक्षा से तो पर का आश्रय तो नहीं, परन्तु पर्याय का आश्रय छोड़ दे। आहाहा! श्रद्धा, पर्याय का आश्रय न लेकर, श्रद्धा, द्रव्य का आश्रय ले - वह कर्तव्य और करनेलायक है। आहाहा! बारह अंग का सार यह है। अपने अन्दर चिदानन्दस्वरूप भगवान आत्मा (है)। अपनी पर्याय में अन्दर में ले जा और उस खजाने में दृष्टि दे। आहाहा! बाहर का सब... बाहर का तो छोड़, कहते हैं। कदाचित् बाहर का सब न छोड़ सके तो श्रद्धा-अपेक्षा से तो छोड़। आहाहा! प्रतीति में-श्रद्धा में तो एक विकल्प, दया, दान, भक्ति का विकल्प भी आदरणीय नहीं है। ऐसे श्रद्धा-अपेक्षा से विकल्प से लेकर सब चीज़, श्रद्धा में तो ले कि वह सब चीज़ मेरी नहीं है। मुझे नहीं चाहिए। मेरी चीज़ तो आत्मा आनन्दकन्द सच्चिदानन्द प्रभु (है)। श्रद्धा अपेक्षा से उसका आदर कर। आहाहा! इस श्रद्धा की कीमत कितनी होगी!

श्रद्धा में एक आनन्दस्वरूप भगवान आत्मा, उसके सिवा कोई विकल्पमात्र का आदर नहीं। श्रद्धा की अपेक्षा से। अस्थिरता हो। श्रद्धा अपेक्षा से आत्मा आनन्दमूर्ति प्रभु एक ही आदरणीय है, इसके अतिरिक्त सारी दुनिया—लोकालोक, विकल्प से लेकर लोकालोक सब हेय है। आहाहा! एक ओर भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप को ही ज्ञेय बनाकर, एक को ही उपादेय कर। श्रद्धा में तो उसको ले-ले। उस अपेक्षा से तो पूरी दुनिया छोड़ दे। श्रद्धा-अपेक्षा से तो विकल्प से लेकर पूरी दुनिया छोड़ दे। आहाहा!

छोड़ने से तेरा कुछ नहीं जाएगा,... क्या कहते हैं ? श्रद्धा में से एक आत्मा आनन्द के सिवा, सब कुछ छोड़ने लायक है, उसको छोड़ दे। छोड़ेगा, उसमें तेरा कोई नुकसान नहीं होगा, कुछ नहीं जाएगा। तेरी कोई चीज़ नहीं जाएगी। आहाहा! वह तो परचीज़ छोड़ने की चीज़ हुई। छोड़ने में तेरे में से कोई छोड़ने में नहीं आया। तेरा आत्मा तो अन्दर आदरणीय हुआ। आहाहा! श्रद्धा और चारित्र के बीच बहुत अन्तर है। वीतरागचारित्र तो ऋषभदेव भगवान को ८३ लाख पूर्व तक नहीं आया। अरबों वर्ष। क्षायिक समकित। मतिज्ञान, श्रुतज्ञान (अवधिज्ञान) तीन ज्ञान। सर्व प्रथम तीर्थंकर। आहाहा! भरत जैसे पुत्र। ८३ लाख पूर्व छूट नहीं सके। वह अलग चीज़ है। परन्तु श्रद्धा में तो एक राग का कण से लेकर पूरी दुनिया लोकालोक, एक ओर भगवान ज्ञाता-दृष्टा; एक ओर सब ज्ञेय-परज्ञेय, दोनों को विभाजित करके, आहाहा! दो के बीच भेदज्ञान करके, पर की उपेक्षा करके स्व की अपेक्षा कर। श्रद्धा-अपेक्षा से तो कर। वह कोई कम बात नहीं है, बापू! अनन्त काल में वह नहीं किया है। अनन्त-अनन्त काल में यह करना, वह करना। यह अभी कहेंगे, ३५० में। आहाहा!

तेरा कुछ नहीं जाएगा,... श्रद्धा-अपेक्षा से सारी दुनिया छोड़ दे। आहाहा! तेरा कुछ नहीं जाएगा। **उल्टा परम पदार्थ-आत्मा-प्राप्त होगा।** आहाहा! एक ओर भगवान आत्मा और एक ओर लोकालोक। श्रद्धा-अपेक्षा से आत्मा के सिवा सब जीव को छोड़। सब जीव-अजीव आदि दृष्टि में आदरणीय नहीं है। दृष्टि में आदरणीय एक ही भगवान आत्मा। आहाहा! जिस भाव से तीर्थंकरगोत्र बँधे, वह भाव भी आदरणीय नहीं है। क्योंकि प्रभु तो वीतरागमूर्ति आत्मा है। आहाहा! वीतरागमूर्ति और राग का कण, (दोनों में) विरोध है। अमृत और ज़हर जैसा विरोध है। तो एक आत्मा की अपेक्षा करके सब की उपेक्षा कर दे। यहाँ अपेक्षा, वहाँ उपेक्षा। आहाहा! **छोड़ने से तेरा कुछ नहीं जाएगा, उल्टा परम पदार्थ...** श्रद्धा में से सब छूट जाएगा और सबको छोड़ने से तेरे में से कुछ कमी नहीं होगी, परन्तु तेरा पदार्थ प्राप्त होगा। आहाहा! **उल्टा परम पदार्थ-आत्मा-प्राप्त होगा।** आहाहा! चक्रवर्ती के राज्य से यहाँ बात ली है।

जीवों को ज्ञान और क्रिया के स्वरूप की खबर नहीं है और 'स्वयं ज्ञान तथा क्रिया दोनों करते हैं' ऐसी भ्रमणा का सेवन करते हैं। बाह्य ज्ञान को, भंगभेद के प्रश्नोत्तरों को, धारणाज्ञान को वे 'ज्ञान' मानते हैं और परद्रव्य के ग्रहण-त्याग को, शरीरादि की क्रिया को, अथवा अधिक करें तो शुभभाव को, वे क्रिया कल्पते हैं। 'मुझे इतना आता है, मैं ऐसी कठिन क्रियाएँ करता हूँ' इस प्रकार वे मिथ्या सन्तोष में रहते हैं।

ज्ञायक की स्वानुभूति के बिना 'ज्ञान' होता नहीं है और ज्ञायक के दृढ़ आलम्बन द्वारा आत्मद्रव्य स्वभावरूप से परिणमित होकर जो स्वभावभूत क्रिया होती है, उसके सिवा 'क्रिया' है नहीं। पौद्गलिक क्रिया आत्मा कहाँ कर सकता है ? जड़ के कार्यरूप तो जड़ परिणमित होता है; आत्मा से जड़ के कार्य कभी नहीं होते। 'शरीरादि के कार्य मेरे नहीं हैं और विभाव कार्य भी स्वरूपपरिणति नहीं है, मैं तो ज्ञायक हूँ'—ऐसी साधक की परिणति होती है। सच्चे मोक्षार्थी को भी अपने जीवन में ऐसा घुँट जाना चाहिए। भले प्रथम सविकल्परूप हो, परन्तु ऐसा पक्का निर्णय करना चाहिए। पश्चात् जल्दी अन्तर का पुरुषार्थ करे तो जल्दी निर्विकल्प दर्शन हो, देर करे तो देर से हो। निर्विकल्प स्वानुभूति करके, स्थिरता बढ़ाते-बढ़ाते, जीव मोक्ष प्राप्त करता है।—इस विधि के सिवा मोक्ष प्राप्त करने की अन्य कोई विधि नहीं है॥३५०॥

३५०। **जीवों को ज्ञान और क्रिया के स्वरूप की खबर नहीं है...** ज्ञान किसको कहे और क्रिया किसको कहें। आहाहा! यह शास्त्राान या स्वाध्याय करे, उसको ज्ञान माने। और बाहर की क्रिया त्याग (करे), उसे क्रिया माने। दोनों झूठ है। आहाहा! **जीवों को ज्ञान और क्रिया के स्वरूप की खबर नहीं है और 'स्वयं ज्ञान तथा क्रिया दोनों करते हैं'...** स्वयं ज्ञान और क्रिया दोनों करते हैं, **ऐसी भ्रमणा का सेवन करते हैं।** खबर नहीं है, परन्तु मानता है कि मैं ज्ञान भी करता हूँ, क्रिया भी करता हूँ, दोनों करता हूँ। आहाहा!

कहा था न? (संवत) १९९० की साल में। रतनचन्दजी के गुरु। शतावधानी, उसके गुरु स्थानकवासी। ५५ वर्ष की दीक्षा थी। और उम्र लगभग ७५ होगी। चोटिला मिले, चोटिला। हम किसी को नहीं मिलते थे। सम्प्रदाय के साधु को किसी को मिलते

नहीं थे। सम्प्रदाय में कोई साधु को मानते नहीं। उस समय उपाश्रय में साथ उतरे। वे थे। जेठ महीना था। चातुर्मास करने हमें राजकोट जाना था। बहुत खुश हुए, बहुत खुश हुए। साथ में ठहरे। बाद में बाद निकली। स्थानकवासी में तो ज्ञान अर्थात् यह बाहर का जानना और क्रिया अर्थात् यह क्रिया। 'ज्ञान क्रियाभ्याम मोक्ष' कहा है न? ऐसा प्रश्न किया। गुलबाचन्दजी। चन्दुभाई! गुलाबचन्दजी को पहचानते हो? नहीं? रतनचन्दजी के गुरु बहुत वृद्ध थे। ९५-९६ की उम्र में चल बसे। उस दिन तो ७५ (साल के थे), उसके बाद २० वर्ष रहे। उन्होंने प्रश्न किया, स्थानकवासी ने। 'ज्ञान क्रियाभ्याम मोक्ष कहा है न?'

मैंने कहा, सच्ची बात है। कौन-सा ज्ञान? शास्त्र का पढ़ना, रटना, वह ज्ञान? वह ज्ञान नहीं है। आत्मा का आनन्दस्वरूप है, उसे ज्ञान में ज्ञेय बनाये। अन्तर में आनन्द का स्वाद ले, वह ज्ञान। आहाहा! यह तो (संवत्) १९९० की साल की बात है। स्थानकवासी। स्थानकवासी के.. क्या कहते हैं? आचार्य... आचार्य। परन्तु कबूल किया सब। बात सच्ची लगती है। यह ज्ञान नहीं, यह जानपना, पुस्तक रटना, इसका यह है, उसका वह है, (वह ज्ञान नहीं)।

अन्तर आत्मा आनन्दमूर्ति प्रभु, उस आनन्द का ज्ञान अर्थात् आनन्द का स्वाद लेना। आनन्द को ज्ञेय बनाकर, अतीन्द्रिय आनन्द को, उस अतीन्द्रिय आनन्द के ज्ञान का स्वाद, वह ज्ञान है। और उसमें-ज्ञान में एकाग्रता होनी, वह क्रिया है। आहाहा! स्थानकवासी के साथ बात हुई। उनके बड़े आचार्य। बात सच्ची है, (ऐसा कहा)। मार्ग तो यह है, क्या करना? आहाहा! मार्ग तो यह है। ज्ञान-क्रिया कोई दूसरी (नहीं है)। यह क्रिया की, महाव्रत आदि क्रिया, वह क्रिया नहीं।

ज्ञानस्वरूप भगवान आत्मा.. (संवत) १९९० साल के ज्येष्ठ महीने की बात है। १९९० के साल। ४७ साल हुए। उस समय की बात है। आहा..! अन्दर में ज्ञानस्वरूप चैतन्यमूर्ति प्रभु, पूरी दुनिया से, अरे..! भगवान तीन लोक के नाथ की महिमा के विकल्प से भी पर। आहाहा! ऐसा जो भगवान आत्मा, वह एक ही मुझे उपादेय है। दूसरी कोई चीज़ मुझे उपादेय नहीं है। आहाहा! और उसके सिवा क्रिया? क्रिया कहा, ज्ञानस्वरूप में आनन्द में रमना, अतीन्द्रिय आनन्द के स्वाद में विशेष रहना, वह क्रिया है। यह क्रिया नहीं। कबूल किया। और एक दूसरी बात गुप्तरूप से कबूल की। स्थानकवासी थे न। और

स्थानकवासी की ५५ साल की दीक्षा। कहा, मूर्ति का कैसा है ? मूर्ति का क्या है ? मैं भी उन दिनों उसी में था।

मूर्ति शास्त्र में है। प्रतिमा, प्रतिमा का पूजन ३२ सूत्र में है। बात सच्ची है। कबूल किया, हों! है शुभभाव। प्रतिमा पूजन, मन्दिर आदि में लाखों, करोड़ों रुपये खर्च करो, भक्ति-बक्ति करे, परन्तु है शुभभाव, धर्म नहीं। धर्म तो स्व के आश्रय बिना धर्म तीन काल में होता नहीं। जहाँ पर का आश्रय आवे, वहाँ राग आये बिना रहे नहीं। आहाहा! कहा, मुझे प्रतिमा के विषय में शंका तो है। हमारे कोई शिष्य शास्त्र पढ़ेंगे तो हम पर से श्रद्धा उठ जाएगी। शास्त्र में में मूर्ति है। स्थानकवासी मूर्ति-प्रतिमा को माने नहीं और वह उनके बड़े गुरु। उन्होंने कबूल किया कि मूर्ति-प्रतिमा शास्त्र में है। हमारी जिन्दगी शंका में गयी, ऐसा कहा। कोई शिष्य पढ़ेगा और मालूम पड़ जाएगा कि इसमें प्रतिमा है, तो हम पर से श्रद्धा उठ जाएगी। आहाहा! मार्ग तो भाई यह है।

भले भगवान की प्रतिमा तो परद्रव्य है। अरे..! भगवान तीन लोक के नाथ परद्रव्य है। परद्रव्य पर लक्ष्य जाएगा तो राग आये बिना रहेगा नहीं। परन्तु वह वस्तु है; नहीं है - ऐसा नहीं। कोई उड़ा दे कि नहीं है, (ऐसा नहीं है)। समझ में आया ? भगवान, भगवान की प्रतिमा, उनकी पूजा, भक्ति है। है शुभभाव। अशुभ से बचने को शुभभाव समकिती को-ज्ञानी को भी आये बिना रहे नहीं। परन्तु वह जाने कि बन्ध का कारण है। है तो अच्छी बात, ऐसा कहा। प्रतिमा है, लेकिन अब करना क्या ? ७५ साल की उम्र, ५५ साल की दीक्षा। जाना कहाँ ? सम्प्रदाय में अभी भी जहाँ स्वयं चिपक जाता है, उसमें से निकलना मुश्किल पड़ जाता है। जिस बात की पकड़ की, उस बात से छूटना उसे मुश्किल पड़ता है।

यहाँ वह कहते हैं, **जीवों को ज्ञान और क्रिया के स्वरूप की खबर नहीं है और 'स्वयं ज्ञान तथा क्रिया दोनों करते हैं'...** ऐसा माने। हम ज्ञान भी करते हैं और क्रिया भी करते हैं, ऐसा माने। (उसके) स्वरूप की खबर नहीं कि स्वरूप क्या है ? आहाहा! **ऐसी भ्रमणा का सेवन करते हैं।** ज्ञान, अपना आनन्द का ज्ञान और आनन्द में रमना, वह क्रिया। उसे भूलकर बाह्य ज्ञान और क्रिया, भ्रमणा में भटकता है। **भ्रमणा का सेवन करते हैं। बाह्य ज्ञान को, भंगभेद के प्रश्नोत्तरों को,...** आहाहा! भंगभेद के प्रश्नोत्तर और

उसकी चर्चा-वार्ता। मानो मैं बड़ा ज्ञानी हो गया। आहाहा! प्रश्नोत्तर आदि में तो विकल्प है। आहाहा! **प्रश्नोत्तरों को, धारणाज्ञान को...** धारणा कर ले कि यह चौदह गुणस्थान है, ऐसा है, वैसा है। उसमें क्या आया? चौदह गुणस्थान है, छह द्रव्य है और छह द्रव्य में गुण-पर्याय है।

नियमसार में तो वहाँ तक कहा कि यह प्रभु एकरूप है, उसका तीन प्रकार से विचार करना, द्रव्य-गुण-पर्याय, वह भी राग है। नियमसार में कुन्दकुन्दाचार्य का वचन है कि एक चीज़ में... मेरे सन्मुख देखना तो राग है ही, कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं। परन्तु तेरे सन्मुख देखने में चीज़ एक है अन्दर, सच्चिदानन्द प्रभु, उसमें तीन भेद का विचार करना, गुण का भण्डार द्रव्य है और गुण है, वह गुण है, उसकी अवस्था सो पर्याय है। ऐसा तीन प्रकार का एक में विचार करना, वह राग है। नियमसार में है। आहाहा! वह पराधीन है। एक में तीन प्रकार का विचार (करना) अनावश्यक है। अनावश्यक है, आवश्यक नहीं। आवश्यक अर्थात् वह जरूरत की क्रिया नहीं। आहाहा! नियमसार में है, एक बार बताया था। यहाँ तो बाहर की बात में ऐसा करो, इसका अर्थ यह है, छहकाय जीव यह है, यह एकेन्द्रिय का जीव है, हरितकाय का यह जीव है, उसमें क्या हो गया? आहा..!

तेरा भगवान अन्दर कौन है? वह भी अकेले ज्ञान और आनन्द का समुद्र है। अन्दर आत्मा ज्ञान और आनन्द का सागर है। उसमें जब तक लीन होकर अन्दर नहीं जाता... आहाहा! रागादि की उपेक्षा करके, स्व के अन्दर नहीं जाए, तब तक ज्ञान नहीं है। चारित्र तो नहीं है, परन्तु अन्दर में गये बिना अन्तर ज्ञान के स्वाद बिना सम्यग्ज्ञान भी नहीं है। आहाहा! ऐसी बात है।

वह यहाँ कहते हैं, **बाह्य ज्ञान को, भंगभेद के प्रश्नोत्तरों को, धारणाज्ञान को वे 'ज्ञान' मानते हैं...** अज्ञानी धारणा कर ले, शास्त्र पढ़े और धारणा कर ले, पढ़ लिया और धारणा कर ली, उसमें क्या हुआ? अन्तर चीज़ का जब तक स्पर्श नहीं होता, अखण्डानन्द चैतन्यमूर्ति प्रभु, उसका स्पर्श-वेदन-प्रवेश-उसकी पर्याय में उसके वेदन का भाव आना, वह नहीं आये, तब तक उसे सम्यग्दर्शन, ज्ञान भी नहीं कहते। आहाहा! **धारणाज्ञान को वे 'ज्ञान' मानते हैं और परद्रव्य के ग्रहण-त्याग को,...** है? परद्रव्य का ग्रहण-त्याग।

कपड़ा छोड़ा, स्त्री छोड़ी, पुत्र छोड़े, दुकान छोड़ी, उसमें क्या हुआ? वह तो भिन्न ही पड़े हैं।

सिद्धान्त में तो ऐसा लिखा है, ४७ शक्ति में। परवस्तु का त्याग-ग्रहण मानना, वही मिथ्यात्व है। परवस्तु के त्याग-ग्रहण से शून्य आत्मा है। आहा..! त्यागउपादानशून्यत्व नाम की एक शक्ति-गुण आत्मा में है। ऐसे ज्ञानगुण है, आनन्दगुण है, वैसे अनादि-अनन्त आत्मा में सनातन त्यागउपादान (शून्यत्व) नाम का गुण पड़ा है कि जो परद्रव्य का त्याग और ग्रहण आत्मा में है नहीं। पर का त्याग और पर का ग्रहण आत्मा में है नहीं। पर का त्याग और पर का ग्रहण आत्मा में है ही नहीं। पर का थोड़ा त्याग करे तो मान ले कि हम त्यागी हो गये। हम संयमी हो गये और हम धर्मी हो गये। आहाहा!

अनादि से नौवीं ग्रैवेयक अनन्त बार गया। ऐसी क्रिया तो अभी है भी नहीं। शुक्ललेश्या। आहाहा! साधु दिगम्बर, उसके लिये पानी का बिन्दु बनाये तो ले नहीं। आहाहा! पानी के एक बिन्दु में असंख्य जीव। उसके लिये पानी बनाया हो तो प्राण जाए तो भी ले नहीं। ऐसी क्रिया की। परन्तु अन्तर में माना कि मैं यह क्रिया करता हूँ। आहाहा!

परद्रव्य के ग्रहण-त्याग को,... आहाहा! परद्रव्य का ग्रहण और त्याग। उसे चारित्र माने। आहाहा! **शरीरादि की क्रिया को,...** यह शरीर की क्रिया। स्त्री का विषय शरीर न ले। वह तो शरीर की क्रिया हुई। स्त्री का विषय न ले, वह तो शरीर की क्रिया हुई। परन्तु अन्तर में राग है और इसमें मुझे ठीक लगता है, ऐसा मिथ्यात्व तो अन्दर पड़ा है। राग और मिथ्यात्व तो अन्दर पड़ा है। शरीर की क्रिया भले न करे। आहाहा! ब्रह्मचर्य तो उसे कहते हैं, ब्रह्म अर्थात् अतीनिद्रय आनन्द का नाथ प्रभु, उसमें चरना अर्थात् रमना... आहाहा! उसका नाम परमात्मा ब्रह्मचर्य कहते हैं। वह ब्रह्मचर्य सम्यग्दर्शन बिना होता नहीं। आहाहा! क्योंकि पहले आत्मा ही कैसा है, यह खबर नहीं। उसके बिना चरना किसमें? ब्रह्मचर्य। चर्य नाम चरना, वर्तना-वर्तन करना। आत्मा आनन्दस्वरूप अतीन्द्रिय कौन है, उसकी खबर बिना उसमें रमना कहाँ से आया? उसमें रमे, यह आया कहाँ से? ब्रह्मचर्य लोग शरीर से पाले, बाल ब्रह्मचारी भले हो, परन्तु वह ब्रह्मचर्य नहीं है। आहाहा! वह तो शुभभाव है।

अन्दर में आनन्दस्वरूप प्रभु का अन्दर अनुभव करके उसमें रमना, वह ब्रह्मचर्य है। आहाहा! ऐसा कठिन लगे लोगों को। एकान्त हो गया। व्यवहार ? व्यवहार हो, परन्तु वह पुण्यबन्ध का कारण बीच में आये। निश्चय के भानसहित, अनुभवसहित राग की मन्दता, भक्ति आदि, बाह्य छह परबी ब्रह्मचर्य आदि आये, परन्तु वह सब शुभभाव है, पुण्यभाव है, बन्ध का कारण है। आहाहा!

यहाँ कहते हैं, शरीरादिक की क्रिया को क्रिया माने **अथवा अधिक करें तो शुभभाव को,...** आहाहा! ज्यादा से ज्यादा अन्दर जाए तो शुभभाव को धर्म माने। आहाहा! एक तो बाह्य ग्रहण-त्याग को माने। अथवा शरीरादि की क्रिया को माने अथवा अधिक करने जाए तो शुभभाव को, वह क्रिया करता हूँ, शुभभाव की क्रिया मैं करता हूँ। आहाहा! दया पालता हूँ, दया। आहाहा! पर की दया तो आत्मा पाल सकता नहीं। परद्रव्य की दया पाल सकता नहीं, क्योंकि परद्रव्य और स्वद्रव्य में अत्यन्त अभाव है। आहाहा! पर की दया का भाव लाना, वह भी राग है। कठिन बात है, बापू!

पुरुषार्थसिद्धि उपाय (में) अमृतचंद्राचार्य कहते हैं कि पर की दया, वह राग है, वह हिंसा है, ऐसा कहा। पाठ है। पुरुषार्थसिद्धि उपाय, अमृतचन्द्राचार्य कृत। पर की दया का भाव वह हिंसा है, ऐसा कहते हैं। ऐ... धन्नालालजी! अर..र..र..! क्योंकि पर ऊपर लक्ष्य गया तो विकल्प उठा, राग आया। राग, वह आत्मा की हिंसा है। आत्मा अहिंसकस्वरूप है, वीतरागमूर्ति है। उसमें राग से हिंसा हुई। आहाहा! कठिन काम है, भाई! आहाहा!

शुभभाव को वे क्रिया कल्पते हैं। 'मुझे इतना आता है,...' ऐसा माने, मुझे इतना तो आता है, इतना तो ज्ञान है न। **'मैं ऐसी कठिन क्रियाएँ करता हूँ'...** उपवासादि शरीरादि की क्रिया। जंगल में रहना, नग्न होकर जंगली में रहे। तो क्या हुआ ? **इस प्रकार वे मिथ्या सन्तोष में रहते हैं।** अज्ञानी मिथ्या सन्तोष में ज्ञान-श्रद्धा और क्रिया मानता है। अपनी ज्ञान, श्रद्धा और क्रिया आत्मा की, उसकी खबर भी नहीं। आत्मा की ज्ञान, श्रद्धा और क्रिया। क्रिया अर्थात् चारित्र। तीनों की तो खबर भी नहीं है। शरीरादि की क्रिया और जानपने की धारणा, और उपवासादि की क्रिया, वह क्रिया मानकर धर्म माने। उसमें शुभभाव है, वह धर्म है (-ऐसा मानता है)। शुभभाव तो पुण्य है। आहाहा!

यहाँ वह कहते हैं, '**मुझे इतना आता है,...** इतना तो हमें आता है न, **मैं ऐसी कठिन क्रियाएँ करता हूँ....** ऐसा कहते हैं। आहाहा! **इस प्रकार वे मिथ्या सन्तोष में रहते हैं।** अनादि काल का कहीं न कहीं मिथ्याज्ञान, मिथ्याश्रद्धा और मिथ्याचारित्र, इन तीनों में से कहीं न कहीं रुकता है। भगवान उससे भिन्न है। सच्चिदानन्द प्रभु, अतीन्द्रिय आनन्द का सागर, वह दृष्टि में, वेदन में न आये, तब तक उसको कुछ भी जन्म-मरण का अन्त आता नहीं। आहाहा! ऐसी बात है।

ज्ञायक की स्वानुभूति के बिना... देखो! अब आया। ज्ञायक आत्मा-भगवान आत्म, ज्ञायकस्वरूप की अनुभूति। स्व-अनुभूति। आया? स्वानुभूति। पर अनुभूति—पर का अनुभव नहीं। राग का, विकल्प का नहीं। आहाहा! स्वानुभूति के बिना-ज्ञायक की स्व अनुभूति के बिना '**ज्ञान' होता नहीं है...** आहाहा! ज्ञायक-जाणक स्वभाव से भरा पड़ा प्रभु, जिसमें ज्ञायकपना नित्य लबालब भरा है। उसे जानने के लिये पर की अपेक्षा है नहीं। ऐसा ज्ञान का भण्डार, ज्ञान का सागर, उसकी स्वानुभूति-उसका स्व अनुभव, उसके बिना ज्ञान होता नहीं। ग्यारह अंग पढ़े तो भी ज्ञान है नहीं। ग्यारह अंग भी अनन्त बार पढ़ा। अनन्त बार। एक अंग में १८ हजार पद, एक पद में ५१ करोड़ श्लोक। ऐसा अनन्त बार किया। परन्तु आतम.. आतम.. आतम... आतम भगवान अन्दर चिदानन्द प्रभु, अतीन्द्रिय आनन्द का कन्द, अतीन्द्रिय आनन्द का कन्द, अतीन्द्रिय आनन्द का पिण्ड, उसका अनुभव नहीं किया, उसका स्वाद नहीं लिया, उसको ज्ञेय नहीं बनाया। आहाहा! कठिन बात है, भाई! एकान्त लगे। (लोगों को) यह तो एकान्त है। एकान्त ही है। सम्यक् नय एकान्त ही है। आहाहा!

और ज्ञायक के दृढ़ आलम्बन द्वारा... एक ज्ञायक। जाणक स्वभाव से भरा पड़ा प्रभु, उसके दृढ़ आलम्बन द्वारा **आत्मद्रव्य स्वभावरूप से परिणमित होकर...** आहाहा! सूक्ष्म बात है। **ज्ञायक के दृढ़ आलम्बन द्वारा आत्मद्रव्य स्वभावरूप से परिणमित होकर...** आत्मद्रव्य जो वस्तु भगवान, स्वयं अपने स्वभावरूप परिणमित होकर। आहाहा! **जो स्वभावभूत क्रिया होती है...** जो स्वभावभूत। स्वभाव में एकाग्रता की जो क्रिया होती है, उसके सिवा क्रिया है नहीं। आहाहा! उसके सिवा क्रिया है नहीं, उसका अर्थ क्या? सच्ची धर्म की क्रिया नहीं है। क्रिया तो है, (धर्म की नहीं)। धार्मिक क्रिया यह है। धर्म-

आत्मा के स्वभाव में एकाग्रता। आहाहा! **उसके सिवा 'क्रिया' है नहीं।** अर्थात ? क्रिया तो है, परन्तु आत्मा के ज्ञानानन्द में रहने के अलावा (कोई) सम्यक् क्रिया है नहीं। सब मिथ्या क्रिया है। आहाहा!

पौद्गलिक क्रिया... शरीर, वाणी, मन की। **आत्मा कहाँ कर सकता है ?** आहाहा! पौद्गलिक क्रिया आत्मा कहाँ कर सकता है ? आहाहा! आत्मा शरीर को हिला सकता नहीं, बोल सकता नहीं। आहाहा! आँख की पलक नहीं झपक सकता। एक अंगुली ऐसी नहीं कर सकता। ऐसे है तो इतना कर नहीं सकता। वह तो जड़ से होता है। आहाहा! पाँच अंगुली में मात्र एक अंगुली को इतना करना है इतना। आत्मा कर सकता नहीं, वह तो जड़ की क्रिया है। जड़ के क्रम में पर्याय में आनेवाली वह क्रिया जड़ से होती है। आत्मा उसका कर्ता-हर्ता है नहीं। आहाहा! बड़ी कठिन बात।

आत्मा कहाँ कर सकता है ? पर का। **जड़ के कार्यरूप तो जड़ परिणमित होता है;...** शरीर, वाणी, मन जड़ है। जड़ का परिणमन जड़ से होता है। **जड़ के कार्यरूप तो जड़ परिणमित होता है;...** आहाहा! **आत्मा से जड़ के कार्य कभी नहीं होते।** आहाहा! एक प्रश्न चला था। एक डली हो, शक्कर की अथवा गुड़ की, किसी की भी। पूरी डली को छूना न पड़े। एक ओर ऐसा करे तो पूरी हट जाये। देखो! निमित्त से हुआ कि नहीं ? एक के साथ बात हुई। दामोदर सेठ, दामनगर। उनकी दृष्टि बहुत विपरीत थी। ऐसा कहते थे, यहाँ कोई चीज़ पड़ी हो, तो पूरी चीज़ को भले छूए नहीं, एक ओर अंगुली से ऐसा करे तो खिसक जाए। अरे..! भाई! अंगुली उसको छूती नहीं। वह तो वह क्रिया उस प्रकार से, उस समय उस काल में जड़ की होनेवाली थी। आहाहा! बड़ा कठिन काम।

यह लकड़ी आत्मा ले सकता नहीं और यह लकड़ी अंगुली के कारण ऐसे रही है, ऐसा नहीं। क्योंकि आधार नाम का उसमें गुण है, तो अपने आधार से रही है। अंगुली के आधार से नहीं। दिखता है न ? परन्तु तू क्या देखता है ? तू अंगुली को देखता है या यह देखता है ? तू देखता है अंगुली। अंगुली का आधार यहाँ (है)। उसको देख तो उसके आधार से वह है। संयोग से देखे तो दिखे कि देखो! अग्नि आयी तो पानी गरम हुआ। अग्नि आयी और पानी गरम हुआ। छुरी आयी और लौकी के टुकड़े हुए। तू देखता है

दूसरी चीज़ को। परन्तु उस वस्तु को देख। उस वस्तु में जो क्रिया होती है, वह क्रिया अपने से होती है। तू यहाँ छुरी को देखता है कि छुरी से वह क्रिया हुई। छुरी कहते हैं न? क्या कहते हैं? भाई गये? गये लगते हैं। छुरी। छुरी पर को छूती ही नहीं। आहाहा! दुनिया की दृष्टि...

जैसे यह अंगुली है, देखो! देखे क्या? कि यह अंगुली। इस अंगुली से यह ऊँचा हुआ देखे। परन्तु उस तरह नहीं देखकर, यह ऊँचा हुआ ऐसा देखे तो (बराबर है)। संयोग से देखने की दृष्टि ही मिथ्यात्व है। आहाहा! उसका पर्याय का स्वभाव उस समय है, जिस समय जो पर्याय होनेवाली है, वह उसी समय होगी, उसकी पर्याय उससे हुई है। दूसरा द्रव्य उसे छुए नहीं, स्पर्शे नहीं तो हो कहाँ से? आहाहा!

इसे एकान्त मानते हैं। लो। पत्रों में आये, एकान्त है, सोनगढ़ का एकान्त है। निमित्त से कुछ होता नहीं, ऐसा कहते हैं। बात सच्ची है। बात झूठी नहीं है। निमित्त से कुछ होता नहीं, वह बात तो ऐसे ही है। भले तुम्हें न बैठे। आहाहा! निमित्त चीज़ दूसरी है, उपादान चीज़ दूसरी है। दूसरी चीज़ में जो अपनी पर्याय होती है, उसमें निमित्त आकर करे क्या? और निमित्त भी अपनी पर्याय को करता है तो पर की पर्याय करने जाए कहाँ? आहाहा! कठिन काम है।

जड़ के कार्यरूप तो जड़ परिणमित होता है;... वह तो उसके कारण परिणमता है। यह अंगुली, भाषा आदि। **आत्मा से जड़ के कार्य कभी नहीं होते।** आत्मा से जड़ के कार्य... आहाहा! लौकी के दौ टुकड़े करना अपना कार्य नहीं। तिनके के दो टुकड़ा करना अपना कार्य नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु :- दोनों ने मिलकर काम किया, ऐसा माने।

पूज्य गुरुदेवश्री :- एक ही है। दोनों-बोनों है नहीं। एक ने ही किया है, अपनी पर्याय में क्रमबद्ध में। दूसरी चीज़ भी अपने क्रमबद्ध में आकर अपनी पर्याय करती है। वह भी अपने कारण से अपनी पर्याय करता है। समय एक ओर दोनों अपना-अपना कार्य करते हैं।

मुमुक्षु :- दोनों ने मिलकर किया...

पूज्य गुरुदेवश्री :- मिलकर क्या किया ? तेरी चीज़ कहाँ आयी ?

मुमुक्षु :- वह तो....

पूज्य गुरुदेवश्री :- आयी कहाँ ? इसने यह किया, इसने यह किया। इसमें दूसरी क्रिया आयी कहाँ ? उसने उसकी क्रिया ऐसे की, तब संयोग से किया ऐसा तो है नहीं। यह तो संयोग है। संयोगी क्रिया उससे हुई है। यह उससे हुई। उसमें तीसरी क्रिया कहाँ हुई ? दोनों मिलकर हुई, ऐसा आया कहाँ ? आहाहा ! कठिन काम है।

मुमुक्षु :- उसमें दिक्कत क्या है ?

पूज्य गुरुदेवश्री :- बड़ी दिक्कत यह है कि दो द्रव्य एक हो जाने पर अनन्त द्रव्यों का नाश हो जाये। अनन्त द्रव्य अनन्तपने हमेशा कैसे रहे ? आहाहा ! अनन्त पदार्थ भगवान ने कहे। तो अनन्त (पदार्थ) अपनी पर्याय से कार्य करते रहते हैं। दूसरा दूसरे का करे तो अनन्त रहते नहीं। आहाहा ! कठिन बात है।

'**शरीरादि के कार्य मेरे नहीं हैं...** आहाहा ! शरीर, वाणी, मन आदि शब्द पड़ा है न ? '**शरीरादि के कार्य मेरे नहीं हैं और विभाव कार्य भी स्वरूपपरिणति नहीं है,...** शुभ रागादि है, वह स्वरूप की परिणति-पर्याय नहीं है, वह तो विकार की परिणति है। आहाहा ! शुभपरिणति भी स्वरूपपरिणति नहीं है। आहाहा ! **मैं तो ज्ञायक हूँ...** मैं तो जानने-देखनेवाला हूँ। वह भी स्वयं को जानने-देखनेवाला हूँ। आहाहा ! निश्चय से। **ऐसी साधक की परिणति होती है।** ऐसी साधक अर्थात् धर्म करनेवाला। धर्म करनेवाले साधक की ऐसी परिणति होती है। परिणति अर्थात् पर्याय। आहाहा ! अपने ज्ञान की पर्याय अपने से होती है, श्रद्धा की पर्याय अपने से होती है, आनन्द की, चारित्र की-शान्ति की पर्याय अपने से होती है। यह साधक की परिणति है। पर से नहीं और पर एवं स्वयं मिलकर भी नहीं। पर से नहीं और पर एवं स्वयं दो मिलकर भी नहीं (होती है)। आहाहा ! **ऐसी साधक की परिणति होती है।**

सच्चे मोक्षार्थी को... सच्चे मोक्षार्थी को भी अपने जीवन में ऐसा घुँट जाना चाहिए। आहाहा ! सादी भाषा है। सच्चे मोक्षार्थी को, **सच्चे मोक्षार्थी को भी अपने जीवन में ऐसा घुँट जाना चाहिए।** आहाहा ! स्व की परिणति स्व और पर की परिणति पर, ऐसे

घुँट जाना चाहिए। आहाहा! **भले प्रथम सविकल्परूप हो,...** विकल्प आते हैं। प्रथम सविकल्प हो। वीतराग तो होता नहीं। **परन्तु ऐसा पक्का निर्णय करना चाहिए।** कि विकल्प भी मेरी चीज़ नहीं है। आहाहा! पर का कर सकता तो नहीं, परन्तु कर नहीं सकने का विकल्प आया। आहाहा! वह प्रथम विकल्परूप हो, **परन्तु ऐसा पक्का निर्णय करना चाहिए।** क्या ? कि यह विकल्प मेरी चीज़ नहीं है। मेरे से विकल्प हुआ नहीं। आहाहा! ज्ञान की परिणति ज्ञान से हुई, राग की परिणति राग से हुई, जड़ की परिणति जड़ से हुई। आहाहा! **परन्तु ऐसा पक्का निर्णय करना चाहिए।**

पश्चात् जल्दी अन्तर का पुरुषार्थ करे... आहाहा! अन्तर में चैतन्य का पुरुषार्थ करे। आहाहा! **पश्चात् जल्दी अन्तर का पुरुषार्थ करे...** परन्तु जल्दी करे, हों! **तो जल्दी निर्विकल्प दर्शन हो,...** आहाहा! अन्दर रागरहित दशा हो जाती है। सम्यग्दर्शन, ज्ञान में रागरहित दशा होती है। आहाहा! उतना अधिक समय निकाले नहीं। **देर करे तो देर से हो। निर्विकल्प स्वानुभूति करके, स्थिरता बढ़ाते-बढ़ाते, जीव मोक्ष प्राप्त करता है।—इस विधि के सिवा मोक्ष प्राप्त करने की अन्य कोई विधि नहीं है।**

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

विक्रम संवत-२०३५, श्रावण कृष्ण - ७, सोमवार, तारीख १-९-१९८०
वचनामृत- ३५२, ३५३ प्रवचन-२२

'द्रव्य से परिपूर्ण महाप्रभु हूँ, भगवान हूँ, कृतकृत्य हूँ' ऐसा मानते होने पर भी 'पर्याय में तो मैं पामर हूँ' ऐसा महामुनि भी जानते हैं।

गणधर भी कहते हैं कि 'हे जिनेन्द्र! मैं आपके ज्ञान को नहीं पा सकता। आपके एक समय के ज्ञान में समस्त लोकालोक तथा अपनी भी अनन्त पर्यायें ज्ञात होती हैं। कहाँ आपका अनन्त-अनन्त द्रव्य-पर्यायों को जाननेवाला अगाध ज्ञान और कहाँ मेरा अल्प ज्ञान! आप अनुपम आनन्दरूप भी सम्पूर्णतया परिणमित हो गये हैं। कहाँ आपका पूर्ण आनन्द और कहाँ मेरा अल्प आनन्द! इसी प्रकार अनन्त गुणों की पूर्ण पर्यायरूप से आप सम्पूर्णतया परिणमित हो गये हो। आपकी क्या महिमा करें ? आपको तो जैसा द्रव्य, वैसी ही एक समय की पर्याय परिणमित हो गयी है; मेरी पर्याय तो अनन्तवें भाग है।'

इस प्रकार प्रत्येक साधक, द्रव्य-अपेक्षा से अपने को भगवान मानता होने पर भी, पर्याय-अपेक्षा से—ज्ञान, आनन्द, चारित्र, वीर्य इत्यादि सर्व पर्यायों की अपेक्षा से—अपनी पामरता जानता है॥३५२॥

वचनामृत-३५२। **द्रव्य से...** मुख्य बात उठायी है। द्रव्य अर्थात् वस्तु अनादि-अनन्त। जो पर्याय एक समय की पलटती है, उसके पीछे द्रव्य त्रिकाल अपलटता है। ऐसा जो द्रव्य—वस्तु वह **द्रव्य से परिपूर्ण...** द्रव्य से तो मैं परिपूर्ण हूँ। **महाप्रभु हूँ,...** आहाहा! द्रव्य से-पदार्थ से-वस्तु से-चैतन्य ज्ञायक पदार्थ से-ज्ञायकभाव से तो मैं परिपूर्ण महाप्रभु हूँ। आहाहा! प्रत्येक आत्मा को ऐसा है। प्रत्येक प्रभु, उसका जो द्रव्य है वह महाप्रभु परिपूर्ण है। परिपूर्ण है और महाप्रभु है। आहाहा! यहाँ तो अपनी बात कही है न। हूँ। **द्रव्य से परिपूर्ण महाप्रभु हूँ,...** छूँ। ऐसे धर्मी-समयग्दृष्टि को यह भावना करनी। आहाहा!

भगवान हूँ,... द्रव्य से तो भगवान हूँ। भगवान और मेरे द्रव्य में कोई अन्तर नहीं है। आहाहा! **कृतकृत्य हूँ...** द्रव्य से तो कृतकृत्य हूँ। कुछ करने जैसा है, ऐसा द्रव्य में नहीं है। वह तो पर्याय में है। यह तो कृतकृत्य है। सब कार्य पूरे किये हैं। सब गुणों की शक्ति पूरी ही है। शक्ति। आहाहा! ऐसा मैं कृतकृत्य हूँ। इस प्रकार साधक जीव को पहले यह भावना करनी। आहाहा! **कृतकृत्य हूँ, ऐसा मानते होने पर भी...** ऐसा मानते होने पर भी **'पर्याय में तो मैं पामर हूँ'।** आहाहा! पर्याय कहाँ सर्वज्ञ की पर्याय और कहाँ मेरी पर्याय। अनन्त गुना अन्तर है। पर्याय में मैं पामर हूँ। द्रव्य से प्रभु हूँ, पर्याय से पामर हूँ। आहाहा! क्योंकि पर्याय में जब तक परिपूर्णता नहीं होती, जब तक परिपूर्ण नहीं होती, तब तक पामरता है। आहाहा! **ऐसा मानते होने पर भी 'पर्याय में तो मैं पामर हूँ'...** आहाहा! **ऐसा महामुनि भी जानते हैं।** ऐसा महामुनि गणधर चार ज्ञान और चौदह पूर्व की अन्तर्मुहूर्त में रचना करनेवाले, चार ज्ञान और चौदह पूर्व की अन्तर्मुहूर्त में रचना करनेवाले गणधर भी ऐसा मानते हैं, ऐसा महामुनि भी मानते हैं। इसलिए कहा कि महामुनि कौन ? **गणधर भी कहते हैं...** आहाहा!

अपनी अन्तर की सनातन वस्तु अनादि-अनन्त ध्रुव की महिमा कभी आयी नहीं। सनातन परम सत्य, उसका भण्डार अन्दर में भरा है। उसकी महिमा, माहात्म्य कभी आया नहीं। पर्याय पर अनादि से खेल किया। आहा..! अनादि से पर्याय पर खेल किया, परन्तु पर्याय के सिवा अन्दर वस्तु भगवान परिपूर्ण है, उस पर दृष्टि दी नहीं।

गणधर भी कहते हैं कि 'हे जिनेन्द्र!.. हे परमात्मा! **मैं आपके ज्ञान को नहीं पा सकता।** आपके ज्ञान को नहीं पा सकता। आपके ज्ञान की परिपूर्णता कोई अचिंत्य महिमा (है)। सर्वज्ञ की पर्याय, ऐसी भाषा भले बोले, परन्तु सर्वज्ञ एक समय में कोई चमत्कारिक वस्तु है कि अपने सिवा सर्व लोकालोक भी (जाने), स्वयं स्वयं को भी जाने और उसको भी जाने। ऐसी कोई ताकत पर्याय की ताकत (है)। हे नाथ! आपकी पर्याय की ताकत के समक्ष... आहाहा! **मैं आपके ज्ञान को नहीं पा सकता।** आपके ज्ञान की परिपूर्णता मैं पा सकता नहीं। आहाहा! द्रव्यस्वरूप भगवान परिपूर्ण आत्मा कृतकृत्य, उसको मैंने पाया। परन्तु आपकी पर्याय जो भगवान पर्याय है, उसको तो मैं नहीं पा सकता। अभी मेरी पर्याय में पामरता है। आहाहा!

नौवीं ग्रैवेयक मिथ्यादृष्टि होकर गया। बहुत क्रिया की और बहुत किया – ऐसा माना। बहुत किया – ऐसा माना। तब ज्ञानी कहते हैं कि मैं तो अभी पर्याय में अनन्तवें भाग में हूँ। कहाँ परमात्मा और कहाँ मैं! स्वामी कार्तिकेय में यह गाथा है। कार्तिकेयानुप्रेक्षा ग्रन्थ है, उसमें एक गाथा है। समकिती अपने को द्रव्य से तो प्रभु के रूप में स्वीकारते हैं, पर्याय में पामरता मानते हैं। अरे..! मुझे बहुत करना बाकी है। मुझे बहुत करना (बाकी है)। द्रव्य–ओर की वृत्ति झुकाववाली दशा, बहुत करनी है। मुझे बहुत बाकी है। आहाहा! मुनि भी ऐसा कहते हैं। द्रव्यदृष्टि से भले मैं परिपूर्ण हूँ, महाप्रभु हूँ, कृतकृत्य हूँ। परन्तु पर्याय में अभी मुझे बहुत करना बाकी है। मुनि हुए तो भी। तीन कषाय का नाश (हुआ है)। गणधर चार ज्ञान (धारी) और चौदह पूर्व की रचना अन्र्मुहूर्त में करनेवाले, वे भी ऐसा मानते हैं कि प्रभु! आपकी पर्याय करने में मैं अभी पामर हूँ। आहाहा! मुझे बहुत करना बाकी है। कहाँ केवलज्ञान और कहाँ मतिज्ञान। आहाहा!

धवल में लिया है कि जहाँ सम्यक् मतिज्ञान हुआ, (वह) केवलज्ञान को बुलाता है। ऐसी भाषा है, केवलज्ञान को बुलाता है, अरे..! प्रभु! अब आओ। मैं अल्प ज्ञान में कब तक रहूं? मेरी चीज़ प्रभु महाप्रभु और पर्याय में पामरता, मैं कब तक रहूँ? आहाहा! प्रभुता पूर्णता महाप्रभु हूँ। वह तो शक्ति–वस्तु के स्वभाव से महाप्रभु हूँ। परन्तु पर्याय में, प्रभु! आहाहा!

हुं पामर शुं करी शकुं ऐवो नथी विवेक,
चरण शरण धीरज नथी मरण सुधीनी छेक॥

यह श्रीमद् में आता है। मरण पर्यन्त मुझ में पूर्ण स्थिरता आवे, ऐसी मुझमें अभी पामरता है। आहाहा! यहाँ तो साधारण कुछ करे तो ऐसा हो जाए कि बहुत किया। आहाहा! बहुत अनन्त बाकी है, भाई! चार ज्ञान उत्पन्न हो तो भी अनन्तवें भाग में अभी हुआ, अभी तो अनन्तगुना करना बाकी है। आहा..! यदि ऐसी दृष्टि हो तो उसे पर्याय में दीनता रहे, अभिमान न आये। आहाहा! मैं जानता हूँ, मैंने बहुत शास्त्र पढ़े हैं, ऐसा पर्याय में अभिमान न आये। आहाहा!

आपके एक समय के ज्ञान में... हे जिनेन्द्रदेव! **आपके एक समय के ज्ञान में**

समस्त लोकालोक तथा अपनी भी अनन्त पर्यायें... क्या कहा? देखो! क्योंकि प्रत्येक द्रव्य में प्रगटरूप अनन्त पर्यायें होती हैं। अल्पज्ञ प्राणी को भी अल्प अनन्त पर्याय रहती है। पर्याय की संख्या तो अनन्त है, परन्तु उसकी सामर्थ्यता अपूर्ण है। आहाहा! समकिती को भी अनन्त पर्याय, जितने गुण है उतनी पर्याय प्रगट है। आहाहा! एक पर्याय नहीं, अकेला सामान्य नहीं। सामान्य (अर्थात्) त्रिकाल जो कृतकृत्य प्रभु तो त्रिकाल ध्रुव (है)। परन्तु उसका स्वीकार करनेवाली वर्तमान एक समय में अनन्त पर्यायें हैं। अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. आहाहा! समय एक, परन्तु पर्याय अनन्त... अनन्त... अनन्त है। जितने गुण हैं, उतनी पर्यायें हैं। परन्तु उस पर्याय में पामरता है।

ज्ञान में समस्त लोकालोक तथा अपनी भी अनन्त पर्यायें... अनन्त पर्याय ली न? प्रगट अनन्त पर्याय है। केवलज्ञानी को भी अनन्त प्रगट पर्यायें हैं। आहाहा! अरे..! निगोद का जीव लो। एक शरीर में अनन्त जीव, फिर भी उसकी प्रगट पर्याय अनन्त है। बराबर है? आहाहा! क्योंकि गुण अनन्त हैं, तो पर्याय भी बाहर अनन्त प्रगट है। अनन्त पर्याय बिना का कोई द्रव्य कभी होता ही नहीं। आहाहा! निगोद में अक्षर के अनन्तवें भाग में विकास है। फिर भी पर्याय की संख्या अनन्त है। आहाहा! क्योंकि गुण अनन्त हैं। भले हीन है, कमजोर है, परन्तु पर्याय की संख्या अनन्त हैं। आहाहा! क्योंकि प्रत्येक द्रव्य में सामान्य गुण जो अनन्त हैं, तो उसकी विशेष पर्याय बिना वह सामान्य रहता नहीं। आहाहा! निगोद में अनन्त पर्याय, अनन्त।

यहाँ तो कहते हैं, हे नाथ! **कहाँ आपका अनन्त-अनन्त द्रव्य-पर्यायों को जाननेवाला अगाध ज्ञान और कहाँ मेरा अल्प ज्ञान!** आहाहा! विशेष में प्रभु! बहुत अन्तर है। सामान्य में आप (और मैं) समान हैं। सामान्य अर्थात् द्रव्यस्वभाव, गुणस्वभाव-शक्तिस्वभाव, सत् का त्रिकाली सनातन सत्त्व, यह समान है। यह प्रत्येक प्राणी-प्रत्येक आत्मा का समान है। निगोद से लेकर सिद्ध, सबका समान है। आहाहा! पर्याय में बहुत अन्तर है। आहा..! है पर्याय भले अनन्तव की संख्या, परन्तु उस पर्याय में प्रभु! आपके आगे मैं अल्प हूँ। ऐसा गणधरदेव कहते हैं। **अगाध ज्ञान और कहाँ मेरा अल्प ज्ञान!**

आप अनुपम आनन्दरूप भी... अनुपम आनन्दरूप भी **सम्पूर्णतया परिणमित हो गये हैं।** आहाहा! क्या कहते हैं अब? आनन्द के साथ मिलान करते हैं। आह..! आप

अनुपम–उपमा न दे सके ऐसा कोई अतीन्द्रिय आनन्द.. आहाहा! द्रव्य का स्वभाव जो अतीन्द्रिय आनन्द, उस आनन्दरूप भी सम्पूर्णतया परिणमित हो गये हैं। आनन्द भी आपको सम्पूर्ण परिणमित हो गया है। अनन्त पर्याय में आनन्द भी एक पर्याय है। भगवान में अनन्त पर्याय प्रगट हुई, उसमें आनन्द भी एक पर्याय है। आनन्द एक पर्याय सम्पूर्ण प्रगट हुई है। आहाहा! **सम्पूर्णतया परिणमित हो गये हैं। कहाँ आपका पूर्ण आनन्द...** आहाहा! प्रभु! आपका कहाँ पूर्ण आनन्द **और कहाँ मेरा अल्प आनन्द!** आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्द तो है। प्रगट अनन्त पर्याय है। उसमें आनन्द भी प्रगट पर्याय है। आहाहा! कहाँ मेरा अल्प आनन्द और कहाँ आपका पूर्ण आनन्द। आहाहा! इतनी नरमाई, निर्मानता। अभिमान न आने की यह चीज़ है। मेरी पर्याय में और प्रभु! आपकी पर्याय में अनन्त गुना अन्तर है। अनन्त गुनी पर्याय आपमें हुई हैं। आनन्द भी आपका पूर्ण आनन्द हुआ। प्रत्येक पर्याय पूर्ण हो गयी है। उसमें एक आनन्द नाम की पर्याय भी आपकी पूर्ण हो गयी है। आहाहा! समझ में आया?

प्रभु को तो अनन्त गुण की अनन्ती पर्यायें प्रगट पूर्ण हो गयी है। निगोद में एक जीव को अनन्त गुण की अनन्ती पर्यायें प्रगट हैं। परन्तु अक्षर के अनन्तवें भाग में। आहाहा! बहुत अल्प। और कहाँ परमात्मा! उनकी पर्याय। पर्याय बिना का द्रव्य तो कभी होता नहीं। आहाहा! विशेष बिना अकेला सामान्य तो कभी होता नहीं। विशेष पर्याय निगोद में भी अनन्त है और केवलज्ञान की अनन्त है। संख्या में अनन्त, परन्तु सामर्थ्य में अनन्तगुना अन्तर। आहाहा! कहाँ प्रभु मेरा आनन्द और कहाँ प्रभु आपका आनन्द! आहाहा!

कहाँ आपका पूर्ण आनन्द और कहाँ मेरा अल्प आनन्द! इसी प्रकार अनन्त गुणों की पूर्ण.... जैसे आनन्द की एक पर्याय भी मेरी अल्प और आपकी अनन्त, वैसे सब पर्याय आपकी अनन्त (प्रगट हो गयी है।) है? **इसी प्रकार अनन्त गुणों की पूर्ण पर्यायरूप से आप सम्पूर्णतया परिणमित हो गये हो।** पर्याय में परिणमित हो गये हैं। आहाहा! यह परमात्मा! एक द्रव्य, हों! एक द्रव्य आत्मा। ऐसे–ऐसे अनन्त परमात्मा। आहाहा! **आपकी क्या महिमा करें?** पूर्ण पर्यायरूप से आप सम्पूर्णतया परिणमित हो गये हो। आहाहा! **आपकी क्या महिमा करें? आपको तो जैसा द्रव्य, वैसी ही एक...** आपको तो जैसा द्रव्य–वस्तु (है), **वैसी ही एक समय की पर्याय परिणमित हो गयी है;...**

आहा..! पूर्ण। ऐसा कहते हैं। जैसा द्रव्य है, वैसी ही एक समय की पर्याय में परिपूर्ण परिणमित हो गयी है। भले एक समय हो। आहाहा! द्रव्य है, वह तो अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. गुणों का पिण्ड (है)। परन्तु जैसा द्रव्य है, जितने अनन्त गुण हैं, उतनी प्रगट पर्याय परिणमित हो गयी है। अनन्ती पर्यायें भगवान को परिणमित हो गयी हैं। आहाहा! यह अरिहन्त का रूप। णमों अरिहन्ताणं बोले, परन्तु उनको गुण कितने, पर्याय कितनी, पर्याय का सामर्थ्य कितना, वह खबर नहीं होती। आहाहा!

मेरी पर्याय तो अनन्तवें भाग है। आहाहा! अनन्तवें भाग है। आहाहा! आपको जो आनन्द की पूर्ण पर्याय हो गयी, उससे तो मेरी आनन्द की पर्याय अल्प है, परन्तु सब पर्याय, आनन्द के साथ जितनी पर्याय अनन्त गुण की है, सब आपकी पूर्ण है और मेरी अल्प है। मेरी भी सब गुण की पर्याय तो है, (परन्तु) अल्प है। क्योंकि द्रव्य है, वह कभी पर्याय बिना नहीं रहता। तो मेरे में पर्याय है, परन्तु प्रभु! आपके समक्ष तो अनन्तवें भाग है। आहाहा! संख्या से अनन्त, सामर्थ्य से अल्प। आहाहा! प्रभु का पर्याय सामर्थ्य अनन्त, संख्या भी अनन्त। पर्याय अनन्त और उनकी एक-एक पर्याय का सामर्थ्य भी अनन्त। आहाहा! यह अरिहन्त, यह जिनेन्द्र देव! आहाहा!

इस प्रकार प्रत्येक साधक,... प्रत्येक साधक। चौथे गुणस्थान से लेकर प्रत्येक साधक। **द्रव्य-अपेक्षा से अपने को भगवान मानता होने पर भी,...** आहाहा! वस्तु-अपेक्षा से अपने को भगवान मानता होने पर भी। आहाहा! साधकजीव-मोक्ष का साधकजीव-मोक्षमार्ग का साधकजीव-अपने को... आहाहा! भगवान मानता होने पर भी। द्रव्य से तो मैं भगवान परिपूर्ण हूँ। **पर्याय-अपेक्षा से—ज्ञान, आनन्द, चारित्र, वीर्य इत्यादि...** इत्यादि अनन्त-अनन्त पर्याय प्रभु! आहाहा! आपके द्रव्य-गुण की बात तो क्या करनी! क्योंकि द्रव्य-गुण तो मेरा भी ऐसा है। आहाहा! परन्तु पर्याय प्रगट हुई, उसका क्या करना? आपकी पर्याय प्रभु! अनन्तगुनी प्रगट हो गयी है। आहाहा! **सर्व पर्यायों की अपेक्षा से—अपनी पामरता जानता है।** कौन? साधक। प्रत्येक साधक। चौथे, पाँचवें, छठे (गुणस्थानवर्ती)। बाद में तो ध्यान में होता है। आहाहा!

आत्मज्ञान हुआ, आत्मा को भगवान माना, परन्तु पर्याय में तो पामरता मानी।

आहाहा! प्रत्येक साधक इस प्रकार अपने को द्रव्य से भगवान, पर्याय से पामर (मानता है)। आहाहा! यह श्लोक स्वामी कार्तिकेय में है। मूल श्लोक। साधकजीव अपने को परिपूर्ण प्रभु मानते हैं, द्रव्य-अपेक्षा से। आहाहा! वस्तु-अपेक्षा से तत्त्व का जो सत् है, चैतन्य सत् है, सत् है, वह सत् है तो परिपूर्ण है। आहाहा! भले अनन्त गुण हैं, परन्तु अनन्त गुण सत् परिपूर्ण है। द्रव्य-अपेक्षा से प्रत्येक जीव में। पर्याय में पामरता में अन्तर है। आहाहा! अरे..! उसने कब उसका विचार किया है कि मैं क्या हूँ? मेरी सत्ता अनन्त। भगवान की सत्ता है, वैसी मेरी है। परमात्मा की द्रव्य की जैसी सत्ता है, ऐसी सत्ता मेरी है। ऐसा ही सत्त्व मेरा है। पर्याय में मेरी पामरता है, यह मैं जानता हूँ। आहाहा!

सर्व पर्यायों की अपेक्षा से—अपनी पामरता जानता है। देखो! **आनन्द, चारित्र, वीर्य इत्यादि सर्व पर्यायों की...** अनन्त पर्याय के आगे... आहाहा! उसकी अपेक्षा से **अपनी पामरता जानता है।** आहाहा! द्रव्य और पर्याय, बस दो। दूसरी कोई चीज़ तो मेरे में है नहीं। आहा..! दो सिवा तीसरी चीज़ तो यहाँ है ही नहीं। दो में एक प्रभु है और एक पामर है। आहाहा! अनन्त-अनन्त गुण, जिसकी संख्या का पार नहीं, उतनी पर्याय प्रगट है। जितने गुण हैं, उतनी पर्याय प्रगट है। अनन्त पर्यायें प्रगट हैं। सामान्य त्रिकाल जो अनन्त गुणरूप है, उसकी अनन्त पर्यायें सब जीव को प्रगट है। अज्ञानी को भी अनन्त पर्यायें प्रगट है। आहाहा! परन्तु विपरीत। मान्यता विपरीत। मैं पर का कर्ता हूँ, पर से मुझे लाभ होता है, पर को मैं लाभ दे सकता हूँ। आहाहा! पर को लाभ नहीं दे सकता? आहा..! तो शास्त्र क्यों कहने? कौन कहता है? प्रभु! उस समय भाषा की पर्याय होने की है तो होती है। आत्मा से होती नहीं। आहाहा! जिस समय जो भाषा की वर्गणा, जिस प्रकार परिणमित होनेवाली है, उस समय उसरूप परिणमती है। आहाहा! आत्मा उस जड़ की पर्याय का कर्ता नहीं। हाँ, वह अनन्त-अनन्त पर्याय का जाननेवाला है। जानने में कमी कुछ नहीं। कर्ता में एक राग का भी कर्ता नहीं। राग के कण का भी कर्ता नहीं। आहाहा! ऐसी बात। आहाहा! **अपनी पामरता जानता है।** आहाहा! ३५२ (पूरा हुआ)। ३५३। है न ३५३?

सर्वोत्कृष्ट महिमा का भण्डार चैतन्यदेव अनादि-अनन्त परमपारिणामिक -भाव में स्थित है। मुनिराज ने (नियमसार के टीकाकार श्री पद्मप्रभमलधारिदेव ने) इस परमपारिणामिक भाव की धुन लगायी है। यह पंचम भाव पवित्र है, महिमावन्त है। उसका आश्रय करने से शुद्धि के प्रारम्भ से लेकर पूर्णता प्रगट होती है।

जो मलिन हो, अथवा जो अंशतः निर्मल हो, अथवा जो अधूरा हो, अथवा जो शुद्ध एवं पूर्ण होने पर भी सापेक्ष हो, अध्रुव हो और त्रैकालिक-परिपूर्ण-सामर्थ्यवान न हो, उसके आश्रय से शुद्धता प्रगट नहीं होती; इसलिये औदयिकभाव, क्षायोपशमिकभाव, औपशमिकभाव और क्षायिकभाव अवलम्बन के योग्य नहीं हैं।

जो पूरा निर्मल है, परिपूर्ण है, परम निरपेक्ष है, ध्रुव है और त्रैकालिक-परिपूर्ण-सामर्थ्यमय है—ऐसे अभेद एक परमपारिणामिकभाव का ही—पारमार्थिक असली वस्तु का ही—आश्रय करने योग्य है, उसी की शरण लेने योग्य है। उसी से सम्यग्दर्शन से लेकर मोक्ष तक की सर्व दशाएँ प्राप्त होती हैं।

आत्मा में सहजभाव से विद्यमान ज्ञान, दर्शन, चारित्र, आनन्द इत्यादि अनन्त गुण भी यद्यपि पारिणामिकभावरूप ही हैं, तथापि वे चेतनद्रव्य के एक-एक अंशरूप होने के कारण उनका भेदरूप से अवलम्बन लेने पर साधक को निर्मलता परिणमित नहीं होती।

इसलिए परमपारिणामिकभावरूप अनन्तगुण-स्वरूप अभेद एक चेतनद्रव्य का ही-अखण्ड परमात्मद्रव्य का ही-आश्रय करना, वहीं दृष्टि देना, उसी की शरण लेना, उसी का ध्यान करना, कि जिससे अनन्त निर्मल पर्यायें स्वयं खिल उठें।

इसलिए द्रव्यदृष्टि करके अखण्ड एक ज्ञायकरूप वस्तु को लक्ष्य में लेकर उसका अवलम्बन करो। वही, वस्तु के अखण्ड एक परमपारिणामिक - भाव का आश्रय है। आत्मा अनन्त गुणमय है परन्तु द्रव्यदृष्टि गुणों के भेदों का

ग्रहण नहीं करती, वह तो एक अखण्ड त्रैकालिक वस्तु को अभेदरूप से ग्रहण करती है।

यह पंचम भाव पावन है, पूजनीय है। उसके आश्रय से सम्यग्दर्शन प्रगट होता है, सच्चा मुनिपना आता है, शान्ति और सुख परिणमित होता है, वीतरागता होती है, पंचम गति की प्राप्ति होती है॥३५३॥

३५३। **सर्वोत्कृष्ट महिमा का भण्डार...** आहाहा! सर्वोत्कृष्ट-सर्व से उत्कृष्ट महिमा का भण्डार। आहा..! **चैतन्यदेव...** आहाहा! जगत के चाहे जितने भण्डार हो, हीरा-माणेक से लाखों योजन भरे हो, लाखों योजन में हीरा-माणेक (भरे हो), अरे..! असंख्य योजन में माणिक (हो)। स्वयंभूरमणसमुद्र। स्वयंभूरमणसमुद्र में असंख्य योजन में हीरा और माणेक भरे हैं। नीचे रेत नहीं है। आहाहा! उसके आगे यहाँ **सर्वोत्कृष्ट महिमा का भण्डार...** मैं हूँ। स्वयंभूरमण समुद्र में असंख्य योजन में अकेले पत्थर के रत्न भरे हैं। पत्थर के रत्न। यह (आत्मा) चैतन्य रत्न। आहाहा!

उसके गुण की संख्या और उसकी पर्याय की संख्या विस्मयकारी है, आश्चर्यकारी है। कभी लक्ष्य में लिया नहीं। जितनी महिमा है, उतनी महिमा कभी की नहीं। उतनी महिमा करे तो सर्वोत्कृष्ट सम्यग्दर्शन हुए बिना रहे नहीं। आहाहा! समझ में आया? सर्वोत्कृष्ट महिमा का भण्डार। आहाहा! पूरी दुनिया का भण्डार हो, पैसा, लक्ष्मी, इज्जत-कीर्ति... स्वयंभूरमण समुद्र असंख्य योजन में है। आहाहा! असंख्य योजन में। ढाई द्वीप में जितने द्वीप-समुद्र हैं, दूसरे समुद्र से यह समुद्र तीन योजन अधिक है। एक ही। क्या कहा वह? जितने दरिया-समुद्र असंख्य हैं, उसकी संख्या के योजन से एक स्वयंभूरमण समुद्र की, सर्व असंख्य द्वीप-समुद्र के योजन से, तीन योजन अधिक है। सबसे तो समान, परन्तु तीन योजन अधिक है। आहाहा! वह अकेले रत्न से भरा है। वहाँ मनुष्य नहीं है, नहीं तो वहाँ लेने जाए। पशु है, पशु। मच्छ, मगरमच्छ। अरे..! उसमें समकिती असंख्य है। आहाहा! स्वयंभूरमण समुद्र में। देखते हैं, परन्तु पत्थर देखते हैं। मेरे आत्मा की चीज़ के समक्ष पूरी दुनिया पत्थर है, पत्थर। मैं एक आत्मा और पूरी दुनिया मेरे ज्ञान में एक समय का ज्ञेय। आहाहा! मैं एक निश्चयस्वरूप, पूरा लोकालोक मेरी अपेक्षा से सब व्यवहार है।

आहाहा! स्वआश्रय एक निश्चय, पराश्रय से जितने विकल्प उठे, वहाँ से लेकर पूरा लोकालोक, पंच परमेष्ठी वह भी व्यवहार है। एक ओर एक मैं आत्मा निश्चय एक और उसके सिवा अनन्त आत्मा और अनन्त रजकण, अनन्त परमेश्वर, सिद्ध... आहाहा! उससे भी सर्वोत्कृष्ट भण्डार मैं हूँ। आहाहा! है तो सबमें इतनी (सर्वोत्कृष्टता)।

सर्वोत्कृष्ट महिमा का भण्डार चैतन्यदेव... चैतन्यदेव। आहाहा! पामर प्राणी को कहते हैं कि तू चैतन्यदेव (है)। आहाहा! चैतन्य भगवान, चैतन्यदेव तू है,प्रभु! आहाहा! तुझे एक बीड़ी पीने में सन्तोष हो जाता है। तो अनन्त-अनन्त गुण का भण्डार चैतन्यदेव, तेरी दिव्य शक्ति का पार नहीं, नाथ! और तू उसकी महिमा में आ जाए, एक बीड़ी पीये उसमें। तलब लगी है। बहुत अच्छा। तू देव का देव चैतन्यदेव। आहाहा!

अनादि-अनन्त... चैतन्यदेव अनादि-अनन्त। है... है, उसकी आदि कहाँ? है, उसका अन्त कहाँ? और है, वह अनन्त स्वभाव से खाली कहाँ? वह लेते हैं, देखो! **अनादि-अनन्त परमपारिणामिकभाव में स्थित है।** वह भाव लिया। पहले काल लिया। चैतन्यदेव अनादि-अनन्त—वह काल। और मेरा भाव-**परमपारिणामिक -भाव में स्थित है।** आहाहा! अकेला पारिणामिक नहीं। अकेला पारिणामिक तो पर्याय को भी कहते हैं। यह तो परमपारिणामिकभाव। आहाहा! चैतन्यदेव अनादि-अनन्त अपने पारिणामिकभाव में स्थित है। आहाहा! अपना परमपारिणामिस्वभाव। पारिणामिक अर्थात् सहज स्वभाव। परम सहज स्वभाव अनन्त-अनन्त शक्ति का भण्डार, ऐसा परमस्वभाव सहज परिणाम, उसमें मैं स्थित हूँ। आहाहा! है?

मैं स्थित हूँ, ऐसा निर्णय पर्याय करती है। निर्णय पर्याय करती है। परन्तु पर्याय कहती है कि मैं यह हूँ। अनादि-अनन्त परमपारिणामिकभाव में मैं स्थित हूँ। आहाहा! यह शब्द सुने भी नहीं हो। पैसे के आगे कहाँ सुने? आहाहा! **सर्वोत्कृष्ट महिमा का भण्डार चैतन्यदेव अनादि-अनन्त...** चैतन्यदेव सर्वोत्कृष्ट महिमा का भण्डार **परमपारिणामिक - भाव में स्थित है।** परमस्वभाव त्रिकाली में स्थित है। वह पर्याय में भी आता नहीं। क्या कहा, समझ में आया? त्रिकाल परमपारिणामिकस्वभाव। आहाहा! जो अनादि-अनन्त महा भण्डार, वह अपनी पर्याय में भी आता नहीं। वह तो पंचम पारिणामिकस्वभाव, सहज

त्रिकाली ज्ञायकस्वभाव, उसमें स्थित है। तू मान तो भी ऐसा है, न मान तो भी ऐसा स्थित है। आहाहा! आहाहा!

परमपारिणामिकभाव में स्थित है। भाव लिया है। काल तो अनादि-अनन्त। क्षेत्र तो अपने में है, भाव यह है। आहाहा! द्रव्य तो वस्तु है, क्षेत्र अपने में असंख्य प्रदेश है, काल अनादि-अनन्त, भाव परमपारिणामिकभाव। आहाहा! इसमें मैं स्थित हूँ। अनादि-अनन्त परमपारिणामिकभाव में स्थित हूँ। आहाहा! अभी तो भविष्य आया नहीं है न? भूतकाल तो चला गया न? चला गया और नहीं आया हो, मैं तो अनादि-अनन्त (हूँ)। आदि और अन्त बिना अपना पंचम पारिणामिकस्वभाव, जो सर्वोत्कृष्ट गुण का भण्डार है, उसमें स्थित हूँ। आहाहा! कितनों ने तो यह भाषा सुनी न हो सम्प्रदाय में। आहा..! और विरोध करे।

मैं अस्ति वस्तु। मैं अस्ति-वस्तु। अनादि-अनन्त काल। अपने क्षेत्र में, पंचम पारिणामिकभाव में स्थित। आहाहा! गजब बात! ऐसा पर्याय निर्णय करती है। पंचम भाव में कहाँ (निर्णय करना है?)। आहाहा! मैं मेरे क्षेत्र में अनादि-अनन्त काल में... आहाहा! परम ज्ञायक पंचमभाव, ज्ञायकभाव उसमें मैं स्थित हूँ। द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव चार आ गये। आहाहा! ऐसी चीज़ के समक्ष कौन-सी चीज़ की महिमा करे? आहाहा! ऐसा प्रभु... आहाहा! **परमपारिणामिकभाव में स्थित है।** कौन? **सर्वोत्कृष्ट महिमा का भण्डार चैतन्यदेव...** आहाहा! वह मैं। आहाहा!

मुनिराज ने (नियमसार के टीकाकार श्री पद्मप्रभमलधारिदेव ने) इस परम-पारिणामिकभाव की धुन लगायी है। नियमसार दोपहर को पढ़ते हैं न। आहाहा! क्या उसमें परमपारिणामिकभाव को गाया है! आहाहा! वहाँ तक लेंगे, अभी आज आयेगा। परमपारिणामिकभाव आधार और द्रव्य आधेय। ऐई..! क्या कहा? उसमें आयेगा। द्रव्य अर्थात् वस्तु-गुण, गुण। वहाँ द्रव्य कहा। त्रिकाली वस्तु है न। त्रिकाली गुणों का आधेय और उसका आधार पंचम पारिणामिकभाव। आहाहा! त्रिकाली परमभाव के आधार से वह गुण है। आहाहा! कोई पर्याय के आधार से या राग के आधार से, निमित्त के आधार से वह गुण है नहीं। आहाहा! ऐसा महिमावन्त आत्मा सुना नहीं है। आहाहा! अरे..! जीव को स्वयं की जाति को छोड़कर दूसरे की महिमा का पार नहीं। आहाहा! एक कपड़ा अच्छा

आये तो.. आहाहा! जरीवाली अच्छी.. ओहोहो! पूरणपोली और लड्डू, पत्तरवेलिया के पकोड़े धीमें तले हुए आये (तो) प्रसन्न-प्रसन्न हो जाए। अरे..! प्रभु! क्या है? प्रभु! वह तो मिट्टी है न। वह तो जड़ है न। आहाहा! तेरे गुणभण्डार के आगे वह तो जड़ है, प्रभु! आहा..! उसकी तो कोई कीमत नहीं है। आहाहा! तेरे एक-एक गुण की पर्याय की कीमत का पार नहीं। तो तेरे द्रव्य-गुण की कीमत की तो क्या बात करनी! आहाहा!

ऐसास जो भगवान.. आहाहा! उसे पद्मप्रभमलधारिदेव ने **इस परमपारिणामिक भाव की धुन लगायी है।** जहाँ-तहाँ कारणपरमात्मा, कारणपरमात्मा, कारणपरमात्मा। आहाहा! कारणजीव, लो - ऐसा शब्द लिया है। पद्मप्रभमलधारिदेव। आहाहा! कारणजीव। यह क्या? कारणजीव और कार्यजीव? कहीं शब्द सुने न हो। त्रिकाली भगवान परमात्मा अनादि-अनन्त गुण का भण्डार, परिपूर्ण गुण का भण्डार वह कारणजीव, वह कारणजीव, वह कारण आत्मा, वह कारणपरमात्मा, कारणभगवन्त। उसमें से पर्याय पूर्ण प्रगट हो सर्वज्ञ परमात्मा की, वह कार्यपरमात्मा, वह कार्यजीव। वह कारणजीव, यह कार्यजीव। आहाहा!

जीव में कारण और कार्य। दूसरी चीज़ कारण और आत्मा कार्य, वह तो दूर रह गया। अथवा आत्मा कारण और दूसरी वस्तु कार्य, आत्मा करे और बनाये। आहाहा! वह तो कुछ है ही नहीं। एक चीज़ दूसरी चीज़ को छूती नहीं तो करे किसको? आहाहा! यहाँ तो कहते हैं, तेरा भगवान कारणजीव.. आहाहा! जिसे कारण पारिणामिक कहा, कारण पारिणामिकस्वभाव। कारण परमपारिणामिकस्वभाव। आहाहा! उसकी धुन लगायी है, नियमसार में। जगह-जगह गाथा में कारणपरमात्मा, कारणपरमात्मा... उसे बताने को कारणअजीव, कारणपरमाणु ऐसा पाठ लिया है। कारणपरमाणु और कार्यपरमाणु। प्रत्येक स्कन्ध कारण, इसलिए कारणपरमाणु। और स्कन्ध में से भिन्न पड़ जाए, वह कार्यपरमाणु। आहाहा! यह कारणपरमात्मा त्रिकाल और उसकी पर्याय पूर्ण हो जाए, वह कार्यपरमात्मा, वह कार्यजीव। आहाहा! अरेरे..! जीव की व्याख्या सुनी न हो।

ऐसा आत्मा तीन लोक के नाथ परमात्मा वीतरागदेव कहते हैं। प्रभु! मैं हूँ उतना ही तू है। आहाहा! मात्र वस्तु अलग है। बाकी मैं हूँ, उतना ही तू है और तू है, उतना ही मैं हूँ। आहाहा! आहाहा! मुझमें और तेरे में अन्तर नहीं है, प्रभु! पर्याय में तूने अन्तर किया

है, अब छोड़ दे। मुझसे तूने पर्याय में अन्तर किया, प्रभु! वह अन्तर छोड़ दे। वह फर्क छोड़ने की ताकत तुझमें है। आहाहा! और मेरे में जो अनन्त पर्यायें हुई, ऐसी तेरे में अनन्त होगी, ऐसा सामर्थ्य तेरे में है। आहाहा! ऐसा आत्मा। कहा न?

यह पंचम भाव पवित्र है,... आहाहा! उदयभाव रागादि है, वह तो अपवित्र है। दूसरे चार भाव पवित्र है, परन्तु एक समय की स्थिति। भले क्षायिकभाव हो, परन्तु एक समय की स्थिति है। आहाहा! यह परमपारिणामिक भाव त्रिकाली भगवान आदि और अन्त बिना की चीज... आहाहा! पवित्र है। महापवित्र है। **महिमावन्त है।** आहाहा! अन्दर पूर्ण चीज है, वह पवित्र है और महा महिमावन्त है। आहाहा! **उसका आश्रय करने से...** उसका आश्रय करने से, उस ओर जाने से, उसका अवलम्बन लेने से **शुद्धि के प्रारम्भ से लेकर...** शुद्धि की शुरुआत वहाँ से होती है। आहाहा! परिपूर्ण पंचम पारिणामिकभाव, परम पारिणामिकभाव के आश्रय से शुद्धि उत्पन्न होती है। समकित की उत्पत्ति वहाँ से होती है। आहाहा! समकित की उत्पत्ति का वह बहुत कहता था न? कान्ति ईश्वर, मुम्बईवाला। पत्र निकालता है न। उसमें बहुत लिखता था, शुभभाव से ऐसा होता है, ऐसा होता है, ऐसा होता है। लेकिन इस बार सुना, **पस्सदि जिणसासणं** एक घण्टा उसकी व्याख्या सुनी। उसके बाद वह स्वयं बोला बेचारा, महाराज! हमें भाव दिगम्बर आपने बनाया। हम द्रव्य दिगम्बर-सम्प्रदाय के दिगम्बर थे। उसने विरोध किया था, निन्दा करता था मासिक पत्र में। लोग बैठे थे और बोला था। मुझे-हमें भावदिगम्बर बनाया। हमारा द्रव्यदिगम्बररूप में जन्म था। परन्तु दिगम्बर क्या चीज़ है? दिगम्बर कोई पक्ष या सम्प्रदाय नहीं है। कोई पन्थ नहीं है। आहाहा! यह तो वस्तु का स्वरूप है। यह क्या कहते हैं? यह तो वस्तु का स्वरूप है।

पंचम पारिणामिकभाव, और उसकी परिणति, वह जैनशासन। आहाहा! यह जैनशासन पर्याय है। जैनशासन गुण-द्रव्य नहीं। आहाहा! क्या कहा समझे? धर्म कहो या जैनशासन, वह पर्याय है। वह पंचम पारिणामिकभाव नहीं। पंचम पारिणामिकभाव के आश्रय से प्रगट हुई पर्याय, वह जैनशासन है। आहाहा! उसे कोई शुभभाव या फलाने संहनन की जरूरत है, ऐसा नहीं है। ऐसा भगवान पूर्ण शक्ति और सत्तावान, पूर्ण सत्तावान.. आहाहा! पूर्ण सत्तावाला। प्रत्येक गुण में पूर्ण सत्तावाला। आहाहा! उसकी जो पूर्ण पर्याय

हो, उसको परमात्मा-कार्यपरमात्मा कहते हैं। आहाहा! इस दशा को कारणपरमात्मा (कहते हैं)। पूर्ण परमात्मा शक्तिवन्त महाभगवान भण्डार कारणपरमात्मा है। उसके अवलम्बन से, उसके आश्रय से केवलज्ञान आदि होता है, वह कार्यपरमात्मा है। आहाहा! ऐसी पद्मप्रभमलधारिदेव ने धुन लगायी है।

मुमुक्षु :- रहस्य तो आपने खोला।

पूज्य गुरुदेवश्री :- आहाहा! **पंचम भाव पवित्र है, महिमावन्त है। उसका आश्रय करने से शुद्धि के प्रारम्भ से...** शुद्धि-सम्यग्दर्शन की शुद्धि के प्रारम्भ से, त्रिकाली के आश्रय से शुरुआत होती है। आहाहा! बाकी कोई क्रियाकाण्ड से शुरुआत होती नहीं। आहाहा! ऐसा कठिन लगता है। **उसका आश्रय करने से शुद्धि के प्रारम्भ से...** शुद्धि की प्रारम्भता। शुभ-अशुभ शुद्धि नहीं है। शुभभाव और अशुभभाव, वह शुद्धि नहीं है। आहाहा! **शुद्धि के प्रारम्भ से लेकर पूर्णता प्रगट होती है।** केवलज्ञान उसके अवलम्बन से उत्पन्न होता है। सम्यग्दर्शन उसके अवलम्बन से, सम्यग्ज्ञान उसके अवलम्बन से, सम्यक्चारित्र उसके अवलम्बन से, शुक्लध्यान उसके अवलम्बन से, केवलज्ञान उसके अवलम्बन से (प्रगट होता है)। आहाहा! जो कोई पूर्ण दशा, प्रारम्भ से लेकर पूर्णता प्रगट होती है। आहाहा! उसके सिवा कोई आश्रय करने लायक नहीं है।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

विक्रम संवत-२०३५, श्रावण कृष्ण - ९, सोमवार, तारीख २-९-१९८०
वचनामृत - ३५३, ३५५ प्रवचन-२३

३५३। थोड़ा चला है, पहला पैरेग्राफ। फिर से। हिन्दी है न। **सर्वोत्कृष्ट महिमा का भण्डार चैतन्यदेव अनादि-अनन्त...** अनादि-अनन्त जिसकी सत्ता है और **परमपारिणामिकभाव में स्थित है।** परमपारिणामिक अर्थात् स्वभावभाव। त्रिकाली स्वभावभाव में वह स्थित है। **मुनिराज ने (नियमसार के टीकाकार श्री पद्मप्रभमलधारिदेव ने) इस परमपारिणामिकभाव की धुन लगायी है।** नियमसार में तो धुन लगायी है। पारिणामिकभाव, पारिणामिकभाव। चार भाव... ५०वीं गाथा में आया न? चार भाव भी हेय हैं। एक त्रिकाली ज्ञायकभाव। आहाहा! शुद्ध पूर्ण ध्रुव स्वभाव, एकरूप चैतन्यसत्ता, यह एक ही आदरणीय है। उसकी धुन लगायी है। क्योंकि नियमसार कुन्दकुन्दाचार्य ने स्वयं के लिये बनाया है। इसलिये उनके अर्थकार ने भी वही धुन लगा दी। अन्दर में भगवान आत्मा अनन्त दर्शन, ज्ञान, आनन्द आदि स्वभाव से भरा भगवान, वह परमपारिणामिकभाव।

यह पंचम भाव पवित्र है,... पवित्र है, **महिमावन्त है।** आहाहा! **उसका आश्रय करने से...** पंचम भाव त्रिकाली ज्ञायकभाव ध्रुव स्वभाव एकरूप रहने का भाव, उसका आश्रय करने से **शुद्धि के प्रारम्भ से...** शुद्धि की शुरुआत वहाँ से होती है। पंचम भाव के आश्रय से शुद्धि की शुरुआत वहाँ से होती है। **शुद्धि के प्रारम्भ से लेकर पूर्णता प्रगट होती है।** उसके आश्रय से ही पूर्णता प्रगट होती है। शास्त्र में यह सब व्यवहार के कथन आये, वह जानने जैसा है। परन्तु आदरणीय तो यह एक ही तत्त्व है। जानने के लिये अनेक बात आये। आहा..! नारकी के परिणाम, निगोद के परिणाम भी जानने के लिये तो आये, फिर भी आदरणीय यह एक ही भाव, परम पवित्र पंचम भाव, ध्रुव भाव अन्तर में आदरणीय है। यहाँ तक आया था।

जो मलिन हो, अथवा जो अंशतः निर्मल हो,... अंशतः निर्मल हो। सम्यग्दर्शन, ज्ञान अंशतः निर्मल है। **अथवा जो अधूरा हो,...** उपशम, क्षयोपशम और क्षायिकभाव

आदि हो। अधूरा का मतलब वह। आहाहा! **अथवा जो शुद्ध एवं पूर्ण होने पर भी...** आहाहा! क्षायिकभाव। **शुद्ध एवं पूर्ण होने पर भी सापेक्ष हो,...** क्षायिक में भी सापेक्ष भाव है न? कर्म का अभाव की (अपेक्षा है)। **अध्रुव हो...** एक समय की स्थितिवाला हो। आहाहा! कठिन पड़े ऐसा है। वस्तु स्थिति। एक समय की पर्याय चाहे तो क्षायिक हो, परन्तु वह अस्थिर है, अध्रुव है। वह पूर्ण स्वरूप नहीं। आहाहा!

त्रैकालिक-परिपूर्ण-सामर्थ्यवान न हो,... जो त्रिकाली परिपूर्ण सामर्थ्यवान न हो **उसके आश्रय से शुद्धता प्रगट नहीं होती;...** आहाहा! ऐसी बात कठिन पड़े ऐसी है। त्रिकाली शुद्धभाव परम सत्ता की अस्ति, अस्ति। जिसकी त्रैकालिक अस्ति है। ऐसा जो सनातन शुद्ध ध्रुव भाव, वह एक ही आश्रय करने लायक है। उसके आश्रय से शुद्धता प्रगट होती है। अधूरा हो, **त्रैकालिक-परिपूर्ण-सामर्थ्यवान न हो, उसके आश्रय से शुद्धता प्रगट नहीं होती;...** आहाहा! इसलिये... जो दोपहर को था, वह आया।

इसलिए औदयिकभाव,... दया, दान, व्रत, भक्ति, काम, क्रोधादि उदयभाव, **क्षायोपशमिकभाव,...** कुछ उघाड़ हो और कुछ कम उघाड़ हो। **औपशमिकभाव...** पानी में मैल बैठ जाए, पानी ऊपर रहे। ऐसे मैल बैठ गया हो और शान्ति-उपशमभाव प्रगट हुआ, फिर भी वह पर्याय है। आहाहा! **और क्षायिकभाव...** पूर्ण क्षायिकभाव। यह तो कल आया था, वही आया। कुदरती आया। **क्षायिकभाव अवलम्बन के योग्य नहीं हैं।** क्षायिकभाव भी आश्रय करने लायक नहीं है। आहाहा! क्षायिकभाव किसे कहना, वह खबर नहीं हो, उपशमभाव किसे कहना, यह खबर नहीं हो।

यहाँ कहते हैं, प्रभु! एक त्रिकाली ध्रुव द्रव्यस्वभाव के सिवा, जितनी पर्याय के प्रकार उत्पन्न हो—उदय, उपशम, क्षयोपशम, क्षायिक आदि पर्याय के प्रकार हैं, उस पर्याय के प्रकार के भेद का आश्रय करने लायक नहीं है। आहाहा! ऐसी बात है। लोग फिर एकान्त कहते। एकान्त ही है। आहाहा! जिसमें परिपूर्णता है, जो त्रिकाली है, जिसमें पर की अपेक्षा नहीं है... आहाहा! ऐसा जो त्रिकाली सनातन ध्रुव स्वभाव, उसका आश्रय करने से शुद्धि, धर्म की वृद्धि; उत्पत्ति, वृद्धि और पूर्णता उसके आश्रय से होती है। आहाहा! पूर्ण स्वरूप त्रिकाली ज्ञायकभाव के अवलम्बन से मोक्षमार्ग की उत्पत्ति, उसका टिकना, उसकी वृद्धि, उसकी परिपूर्णता... आहाहा! यह सब आत्मा एक स्वरूप त्रिकाल

के आश्रय से प्रगट होती है। यह बात लोगों को कठिन पड़े। इसलिए लोग फिर कहे कि एकान्त है। भाई! मार्ग तो यही है, दूसरा कोई मार्ग नहीं है। अनन्त-अनन्त तीर्थंकरों, अनन्त केवलज्ञानी यह कहकर गये हैं। आहाहा! तेरे ध्यान में न आये और लक्ष्य में न बैठे, इसलिए वस्तु बदल जाएगी ? वस्तु तो जो है, वह है। आहाहा!

जो पूरा निर्मल है, परिपूर्ण है,... आहाहा! **परम निरपेक्ष है,...** क्षायिकभाव, क्षयोपशमभाव भी अपेक्षित हैं। उसमें कर्म के अभाव की अपेक्षा आती है। आहा..! और यह त्रिकाली स्वभाव **निर्मल है, परिपूर्ण है, परम निरपेक्ष है,...** कोई अपेक्षा है ही नहीं। कोई कर्म का उपशम हो, क्षय हो तो यह परमपारिणामिकभाव प्रगट हो, ऐसी कोई अपेक्षा नहीं है। आहाहा! त्रिकाली को अपेक्षा नहीं है। आहाहा! त्रिकाली की अपेक्षा है नहीं। **ध्रुव है और त्रैकालिक-परिपूर्ण-सामर्थ्यमय है...** त्रिकाली परिपूर्ण सामर्थ्यमय है। आहाहा! **ऐसे अभेद...** अभेद, जिसमें कोई भेद नहीं। उसमें गुण अनन्त हैं, वह भी पारिणामिकभाव स्वरूप है। फिर भी एक गुण है, वह एक अंश है। इसलिए वह भी आश्रय करने लायक नहीं है। त्रिकाली अभेद अनन्त गुण का एक स्वरूप, अनन्त गुण का एकरूप। आहाहा! **अभेद एक परमपारिणामिकभाव का ही—पारमार्थिक असली वस्तु का ही—आश्रय करने योग्य है,...** आहाहा! यह तो दोपहर को आया था, वह आया। कल दोपहर का।

उसी की शरण लेने योग्य है। अन्तर्मुख जो स्वभाव त्रिकाली पड़ा है, उसका शरण लेने योग्य है। आहाहा! **उसी से सम्यग्दर्शन से...** उसी से सम्यग्दर्शन से **लेकर मोक्ष तक की सर्व दशाएँ प्राप्त होती हैं।** आहाहा! ध्रुव स्वभाव पंचम पारिणामिकभाव सामान्य अनादि-अनन्त एकरूप वसतु, उसके आश्रय से, उसकी शरण लेने से। आहा..! वही शरण है, उत्तम है। आहाहा! शरण कहा है न ? चत्तारि शरणं। अरिहंता शरणं, सिद्धा शरणं, साहू (शरणं)। वह व्यवहार की बात है। परमार्थ से यह पारिणामिकभाव का शरण लेने योग्य है। है ? आहाहा! **उसी की शरण लेने योग्य है।** आहाहा! चत्तारि शरणं आता है, वह शुभभाव आता है, शुभभाव है। परद्रव्य की ओर लक्ष्य जाए तो वह शुभभाव है। अरे..! अपने में द्रव्य, गुण, पर्याय एकरूप में तीन प्रकार का विचार विकल्प उठे, वह भी शुभराग है। एकरूप चैतन्यद्रव्य में द्रव्य जो है, उसमें गुण अनन्त है, उसकी अनन्ती पर्याय, ऐसे तीन भेद के विचार से भी राग की उत्पत्ति होती है। आहाहा! ऐसी बात है। भाई नहीं आये

हैं ? दामोदरभाई नहीं आये हैं ? भावनगर गये हैं। आहा.. ! **उसी से सम्यग्दर्शन से लेकर मोक्ष तक की सर्व दशाएँ प्राप्त होती हैं।**

आत्मा में सहजभाव से विद्यमान... अब क्या कहते हैं ? कि आत्मा की बात-एकरूप की बात तो की। परन्तु उस आत्मा में जो सहज स्वभाव से गुण आदि है, वह अंश है। उसका भी आश्रय करने लायक नहीं है। आहाहा! **आत्मा में सहजभाव से...** ऐसी भाषा क्यों ली ? क्षायिकभाव आदि में तो अपेक्षा है, इसमें तो कोई अपेक्षा ही नहीं है। सहज स्वभाव है। उपशम, क्षयोपशम, क्षायिक में तो निमित्त के अभाव की भी अपेक्षा है। आहाहा! अन्दर जो गुण हैं, उस गुण में कोई अपेक्षा नहीं है। फिर भी... आहाहा! आत्मा में स्वाभाविक भाव **सहजभाव से विद्यमान...** है, अस्ति रखते हैं। **ज्ञान, दर्शन, चारित्र, आनन्द इत्यादि अनन्त गुण भी यद्यपि...** आहाहा! **यद्यपि पारिणामिकभावरूप ही हैं...** अनन्त गुण भी पारिणामिक परमभाव ही है। आहाहा! **तथापि वे चेतनद्रव्य के एक-एक अंशरूप होने के कारण...** सहज भाव, निरपेक्ष भाव, किसी की अपेक्षा नहीं है, ऐसा वह भाव है परन्तु वह एक-एक अंश है। आहाहा! **वे चेतनद्रव्य के एक-एक अंशरूप होने के कारण उनका भेदरूप से अवलम्बन लेने पर...** एक-एक अंश का भेदरूप। ज्ञान, दर्शन, आनन्द एक-एक का आश्रय लेने से **साधक को निर्मलता परिणमित नहीं होती।** आहाहा!

चार भाव तो अपेक्षित हैं, तो निकाल दिया। उदयभाव में निमित्त की अपेक्षा है, उपशम, क्षयोपशम, क्षायिक में निमित्त के अभाव की (अपेक्षा है)। यहाँ तो कहते हैं कि गुण में तो उसकी भी अपेक्षा नहीं है। स्वभाविक अन्दर अनन्त गुण हैं। आहाहा! फिर भी वह अंश है। वह अंश भी आश्रय करने लायक नहीं है। आहाहा! समझ में आया ? आहाहा! **चेतनद्रव्य के एक-एक अंशरूप होने के कारण...** वह गुण है, त्रिकाली है, सहज स्वभाव है, पर की कोई अपेक्षा भी नहीं; परन्तु वह अंशरूप है। इसलिए **उनका भेदरूप से अवलम्बन लेने पर...** गुण का-भेद का अवलम्बन लेने पर **साधक को...** धर्मी को **निर्मलता परिणमित नहीं होती।** आहाहा! ऐसी बात है।

आत्मा की अस्ति में जो चीज़ नहीं है, देव-गुरु-शास्त्र तो पर रहे, अपनी अस्ति में नहीं है, उसका आश्रय तो एक ओर रहा। अपनी अस्ति में चार भाव हैं, परन्तु एक समय

की पर्याय जितने हैं, इसलिए वह भी शरण नहीं है। अब गुण रहे। आहाहा! एक वस्तु में अनन्त-अनन्त गुण, एक-एक अंश जैसे अनन्त-अनन्त गुण। परन्तु वह चैतन्यद्रव्य का एक अंश है। आहाहा! गजब बात! अपने आत्मा के सिवा देव-गुर-शास्त्र और परपदार्थ, वह तो अपनी अस्ति में है नहीं। उसके आश्रय, अवलम्बन की बात है ही नहीं। आहाहा! अपनी पर्याय में अस्ति रखनेवाले चार भाव (हैं), परन्तु वह पर्याय है। एक-एक समय की मर्यादावाली पर्याय है। परचीज़ तो अपने में है ही नहीं, उसकी तो बात यहाँ है ही नहीं। आहाहा! अपने में जो चार भाव है, वह भी एक समय की पर्याय की मर्यादा जितने हैं। इसलिए वह भी आश्रय करने लायक नहीं है।

अब, त्रिकाली जो गुण त्रिकाली है। आहाहा! ज्ञान, दर्शन, आनन्द त्रिकाली गुण आत्मा में है। त्रिकाली गुण ध्रुव है, पर की कोई अपेक्षा है नहीं, परन्तु चैतन्यद्रव्य का अंश है। आहाहा! समझ में आता है? चेतन भगवान अभेद का वह अंश है; इसलिए धर्मी को उसके आश्रय से **निर्मलता परिणमित नहीं होती।** आहाहा! धन्नालालजी! कहाँ ले गये बात! ध्रुव तक ले गये। अपनी पर्याय में जो है नहीं, उसकी बात तो एक ओर रखो। अपनी पर्याय में जो चार भाव है, वह भी शरणभूत नहीं है, आश्रय करने लायक नहीं है। आहाहा! और तीसरी (बात), वह तो अंशरूप था, इसलिए वह आश्रय करने लायक नहीं है। पर अपने में नहीं है, इसलिए आश्रय करने लायक नहीं है। परन्तु यह तो अपने में है। और है एवं ध्रुव है। ज्ञान, दर्शन, आनन्द आदि ध्रुव है। आहाहा! त्रिकाली रहनेवाली वस्तु है। तो उसका आश्रय करने से क्या है? वह भी चैतन्य द्रव्य अभेद का एक अंश है। गुण भी उसका एक अंश है। इसलिए वह अंश भी आश्रय करने लायक नहीं है। आहाहा! ऐसी बातें सुननी कठिन पड़े। एकान्त लगे। आहाहा!

एक रहा प्रभु। अभेद पंचम पारिणामिक ज्ञायकभाव। उसका आश्रय और शरण लेने लायक है, बस! पर का नहीं, पर्याय का नहीं, गुणभेद का नहीं। आहाहा! एक त्रिकाली ज्ञायकभाव, जो ध्रुव भाव, एकरूप भाव, शुद्ध भाव, अभेद भाव, उसके आश्रय से साधक को धर्म की उत्पत्ति होती है। आहाहा! ऐसी बड़ी गजब बात! बाहर में प्रवृत्ति तो परद्रव्य की है। यह मन्दिर, प्रतिमा, पूजा, भक्ति, यह, वह.. वह सब तो परद्रव्य है। आहाहा! अष्ट द्रव्य पूजा के, वह सब तो परद्रव्य है। पैसा परद्रव्य है। आहाहा! सम्मेदशिखर,

गिरनार और शत्रुंजय परद्रव्य है। उसकी तो यहाँ बात भी नहीं की कि उसके आश्रय से कुछ धर्मलाभ होगा। आहाहा! वह बात तो अपनी पर्याय में भी नहीं है। यह तो अपनी पर्याय में जो है, चार भावस्वरूप, क्षायिकभावस्वरूप,... आहाहा! वह भी आश्रय करने लायक नहीं है। जानने लायक है। जानने लायक तो सब चीज़ है। आश्रय और आदर करने लायक नहीं है। आहाहा! वह तो ठीक, परन्तु गुणभेद। अब यहाँ ले आये। आत्मा एकरूप प्रभु, उसमें ज्ञान, दर्शन, ज्ञान उसका अंश है, उसका भेद है। आहाहा! उसके आश्रय से साधक की निर्मलता उत्पन्न नहीं होती। आहाहा! गजब बात है! पुरानी शैली की रूढ़िवाले को कठिन लगे। धन्नालालजी! आहाहा! कहाँ ले गये! आहाहा! परन्तु प्रभु! ख्याल में आये ऐसी बात है। जो अपने में नहीं है, उसका शरण क्या? और अपने में जो रागादि है, वह तो विकार है, उसका शरण क्या? और अपनी पर्याय निर्मल है, एक समय की स्थिति है, उसका शरण क्या? और अपने चेतनद्रव्य में भेदरूप अंशरूप ध्रुव है। यह पर्याय तो एक समय की स्थिति है। और दूसरी चीज़ तो अपनी पर्याय में है नहीं। यह तो अपने गुण में है। परन्तु एक चेतनद्रव्य का भेदरूप अंश है। आहाहा!

भगवान तीर्थंकरदेव का यह कथन है। आहाहा! **उनका भेदरूप से अवलम्बन लेने पर साधक को निर्मलता परिणमित नहीं होती।** आहाहा! चेतनद्रव्य ज्ञायकभाव एकरूप, उसमें जो अनन्त गुण का भेद, उस भेद का आश्रय करने से धर्मी को निर्मलता प्रगट नहीं होती। भेद के आश्रय से विकल्प उत्पन्न होता है। आहाहा! अनन्त गुण के अंश तो आश्रय करने लायक नहीं है, भेदरूप है इसलिए, परन्तु अनन्त गुण का एकरूप जो चैतन्य अभेद, वही आश्रय, शरण और शुद्धि की उत्पत्ति का कारण है। आहाहा! ऐसी बात। फिर कहे न... यह तो भगवान का कहा हुआ है। बहिन तो स्वयं अनुभव से कहते हैं। आहाहा! बहिन के शब्द हैं, परन्तु वह तो वीतराग की वाणी के हैं। आहाहा! वीतराग भी ऐसा कहते हैं, वही यह कहते हैं।

सम्यग्दृष्टि का कथन और केवली के कथन में वस्तु में अन्तर नहीं होता। आहाहा! स्थिरता में अन्तर होता है। सम्यग्दृष्टि को अन्दर स्थिरता कम होती है, भगवान पूर्ण वीतराग हो गये। चारित्रवन्त सन्त को भी स्थिरता अन्दर हुई है। स्थिरता में अन्तर है, तत्त्व की दृष्टि में समकिती से लेकर केवली आदि सबका कथन एक है। आहाहा! कथन में कोई भी

फेरफार सम्यग्दृष्टि से लेकर केवलज्ञानी में कोई भी फेरफार है नहीं। विशेष स्पष्टीकरण भले है, परन्तु विरुद्ध नहीं होता। आहाहा! गजब बात है। बराबर मौके पर यह आया है।

इसलिए... इस कारण से **परमपारिणामिकभावरूप...** परम पारिणामिक अर्थात् सहज स्वभावरूप, त्रिकाली सहज स्वभावरूप, जो उत्पन्न होता नहीं, जो व्यय होता नहीं, जो घटता नहीं, जो परिणमता नहीं। आहाहा! जो पलटता नहीं, जो बदलता नहीं, आहाहा! ऐसा एक **परमपारिणामिकभावरूप अनन्त गुणस्वरूप...** वस्तु अनन्त गुणस्वरूप है। **अभेद...** परन्तु **अनन्त गुणस्वरूप अभेद...** आहाहा! **एक चेतनद्रव्य का ही...** एक चैतन्य का ही... आहाहा! **अखण्ड परमात्मद्रव्य का ही...** यह चेतनद्रव्य की व्याख्या की, लाईन करके। चेतनद्रव्य अर्थात्? **अखण्ड परमात्मद्रव्य का ही-आश्रय करना, वहीं दृष्टि देना,...** वहाँ दृष्टि देना। ऐसे। आहाहा! अभेद चैतन्यप्रभु पंचम पारिणामिक सहज स्वभावभावरूप त्रिकाल, जिसमें पलटना नहीं है, जिसमें बिगाड़ नहीं है, जिसमें पर की कोई अपेक्षा नहीं है, जिसमें न्यूनता नहीं है, जिसमें विपरीतता नहीं है। ऐसा अनन्त गुणों का एकरूप। गुणों के भेद का अंश नहीं। आहाहा! अनन्त गुणों का एकरूप। ऐसा कहा न? **अनन्त गुणस्वरूप अभेद...** अनन्त गुणस्वरूप भेद नहीं। आहाहा! अरेरे! ऐसी बात कभीकभार सुनने मिले। पूरा दिन यह करो, यह करो, उसमें जीवन चला जाता है।

अन्तर भगवान परमानन्द का नाथ परमपारिणामिकस्वभाव एकरूप चीज़, उसका आश्रय करना। **अखण्ड परमात्मद्रव्य का ही...** चेतनद्रव्य का ही अर्थात् अभेद एक चेतनद्रव्य का ही अर्थात् **अखण्ड परमात्मद्रव्य का ही-आश्रय करना,...** आहाहा! अन्यमति पढ़े तो भी... गोपनाथ के मठ का साधु। पढ़ा... आहाहा! कितनी प्रशंसा करूँ इसकी! प्रशंसा करते-करते दो लोग प्रशंसा में ही ...एक प्रोफेसर ब्राह्मण है। यहाँ आया था, उसको यह पुस्तक दी थी। (साधु के) पास कहीं से आ गया हो। कहीं से भी। यह पुस्तक तो बहुत छप गयी हैं। तीन हजार तो वहाँ गये हैं। अफ्रीका। तीन हजार तो अफ्रीका में गयी हैं। चारों ओर (गये हैं)। आहाहा! उसके हाथ में था, और (प्रोफेसर) वहाँ गया। उसका गुरु के साथ सम्बन्ध होगा। वहाँ वह स्वयं यह पढ़ता था। और पढ़ते-पढ़ते परस्पर प्रशंसा करते थे। क्या चीज़ है यह! परन्तु यह अन्दर की वस्तु है। सम्यग्दृष्टि कहो या केवलज्ञानी कहो, कथन में और न्याय में कहीं अन्तर नहीं है। स्थिरता में चाहे कोई भी

अन्तर हो। वह तो खबर है न। आहाहा! वस्तु के स्वरूप की स्थिति, जैसा समकिती वर्णन करे, वैसा ही केवली वर्णन करे और केवली वर्णन करे और वैसा ही समकिती वर्णन करे। भले ज्यादा स्पष्टीकरण का विशेष केवली करे, मुनि करे, परन्तु मूल माल तो एकसमान आता है। आहाहा!

यहाँ कहा, **वहीं दृष्टि देना,...** उसका **आश्रय करना, वहीं दृष्टि देना,...** दृष्टि वहाँ देना-पंचम भाव पर। **उसी की शरण लेना,...** उसी की शरण लेना। आहाहा! पहले यह आ गया था।

मुमुक्षु :- तीसरे पैरेग्राफ में।

पूज्य गुरुदेवश्री :- तीसरे पेरेग्राफ में हाँ। **उसी की शरण लेने योग्य है।** उसी की शरण लेने योग्य है। वह ऊपर आया था। वही यहाँ आया। आहाहा! **उसी की शरण लेना, उसी का ध्यान करना,...** आहाहा! उसी का ध्यान, शरण, दृष्टि देने से **अनन्त निर्मल पर्यायें स्वयं खिल उठें।** आहाहा! अनन्त गुण का पिण्ड प्रभु, उसकी दृष्टि देने से, शरण लेने से, आहाहा! जिससे शरण लेने से, ध्रुव पर दृष्टि देने से **अनन्त निर्मल पर्यायें...** जितने गुण हैं संख्या से, उतनी ही निर्मल पर्यायें प्रगट होती है। आहाहा! समझ में आया? **जिससे अनन्त निर्मल पर्यायें...** अर्थात् जितने गुण हैं संख्या से, वह सब गुण की पर्याय अंशतः, अनन्ती निर्मल पर्याय अखण्ड द्रव्य के आश्रय से, उसमें जितने गुण हैं, उसका एक अंश बाह्य प्रगट होता है। आहाहा! तीनों आ गये—द्रव्य, गुण, पर्याय।

द्रव्य-वस्तु, उसमें अनन्त गुणरूप वस्तु। उसका आश्रय करने से अनन्ती पर्यायें प्रगट होती हैं। आहाहा! ऐसा कठिन लगे। एक तो सुनने का, पढ़ने का समय नहीं मिला हो। सुनने में ऐसा सुना न हो। उसमें से इसका मिलान करना, उसमें से अन्दर की दृष्टि (करना), उसके सिवा कहीं भी शरण नहीं है। अन्तर अखण्ड अभेद वस्तु के आश्रय के सिवाय कहीं भी आत्मा को शरण मिले, ऐसा नहीं है। आहाहा! ओहोहो!

इसलिए द्रव्यदृष्टि करके... इस कारण से कि उसके आश्रय से अनन्त निर्मल शान्ति की-धर्म की पर्याय प्रगट होती है। **इसलिए द्रव्यदृष्टि करके...** द्रव्य वस्तु पर दृष्टि करके। आहाहा! **अखण्ड एक ज्ञायकरूप वस्तु को लक्ष्य में लेकर...** इसलिए द्रव्यदृष्टि

करके अखण्ड एक ज्ञायकरूप वस्तु को लक्ष्य में लेकर **उसका अवलम्बन करो।** आहाहा! यह सब बातें आती है, यह करना, वह करना, यह करना... वह सब विकल्प हो तो आता है। वस्तु शरण यह है। उसका ध्येय कभी एक समय न छूटे। अखण्ड वस्तु, जिसमें गुणभेद भी नहीं, गुण भी अंश है। एक चीज़ का अंशी का वह अंश है। तो अंश का भी आश्रय नहीं। अंशी का-त्रिकाली का आश्रय है। उससे ही सर्वसिद्धि होती है। सम्यग्दर्शन से लेकर केवलज्ञान की प्राप्ति उससे होती है। आहाहा! **उसका अवलम्बन करो। वही, वस्तु के अखण्ड एक परमपारिणामिकभाव का आश्रय है। वही, वस्तु के अखण्ड एक परमपारिणामिकभाव का आश्रय है।** सहज त्रिकाली भाव, त्रिकाली एकरूप त्रिकाली सहज स्वभाव, उसी का आश्रय।

आत्मा अनन्त गुणमय है... आत्मा अनन्त गुणमय है। आहाहा! **परन्तु द्रव्यदृष्टि गुणों के भेदों का ग्रहण नहीं करती,...** आहाहा! सम्यग्दृष्टि-द्रव्यदृष्टि, द्रव्य की दृष्टि अर्थात् सम्यग्दर्शन। दृष्टि-द्रव्यदृष्टि अखण्ड जो पूर्ण द्रव्य है... आहाहा! जो पर की सत्ता बिना का, पर्याय की सत्ता बिना का और गुणभेद की सत्ता होने पर भी अभेदरूप से... आहाहा! **द्रव्यदृष्टि गुणों के भेदों का ग्रहण नहीं करती,...** गुण भी ध्रुव है। द्रव्य ध्रुव है, ऐसे गुण ध्रुव है, परन्तु द्रव्य का वह अंश है। आहाहा! इसलिए दृष्टि **गुणों के भेदों का ग्रहण नहीं करती, वह तो एक अखण्ड त्रैकालिक वस्तु को अभेदरूप से ग्रहण करती है।** दृष्टि। आहाहा! ऐसा समझना। उसमें तो यह करना, वह करना, सीधा समझ में आये। कर्तृत्व का अभिमान होकर उसे सूझे। अरे..! कर्ता किसका? प्रभु! पर का कर्ता तो नहीं है, परन्तु अपने में अनन्त गुण के भेद का आश्रय नहीं (लेना है)। आहाहा! भेद का आश्रय करने से विकल्प उत्पन्न होता है। राग उत्पन्न होता है। आहाहा! **गुणों के भेदों का ग्रहण नहीं करती,...** दृष्टि। **वह तो एक अखण्ड त्रैकालिक वस्तु को अभेदरूप से ग्रहण करती है।** आहाहा!

यह पंचम भाव पावन है,... त्रिकाली भाव, ध्रुव भाव, पंचम भाव, ज्ञायकभाव पावन है। आहाहा! त्रिकाली रहनेवाला, नित्य एकरूप रहनेवाला पंचम भाव अर्थात् पर्याय के चार भाव से भी भिन्न नित्य रहनेवाला। आहाहा! **पावन है, पूजनीय है।** वह भाव पूजनीय है। पूजनीक पर्याय है। पर्याय पूजनिक है, परन्तु पूजनीक द्रव्य को पूजती है।

आहाहा! पूजनीयता आती है पर्याय में। परन्तु वह पूजनीक पर्याय द्रव्य को पूजती है। द्रव्य को पूजनीक मानती है। आहाहा! ऐसी बात। कल भी ऐसा आया था, आज भी ऐसा आ गया। ऐसी बात। **उसके आश्रय से सम्यग्दर्शन प्रगट होता है,...** ऐसा त्रिकाली चैतन्य अखण्ड अभेद, उसके आश्रय से सम्यग्दर्शन प्रगट होता है।

सच्चा मुनिपना आता है,... सच्चा मुनिपना आता है। कच्चा मुनिपना बाहर का तो अनन्त बार लिया। कपड़े (छोड़कर) नग्नपना, पंच महाव्रत की क्रिया (की), परन्तु एक अखण्ड तत्त्व का आश्रय न लिया। आहाहा! अभेद का आश्रय लेने से सच्चा मुनिपना होता है। सच्चा साधुपना उसके आश्रय से होता है। पंच महाव्रत आदि पर्याय के आश्रय से सच्चा मुनिपना नहीं होता। आहाहा! लोगों को कठिन लगे न। पंच महाव्रत जिसे महापुरुषों ने पाले, जिस महाव्रत... आता है न? महाव्रत, जिसे महा बड़े कहें। आहा..! प्रभु! वह तो विकल्प है, आता है, आये। आहाहा! परन्तु उसका शरण नहीं। आहाहा!

यहाँ तो सच्चा मुनिपना आता है, त्रिकाली अखण्ड के आश्रय से; क्रियाकाण्ड से नहीं। आहाहा! गुणभेद से भी नहीं। आहाहा! अखण्ड जो चैतन्यद्रव्य, अनन्त गुणरूपी अभेद, अनन्त गुणरूप अभेद एक वस्तु **उसके आश्रय से..** ही आहाहा! **सम्यग्दर्शन प्रगट होता है, सच्चा मुनिपना आता है,...** सच्चा मुनिपना कब आता है? आहाहा!

मुमुक्षु :- मुनिपने की बात बतायी है।

पूज्य गुरुदेवश्री :- मुनिपना यह है। त्रिकाल अखण्ड अभेद का आश्रय हो तो मुनिपना आता है। क्योंकि अभेद के आश्रय से सम्यग्दर्शन होता है, फिर विशेष आश्रय करने से मुनिपना होता है। आहाहा! कठिन बात लगे। पंच महाव्रत, नग्नपना, कपड़ा छोड़े, स्त्री-पुत्र छोड़े। वह तो बाहर ही है। यहाँ तो अपने अस्तित्व में-हयाती में जो चीज़ नहीं है, उसका त्याग-ग्रहण भी आत्मा में है ही नहीं। क्या कहा?

अपनी चीज़ में स्त्री, कुटुम्ब, परिवार, लक्ष्मी, इज्जत, कीर्ति, मकान, कपड़े अपनी पर्याय के अस्तित्व में है ही नहीं। उसकी बात तो यहाँ है नहीं। परन्तु उसकी पर्याय में जो चार भाव होते हैं, वह भी एक समय की मर्यादावाला है, इसलिए उसके आश्रय से भी सम्यग्दर्शन और मुनिपना आता नहीं। आहाहा! और द्रव्य जो चेतन है, वह अनन्त गुणरूप

है। वह अनन्त गुण का अंश है। उस अंश के आश्रय से भी शुद्धपना प्रगट नहीं होता। अंश के आश्रय से सम्यग्दर्शन और मुनिपना भी नहीं आता। आहाहा! लोगों को बात कठिन पड़े। एकान्त (लगे)। एकान्त नहीं है, प्रभु! मार्ग ही यह है। अनन्त तीर्थंकरों, अनन्त केवली यह कहते आये हैं। अनन्त केवलियों का यह मार्ग है। उसमें कम, अधिक, विपरीत करने जाएगा तो घर जाएगा। उसका स्वयं का घर जाएगा। फिर परघर में राग और विकार में जाएगा। आहाहा!

सच्चा मुनिपना आता है, शान्ति और सुख परिणमित होता है,... क्या कहा? अखण्ड द्रव्य जो वस्तु, जिसमें गुणभेद भी नहीं, ऐसी अभेद चीज़ एकरूप चीज़, प्रभु! उसके आश्रय से शांति आती है। आहाहा! उसके आश्रय से सुख परिणमित होता है। उसके आश्रय से अतीन्द्रिय आनन्द का पर्याय में परिणमन होता है। आहाहा! वचनामृत का बोल आ गया है। कल भी भगवान की वाणी पर था। वही यह आया। आहाहा! **वीतरागता होती है,...** अखण्ड चैतन्यद्रव्य गुणभेद बिना, पर्याय का तो लक्ष्य नहीं, राग का तो लक्ष्य नहीं, गुणभेद का लक्ष्य नहीं; अभेद दृष्टि से शान्ति आती है, सुख परिणमित होता है, आनन्दरूप परिणमन होता है। अतीन्द्रिय आनन्द की दशा होती है और वीतरागता होती है। आहाहा! त्रिकाल भगवान पूर्णानन्द का नाथ प्रभु, उसके आश्रय से वीतरागता होती है। **पंचम गति की प्राप्ति होती है।** उसके आश्रय से सिद्धपद प्राप्त होता है। पंचम गति। आहाहा! बात तो बहुत ऊँची आयी है। रात्रि में बात करते होंगे। वस्तु तो यह है। आहा..! ३५३ पूरा हुआ न? अब, ३५५ है। किसी ने लिखे हैं।

तरने का उपाय बाहरी चमत्कारों में नहीं रहा है। बाह्य चमत्कार साधक का लक्षण भी नहीं है। चैतन्य चमत्कारस्वरूप स्वसंवेदन ही साधक का लक्षण है। जो अन्तर की गहराई में राग के एक कण को भी लाभरूप मानता है, उसे आत्मा के दर्शन नहीं होते। निस्पृह ऐसा हो जा कि मुझे अपना अस्तित्व ही चाहिए, अन्य कुछ नहीं चाहिए। एक आत्मा की ही लगन लगे और अन्तर में से उत्थान हो तो परिणति पलटे बिना न रहे॥३५५॥

३५५। ३५३ के बाद ३५५। **तरने का उपाय...** ३५५। **तरने का उपाय बाहरी चमत्कारों में नहीं रहा है।** आहाहा! बाहर के चमत्कार। इसको यह चमत्कार हुआ और उसको वह चमत्कार हुआ। उस चमत्कार में कुछ नहीं है। आहाहा! इसको यह चमत्कार हुआ। फलाने का आशीर्वाद मिला तो पुत्र हुआ, फलाने का आशीर्वाद मिला तो पैसा हो गया। उसके पास रहे तो मकान, कीर्ति बढ़ गई। उसमें क्या है? प्रभु! किसी से कुछ होता नहीं। उसके पूर्व के पुण्य हो तो उसके कारण से (मिलता है)। वह पुण्य भी निमित्त है। पुण्य निमित्त किसी चीज़ को खींचती नहीं। वह चीज़ आनेवाली है, वह आती है, उसके कारण से-उपादान के कारण से। आहाहा! पुत्र, पुत्री हो और वंश रहे, कुछ चमत्कार दिखे, प्रकाश दिखे, ऐसा दिखे, बाहर का भभका का दिखे, उस भपका से कोई चमत्कारिक... आहाहा! है? **तरने का उपाय बाहरी चमत्कारों में नहीं रहा है।**

बाह्य चमत्कार साधक का लक्षण भी नहीं है। आहाहा! धर्मी का वह लक्षण भी नहीं है। आहा..! गजब बात है! यहाँ तो चमत्कार हुआ, कोई देव आया। देव आया, उसमें क्या हुआ? यह देव आया या नहीं? आहाहा! **बाह्य चमत्कार साधक का लक्षण भी नहीं है।** आत्मद्रव्य पर जिसकी दृष्टि है, ऐसे साधक को कोई बाह्य चमत्कार पर लक्ष्य ही नहीं होता कि... आहाहा! आज यह चमत्कार हुआ और ऐसा हुआ। विशेष कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

विक्रम संवत-२०३५, श्रावण कृष्ण - १०, गुरुवार, तारीख ४-९-१९८०
वचनामृत - ३५५, ३५६, ३५७ प्रवचन-२४

वचनामृत–३५५। अन्त में। **निस्पृह ऐसा हो जा कि...** अन्तर स्वरूप प्राप्त करने के लिये निस्पृह ऐसा हो जाना **कि मुझे अपना अस्तित्व ही चाहिए,...** मेरा अस्तित्व जो आत्मा पूर्ण आनन्द आदि अस्तित्वस्वरूप, वह एक ही मुझे चाहिए, दूसरी कोई चीज़ नहीं चाहिए। आहाहा! ऐसी लगनी लगे। **एक आत्मा की ही लगन लगे...** अपना निज स्वरूप शुद्ध चैतन्यस्वभाव उसकी त्रिकाली अस्ति, वही मुझे चाहिए। आहाहा! ऐसी भावना में **और अन्तर में से उत्थान हो...** अन्तर में आत्मा की लगन हो और अन्तर में पुरुषार्थ हो। लगन और पुरुषार्थ में उत्थान हो **तो परिणति पलटे बिना न रहे।** तो परिणति–पर्याय पर–ओर के लक्ष्य से जो पलटती है, वह स्व–ओर पलटे बिना रहे नहीं। आहाहा! शब्द तो थोड़े हैं, भाव (गहन) है।

निस्पृह तो ऐसा हो जाना चाहिए कि मुझे मेरा अस्तित्व (चाहिए)। मेरी अस्ति जो है त्रिकाली वस्तु, उसके सिवा मुझे कुछ नहीं चाहिए। ऐसी निस्पृह दशा हो और अन्तर में लगन लगे और अन्तर में पुरुषार्थ झुके तो परिणति अर्थात् पर्याय पलटे बिना रहे नहीं। आहाहा! ऐसी चीज़ है। वह कोई बाहर की क्रिया या आचरण से प्राप्त हो, ऐसी यह चीज़ नहीं है। बाह्य आचरण और बाह्य क्रिया लाख, करोड़ करे... आहाहा! लाख बात की बात... आता है छहढाला में? 'निश्चय उर आणो, छोड़ी जगत द्वंद्व फंद, निज आतम ध्यावो।' भगवान अनन्त आनन्द और अनन्त ज्ञानस्वरूप (है), जिसका स्वभाव अनन्त–अनन्त आनन्द, ज्ञानादि अनन्त गुण का पिण्ड है वह। उसकी लगनी लगे तो परिणति पलटे बिना रहे नहीं। परिणति पर सन्मुख जो है, वह परिणति स्वसन्मुख हो जाए। आहाहा! भाषा बहुत थोड़ी है, भाव (गहन है)। वह ३५५ (पूरा हुआ)।

मुनिराज का निवास चैतन्य देश में है। उपयोग तीक्ष्ण होकर गहरे-गहरे चैतन्य की गुफा में चला जाता है। बाहर आने पर मुर्दे जैसी दशा होती है। शरीर के प्रति राग छूट गया है। शान्ति का सागर उमड़ा है। चैतन्य की पर्याय की विविध तरंगे उछल रही हैं। ज्ञान में कुशल हैं, दर्शन में प्रबल हैं, समाधि के वेदक हैं। अन्तर में तृप्त-तृप्त हैं। मुनिराज मानों वीतरागता की मूर्ति हों, इस प्रकार परिणमित हो गये हैं। देह में वीतरागदशा छा गयी है। जिन नहीं परन्तु जिनसरीखे हैं ॥३५६॥

३५६। अब मुनिराज की बात आयी। **मुनिराज का निवास चैतन्य देश में है।** आहाहा! शरीर, वाणी में तो नहीं, परन्तु पुण्य और पाप में, शुभाशुभभाव में भी, मुनिराज का वास-निवास नहीं है। आहाहा! **मुनिराज का निवास चैतन्य देश में है।** जहाँ राग और द्वेष है नहीं और अकेला चैतन्य अनन्त-अनन्त गुण का स्वरूपरूप निज देश। आहाहा! निज देश-चैतन्यदेश में है। **उपयोग तीक्ष्ण होकर...** जानने-देखने का उपयोग सूक्ष्म और तीक्ष्ण होकर **गहरे-गहरे चैतन्य की गुफा में चला जाता है।** आहाहा! गहरी-गहरी गुफा अर्थात् ध्रुव। आहाहा! अपना जो ध्रुव स्वभाव, उस ओर वर्तमान की पर्याय, उसके सन्मुख अन्दर जाती है। आहाहा! फिर भी वह पर्याय और ध्रुव एक नहीं हो जाते। आहाहा! ऐसी बात है।

उपयोग तीक्ष्ण... जानने-देखने की सूक्ष्मता ऐसी होनी चाहिए कि **गहरे-गहरे चैतन्य की गुफा में चला जाता है।** गहराई में ध्रुव की ओर ही मुनिराज की दशा चैतन्य देश की ओर ही ढल गयी है। आहाहा! पुण्य का भाव, दया, दान, व्रत, महाव्रत परिणाम आता है, परन्तु वृत्ति चैतन्यदेश में बहती है। राग की ओर वृत्ति नहीं है, जानने लायक है। रागादि आता है, उसका अस्तित्व है, ऐसा जाने। परन्तु निवास तो अन्दर चैतन्यगुफा में है। आहाहा! यह बात ऐसी सूक्ष्म है।

बाहर आने पर... अन्तर चैतन्यस्वभाव ज्ञायकभाव जागृत स्वभाव, जो अपने में जागृतपना कायम स्वभावी है। जागृतपना है, वही आत्मा है। रागादि, द्वेषादि कोई आत्मा नहीं। आहाहा! जो अपने में पर को जानता है, ऐसा कहना, वह भी व्यवहार है। पर को जानने में अपनी पर्याय को ही जानता है। ऐसी चैतन्यशक्ति की गहरी गुफा... आहाहा!

मुनि उसमें चले जाते हैं। उसमें दृष्टि चली जाती है। बारम्बार मुनिराज की परिणति अन्तर की ओर के झुकाव में ढलती है। आहाहा! **बाहर आने पर मुर्दे जैसी दशा होती है।** एक ओर चैतन्यदेश, एक ओर मुर्दा। आहाहा! भाषा बहुत सादी है। परन्तु... एक ओर चैतन्यदेश प्रभु, उसकी जिसकी अन्तर परिणति पलटी, परिणति अर्थात् जिसकी अवस्था पलटी, उसको चैतन्यदेश स्व और पुण्य-पाप आदि बाहर है। बाहर आता है तो मुर्दे जैसा है। उसमें उत्साह नहीं है। राग और पुण्य-पाप का भाव आता है, कोई बार आर्तध्यान भी हो जाता है, मुनि को रौद्रध्यान नहीं है। रौद्रध्यान पंचम गुणस्थान तक (है)। यहाँ कहते हैं, मुर्दे जैसी दशा हो जाती है। आहाहा!

जैसे मृतक कलेवर हो, वैसे चैतन्यदेश की अपेक्षा से चैतन्यदेश और स्वभाव से विपरीत भाव में पुण्य और पापभाव, पुण्यभाव विशेष है, उसमें भी मुर्दे जैसी दशा है। आहाहा! **शरीर के प्रति राग (एकता) छूट गया है।** शरीर के प्रति राग (अर्थात्) एकता छूट गयी है। थोड़ा अस्थिरता का राग रहा है, फिर भी उस राग का राग नहीं होता। राग का राग नहीं होता। चैतन्य के प्रेम के समक्ष... आहाहा! अनाकुल आनन्दकन्द प्रभु चैतन्य, उसके अन्दर लगनी के प्रेम के कारण राग में आते हैं, परन्तु मुर्दे जैसा दिखे। आहाहा! जागृति स्वभाव की अपेक्षा से अजागृत में आते हैं तो जैसे मुर्दा आया, ऐसे आते हैं। आहाहा! यह मुनि की दशा।

शान्ति का सागर उमड़ा है। मुनिराज किसको कहें! आहाहा! तीन कषाय का जहाँ अभाव (हो गया है), उतनी तो शान्ति का सागर उमड़ा-उछला है। शान्ति का सागर उछला है। आहाहा! शान्ति.. शान्ति... शान्ति। इतनी शान्ति की शान्ति का सागर उछला है। आहाहा! क्योंकि कषय तो संज्वलन जितना अल्प है। संज्वलन-जरा-थोड़ा। बाकी तो शान्ति है। आहाहा! **चैतन्य की पर्याय की विविध तरंगें उछल रही हैं।** चैतन्य की पर्याय ज्ञान की। अरे..! ज्ञान और आनन्द, वीर्य आदि चैतन्य की जो पर्याय है निर्मल, विविध तरंगें उछल रही है। अनेक प्रकार के तरंग के उछाले युक्त परिणति रही है। भाषा थोड़ी सादी है, भाव बहुत गहरे हैं। आहाहा! **तरंगे उछल रही हैं।**

ज्ञान में कुशल हैं,... मैं ज्ञानस्वरूप हूँ, और इसके सिवा दूसरी चीज़ को भी जानते हैं, परन्तु ज्ञान में कुशल हैं। रागादि व्यवहार आता है मुनि को, परन्तु राग में कुशल हैं,

जाननेवाले हैं। आहाहा! **ज्ञान में कुशल हैं, दर्शन में प्रबल हैं,...** दर्शन उपयोग लो तो भी प्रबलता है। समकित-दृष्टि तो द्रव्य पर है। आहाहा! **समाधि के वेदक हैं।** शान्ति। लोगस्स में आता है, श्वेताम्बर में। समाहिवर मुत्तं दिंतु। लोगस्स में। श्वेताम्बर में लोगस्स आता है, उसमें। समाधि अर्थात् आत्मा की ओर की झुकाव की शान्ति। रागादि है, वह असमाधि-अशान्ति है। आहाहा! अपनी **समाधि के वेदक हैं।** समाधि का वेदनेवाला है। साथ में ज्ञान आ गया है। समाधि में ज्ञानादि अनन्त गुण (आ गये)।

रात्रि को प्रश्न हुआ था न? ज्ञान भी साथ में वेदता है। क्योंकि अनन्त गुण में एक अतीन्द्रिय आनन्द का रूप है। अनन्त गुण की संख्या में अतीन्द्रिय एक आनन्द नाम का गुण है। तो सबमें आनन्द है। ज्ञान आनन्द, दर्शन आनन्द, चारित्र आनन्द, शान्ति आनन्द, स्वच्छता आनन्द, कर्तृत्व आनन्द, भोक्तृत्व आनन्द, उन सब गुणों में प्रत्येक में आनन्द (है)। क्योंकि एक-एक गुण में अनन्त गुण का रूप है। आहाहा! रूप का अर्थ, जैसे ज्ञान है और अस्तित्व नाम का गुण भी अन्दर है। तो अस्तित्व गुण भिन्न है और ज्ञानगुण भिन्न है। फिर भी ज्ञान 'है', 'है', ऐसा अस्तित्व का रूप भी ज्ञानगुण में है। अस्तित्वगुण के कारण से नहीं। अपने स्वरूप में 'है'। ऐसे प्रत्येक गुण 'है'। अस्तित्वगुण उसमें होने पर भी अपने प्रत्येक गुण में 'है', ऐसा स्वरूप और रूप भी अपने से है। आहाहा! क्या कहा समझे?

आत्मा में अस्तित्व नाम का गुण है। सत् सत्। और ज्ञानगुण है, आनन्दगुण है। तो प्रत्येक में अस्तित्व का रूप है। अस्तित्वगुण भिन्न (है)। एक गुण दूसरे गुण में जाता नहीं, परन्तु दूसरे गुण में उसका—अस्तित्व का रूप अर्थात् ज्ञान है, आनन्द है, वीर्य है, ऐसा अपने कारण से अस्तित्व का 'है' पना है। अस्तित्वगुण के कारण से उसका अस्तित्व है नहीं। आहाहा! ऐसी सूक्ष्म बात।

कहते हैं, **समाधि के वेदक हैं।** मुनिराज तो आनन्द के वेदक हैं। शान्ति के वेदक हैं। राग आता है, वेदक भी हैं थोड़े, परन्तु उसकी मुख्यता न कहकर, समाधि के ही वेदक हैं। समाधि अर्थात् शान्ति। आधि, व्याधि, उपाधिरहित समाधि। आधि—कल्पना, विकल्प। व्याधि—शरीर। आधि, व्याधि, उपाधि—बाहर का संयोग। उपाधि—बाह्य संयोग। व्याधि-शरीर में रोग। आधि—कल्पना, पुण्य-पाप की कल्पना। आधि, व्याधि, उपाधि से रहित

समाधि। आहाहा! जिसमें उपाधि संयोग चीज़ तो नहीं है, परन्तु जिसमें शरीर की व्याधि-रोगादि नहीं है। परन्तु जिसमें कल्पना पुण्य-पाप की कल्पना जो आधि है, वह भी समाधि में नहीं है। आहाहा! ऐसी समाधि का वेदन है।

अन्तर में तृप्त-तृप्त हैं। अनन्त-अनन्त गुण का पिण्ड प्रभु, उसके आश्रय से अनन्त गुण की एक समय की व्यक्त पर्याय अनन्त गुण की प्रगट हुई, और वह भी तीन कषाय के अभाव से सब प्रगट हुई, उससे तृप्त-तृप्त हैं। आहाहा! जैसे भूखा मनुष्य आहार-पानी अनुकूल मिले तो तृप्त-तृप्त लगता है। वह तो बाहर की जड़ की बात है। यह अन्तर की खुराक। आत्मा की अन्दर खुराक। आहाहा! शान्ति, आनन्द, स्वच्छता, ज्ञान, दर्शन, आनन्द आदि अन्तर की खुराक है। उस खुराग में... आहाहा! वेदक हैं, तृप्त-तृप्त हैं। आहाहा! दुनिया से पूरी अलग बात है।

मुनिराज मानों वीतरागता की मूर्ति हों,... आहाहा! वह तो वीतरागस्वरूप ही आत्मा है। त्रिकाल वीतरागस्वरूप आत्मा है। ऐसी पर्याय में वीतरागता आ गयी। आहाहा! जैसी वीतराग की शक्ति और स्वभाव है, वैसी पर्याय में भी वीतरागता आ गयी। वीतराग की मूर्ति हैं। आहाहा! राग और द्वेष का कण-अंश बिना अकेला वीतरागमूर्ति आत्मा है। आहा..! मुनिराज की। नीचे पंचम गुणस्थान आदि में तो दो कषाय है। एक में अतृप्ति और उतना दु:ख है। चौथे गुणस्थान में भी तीन कषाय का सद्भाव है। उतना वह वेदन और दु:ख है। परन्तु उससे रहित जितना हुआ, उतना ज्ञान और आनन्द का वेदन है। मुनि को तो तीन कषाय रहित हुआ। आहाहा! शान्ति का सागर जो आत्मा, पूर्ण वीतरागता में तो प्रगट हो जाता है, परन्तु मुनिराज को शान्ति का सागर जो आत्मा, पूर्ण वीतरागता में तो प्रगट हो जाता है, परन्तु मुनिराज को शान्ति का सागर उमड़ जाता है। आहाहा! शान्ति में समाधि.. समाधि, आनन्द... आनन्द... आनन्द... आनन्द। तृप्त-तृप्त रहते हैं। आहाहा! **मानों वीतरागता की मूर्ति हों,...** जाने। मानों अर्थात् जाने कि वे तो वीतराग की ही मूर्ति है। भगवान आत्मा वीतरागस्वरूप है, ऐसी पर्याय में वीतरागता आ गयी है।

नियमसार में तो पद्मप्रभमलधारिदेव कहते हैं कि मुनिराज में और वीतराग में अन्तर माने, वह जड़ हैं, ऐसा कहते हैं। पद्मप्रभमलधारिदेव नियमसार में दो श्लोक है। उसमें एक श्लोक तो ऐसा है कि भगवान में और मुनिराज में थोड़ा राग का अन्तर है। एक श्लोक ऐसा

है पहला। बाद में दूसरा श्लोक लिया कि वीतराग में और मुनि में अन्तर माने, हम जड़ हैं। हम जड़ हैं, ऐसी भाषा ली है। आहाहा! साधु। आहाहा! वीतराग में और मुनिराज में कोई अन्तर माने, वह जड़ है। आहाहा! उसे चैतन्य की जागृति अन्दर तीन कषाय के अभाव की हो गयी। जगमगाती ज्योति चैतन्यपर्याय में शक्तिरूप तो थी त्रिकाल में सबमें, परन्तु यह तो पर्याय में जगमगाती ज्योति (प्रगट हुई)। अनन्त-अनन्त गुण की अनन्त व्यक्ति प्रगट दशा जहाँ हुई, आहाहा! वहाँ वह तृप्त-तृप्त मानों वीतराग की मूर्ति है। आहाहा!

इस प्रकार परिणमित हो गये हैं। साक्षात् मानो वीतराग की मूर्ति हो। इस प्रकार परिणमित, पर्याय में परिणमन, अवस्था ही उसरूप हो गयी है। जैसा वीतरागस्वभाव त्रिकाल है, वैसी पर्याय में वीतरागपरिणति हो गयी है। आहा..! उसे मुनि कहते हैं। आहाहा! **देह में वीतरागदशा छा गयी है।** आहाहा! देह में भी... 'उपशमरस वरसे रे प्रभु तारा नयनमां...' वैसे पूरी देह में उपशमरस-शान्तरस (छा गया है)। भक्तामर स्तोत्र तो ऐसा कहते हैं कि जितना शान्त परमाणु हैं, परमाणु; वह सब प्रभु के शरीर में आकर परिणमित हो गये हैं। जितने परमाणु में... उसकी शान्ति अर्थात् जड़ की, हों! आहाहा! वह सब परमाणु परमात्मा तीर्थंकर केवली के शरीर में आकर (बस गये हैं)। शरीर उपशमरस का पिण्ड हो, आत्मा तो उपशमरस का पिण्ड है ही, परन्तु शरीर उपशमरस का पिण्ड है, ऐसा देखते हैं। आहाहा! शरीर में भी थोड़ी भी चपलता या विकृति जरा भी नहीं है। आहाहा! ऐसी दशा वीतराग की है, वैसी मुनि की हो गयी है, ऐसा कहते हैं। **इस प्रकार परिणमित हो गये हैं।** आहाहा!

देह में वीतरागदशा छा गई है। देह में वीतरागदशा छा गयी। दिखे, ऐसा दिखे। देह तो जड़ है। शान्त.. शान्त.. शान्त। वीतरागस्वभाव जहाँ पूर्ण प्रगट हुआ, तो देह में भी मानो शान्ति की छाया दिखे। शान्त.. शान्त.. शान्त। आहाहा! देखो! यह मुनि की व्याख्या! आहाहा! **इस प्रकार परिणमित हो गये हैं। जिन नहीं...** भले वे जिन नहीं हैं, **परन्तु जिनसरीखे हैं।** आया न पहले? मुनिराज ने... वीतराग और मुनि में थोड़ा-सा भी अन्तर नहीं मानना। यह। **जिनसरीखे जिन हैं।** जिनसरीखे जिन हैं। आहाहा! जिनसरीखे जिन हैं। जिन भले नहीं हैं, परन्तु जिनसरीखे जिन ही हैं। आहाहा! अकेला वीतरागभाव। विकल्प की कल्पना की जहाँ शान्ति हो गयी है। अकेला चैतन्यमूर्ति भगवान अपनी पर्याय

में वीतरागतारूप परिणमित हो गया है और अकेली वीतराग की छाया, देह में भी मानो वीतराग की छाया दिखे। ऐसी दशा प्रगट हुई है। आहाहा! ऐसी मुनि की परिभाषा है।

णमो लोए सव्व साहूणं। ऐसे। आहाहा! ३५६ (पूरा) हुआ न?

इस संसार में जीव अकेला जन्मता है, अकेला मरता है, अकेला परिभ्रमण करता है, अकेला मुक्त होता है। उसे किसी का साथ नहीं है। मात्र भ्रान्ति से वह दूसरे की ओट और आश्रय मानता है। इस प्रकार चौदह ब्रह्माण्ड में अकेले भटकते हुए जीव ने इतने मरण किये हैं कि उसके मरण के दुःख में उसकी माता की आँखों से जो आंसू बहे, उनसे समुद्र भर जायें। भवपरिवर्तन करते-करते बड़ी मुश्किल से तुझे यह मनुष्यभव प्राप्त हुआ है, ऐसा उत्तम योग मिला है, उसमें आत्मा का हित कर लेने जैसा है, बिजली की चमक में मोती पिरो लेने जैसा है। यह मनुष्यभव और उत्तम संयोग बिजली की चमक की भाँति अल्प काल में विलीन हो जायेंगे। इसलिए जैसे तू अकेला ही दुःखी हो रहा है, वैसे अकेला ही सुख के मार्ग पर जा, अकेला ही मुक्ति को प्राप्त कर ले॥३५७॥

३५७। ३५७ लिया है। **इस संसार में जीव अकेला जन्मता है,...** कोई संग नहीं। यह बात एकत्व सप्तति में आ गई है। आत्मा आत्मा के कारण जहाँ जाता है, कर्म, कर्म के कारण साथ में जाते हैं और कर्म के निमित्त से, निमित्त के वश, उससे नहीं, विकार भी विकार अपने कारण से जाता है। यह आ गया है। आहाहा! आत्मा, आत्मा के कारण से जाता है, कर्म, कर्म के कारण जाते हैं और विकार भी विकार के कारण जाता है। तीनों भिन्न-भिन्न रहते हैं। आहाहा! निश्चय की बात परम सत्य (होने पर भी) रूखी लगे और एकान्त जैसी लगे। इसमें मानो कोई व्यवहार नहीं आया। व्यवहार की बात क्या करनी? व्यवहार तो पूरा व्यवहार है। विकल्प से लेकर समस्त लोकालोक व्यवहार है। एक भगवान आत्मा वीतरागमूर्ति की दृष्टि, ज्ञान, अनुभव और स्थिरता (हुई), उसमें भी मुनि की स्थिरता... आहाहा! उसके सिवा विकल्प से लेकर पूरा संसार व्यवहार है। पूरा लोकालोक व्यवहार है। निश्चय में एक अपना आत्मा। व्यवहार में विकल्प से लेकर पूरा लोक। आहाहा!

यहाँ कहते हैं, **इस संसार में जीव अकेला जन्मता है,...** अकेला है। भले कर्म, कर्म के कारण; विकार, विकार के कारण (होता है)। कोई संग अन्दर में एक हुआ है, ऐसा है नहीं। आहाहा! **इस संसार में जीव अकेला जन्मता है, अकेला मरता है,...** आहाहा! देह छोड़कर अकेला चला जाता है। पैसा, बड़ा मकान पाँच-पाँच करोड़ का बनाया हो, धामधूम... आहाहा! अकेला जाता है। अकेला आया और अकेला जाता है। कोई दूसरी चीज़ उसकी उसमें है नहीं। दूसरे कर्म भले जाए, परन्तु वह तो भिन्न है। आहाहा! **अकेला मरता है,...** कर्म के कारण से नहीं। अपनी योग्यता इतनी (है)। निश्चय से तो ऐसा है, आत्मा भिन्न चीज़ है। दो को स्पर्श भी नहीं है—एक द्रव्य दूसरे द्रव्य को छूता ही नहीं। आहाहा!

भगवान आत्मा आयुष्य से यहाँ रहा है, ऐसा कहना वह तो निमित्त से कथन है। बाकी आयुष्य के परमाणु को तो भगवान छूता भी नहीं। और वह परमाणु आत्मा को छूता नहीं। परन्तु अपनी योग्यता से शरीर में रहता है। आयुष्य के कारण रहता है, ऐसा कहना वह निमित्त का कथन है। आहाहा! समझ में आया? अपनी योग्यता उतनी है, उस अनुसार रहता है। कर्म तो निमित्त परवस्तु है। उसके कारण से आत्मा रहता है और वह कर्म समाप्त होता है तो चला जाता है, वह सब व्यवहार का कथन है।

इसलिए यहाँ कहा, **अकेला मरता है,...** आयुष्य पूरा हुआ, इसलिए देह छूट गया, (ऐसा नहीं है)। उतनी योग्यता अनुसार वहाँ अकेला रहा। आहाहा! इस देह में, अपनी योग्यता-लायकात की पर्याय, जितने काल अपनी यहाँ रहने की योग्यता है, उतना काल रहता है। योग्यता पूरी हुई तो देह छोड़कर चला जाता है। आयुष्य पूरा हुआ तो चला गया, ऐसा कहना वह व्यवहार से कथन है। एक द्रव्य दूसरे द्रव्य को कभी छूता नहीं। आहाहा! एक पदार्थ दूसरे पदार्थ को, अरे..! दूसरे पदार्थ को-जड़ को तो खबर भी नहीं है कि मैं कर्म हूँ। आयुष्य को खबर है कि मैं आयुष्य हूँ? भगवान आत्मा को खबर है कि मेरी योग्यता अनुसार मैं यहाँ रहता हूँ और योग्यता पूर्ण हो गयी तो यहाँ से निकल जाएगा। आहाहा! निमित्त के कथन शास्त्र में गोम्मटसार में तो ऐसा आये कि ज्ञानावरणीय से ज्ञान रुका। आयुष्य के कारण शरीर में रहता है। आहाहा! अन्तराय कर्म के कारण अन्तराय पड़ती है। आहाहा! वह सब निमित्त का कथन है। बहुत संक्षेप से ऐसा कहना कि अपनी

पर्याय की योग्यता से वह है... निमित्त से होता नहीं, इतना लम्बा नहीं कहकर... ऐसा कह दिया है।

बाकी तो प्रत्येक द्रव्य प्रतिसमय अपनी पर्याय की स्वतंत्रता से काम करता है। दूसरे द्रव्य को छूता नहीं। आहाहा! एक शरीर दूसरे शरीर को छूता नहीं। शरीर को आत्मा छूता नहीं। आहाहा! और शरीर आत्मा को छूता नहीं। प्रत्येक अपने-अपने अस्तित्व में (रहते हैं)।

यहाँ वह कहते हैं, आहाहा! **अकेला जन्मता है, अकेला मरता है, अकेला परिभ्रमण करता है,...** कर्म-बर्म के कारण नहीं। अकेला परिभ्रमण करता है। अपनी योग्यता से परिभ्रमण करता है। कर्म परद्रव्य है, जड़ है। पर तो निमित्त है। निमित्त को तो आत्मा छूता भी नहीं। आहाहा! बहुत कठिन बात। **अकेला परिभ्रमण करता है, अकेला मुक्त होता है।** मुक्त होता है तो अकेला। आहाहा! अपनी पर्याय की योग्यता से (मुक्त होता है)। आठ कर्म का नाश हुआ तो मुक्त हुआ, ऐसा नहीं है। आहाहा! क्योंकि आत्मा कभी कर्म को छुआ ही नहीं। आत्मा उसको स्पर्शा भी नहीं, स्पर्श किया नहीं और आत्मा ने कर्म में प्रवेश किया नहीं और कर्म ने आत्मा में प्रवेश नहीं किया। आहाहा! जहाँ आत्मा है, उसी क्षेत्र में कर्म हैं। फिर भी दोनों का क्षेत्र भिन्न है। आत्मा में वह प्रवेश करके रहा है, ऐसा नहीं। आहाहा! ऐसी बात वीतराग के सिवा (कहीं नहीं है)। स्वरूप ही ऐसा है।

अकेला परिभ्रमण करता है, अकेला मुक्त होता है। आहाहा! मुक्ति भी अकेले की होती है। कर्म टलते हैं तो मुक्त होता है, ऐसा भी नहीं। आहाहा! अपनी पर्याय में अपूर्णता की योग्यता थी तो मुक्ति नहीं होता था। **पर्याय...** योग्यता हो तो मुक्त होता है। वह तो अपने कारण से है। कोई कर्म के कारण से यहाँ रहा है और कर्म गये तो मुक्ति होती है, ऐसा है नहीं। आहाहा! गजब बात है। **उसे किसी का साथ नहीं है।** एक तत्त्व को दूसरे तत्त्व का साथ नहीं है। सहारा नहीं है। आहाहा! एक तत्त्व के साथ दूसरे तत्त्व का साथ, साथ में यह आया तो इसे आना पड़ा, कर्म यहाँ से हटते हैं तो आत्मा को यहाँ से हटना पड़ा, ऐसा है नहीं। आहाहा! **उसे...** भगवान आत्मा को **किसी का साथ नहीं है।** आहाहा! देव-गुरु-शास्त्र का साथ नहीं है, गजब बात करते हैं। वह सब तो व्यवहार का कथन है।

मात्र भ्रान्ति से वह दूसरे की ओट... आश्रय – ओट.. ओट.. । **ओट और आश्रय मानता है।** मात्र भ्रान्ति से वह दूसरे की ओट... आहाहा! और उसका आश्रय (मानता है)। मुझे उसकी अनुकूलता है, सेठ की, दुकान की, ... तो मुझे ठीक है। वह मान्यता भ्रान्ति है, कहते हैं। मैं पैसेवाला हूँ, मैं निरोगी हूँ, मैं पुत्रवान हूँ, मैं साहूकार हूँ, मैं सेठ हूँ, आहाहा! सब भ्रान्ति है। वह चीज़ भिन्न और तेरी चीज़ भिन्न। तेरी चीज़ और उस चीज़ के बीच में तो अनन्त-अनन्त अभाव है। आहाहा! तो कहते हैं, **मात्र भ्रान्ति से वह दूसरे की ओट और आश्रय मानता है। इस प्रकार चौदह ब्रह्माण्ड में...** आहाहा! इस प्रकार चौदह राजूलोक में **अकेले भटकते हुए...** आहाहा! **इस प्रकार चौदह ब्रह्माण्ड में अकेले भटकते हुए जीव ने इतने मरण किये हैं...** मनुष्यपने की बात करते हैं। बाकी एकेन्द्रिय, दो इन्द्रिय के मरण किये अनन्त। यहाँ तो मनुष्यपने इतने मरण किये... आहाहा! इस प्रकार जीव ने **इतने मरण किये हैं कि उसके मरण के दुःख में...** उसके मरण के दुःख में **उसकी माता की आँखों से...** मनुष्यपना लिया है। बाकी तो जन्म-मरण तो प्रत्येक (गति में किये हैं)। एकेन्द्रिय, दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय में अनन्त बार हुआ। परन्तु यहाँ मरण के दुःख में.. यहाँ पंचेन्द्रिय... उसकी माता की आँखों में जो आँसू बहे... आहाहा! **उनसे समुद्र भर जायें।**

अष्टपाहुड़ में कुन्दकुन्दाचार्य का पाठ है। कुन्दकुन्दाचार्य का पाठ है, प्रभु! तूने मनुष्य भव इतने धारण किये और उतनी बार तू द्रव्यलिंग धारण करके मर गया। द्रव्यलिंग तो धारण किया, परन्तु बाद में दूसरे भव किये। उतने भव किये कि तेरे मरने पर तेरी माता के आँसू से समुद्र भर जाए, उतनी बार तू मरा है। तेरी माता के आँसू निकले, ऐसी-ऐसी अनन्ती माता। आहाहा! यह तो पंचेन्द्रिय की बात है, मनुष्यपने की बात है। एकेन्द्रिय, दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय, निगोद वह अलग। यहाँ पंचेन्द्रिय मनुष्य की....

उसके मरण के दुःख में उसकी माता की आँखों से जो आँसू बहे, उनसे समुद्र भर जायें। आहाहा! भूतकाल में इतने मरण किये। प्रभु! अनादि से सत्ता तेरी तो है। अनादि-अनन्त तेरी सत्ता है। तो तेरी सत्ता कहाँ रही? परिभ्रमण में रहा। परिभ्रमण में तेरा देह छूटने के काल में, मुनुष्यपने में, तेरी माता की आँख में से आँसू बहे। आहाहा! बहुत साल पहले एक माँ देखी थी। उसके पुत्र को पैर में क्षय हुआ था। ऐड़ी होती है न? पैर

की ऐड़ी। घूंटी समझते हैं ? यह भाग। घूंटी कहते हैं। वहाँ क्षय हुआ था। प्रत्यक्ष देखा था। वहाँ क्षय हुआ था। दामोदर सेठ वहाँ थे। मुख्य मनुष्य था। उसके लड़के का लड़का था। यहाँ हड्डी में क्षय हुआ था। यह हड्डी है न ? वहाँ क्षय हुआ था। सड़ गया था। देखा था। आहा.. ! फिर लड़का मर गया। हम उपाश्रय में थे। वहाँ से मुर्दा निकला। पीछे उसकी माँ पछाड़-पछाड़ करे... पूरा शरीर... आहाहा ! अरे.. ! इसमें.. आहाहा ! पुत्र कौन और माँ कौन ? अकेले रहना, अकेले जाना, अकेले दु:ख सहन करना और अकेले मोक्ष का आनन्द करना। आहाहा ! हम उपाश्रय में बैठे थे। लड़के का मुर्दा निकला। उसकी माँ पीछे गिरी। बाजार के बीच... खड़ी होकर गिरे, आहाहा ! भान नहीं। जो गया, वह आये कब ? जो हो गया, सो हो गया। आहाहा ! यह तो प्रत्यक्ष देखा था।

यहाँ कहते हैं, **उसकी माता की आँखों से जो आँसू बहे, उनसे समुद्र भर जायें। भवपरिवर्तन करते-करते...** आहाहा ! **बड़ी मुश्किल से तुझे यह मनुष्यभव प्राप्त हुआ है,...** आहाहा ! क्या कहते हैं ? भवपरिवर्तन करते-करते अकेला मनुष्य (भव) नहीं। भवपरिवर्तन करते-करते एकेन्द्रिय, दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय, चौ इन्द्रिय, पंचेन्द्रिय, नारकी, देव, मनुष्य, पशु आदि। आहाहा ! **बड़ी मुश्किल से तुझे यह मनुष्यभव प्राप्त हुआ है,...** अनन्त काल के बाद बड़ी मुश्किल से (प्राप्त हुआ है)। .....

विक्रम संवत-२०३५, श्रावण कृष्ण - ११, शुक्रवार, तारीख ५-९-१९८०
वचनामृत - ३६०, ३६५ प्रवचन-२५

सम्यग्दृष्टि को पुरुषार्थ से रहित कोई काल नहीं है। पुरुषार्थ करके भेदज्ञान प्रगट किया, तब से पुरुषार्थ की धारा चलती ही है। सम्यग्दृष्टि का यह पुरुषार्थ सहज है, हठपूर्वक नहीं है। दृष्टि प्रगट होने के बाद एक ओर पड़ी हो, ऐसा नहीं है। जैसे अग्नि ढँकी पड़ी हो, ऐसा नहीं है। अन्तर में भेदज्ञान का—ज्ञातृत्वधारा का प्रगट वेदन है। सहज ज्ञातृत्वधारा चल रही है, वह पुरुषार्थ से चल रही है। परम तत्त्व में अविचलता है। प्रतिकूलता के समूह आये, सारे ब्रह्माण्ड में खलबली मच जाय, तथापि चैतन्यपरिणति न डोले—ऐसी सहज दशा है॥३६०॥

वचनामृत-३६०। **सम्यग्दृष्टि को...** आत्मा शुद्ध चैतन्यस्वरूप है। उसके सन्मुख दृष्टि होकर सम्यग्दर्शन प्रगट हुआ हो, वह धर्म की पहली सीढ़ी। सम्यग्दर्शन-त्रिकाली शुद्ध परम चैतन्य वस्तु, वह सम्यक्-सत्य। उसकी दृष्टि। आत्मा तो त्रिकाली आनन्दस्वरूप, सच्चिदानन्दस्वरूप, सर्वज्ञ भगवान ने देखा कि यह आत्मा पूर्णानन्द है, ऐसी दृष्टि जिसको अन्दर अनुभव में हुई, वह सम्यग्दृष्टि है। आहाहा! **सम्यग्दृष्टि को पुरुषार्थ से रहित कोई काल नहीं है।** क्योंकि अन्तर में पुरुषार्थ की गति गयी है। अब अन्तर में पुरुषार्थ का झुकाव हो गया है तो कोई भी समय पुरुषार्थ बिना—अन्तर में पुरुषार्थ बिना होता नहीं। आहाहा! सूक्ष्म बात है, भाई! मुख्य बात है न, पहली बात है।

कोई काल भी, धर्मी जिसको आत्मज्ञान हुआ और आत्मा की दृष्टि हुई, उसका वीर्य-पुरुषार्थ स्वभाव-सन्मुख कभी न हो, ऐसा नहीं है। स्वभाव-सन्मुख ही पुरुषार्थ चलता है। आहाहा! पुरुषार्थ की गति जहाँ रुचि (है, वहाँ जाती है)। 'रुचि अनुयायी वीर्य'। जहाँ रुचि और पुसाया, वहाँ पुरुषार्थ गति करता है। आहाहा! आत्मा शुद्ध चैतन्यमूर्ति,

ऐसा जो दृष्टि में, रुचि में, पुसान में... अरे... ! जरूरत में, जन्म-मरण रहित होने की जरूरत हो तो एक आत्मा का ज्ञान करना, वह जरूरत है। आहाहा! लोग कहते हैं न कि जरूरत हो, वहाँ काम किये बिना रहे नहीं। वैसे आत्मा आनन्द और ज्ञानस्वरूप जिसकी जरूरत में, रुचि में पुसान में आ गया... आहाहा! और करने का यही है। उसमें कोई काल पुरुषार्थ से रहित नहीं होता। अन्तर्मुख की गति जो पुरुषार्थ की मुडी है, झुकाव हो गया है स्वभाव-सन्मुख, वह पुरुषार्थ से रहित कभी होता नहीं। आहाहा! ऐसी बात है।

पुरुषार्थ करके... प्रथम में आत्मा वस्तु शुद्ध चैतन्य है और पुण्य-पाप के भाव मैल-मलिन भाव है। भगवान आत्मा त्रिकाल निर्मल है। मलिन से निर्मल का भेदज्ञान-पृथक्पने का ज्ञान जिसको हुआ, उसको यहाँ भेदज्ञान कहते हैं। आहाहा! ७२वीं गाथा में आता है न? कि पुण्य और पापभाव, शुभ और अशुभभाव, चाहे तो दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा आदि हो, वह सब शुभभाव है। परन्तु है मलिन। उससे रहित प्रभु आत्मा निर्मलानन्द सहजानन्दस्वरूप प्रभु, उसकी दृष्टि जब हुई, तो पुरुषार्थ करके उसने भेदज्ञान प्रगट किया। राग से, पुण्य के परिणाम से पवित्र प्रभु त्रिकाली चैतन्यद्रव्य, ऐसा भेदज्ञान जिसने प्रगट किया,... आहाहा! ऐसी चीज़ है। प्रथम की बात है।

पुरुषार्थ करके भेदज्ञान प्रगट किया,.. भेदज्ञान भी पुरुषार्थ करके प्रगट किया है। आहाहा! ३४वीं गाथा में आता है, समयसार। कि गुरु ने कहा कि तू निर्मलानन्द चैतन्य है न! और पुण्य एवं पाप के दोनों भाव मलिन हैं न! ये मलिन है, ऐसा जाना, तो जानकर उसे छोड़ देता है। अन्तर्दृष्टि में अपनाता नहीं। अपनाता नहीं अर्थात् अपना मानता नहीं। आहाहा! शुभ और अशुभभाव दया, दान, व्रत, भक्ति, काम, क्रोध के परिणाम दोनों मलिन हैं। उससे रहित प्रभु चैतन्यज्योति का भेदज्ञान, राग की मलिनता का अन्तर्दृष्टि में पर से भेदज्ञान हुआ तब से, भेदज्ञान किया, तब से **पुरुषार्थ की धारा चलती ही है।** आहाहा! जिसकी जिसमें रुचि है, वहाँ पुरुषार्थ की गति काम करती ही है। आहाहा! जिसके अन्तर में आत्मा ज्ञान—आनन्दस्वरूप पुसाया आया, पुसाना-रुचि (हुई).. आहाहा! जैसे बनिये को व्यापार करने में तीन रुपये का माल लाये और यहाँ साढ़े तीन में बिके तो माल आये। तो पुसाय। परन्तु तीन रुपये का लाये और यहाँ पौने तीन आये तो वह पुसाय? आहाहा! वैसे आत्मा में पुण्य-पाप का भाव मलिन, दुःख है और अन्दर निर्मलानन्द आत्मा सुख है।

ऐसा जिसको... आहाहा! अपना शुद्ध स्वभाव पुसाया और मलिन परिणाम का अन्दर से पुसाना छूट गया,.. आहाहा! ऐसी बातें हैं। उसका भेदज्ञान करने के काल में पुरुषार्थ था, तब से पुरुषार्थ स्वभाव-सन्मुख तो काम करता ही है। आहाहा! समझ में आया? उस ओर पुरुषार्थ (चलता ही है)। जिसकी रुचि हुई और पुसाया, जो माल पुसाया, वह उसकी पुष्टि करता ही रहता है। आहाहा! सूक्ष्म बात है, प्रभु!

अनन्त काल में नहीं किया है। आहा..! अनन्त काल में चौरासी के अवतार (किये)। निगोद के, एकेन्द्रिय के, दो इन्द्रिय के, तीन इन्द्रिय, चौ इन्द्रिय, पशु-तिर्यंच, नारकी... आहाहा! अरेरे..! आचार्य तो ऐसा कहते हैं, अरे..! मैं भूतकाल के अनन्त भव के दुःख को जहाँ याद करता हूँ, यह तो अन्तर में घाव लगता है। अरेरे..! अब से अनन्त काल पहले... अनन्त काल.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. चार गति के परिभ्रमण में जो दुःख सहन किये, उसे स्मरण में लाने पर, उसे यहाँ विचार में लाने पर घाव लगता है। आहाहा! कितना दुःख सहन किया? तो उसकी पुरुषार्थ की गति स्व की ओर झुके बिना रहती नहीं। आहाहा! समझ में आया?

यह कहते हैं, **पुरुषार्थ करके भेदज्ञान प्रगट किया, तब से पुरुषार्थ की धारा चलती ही है।** आहाहा! जो पुसाया, उस ओर वीर्य अन्तर में पुरुषार्थ काम करता ही है। आहाहा! **सम्यग्दृष्टि का यह पुरुषार्थ सहज है, हठपूर्वक नहीं है।** अज्ञानी जो शुभभाव करता है, वह हठ है। सहज नहीं है। आत्मा का ज्ञानानन्दस्वभाव चैतन्य की खबर नहीं, इसलिए शुभभाव दया का, पुण्य दया, दान, पुण्यादि करता है, वह हठ से करता है। आहाहा! परन्तु जिसको उससे भिन्न आत्मा का, पुण्य-पाप परिणाम से प्रभु अन्दर भिन्न द्रव्य है, ऐसी दृष्टि और ज्ञान हुआ, तब से **सम्यग्दृष्टि का यह पुरुषार्थ सहज है,...** वह पुरुषार्थ सहज होता है। आहाहा!

माता के गर्भ में सवा नौ महीने रहा। माता ने कोई भी कपड़े पहने हो, उसकी दृष्टि माता-जनेता पर रहती है। यह मेरी माँ है। चाहे तो अपनी स्त्री के कपड़े पहने हो। समझ में आया? आहा..! बोटाद में ऐसा बन गया था। बोटाद में उपाश्रय है न? उसके सामने मोढ़ रहते थे, लाखोपति गृहस्थ। एक बार उसकी स्त्री कपड़े धोने गयी और उसकी माँ थी, नयी माँ थी। नयी माँ थी। वह उसकी स्त्री के कपड़े पहनकर सोयी थी। कपड़े स्त्री

के पहने थे। उसका धनी आया। खबर नहीं थी कि मेरी माँ है या मेरी स्त्री है ? कपड़े स्त्री के पहने थे। ठेस मारकर जगाया तो वह समझ गयी। क्यों बेटा ? बहू नहाने गयी है। इतना कहा, एकदम विचार बन्द हो गया। ... अरे.. ! यह तो मेरी माँ है। भले नयी माँ थी, परन्तु माँ है न। क्यों बेटा ? बहू नहाने गयी है। इतना जहाँ कहा तो वह विचार एकदम बदल गया, पलट गया। आहाहा !

वैसे यहाँ त्रिलोकनाथ सन्तों-मुनियों आदि ने कहा कि प्रभु ! तेरी चीज़ अन्दर निर्मलानन्द भिन्न है। पुण्य और पाप का भाव मलिन है, वह तेरी चीज़ नहीं है। आहाहा ! ऐसा जहाँ सुना तो उसके मलिन भाव से हटकर निर्मलानन्द की ओर पुरुषार्थ की गति हुई। आहाहा ! वह पुरुषार्थ हठपूर्वक नहीं है। सहज पुरुषार्थ होता है। आहाहा ! ज्ञान—जाननस्वभाव आत्मा ज्ञाता-दृष्टा, उस ओर का प्रयत्न-पुरुषार्थ गति करता ही रहता है। धर्मीजीव की गति पुरुषार्थ-वीर्य की गति स्वभाव की ओर ही है। भले बाहर में सब दिखे, परन्तु अन्तर में तो दृष्टि वहाँ है। आहाहा !

हठपूर्वक नहीं है। सम्यग्दृष्टि का पुरुषार्थ सहज है। **दृष्टि प्रगट होने के बाद एक ओर पड़ी हो, ऐसा नहीं है।** क्या कहते हैं ? आत्मा पुण्य और पाप के भाव रहित है। शरीर, वाणी, मन तो कहीं बाहर रह गये। परन्तु शुभ-अशुभभाव से रहित, ऐसी सम्यग्दृष्टि हुई तो वह दृष्टि कोई अकेली नहीं पड़ी रहती, काम करती है। पर से भिन्नता का काम करती है। आहाहा ! समझ में आया ? **दृष्टि प्रगट होने के बाद एक ओर पड़ी हो, ऐसा नहीं है।** एक ओर पड़ी रहे, ऐसा नहीं है। आहाहा ! दृष्टि चैतन्यस्वभाव शुद्ध ध्रुव त्रिकाली, उस ओर का प्रयत्न चलता ही है। आहाहा ! कठिन बात है, प्रभु ! मार्ग वीतराग का। जिनेश्वरदेव केवली परमात्मा का मार्ग पूरी दुनिया से भिन्न जाति का है। आहा.. !

जैसे अग्नि ढँकी पड़ी हो,... अग्नि। ऊपर राख से ढँकी पड़ी हो। **ऐसा नहीं है। अग्नि ढँकी पड़ी हो, ऐसा नहीं है।** अग्नि खुली है, अग्नि बाहर आ गयी। राख दबायी हो... कितने तो दूसरे दिन रोटी करनी हो तो ऊपर राख दबाकर रख दे और कोई गोबर से नयी करे। अग्नि समाप्त हो गयी हो तो। और कोई अग्नि को दबाकर रखे। दूसरे दिन उसे खोलकर उससे बनाये। वैसे यहाँ अग्नि एक ओर पड़ी नहीं है, काम करती है। वैसे दृष्टि

एक ओर पड़ी नहीं है, दृष्टि अन्दर में काम करती है। आहाहा! अरेरे! **जैसे अग्नि ढँकी पड़ी हो, ऐसा नहीं है।** अग्नि ढँकी है, ऐसी दृष्टि नहीं है। दृष्टि अन्तर में काम करती है। जैसे खुली अग्नि काम करती है, आहाहा! वैसे भगवान आत्मा पूर्ण आनन्द और ज्ञान का पिण्ड है, ऐसी दृष्टि अनुभव में हुई तो वह काम नित्य अनुभव में चलता ही है। अग्नि खुली हो, वैसे काम चलता है। अग्नि ढँकी हो, ऐसा काम नहीं (चलता)।

अन्तर में भेदज्ञान का... आहाहा! अन्तर में राग से भिन्न, पुण्य और पाप के भाव से भिन्न प्रभु अन्दर है। क्योंकि नौ तत्त्व है न? तो पुण्य-पाप तत्त्व भिन्न है और जीव तत्त्व भिन्न है। आहाहा! जीव तत्त्व है वह तो ज्ञायकतत्त्व, आनन्दतत्त्व है। ज्ञान और आनन्द का नाथ है वह तो। ऐसा जो ज्ञातृतत्त्व है, **ज्ञातृत्वधारा का प्रगट वेदन है।** धर्मी को अन्तर में भेदज्ञान का अर्थात् ज्ञातृत्वधारा का प्रगट वेदन है। धर्मी को आनन्द का वेदन है। ज्ञान का वेदन है। जो अनादि से राग और द्वेष, शुभ और अशुभराग की धारा का वेदन था, वह वेदन उलट गया। दशा पलट गयी। आहाहा! अरे..! ऐसा मार्ग।

अन्तर में भेदज्ञान का—ज्ञातृत्वधारा का प्रगट वेदन है। मैं आनन्द हूँ, ज्ञान हूँ, ऐसा प्रगट वेदन धर्मी को सदा होता ही है। उसको धर्मी कहने में आता है। आहाहा! गजब बात है! **सहज ज्ञातृत्वधारा चल रही है,...** स्वाभाविक ही जाननधारा, ज्ञान की धारा, जो ज्ञानस्वरूपी प्रभु, वह ज्ञान सम्यक् में खिल गया है। प्रगट हुआ है। वह **ज्ञातृत्वधारा चल रही है,...** जानन-देखन की धारा चल रही है। आहाहा! पुरुषार्थ से ज्ञातृत्वधारा चल रही है। आहाहा! **वह पुरुषार्थ से चल रही है। परम तत्त्व में अविचलता है।** धर्मी तो... आहा..! आत्मा स्वरूप का भान हुआ, उसमें अविचलता है। उसमें चलित है, ऐसा है नहीं। आहाहा! माता को माता जानी है तो कभी शंका पड़ती है कि यह मेरी स्त्री है या मेरी बहिन है? आहाहा! जैसा नक्की-निर्णय हुआ, उस ओर पुरुषार्थ गति किये बिना रहे ही नहीं। आहाहा! वैसे परमतत्त्व भगवान आत्मा शरीर, वाणी से तो भिन्न है, परन्तु पुण्य और पाप के शुभ-अशुभभाव से भी भिन्न है। ऐसी परम तत्त्व में अविचलता है। वहाँ से चलायमान नहीं होता। आहाहा! है? **अविचलता है।** चलायमान नहीं होता। आहाहा!

अपना स्वरूप शुद्ध चैतन्य पुण्य और पाप के भाव से भिन्न जानने में आया, वह

धारा कायम चल रही है। आहाहा! **परम तत्त्व में अविचलता है।** आहाहा! **प्रतिकूलता के समूह आये,...** बाहर में प्रतिकूलता के समूह आये। प्रतिकूलता के गंज (हो), अनेक प्रतिकूलता हो धर्मी को। **सारे ब्रह्माण्ड में खलबली मच जाय,...** आहाहा! **तथापि चैतन्यपरिणति न डोले...** आहाहा! चैतन्यस्वरूप त्रिकाली भगवान अनादि-अनन्त, ऐसा चैतन्य का जहाँ भान हुआ, राग से भिन्न सारा ब्रह्माण्ड पलट जाए और खलबली मच जाए, सब प्रतिकूलता की खलबली मच जाए। आहाहा! तो भी चलायमान नहीं होते। **चैतन्यपरिणति न डोले...** आहाहा! अपनी चैतन्य अवस्था, परिणति अर्थात् अवस्था अर्थात् दशा। राग से भिन्न दशा हुई, वह दशा सदा चलती ही रहती है। **ऐसी सहज दशा है।** आहाहा!

लोगों ने धर्म कहाँ-कहाँ मान रखा है और कहाँ धर्म है! आहाहा! धर्म तो स्वभाव है। तो अपना जो स्वभाव शुद्ध चैतन्यघन अनादि है, उसकी दृष्टि, अनुभव होना, वह धर्म है। अन्तर में राग और द्वेष, पुण्य और पाप के विकल्प होते हैं, वह धर्म नहीं। आहाहा! अनन्त काल में तो ऐसा पुण्य और पाप अनन्त बार किया। अनन्त बार। नौंबी ग्रैवेयक अनन्त बार गया। इतनी लौकिक धार्मिक क्रिया। दया, दान, व्रत कितने किये। परन्तु अन्तर तत्त्व के भान बिना, अन्तर के ज्ञान बिना जन्म-मरण का अन्त आया नहीं। आहाहा! ऐसे महाव्रत भी अनन्त बार (लिये)। नौवीं ग्रैवेयक (गया)। 'मुनिव्रत धार अनन्त बैर ग्रैवेयक उपजायो, पै आतमपान बिन लेश सुख न पायो।' आत्मा अन्दर पुण्य-पाप, शुभाशुभ के मैल से भिन्न है, ऐसे आत्मा में सुख है तो पंच महाव्रत है, वह भी दुःख है। क्योंकि वह आस्रव है, राग है। आहाहा! राग से भिन्न ऐसी सहज दशा धर्मी की होती है। आहाहा! ३६० (पूरा हुआ)।

काल अनादि है, जीव अनादि है, जीव ने दो प्राप्त नहीं किये—जिनराजस्वामी और सम्यक्त्व। जिनराजस्वामी मिले परन्तु उन्हें पहिचाना नहीं, जिससे मिलना, वह न मिलने के बराबर है। अनादि काल से जीव अंतर में जाता नहीं है और नवीनता प्राप्त नहीं करता; एक के एक विषय का—शुभाशुभभाव का—पिष्टपेषण करता ही रहता है, थकता नहीं है। अशुभ में से शुभ में और फिर शुभ में से अशुभ में जाता है। यदि शुभभाव से मुक्ति मिलती होती, तब तो कब की मिल गई होती! अब, यदि पूर्व में अनन्त बार किये हुए शुभभाव का विश्वास छोड़कर, जीव अपूर्व नवीन भाव करे—जिनवरस्वामी द्वारा उपदिष्ट शुद्ध सम्यक् परिणति करे, तो वह अवश्य शाश्वत सुख को प्राप्त हो॥३६५॥

३६५। **काल अनादि है,...** आदि है? कब से काल हुआ? अनादि.. अनादि.. अनादि.. अनादि.. आहाहा! कहीं काल की शुरुआत है नहीं। भूतकाल देखो तो अन्त बिना का अनादि.. अनादि.. अनादि.. आहाहा! और **जीव अनादि है,...** जीव भी उसमें अनादि है। आहाहा! काल अनादि है तो जीव भी साथ में अनादि है। काल अनादि है और जीव नया उत्पन्न हुआ है, (ऐसा नहीं है)। आहाहा! आत्मा नया उत्पन्न होता है, आत्मा की उत्पत्ति की सादि... सादि-शुरुआत है, ऐसा है नहीं। आहाहा! **जीव अनादि है,...** आहाहा! **जीव ने दो प्राप्त नहीं किये...** अनादि-अनन्त काल में जीव ने दो प्राप्त नहीं किये।

जिनराजस्वामी और सम्यक्त्व। आहाहा! बाकी अरबोंपति अनन्त बार हुआ। इन्द्र देव, नौवीं ग्रैवेयक का देव अनन्त बार हुआ। अरबोंपति सेठ अनन्त बार हुआ। वह तो धूल है। आहाहा! हार्टफेल हुआ। कल खबर आयी न। चुनीभाई का चिमन नहीं? हार्टफेल हो गया। चुनीलाल... मकान है न यहाँ।

मुमुक्षु :- इस काम में परमागम में वे थे।

पूज्य गुरुदेवश्री :- हाँ, वे यहाँ थे न। परमागम की देखभाल में। हाईफेल। ६० साल की उम्र। यहाँ रहते थे। यहाँ रहने का भाव था। देह की स्थिति, बापू! जिस समय, जिस क्षेत्र में, जिस संयोग में गिरनेवाली है, उसमें इन्द्र फेरफार तीन काल में कर सकता

नहीं। आहाहा! उसकी दवा, डॉक्टर एक ओर पड़े रहे। डॉक्टर भी मर जाता है। यहाँ एक भावनगर का डॉक्टर था-हेमन्तकुमार। पाटनी का रिश्तेदार था। ... पाटनी थे, उनके रिश्तेदार थे। यहाँ आते थे, दो-तीन बार आये थे। वह किसी का ऑपरेशन करते थे। उतने में कहा, मुझे कुछ होता है। कुर्सी पर बैठता है, उतने में उड़ जाता है। आहाहा! डॉक्टर सर्जन स्वयं अपने शरीर को (रख नहीं सकता)। यह शरीर तो मिट्टी है, धूल है। उसकी स्थिति जितनी है, उतनी वहाँ रहेगी। तेरी सम्भाल से और तेरे ध्यान रखने से वह रहे, उस बात में कोई दम नहीं है। आहाहा! डॉक्टर स्वयं समाप्त। जाओ! सर्जन, पूरे अस्पताल का सर्जन था। भावनगर। आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि जीव अनादि है, काल अनादि है। **जीव ने दो प्राप्त नहीं किये—** एक वीतरागदेव त्रिलोकनाथ और सम्यक्त्व। **जिनराजस्वामी मिले...** वीतराग भी मिले। क्योंकि महाविदेहक्षेत्र में भी आत्मा का जन्म अनन्त बार हुआ। ढाई द्वीप में कोई बाकी नहीं है, पूरे लोक में कुछ बाकी नहीं है कि कोई एक क्षेत्र में अनन्त बार जन्म-मरण नहीं किये हो। इस जगह अनन्त बार जन्म-मरण, इस जगह, इस जगह... पूरे चौदह ब्रह्माण्ड में। वहाँ महाविदेह में भगवान तो हमेशा विराजते हैं। अमुक बीस तीर्थंकर मोक्ष पधारे तो नये बीस होते हैं। वहाँ अनन्त बार जन्म लिया और समवसरण धर्मसभा में अनन्त बार गया। आहाहा! परन्तु अपनी चीज़ क्या है, उसको समझने की दरकार की नहीं। सुने, सुनकर फिर सुना। आहाहा! भगवान कहते हैं कि आत्मा देह से भिन्न है। परन्तु तुझे करना वह है, वह कर न। आहाहा!

जिनराजस्वामी मिले परन्तु उन्हें पहिचाना नहीं,... आहाहा! तीन लोक के नाथ को (पहचाना नहीं)। प्रवचनसार में आता है न? ८०वीं गाथा। **जो जाणदि अरहंतं दव्वत्तगुण-त्तपज्जयत्तेहिं** जो कोई अरिहन्त के द्रव्य को-वस्तु, उसके गुण को, और उसकी पर्याय को **जो जाणदि अरहंतं दव्वत्तगुणत्तपज्जयत्तेहिं। सो जाणदि अप्पाणं** वैसा ही मेरा आत्मा है। अरिहन्त परमात्मा को जो सर्वज्ञदशा प्रगट हुई, तो वे भी आत्मा हैं, मैं भी आत्मा हूँ। उसके साथ मिलान करके अपने साथ मिलान करता है, तब उसको आत्मज्ञान हो जाता है। आहाहा! ऐसी गाथा है। प्रवचनसार। **जो जाणदि अरहंतं दव्वत्त -गुणत्तपज्जयत्तेहिं। सो जाणदि अप्पाणं** भगवान को बराबर जाने कि यह केवलज्ञानी

परमात्मा है और यह जीव है, मेरी चीज़ भी ऐसी है। ऐसे अन्तर्मुख जो दृष्टि करे तो भगवान को जाना, वह अपने को जाने बिना रहे नहीं। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं कि **जिनराजस्वामी मिले परन्तु उन्हें पहिचाना नहीं,...** आहाहा! उनके जो भाव हृदय में हैं, जो निर्मल भाव कहते हैं, जो सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र अन्तर में निर्मल दशा कहते हैं, वह पहिचानी नहीं। आहाहा! **जिससे मिलना, वह न मिलने के बराबर है।** उसे जाना नहीं तो मिले या नहीं मिले, दोनों बराबर है। अनन्त बार समवसरण में गया। भगवान विराजते हैं, अभी भी विराजते हैं महाविदेह में। उनके समवसरण में भी वहाँ के जीव जाते हैं, परन्तु मिले न, मिले। उन्होंने क्या कहा, वह अन्तर में मिलान नहीं किया। आहाहा! राग से भिन्न अपने आत्मा को नहीं किया तो भगवान मिल, नहीं मिलने के जैसा हो गया। आहाहा! ऐसा उपदेश! कुछ करने को कहते हो, एकेन्द्रिय की दया पालनी, पृथ्वी की दया पालनी (तो समझ में भी आये)। बापू! वह सब अनन्त बार किया है। भवभ्रमण मिटा नहीं, बापू! आहाहा!

भगवान अन्दर अनन्त-अनन्त गुण का समुद्र है। जिसमें राग के मैल का अंश नहीं है। ऐसे जिनराज को देखे, परन्तु जिनराज का मिलना, न मिलने के बराबर हुआ। पहिचाना नहीं कि भगवान वीतराग हैं, केवली हैं, सर्वज्ञ हैं। तो मेरा स्वभाव भी ऐसा है। मैं भी ऐसा हूँ, ऐसे मिलान किया नहीं। आहाहा! है न? **परन्तु उन्हें पहिचाना नहीं, जिससे मिलना, वह न मिलने के बराबर है।** भगवान मिले या नहीं मिले, उसमें उसके आत्मा को लाभ नहीं हुआ। आहाहा! अनन्त बार वहाँ सुनने को गया। यहाँ भी प्रभु तीर्थंकर जब विराजते हैं, उस समय भी सुनने (जाता था)। अभी महावीर परमात्मा सिद्ध हो गये। णमो सिद्धाणं। सीमन्धर भगवान णमो अरिहंताणं में हैं। प्रथम पद में है। चार कर्म बाकी है, चार कर्म का नाश किया है। और महावीर भगवान आठों कर्म का नाश कर सिद्ध हुए हैं। महावीर आदि चौबीस तीर्थंकर तो णमो सिद्धाणं में हैं। सीमन्धर भगवान तीर्थंकर आदि हैं, वे णमो अरिहंताणं में हैं। आहाहा!

समवसरण में वाणी निकलती है। इन्द्र, नरेन्द्र, बाघ, सिंह और नाग समवसरण में सुनने को जाते हैं। आहाहा! परन्तु कहते हैं कि कितनी बार तो मिले, सुना, परन्तु अन्दर

मिलान किया नहीं। आहा..! अरिहन्त की शक्ति है, वैसी शक्तिवन्त मैं भी हूँ। मेरे में भी अनन्त ज्ञान, आनन्द आदि भरा है। आहाहा! ऐसी स्वसन्मुख की दशा प्रगट की नहीं। परसन्मुख की दशा राग एवं पुण्य की दशा में रुककर अनन्त जन्म-मरण किये। आहाहा! है ?

अनादि काल से जीव अंतर में जाता नहीं है... आहाहा! अनादि काल से बहिर्मुख वृत्ति है। आहा..! संसार के काम से फुरसत ले तो ज्यादा से ज्यादा ये दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा में रुके। वह भी संसार है, वह राग है। आहाहा! उससे भिन्न आत्मा की पहचान (नहीं की)। **अनादि काल से जीव अंतर में जाता नहीं है...** आहाहा! जहाँ अन्तर ध्रुव भगवान विराजता है, आत्मा स्वयं परमात्मस्वरूप है। यदि परमात्मस्वरूप न हो तो उसको इनलार्ज करके परमात्मा होता है, कहाँ से होता है ? आहाहा! परमात्मा अरिहन्त होता है, कहाँ से होता है ? कोई बाहर से चीज़ आती है ? अन्तर में सब है। आत्मा पंच परमेष्ठी -स्वरूप है। आहाहा! अरिहन्तस्वरूप है अन्दर शक्ति में। सिद्धस्वरूप है। आचार्य, उपाध्याय, साधु सच्चे। पंच परमेष्ठीस्वरूप आत्मा है। आहाहा!

अष्टपाहुड़ में आया है। कुन्दकुन्दाचार्य का अष्टपाहुड़ है न ? उसमें यह आया है। पंच परमेष्ठी प्रभु! तेरे हृदय में तू है। आहाहा! परन्तु उसको तूने पहचाना नहीं। आहाहा! बहुत तो बाहर में दया पाली, व्रत किये, भक्ति की, ब्रह्मचर्य पाला। आहाहा! वह सब तो क्रियाकाण्ड-राग है। आहाहा! परन्तु आत्मा की जात-छाप क्या है ? अरिहन्त जैसी मेरे आत्मा की जात है। अरिहन्त की बिरादरी और मेरी बिरादरी एक है। आहाहा! ऐसा कभी अन्तर में (मिलान नहीं किया)।

अनादि काल से जीव अंतर में जाता नहीं है... आहाहा! बहिर्मुख। ज्यादा से ज्यादा शुभ विकल्प-शुभराग करे। दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा निवृत्ति लेकर (करे)। परन्तु वह राग संसार है। आहाहा! **अंतर में जाता नहीं है...** शुभराग तो बाह्य चीज़ है। अन्तर में परमात्मा पूर्णानन्द का नाथ.. आहा..! अप्पा सो परमप्पा। आत्मा सो परमात्मा ही है अन्दर। आहाहा! कैसे बैठे ? यदि परमात्मस्वरूप शक्ति से न हो तो परमात्मा केवलज्ञान आये कहाँ से ? बाहर कोई लटकता है ? छोटा हाथी हो उसको इनलार्ज करते हैं। तो हो उसमें से

इनलार्ज करते हैं। ऐसे अपनी शक्ति में सब पूर्ण आनन्द, ज्ञानानन्द सब भरा है। उसका इनलार्ज केवलज्ञान होता है। आहाहा! अरे.. !

अपने में अन्तर में उतरा नहीं। अरे.. ! उतरने का निर्णय किया नहीं कि अन्तर में उतरना है। बाहर की चीज़ तो अनन्त बार की। आहाहा! परन्तु अन्तर में भगवान चिदानन्द प्रभु को पहचाना नहीं। **अन्तर में जाता नहीं है और नवीनता प्राप्त नहीं करता;...** पुण्य और पाप, शुभ और अशुभभाव अनादि से करते आया है। शुभभाव का अभ्यास हो गया, अशुभभाव का-हिंसा, झूठ, विषयभोग वासना, यह अनादि का अभ्यास है। वहाँ से छूटकर दया, दान का अभ्यास भी अनादि का है। दोनों शुभ-अशुभ का अभ्यास तो अनादि का है। आहाहा! नवीनता। शुभ-अशुभभाव से रहित चैतन्य अन्दर निर्मलानन्द प्रभु, चैतन्यपिण्ड.. आहाहा! **नवीनता प्राप्त नहीं करता;...** नवीनता प्राप्त नहीं करता। वही का वही भव भटककर मर जाता है। आहाहा! उसमें अकस्मात में मृत्यु हो तो विचार करने का समय रहे नहीं, कोई शुभभाव रहने का समय न रहे। क्योंकि वेदन.. वेदन.. वेदन.. अशुभभाव आर्तध्यान और रौद्रध्यान हो। आहाहा! उसमें बैरी, चोर आदि आकर बाँधे, पलंग से बाँधे और घर में जो हो, वह ले जाए। उस समय बाँधकर मारे, आहाहा!

अभी कहा न ? नैरोबी में के पास चार लोगों को मार दिया। हबसी लोगों ने। अनार्य लोग। हम २६ दिन वहाँ रहे न। सब अनार्य लोग। लेकिन अपने यहाँ के महाजन लोग ६००० है। उन लोगों को बहुत प्रेम था, बहुत प्रेम था। इसलिए वहाँ गये थे। २६ दिन रहे। बहुत लोग आते थे। महिलाएँ तो दो-दो तीन-तीन हजार। औरत-मर्द सब। बड़ी सभा चलती थी। २६ दिन रुके। वहाँ के हबसी लोगी... उस वक्त हमने सुना था, वहाँ थे तब। कौन थे ? गोरधनभाई की पुत्री। गोरधनभाई हैं। उनकी लड़की और उनका वर जा रहे थे, तो दोनों को लूट लिया। सब ले लिया। मार नहीं डाला। ऐसा हमने सुना कि ये दो जने लुट गये। दोनों निकले होंगे। आहाहा! क्योंकि हबसी लोग तो महा अनार्य। आहाहा! उसमें अवतार। उसमें अनन्त बार अवतार हुए। आहा.. !

नवीनता प्राप्त नहीं करता;... आहाहा! **एक के एक विषय का—शुभाशुभभाव का—** शुभ और अशुभ, शुभ और अशुभ। उसमें ही अनादि से मथता रहा। या तो अशुभ में। विषयभोग, वासना, कमाना, ब्याज पैदा करना, दुकान पर ध्यान रखना। अकेला पाप।

आहाहा! और शुभ। कदाचित् दो घड़ी निवृत्ति लेकर शुभ करे। हमारे वहाँ पालेज में दुकान में ऐसा होता था न। गाँव में साधु आये। उसमें थे न उस दिन, पिताजी स्थानकवासी थे। साधु आये तो मैं तो दुकान छोड़ देता। भागीदार काम करे। दोनों दुकानवाले पूरा दिन, सुबह से लेकर रात को आठ बजे तक। रात को आठ बजे वहाँ जाए। साधु कहे, रातडिया आये। पूरा दिन सामने न देखे। दुकान पर धन्धा अच्छा चलता था। पैसे बहुत और कमाई अच्छी थी। दो दुकान है। अभी एक है। अभी तीन हो गयी। तीनों लड़के अलग हो गये। हमारी बुआ के पुत्र भागीदार थे। दोनों चल बसे, उनके पुत्र हैं। है। बारह-बारह, तेरह-तेरह लाख एक-एक के पास है। चालीस लाख रुपया है तीनों के पास। चार लाख की कमाई है। परन्तु धूल में कुछ नहीं है। पूरा दिन.. गाँव में कोई साधु आये तो सामने तक नहीं देखते। सामने तक नहीं देखते थे। रात को आठ बजे जाए। आहाहा! उतनी व्यापार की अकुलाहट थी। आहाहा! मैंने तो उस दिन कहा था, (संवत्) १९६४ साल। १८ वर्ष की उम्र थी। मैं भी दुकान धन्धा करता था। कुंवरजीभाई को बहुत ममता थी। उनके लड़के हैं अभी। कहा, मरकर पशु में जाएगा। याद रखना। पूरा दिन हो.. हो.. फुरसत नहीं। सुनना नहीं, गाँव में साधु आये। ६४ की साल की बात है। हम तीस लोग थे। एक ही रसोई में सब साथ में जीमते थे। मैं खाना खाने गया था। मैंने बोल दिया, उसकी ममता देखकर, कुंवरजी! तू मरकर नरक में तो नहीं जाएगा, क्योंकि हम अण्डा, माँस आदि खाते नहीं। मनुष्य हो, उसके लक्षण मुझे दिखते नहीं, देव के लक्षण दिखते नहीं, एक पशु के लक्षण लगते हैं। मेरे सामने बोले नहीं। भगत है, पहले से भगत की छाप थी न। बोले नहीं। मरकर पशु होगा, कहा। मरते समय... दो-दो लाख की कमाई उन दिनों में। अभी तो बढ़ गयी। मरते समय सन्निपात हो गया। ये किया, ये किया, इसका किया, मेरा किया... अपनी दुकान बढ़ गयी, अपनी दुकान बढ़ गयी, दूसरे की दुकान टूट गयी, दूसरे की खत्म हो गयी। आहाहा! उसमें सन्निपात में ही देह छूट गया। पीछे पैसा, क्या धूल काम आये? आहाहा!

यहाँ कहते हैं, नवीनता को प्राप्त नहीं की। **शुभाशुभभाव का—पिष्टपेषण करता ही रहता है,...** शुभभाव, अशुभभाव, शुभभाव, अशुभभाव... पिष्टपेषण। ... आहाहा! अनन्त बार ऐसे शुभ-अशुभभाव तो किये हैं। आहाहा! **'थकता नहीं है।' पिष्टपेषण करता ही रहता है, थकता नहीं है। अशुभ में से शुभ में...** अशुभ में से कोई बार शुभ में

आये **और फिर शुभ में से अशुभ में जाता है। यदि शुभभाव से मुक्ति मिलती होती, तब तो कब की मिल गई होती!** आहाहा! दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा आदि भाव तो अनन्त बार किया है। आहाहा! वह कोई मुक्ति का कारण नहीं है, धर्म नहीं है। आहाहा! गजब बात, प्रभु! वह कहते हैं, **यदि शुभभाव से मुक्ति मिलती होती, तब तो कब की मिल गई होती!** क्योंकि शुभभाव तो अनन्त बार किया है। शुक्ललेश्या। छह लेश्या होती है न? कृष्ण, नील, कापोत, तेजो, पद्म, शुक्ल। शुक्ललेश्या अनन्त बार की। मार मारे तो शान्ति रखे। परन्तु आत्मा क्या चीज़ है, उस आत्मा की ओर ध्यान नहीं। क्रियाकाण्ड के शुभभाव में रुक गया। आहाहा!

अब, यदि पूर्व में अनन्त बार किये हुए शुभभाव का विश्वास छोड़कर,... है? विश्वास छोड़ दे। **अनन्त बार किये हुए शुभभाव का विश्वास छोड़कर,...** शुभ तो पुण्य है, बेड़ी है। लोहे की बेड़ी और सोने की बेड़ी, दोनों बेड़ी है। पाप लोहे की बेड़ी, पुण्य सोने की। परन्तु लोहे की बेड़ी से सोने की बेड़ी में बहुत नुकसान है। वजनदार होती है। वजनदार होने से यहाँ घिस जाता है। चिकना बहुत है, सोना चिकना और वजनदार है। इसलिए यहाँ बहुत घिसता है, बहुत दुःख होता है। ऐसे यहाँ शुभ और अशुभ दोनों बेड़ी है।

मुमुक्षु :- सोना तो बहुत कीमती है।

पूज्य गुरुदेवश्री :- धूल भी नहीं है। मरकर चले जाते हैं। आहाहा! अरबोंपति चले जाते हैं। आहाहा! ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती। ९६ हजार स्त्री, ९६ करोड़ सैन्य। अन्तिम चक्रवर्ती। ९६ करोड़ सैन्य। ९६ हजार स्त्री, ४८ हजार नगर, ७२ हजार पाटण, मरकर... अन्त में हीरे का पलंग, हीरे का पलंग, एक-एक हीरा करोड़ रुपये का, ऐसा हीरा का पलंग। उसमें सोया था। कुरुमति... कुरुमति। स्त्री। ९६ स्त्रियाँ थी, उसमें एक स्त्री... शास्त्र में ऐसा लेख है कि उसकी एक स्त्री की १००० देव सेवा करते हैं। एक जो मुख्य होती है उसकी। उसका नाम लेते हुए मरकर सातवीं नरक में गया। अभी सातवीं नरक में है। आहाहा! जिस जात का अभ्यास हो, उसका रटन और घोंटन होता है। आहाहा! मरते समय उसे वह परिणाम आते हैं। उस परिणाम के फलस्वरूप चार गति में अनन्त काल से भटकता है।

अनन्त बार शुभभाव किया। उसका विश्वास छोड़ दे। आहाहा! ऐसे शुभभाव का विश्वास भी छोड़ दे। शुभ पुण्यबन्ध का कारण है, वह धर्म नहीं। प्रभु! आहाहा! धर्म तो पुण्य-पाप, शुभभाव से रहित चैतन्य भगवान पूर्णानन्द का नाथ अन्दर, उसकी दृष्टि, आदर, आश्रय और अवलम्बन लेना, वह धर्म है। जैन वीतराग मार्ग में तो यह मार्ग है। आहाहा! शुभभाव भी अनन्त बार किया। आहा..! अशुभ भी अनन्त बार किया। आहाहा! तो भी अनन्त भव रहे। वही अनन्त भवचक्र में घानी में पिलता है। आहाहा!

यहाँ भी मार डालते हैं, देखो न! .... आहा..! एक मनोहरलाल वर्णी थे। त्यागी थे, जैन दिगम्बर में। पुस्तक बहुत बनाते थे। बहुत पैसा इकट्ठा हो गया था। वरना क्षुल्लक को ऐसा नहीं होता। किसी को पाँच लाख कम हुए होंगे। इसलिए उसने वह गाँव छोड़कर, ईसरी में रहने का निर्णय किया। ईसरी। जहाँ रहते थे वह दूसरा गाथा। उसके पास कोई माँगता होगा, ऐसा कहते हैं, उसके पास पैसे माँगे। कुछ नहीं था, ... आधे घण्टे पहले कुछ नहीं था। ऐसे बैठे थे। आधे घण्टे पहले कुछ नहीं था। कोई आदमी ने आकर ... आहाहा! हमें मिले थे, जयपुर में मिले थे। क्षुल्लक थे, क्षुल्लक। लंगोटी रखी थी। आहा..! उसमें क्या? तत्त्व की वस्तु नहीं। आहा..!

अब, यदि पूर्व में अनन्त बार किये हुए शुभभाव का विश्वास छोड़कर, जीव अपूर्व... आहाहा! अपूर्व-पूर्व में नहीं किया ऐसे आत्मा का आनन्द का ज्ञान कर। आहाहा! उस शुभाशुभभाव से रहित शुद्ध स्वरूप प्रभु अन्दर निर्मलानन्द है, उसका ज्ञान कर तो जन्म-मरण का अन्त आयेगा। नहीं तो जन्म-मरण का अन्त नहीं आयेगा। आहाहा! **अपूर्व नवीन भाव करे...** आहाहा! शुद्ध। **जिनवरस्वामी द्वारा उपदिष्ट...** तीन लोक के नाथ तीर्थंकर द्वारा उपदिष्ट **शुद्ध सम्यक् परिणति...** शुद्ध सच्ची परिणति-पर्याय प्रगट करे, **तो वह अवश्य शाश्वत सुख को प्राप्त हो।** अवश्य उसे मुक्ति मिले बिना रहे नहीं। परन्तु उसने दरकार की नहीं। कुछ ठीक करता हूँ, कुछ ठीक करता हूँ, क्रियाकाण्ड करता हूँ, वह ठीक करता हूँ—ऐसा करते-करते जीवन पूरा हो गया। परन्तु रागरहित मेरी चीज़ अन्दर आनन्दस्वरूप शुभाशुभ भाव से रहित है, उसकी दृष्टि और अनुभव करने से मुक्ति मिले बिना रहे नहीं। (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)